A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2010



विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2010

प्रधान संपादक

डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र

संपादक

गंगाधरसिंह सुखलाल

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane, Forest Side
Mauritius

whsmauritius@intnet.mu • Phone : 00-230- 6761196 • Fax : 6761224

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अनुक्रम

1.	साहित्य-पुरुष भारतेंदु	डॉ. रत्नाकर पांडेय	1
2.	हिंदी का सबसे पहला कवि-सम्मेलन	श्रीनारायण चतुर्वेदी	4
3.	अमरीका में हिंदी : एक सिंहावलोकन	सुषम बेदी	10
4.	रोमानिया में हिंदी का स्वर और स्वरूप	डॉ. रणजीत साहा	20
5.	फीजी में हिंदी : नए आयाम	शरद कुमार	27
6.	सूरीनाम में हिंदी : वर्तमान स्थिति	भावना सक्सेना	30
7.	दक्षिण अफ्रीका में हिंदी का अनोखा सफर	चंपा वशिष्ठमुनि	35
8.	इटली में हिंदी भाषा-शिक्षण	डॉ. घनश्याम शर्मा	39
9.	दक्षिण कोरिया और हिंदी : हार्दिक मिलन दो देशों का	प्रो. दिविक रमेश	43
10.	दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण	किम ऊ जो	49
11.	हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप : संभावनाओं की ओर एक सार्थक प्रयास	जिष्णु शंकर	55
12.	फिनलैंड में हिंदी	डॉ. अनीता गांगुली	60
13.	नीदरलैंड देश में हिंदी की स्थिति और विकास	पुष्पिता अवस्थी	63

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

14.	मॉरीशस में हिंदी : वर्तमान स्थिति	सत्यदेव टेंगर	69
15.	मॉरीशस में हिंदी : एक सर्वेक्षण	डॉ जयप्रकाश कर्दम	77
16.	वियतनाम में हिंदी	साधना सक्सेना	83
17.	न्यूजीलैंड में हिंदी भाषा और संस्कृति	सुनीता नारायण	87
18.	हिंदी धैर्य की भाषा है— उत्तेजना और हिंसा की नहीं	बालकवि बैरागी	92
19.	संयुक्त राष्ट्र में हिंदी : पृष्ठभूमि, प्रस्ताव और पहल	नारायण कुमार	95
20.	हिंदी की विदेशी शैलियाँ	विमलेश कांति वर्मा	104
21.	हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी	प्रो. रवि श्रीवास्तव	111
22.	भारतीय समाज में बहुभाषिकता और हिंदी	प्रो. सदानंद शाही	116
23.	विस्थापन का दर्द और 'मानस' का मरहम	डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण	120
24.	मॉरीशस का भारतीय-आप्रवासी स्वर	अभिमन्यु अनत	126
25.	प्रवासी हिंदी कहानियों में वृद्धावस्था	विजय शर्मा	129
26.	हिंदी का प्रचार-प्रसार ही एकमात्र धर्म	जितेंद्र कुमार मित्तल	137
27.	कंप्यूटर और हिंदी	लीना मेहेंदळे	143
28.	वैश्विक हिंदी की चौतरफा बयार	राकेश पांडेय	151

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

29. उपनिवेशवाद की समाप्ति — डॉ. चरणदास महंत — 156

30. विश्व हिंदी सम्मेलनों के मंतव्य — 158

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : ऐतिहासिक भाषण

31. उद्घाटन-भाषण — श्रीमती इंदिरा गांधी — 163

32. अध्यक्षीय भाषण — सर शिवसागर रामगुलाम — 166

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : कुछ संस्मरण

33. प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : मेरे संस्मरण — रामदेव धुरंधर — 171

34. 'अंधा युग' और भारत यात्रा : संस्मरण — सूर्यदेव सिबोरत — 178

35. प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : कुछ संस्मरण — महेश रामजीयावन — 181

36. हिंदी का जगमगाता संसार — सुरेश रामबर्ण (एम.बी.ई.) — 184

37. मॉरीशस का हिंदी प्रकाशन : एक दृष्टि — 186

निवेदन

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं। विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark



डॉ. वसंत कुमार बनवारी
शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री
एम. आई. टी. डी. हाउस
फ़ेनिक्स, मॉरीशस

REPUBLIC OF MAURITIUS

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES
(Office of the Minister)

संदेश

मुझे खुशी है कि विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा 'विश्व हिंदी पत्रिका' का दूसरा अंक 10 जनवरी, 2011 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। सचिवालय मॉरीशस और भारत की गहन मैत्री का प्रतीक है तथा हिंदी के प्रचार हेतु इन दोनों देशों के संकल्प का परिणाम भी। वस्तुतः मेरे लिए यह अति प्रसन्नता का विषय है कि विश्व हिंदी सचिवालय अपनी इन गतिविधियों से इस संकल्प को पूरा करने में निरंतर योगदान दे रहा है।

दुनिया भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। इनकी जानकारी देते रहने के लिए सचिवालय द्वारा तिमाही पत्रिका 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन भी हो रहा है। अब उन सभी कार्यों से विश्व में हिंदी का जो नया स्वरूप उभर रहा है उसे दुनिया के कोने-कोने के विद्वान पहचान रहे हैं। इस दिशा में लगातार खोज हो रहे हैं और उस नए स्वरूप का परिचय विश्व हिंदी पत्रिका के माध्यम से पाठकों, हिंदी प्रेमियों को हो रहा है।

मुझे इस बात की विशेष प्रसन्नता है कि 10 जनवरी, 1975 को नागपुर, भारत में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने गए मॉरीशस के प्रतिनिधि-मंडल के कुछ सदस्यों के संस्मरण भी इस बार 'विश्व हिंदी पत्रिका' की शोभा बढ़ा रहे हैं। मेरे विचार से वर्तमान और भावी पीढ़ी को चाहिए कि वह इन संस्मरणों को उन परिस्थितियों के साक्षी के रूप में देखें जिनमें पहली बार विश्व-स्तर पर हिंदी के प्रचार के लिए एकजुट होने का आह्वान किया गया था। इस एकजुटता की दिशा में पहला कदम मॉरीशस के राष्ट्रपिता और प्रथम प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को साक्षी रखकर उठाया था। इस बात पर अपने गर्व को दोहराने में मुझे ज़रा भी संकोच नहीं है।

मैं विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र और उप महासचिव श्री गंगाधरसिंह सुखलाल को इस महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और यह कामना करता हूँ कि इससे विश्व में हिंदी के प्रति जागरूकता बढ़ती रहे ताकि विश्व हिंदी समुदाय एवं विश्व हिंदी सचिवालय हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के अपने चरम उद्देश्य की पूर्ति की ओर तीव्रता से अग्रसर हो सकें।

वसंत बनवारी

(डॉ. वसंत कुमार बनवारी)

MITD House Phoenix, MAURITIUS
Tel. No 686 2402/03 Fax No. : (230) 698 3601
E-mail : vkbunwaree@mail.gov.mu

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark



सत्यमेव जयते

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विश्व हिंदी सचिवालय 10 जनवरी, 2011 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर अपने वार्षिक "विश्व हिंदी पत्रिका" का प्रकाशन करने जा रहा है। "विश्व व्यापी हिंदी" शीर्षक के तहत इसके दूसरे अंक का प्रकाशन न सिर्फ विश्व हिंदी सचिवालय की गतिविधियों की झलक देने वाला एक उपयोगी संकलन सिद्ध होगा बल्कि हिंदी जैसी अनुपम भाषा की गतिविधियों को भी रूपायित करेगा।

मातृभाषा एवं द्वितीय भाषा के रूप में विश्व की बहुत बड़ी आबादी द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिंदी की गिनती विश्व की शीर्षस्थ भाषाओं में की जाती है। भारत के आर्थिक विकास और एक उभरते हुए वैश्विक ताकत के रूप में उसकी पहचान के कारण विश्व समुदाय, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों तथा विभिन्न समाजों, समुदायों एवं लोगों के बीच हिंदी का महत्व बढ़ गया है। हिंदी भारत को उन देशों के साथ जोड़ती है जहाँ भारतीय मूल के लोग बसे हुए हैं। अपने भावों और संचित स्मृतियों के साथ कविता, गद्य, साहित्य एवं सिनेमा की भाषा के रूप में हिंदी के सौंदर्य में गुणात्मक वृद्धि हुई है। आज हम गर्व से यह कह सकते हैं कि हिंदी विश्व के सभी महादेशों में बोली जाती है और यह एक ऐसी भाषा है जो वैश्विक स्तर पर 90 से भी अधिक देशों में पूरे उत्साह के साथ पढ़ाई जाती है।

भारत सरकार हिंदी के संवर्धन और प्रचार पर काफी जोर देती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1975 में नागपुर (भारत) में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उस समय से लेकर उसके बाद के सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में भारत सरकार पूरे उत्साह के साथ हिंदी के मूल्य एवं उसके विकास को प्रोत्साहित करती रही है। इनमें से प्रत्येक सम्मेलन में हुई बहसों, विश्लेषणों, चर्चाओं एवं व्याख्याओं के परिणामस्वरूप इस जीवंत भाषा की व्यापक स्वीकृति के लिए एक मंच उपलब्ध हुआ। मुझे पूरा विश्वास है कि भारत सरकार एवं सभी हिंदी प्रेमियों के संयुक्त प्रयासों तथा हिंदी सचिवालय की गतिविधियों के कारण हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं भाषा के रूप में उसका समुचित स्थान मिलेगा। यह हमारा सपना है, हमारा लक्ष्य है और यही वह कार्य क्षेत्र है जिसमें आने वाले वर्षों में हम पूरी सक्रियता के साथ काम करेंगे।

भारत एवं मॉरीशस दोनों देशों की सरकारों के साझे सहयोग की एक गतिविधि के रूप में विश्व हिंदी सचिवालय का मॉरीशस में स्थित होना सर्वथा उपयुक्त है। सचिवालय को विश्व भर में हिंदी से संबंधित समस्त गतिविधियों को बल प्रदान करने के लिए दोनों देशों की सरकारों का निरंतर प्रोत्साहन, समर्थन व सहयोग मिलता रहा है।

मुझे विश्वास है कि 10 जनवरी 2011 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर विश्व हिंदी पत्रिका का प्रकाशन इस बात को सुनिश्चित करने के लिए उठाया गया एक कदम है कि हिंदी को उसका उचित स्थान मिलेगा एवं अंतर्राष्ट्रीय तौर पर उसे एक ऐसी भाषा के रूप में मान्यता मिलेगी जो देशों, समाजों, समुदायों एवं व्यक्तियों को एक सूत्र में पिरोती है, उन्हें करीब लाती है।

10 जनवरी 2011 को विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में विश्व हिंदी पत्रिका के इस दूसरे अंक के लोकार्पण के अवसर पर मैं विश्व हिंदी सचिवालय एवं समस्त हिंदी प्रेमियों को अपनी शुभकामनाएं देता हूँ। सबके अच्छे स्वास्थ्य, सफलता एवं हर्ष से भरे नव वर्ष की मंगलकामना करता हूँ।

म. गणपति

(म. गणपति)
23 दिसम्बर,2010

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, P.O. Box 162, Port Louis, Mauritius.
Tel: (230)208 7372 / 208 8123 Fax: (230)208 8891
Email: hicom.ss@intnet.mu Website: www.indiahighcom-mauritius.org

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

प्रधान संपादक

बदल रहा है परिदृश्य



हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प नागपुर में 10-14 जनवरी, 1975 को हुए प्रथम विश्व युद्ध हिंदी सम्मेलन में लिये गए कुल तीन संकल्पों में प्रथम था। इसके बाद द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पाँचवें, छठे और सातवें विश्व हिंदी सम्मेलनों में यह संकल्प पारित होता रहा, और हर बार यही कहा जाता रहा कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में मान्यता दी जाए।

इस मान्यता प्राप्त करने के पीछे जो जटिल प्रक्रिया अपनानी होगी, उसकी चर्चा न तो किसी विश्व हिंदी सम्मेलन में और न ही किसी अन्य मंच पर विस्तार से की गई। आज समय आ गया है जबकि हमें विभिन्न मंचों से उस प्रक्रिया पर विस्तृत चर्चा करनी होगी, जिससे कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के विश्वव्यापी हिंदी-प्रेमियों के संकल्प को पूरा करने के लिए सही दिशा मिल सके।

आज की बदलती हुई वैश्विक परिस्थितियों में भारत एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। इस बात को अमेरिका के राष्ट्रपति श्री बराक ओबामा ने भी खुलेआम स्वीकार करते हुए भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में रखा है। अमेरिका, रूस, चीन और फ्रांस के राष्ट्रपति भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता दिलाने की सिफारिश एक स्वर से करने लगे हैं। सुरक्षा परिषद् की अस्थायी सदस्यता के लिए 12 अक्तूबर, 2010 को हुए चुनाव में वर्ष 2011-2012 तक दो वर्षों के लिए भारत को निर्विरोध चुना गया है। इससे भारत की वैश्विक स्थिति और मजबूत हुई है। लेकिन भारत इससे भी अधिक शक्तिशाली होकर तब उभरेगा जब अमेरिका, फ्रांस, चीन और रूस के समर्थन से संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता प्राप्त कर लेगा। अमेरिका, फ्रांस, रूस और चीन संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के कुल पाँच सदस्यों में से चार ऐसे सदस्य हैं, जो भारत की स्थायी सदस्यता के लिए इन दिनों खुलकर समर्थन कर रहे हैं। यदि ऐसा हो जाता है तो फिर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का कार्य राजनयिक पहल और राजनैतिक इच्छाशक्ति से और भी आसान हो जाएगा।

'विश्व हिंदी पत्रिका' के इस अंक में श्री नारायण कुमार का लेख 'संयुक्त राष्ट्र में हिंदी : पृष्ठिभूमि, प्रस्ताव और पहल' प्रकाशित किया जा रहा है। इसे पढ़कर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने संबंधी हमारी संकल्पित भावुकता को ठेस तो पहुँचेगी, परंतु हम वस्तुस्थिति से भलीभाँति अवगत हो जाएँगे।

विश्व हिंदी पत्रिका : 2010 में शामिल लेख विश्व के अनेक देशों में हिंदी के प्रसार-प्रचार से जुड़े हिंदी प्रेमी लेखकों ने हमारे अनुरोध पर लिखे हैं। पिछले वर्ष प्रकाशित 'विश्व हिंदी पत्रिका : 2009' आपको मिली होगी। इस अंक पर अनेक हिंदी पाठकों ने अपनी उत्साह भरी प्रतिक्रियाएँ भेजी हैं। पिछले अंक में जिन विद्वानों की रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं, उनमें से केवल छह लेखक ऐसे हैं, जिनके लेख इस द्वितीय अंक में भी प्रकाशित किए जा रहे हैं; हालाँकि इन लेखों के विषय पिछली बार से भिन्न हैं। ये लेखक हैं—प्रो. पुष्पिता अवस्थी, श्री नारायण कुमार, श्री राकेश पांडेय, डॉ. विमलेश कांति वर्मा, श्री जितेंद्र कुमार मित्तल और डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण। इनके अलावा इस अंक के सारे लेखक नए हैं।

इस अंक को पढ़ने पर यह स्वत: स्पष्ट हो जाएगा कि इस बार इसमें मॉरीशस पर अधिक सामग्री है। इसमें मॉरीशस के उन चार लेखकों के संस्मरण भी प्रकाशित किए जा रहे हैं, जो मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में 'प्रथम विश्व हिंदी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

सम्मेलन' में भाग लेने जनवरी, 1975 में नागपुर, (भारत) गए थे। अत्यंत रोचक हैं उनके संस्मरण। मॉरीशस के शीर्षस्थ हिंदी कथाकार डॉ. अभिमन्यु अनत का लेख 'मॉरीशस का भारतीय आप्रवासी स्वर' भी इस अंक में शामिल है। एक नई शुरुआत के रूप में इस बार 'मॉरीशस का हिंदी प्रकाशन : एक दृष्टि' शीर्षक के अंतर्गत सचिवालय द्वारा तैयार की गई उन हिंदी पुस्तकों की सूची प्रकाशित की जा रही है, जो मॉरीशस के रचनाकारों द्वारा लिखी गई हैं। इससे हमें 'एक दृष्टि' में मॉरीशस के लेखकों और उनकी हिंदी रचनाओं से रू-ब-रू होने का मौका मिलेगा। सचिवालय की यह कोशिश रहेगी कि वार्षिक पत्रिका के आगामी अंकों में विश्व के अन्य देशों के रचनाकारों द्वारा सृजित हिंदी रचनाओं की अद्यतन सूची प्रकाशित होती रहे।

हम जानते हैं कि हिंदी के असंख्य लेखक भारत से बाहर रहते हैं। उन लेखकों की रचनाएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। भारत से बाहर रहनेवाले जिन रचनाकारों की पुस्तकें भारत में प्रकाशित होती हैं, उनकी जानकारी भारत के सुधी पाठकों को तुरंत मिल जाती है, किंतु जिन रचनाकारों की रचनाएँ विदेशों में ही हिंदी में प्रकाशित होती हैं, उनकी जानकारी भारतवासियों को तत्काल नहीं मिल पाती। इस बात को ध्यान में रखकर सचिवालय ने यह कदम उठाया है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी में प्रकाशित संपूर्ण साहित्य सचिवालय की वेबसाइट पर शीघ्र ही उपलब्ध कराया जाए। इसमें हिंदी में अनूदित व प्रकाशित विश्व साहित्य भी शामिल होगा। इसके लिए महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के साथ-साथ विश्वव्यापी अन्य हिंदी-सेवी संस्थाओं का सहयोग भी लिया जाएगा।

इस अंक का एक विशेष आकर्षण यह भी है कि इसमें भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी एवं मॉरीशस के राष्ट्रपिता व पूर्व प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के वे भाषण भी प्रकाशित किए गए हैं, जो उन्होंने प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के समय जनवरी, 1975 में नागपुर में दिए थे।

सचिवालय के त्रैमासिक प्रकाशन 'विश्व हिंदी समाचार' के माध्यम से हम वैश्विक स्तर पर हिंदी की गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी आप तक पहुँचाने का प्रयास मार्च, 2008 से लगातार करते आ रहे हैं। किंतु इस वार्षिक प्रकाशन में सम्मिलित लेखों के जरिये हमारी यह कोशिश है कि विश्व फलक पर हिंदी के व्यापक स्वरूप से भी आपको अवगत कराते रहें। इसमें सम्मिलित लेखों से आपको वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य की व्यापकता के साथ-साथ इसके शिक्षण-प्रशिक्षण और प्रचार-प्रसार में आनेवाली कठिनाइयों से भी अवगत होने का अवसर मिलेगा।

अब तक आयोजित आठ विश्व हिंदी सम्मेलनों में जितने प्रस्ताव अथवा संकल्प पारित हो चुके हैं, यदि हम केवल उन्हीं को पूरा कर लें, कोई और नया संकल्प न लें तो भी हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनने में अधिक देर नहीं लगेगी। हमने 'विश्व हिंदी समाचार' के अंक-3, सितंबर, 2008 के पृष्ठ 10-11 में उन सभी संकल्पों को एक साथ प्रकाशित किया था। आपके तत्काल संदर्भ के लिए इस वार्षिक अंक में भी उन्हें पुन: प्रकाशित कर रहे हैं, ताकि आप देख सकें कि उनमें से कितने संकल्प पूरे किए जा चुके हैं और कितने अभी पूरे किए जाने हैं।

वार्षिक पत्रिका के इस अंक में भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस एवं मॉरीशस के शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्रालय ने जो रुचि ली है, उसके लिए हम भारतीय उच्चायुक्त महामहिम श्री मधुसूदन गणपति, उप उच्चायुक्त माननीय श्री प्रशांत पीसे और मॉरीशस के शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री डॉ. वसंत कुमार बनवारी एवं मंत्रालय की सुपरवाइजिंग ऑफीसर श्रीमती प्रमिला ऑबिलक के हृदय से आभारी हैं। सचिवालय की गतिविधियों का निर्धारण करने के लिए बनी 'कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ' उप समिति की सदस्या एवं मॉरीशस के कला एवं संस्कृति मंत्रालय की वरिष्ठ संस्कृति अधिकारी सुश्री अनुपमा चमन एवं भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव (शिक्षा व भाषा) श्री मीमांसक के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने पत्रिका के समय पर प्रकाशन हेतु विशेष रुचि ली। सचिवालय के उप महासचिव श्री गंगाधर सिंह सुखलाल एवं

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अन्य सहयोगी जीष्णु, प्रीति और विजया के बिना यह कार्य समय पर पूरा कर पाना संभव नहीं था। इसके अलावा विद्या विहार, नई दिल्ली ने इस पत्रिका के प्रकाशन में जो तत्परता दिखाई, उसके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस बार लेखों के साथ लेखकों के चित्र और उनका परिचय भी दिया जा रहा है। पिछली बार यह संभव नहीं हो सका था।

पत्रिका के इस सीमित कलेवर में इस बार जो सामग्री दी गई है, वह पर्याप्त है, यह कहना उचित नहीं होगा। कोई भी पत्रिका अपने आप में पूर्ण होती है, यह कहना भी ठीक नहीं होगा। हर पत्रिका का एक सीमित कलेवर होता है। अत: इस अंक में जो कमियाँ रह गई हैं, अगली बार उन्हें सुधारने की पूरी कोशिश की जाएगी। आप से अनुरोध है कि उन कमियों अथवा त्रुटियों की ओर संकेत भर कर दें। इसके लिए हम आपके आभारी रहेंगे। पत्रिका के संबंध में आपके सुझावों का स्वागत है।

आपसे प्रार्थना है कि आप भी इस वार्षिक पत्रिका से जुड़ें और अपना लेख हमें ई-मेल, फैक्स अथवा डाक से भेजते रहें। हमारी कामना है कि वर्ष 2011 के आगामी अंक में आपका भी लेख सम्मिलित हो।

आपके एवं आपके समस्त परिवार के लिए नववर्ष-2011 मंगलमय हो।

13 दिसंबर, 2010

(डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र)
महासचिव

भाषा बड़ी रहस्यमयी देवी है। यह नई सृष्टि करती है। इतिहास विधाता के किए कराए पर वह ऐसा पर्दा डाल देती है कि कभी-कभी दुनिया ही बदल जाती है।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हिंदी का सांस्कृतिक पलड़ा भारी है



सचिवालय के भवन में प्रवेश करने पर रामधारी सिंह दिनकर का एक कथन आँखों से टकराया—भाषा की खानें दो हैं : एक पुस्तकों में, दूसरी जनता की जबान पर। यह कथन बहुआयामी है। अनेक दृष्टिकोण से इसके भिन्न-भिन्न आयाम खुलते हैं। हमारा सरोकर उस आयाम से है जो सचिवालय के कार्यों का दिशा-निर्देश करता है। विश्व हिंदी सचिवालय का चरम उद्देश्य हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाना है। यहाँ आपसे इस बात पर विचार करने का आग्रह अवश्य करूँगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना दशकों पूर्व जिन अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों में हुई थी एवं उसकी आधिकारिक भाषाओं का चयन, भाषा का आर्थिक और सामरिक शक्ति के आधार पर मूल्यांकन करने की जिस मानसिकता के आधार पर हुआ था, उनमें आज कितना परिवर्तन हुआ है। इस प्रश्न का उत्तर दिनकरजी के कथन के आलोक में एक वाक्य में देना हो तो कहूँगा कि आज विश्व स्तर पर भाषा संबंधी विचारधारा पुस्तक और जनता की जबानवाली खानों में संतुलन के दृष्टिकोण को अपना रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की शाखा यूनिसेफ ने जब वर्ष 1999 में 21 फरवरी को 'अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' घोषित किया (मातृभाषा जो पुस्तकों से अधिक जनता की जबान वाली भाषा है), तब उसका उद्देश्य भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता तथा बहुभाषिकता को बढ़ावा देना बताया गया। और सभी सदस्य राष्ट्रों से सिफारिश की गई कि वे भाषिक विविधता के लिए उचित अंतर्राष्ट्रीय वातावरण-निर्माण करें। इसके उपरांत एक और कदम आगे जाते हुए राष्ट्र संघ महासभा ने 2008 को अंतर्राष्ट्रीय भाषा वर्ष घोषित कर दिया और कहा कि लोगों के बीच सद्भावपूर्ण संप्रेषण के लिए एक अनिवार्य तत्व के रूप में बहुभाषिकता संयुक्त राष्ट्र संघ के लिए विशेष महत्व रखती है।

अमेरिकी विकास मॉडल तथा सांस्कृतिक दृष्टि के 'मेल्टिंग पॉट' को आदर्श माननेवाले पश्चिमी समाज के लिए ये घोषणाएँ परिवर्तन का सूचक थीं। मातृभाषा के साथ संलग्न व्यक्तिगत अस्मिता तथा बहुभाषिकता के साथ संलग्न नवीन विश्व-नागरिकता की इन परस्पर विरोधी दिखनेवाली घोषणाओं के पीछे एक ही आधारभूत उद्देश्य होने से अनेक बातों के बीच ये तथ्य स्पष्ट हुए :

- पश्चिमी विलीनतावादी सांस्कृतिक मॉडल नहीं चला।
- भाषिक और सांस्कृतिक विविधता भविष्य की शक्तियाँ हैं।
- भाषा के मूल्यांकन के मानदंड परिवर्तित हो रहे हैं।

ये शुभ संकेत हैं।

संकेत इस बात के कि विश्व में भाषाओं संबंधी मानसिकता और उस मानसिकता से उपजे नियम अब उपनिवेशवादी साँचे से मुक्त होने लगे हैं। वह मानसिकता रही है कि किसी भाषा की शक्ति उसके देश/देशों की आर्थिक, व्यापारिक अथवा सामाजिक समृद्धि मात्र के समतुल्य हुआ करती थी। यह कुछ सीमा तक उचित है, कारण कि इन सभी शक्तियों के विकास में उस देश की भाषा का योगदान स्वाभाविक होता है। परंतु इस विचारधारा में कमी यह थी कि यह उस देश/देशों तथा उस भाषा की सांस्कृतिक समृद्धि को अनदेखा करती रही। उसका ध्यान भाषा की उस खान मात्र तक सीमित रहा, जिसका संबंध औपचारिक और कार्यालयी प्रयोग से है। आज विश्व भर में भाषा, भाषाई राष्ट्रवाद,

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark
मातृभाषा, बहुभाषिकता आदि विषयों से संबद्ध विचारों एवं धारणाओं को लेकर जो आमूल परिवर्तन हो रहे हैं, उनसे भाषा की शक्ति के मानदंडों में सांस्कृतिक समृद्धि का मूल्य बढ़ रहा है। इसका निकट भविष्य में परिणाम यही होगा कि भाषा की शक्ति में देश की शक्ति मानी जाएगी।

मानदंडों में पुन: संतुलन की इस प्रक्रिया से दुनिया में उपनिवेशवाद तथा उपनिवेशवादोत्तर काल की उपेक्षित भाषाओं का विश्व स्तर पर पुनर्मूल्यांकन अवश्यंभावी है। इस पुनर्मूल्यांकन में हिंदी का सर्वाधिक लाभ होगा, कारण कि संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के पद पर आसीन सभी भाषाओं की तुलना में सांस्कृतिक समृद्धि की दृष्टि से हिंदी का पलड़ा निश्चित ही भारी है। कहने का तात्पर्य है कि यदि स्वयं राष्ट्र संघ सांस्कृतिक विविधता एवं बहुभाषिकता को अनिवार्य मान रहा है तो उसको अपनी आधिकारिक भाषाओं के चुनाव अथवा निर्धारण में इन बातों को एक मानदंड के रूप में लेना ही होगा।

विश्व हिंदी पत्रिका 2010 में शामिल किए गए लेख हिंदी की इस समृद्धि बहुत अच्छा प्रमाण हैं।

आज हिंदी के पल-पल विस्तृत होते फलक की दैनिक न कहें तो कम-से-कम वार्षिक आकलन की आवश्यकता है। इस आकलन से ही हिंदी के 'विश्व भाषा' स्वरूप की रेखाएँ स्पष्ट होती रहेंगी। इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा करना ही विश्व हिंदी पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य है और मुझे प्रसन्नता है कि पत्रिका का यह अंक भी इस उद्देश्य की पूर्ति में अपना पूरा योगदान दे रहा है।

ये लेख विश्व भर में कर्मठ व्यक्तियों, समर्पित संस्थाओं के परिश्रम के फलस्वरूप हिंदी के प्रसार के गवाह हैं। भारत और नेपाल, मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम आदि भारतेतर हिंदी भाषी क्षेत्रों में पुस्तकों और जनता की जबान पर बसनेवाली हिंदी की पहचान पुरानी है। (पर किसी-न-किसी रूप में यह भी स्पष्ट है कि इतने मात्र से न तो वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की संपूर्ण छवि उभरती है, न ही विश्व हिंदी सचिवालय के चरम उद्देश्य की पूर्ति होती है।) इनके अतिरिक्त विश्व हिंदी पत्रिका 2010 नए हिंदी भाषियों के साथ हमारा परिचय करवाती है।

हिंदी हिंदीतर क्षेत्रों के निवासियों, हिंदी को 'पुर्खन की भाषा' के रूप में गले लगानेवालों, नव-प्रवासित माता-पिता की मातृभाषा के रूप में हिंदी को आदर देनेवालों, हिंदी साहित्य-प्रेमियों तथा हिंदी भाषा का प्रयोग करने वाले अन्य क्षेत्रों के प्रॉफेशनल लोगों के अतिरिक्त अब हिंदी समाज में दो अन्य प्रकार के सदस्यों का सम्मिलन निश्चित हो रहा है। एक सदस्य, जो इस भाषा की बढ़ती आर्थिक संभावनाओं के कारण विदेशों में रहते हुए भी इसका अध्ययन कर रहा है। दूसरा सदस्य, गॉर्डन मैथ्यूज के 'ग्लोबल कल्चरल सुपरमार्केट' का खरीदार। यह खरीदार (चाहे किसी भी देश का हो) अपनी सांस्कृतिक पहचान को स्वयं गढ़ने वाला नया विश्वनागरिक है, जो वैश्विक सांस्कृतिक बाजार से सामग्री लेकर अपनी पहचान में जोड़ता है। गर्व और उत्साहवर्धक बात यह है कि आज विश्व में सांस्कृतिक रूप से समृद्ध किसी भी व्यक्ति के लिए हिंदी अस्मिता का अभिन्न अंग बन रही है। इसका प्रमाण सुदूर देशों में हिंदी के प्रति रुचि की कथा कहनेवाले हमारे लेखों में है।

(वैसे यह जोड़ना आवश्यक है कि इन देशों में जिस हिंदी का विकास हो रहा है, वह पुस्तकों वाली नहीं, जनता की जबान वाली खान में है, जो हिंदी समुदाय के समक्ष अस्मिता की माँग के साथ भी खड़ी है। ऐसा नहीं है कि इनको पहचाना नहीं गया हो, परंतु यह तो अवश्य है कि कुछ अति-शुद्धतावादी विद्वान इनको 'हिंदी का भ्रष्ट रूप' कहकर इन शैलियों को हिंदी-जगत में दोयम दरजे की नागरिकता ही देते रहे। पत्रिका में हिंदीतर क्षेत्र के देशों में हिंदी के अस्तित्व संबंधी सभी लेख इस मानसिकता में परिवर्तन की माँग के साथ आए हैं। स्तर की दृष्टि से इनमें सुधार की संभावना को स्वीकारते हुए इनको हिंदी की समृद्धि के अंग के रूप में स्वीकार की माँग के साथ आए हैं।)

आज यदि हम हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा के पद पर आसीन देखना चाहते हैं तो उसके लिए जहाँ तक एक ओर एक उभरती वैश्विक शक्ति के रूप में भारत की बढ़ती पहचान हमारी पूँजी है, वहीं दूसरी ओर भारत और विश्व भर में हिंदी की

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भाषिक तथा सांस्कृतिक विविधता हमारी कुंजी है। आज इस भाषा के बलबूते विश्व में बहुभाषिकता के उन्नयन तथा नया विश्व-नागरिक बनाने में इसका योगदान हमारा बल है।

इसका यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि हिंदी को अपनी सांस्कृतिक विविधता मात्र से संतुष्ट हो जाना चाहिए। विज्ञान, वाणिज्य, संचार आदि क्षेत्रों में भाषा का विकास अभी भी हमारे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक प्रमुख संकल्प बना रहना चाहिए।

मेरा यह संदेश अपूर्ण होगा, यदि इसमें महासचिव डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र के प्रति आभार के दो शब्द सम्मिलित न हों। वास्तविकता तो यही है कि विश्व हिंदी पत्रिका 2010 के लिए भूमि की तैयारी उन्होंने कर ली थी। मेरा प्रवेश तो कार्य के मध्य में हुआ और इसपर भी उन्होंने मुझे अपनी ओर से कुछ जोड़ने का, सीखने का अवसर दिया, इसके लिए उनको धन्यवाद। इसी वर्ष उनका कार्यकाल भी समाप्त हो रहा है, वस्तुत: सचिवालय और आप सभी की ओर से उनको भावी योजनाओं के लिए शुभकामनाएँ भी हैं। इस पत्रिका को यह रूप प्रदान करने में सचिवालय में कार्यरत जिष्णु, प्रीति तथा विजया का योगदान सराहनीय रहा। विद्या विहार प्रकाशन नई दिल्ली की भूमिका और योगदान का परिचायक तो आपके हाथों में है ही।

अंत में आप हिंदी शुभचिंतकों, सेवियों, प्रहरियों के स्नेह और समर्पण के लिए हार्दिक धन्यवाद। धन्यवाद के साथ अनुरोध भी कि विश्वव्यापी हिंदी के बहुत से आयामों, बहुत से चेहरों, आँकड़ों से अभी हिंदी-जगत को अवगत कराना शेष है, इसलिए विश्व हिंदी पत्रिका 2011 के लिए अपने आलेख की तैयारी में अभी से जुट जाइए।

शुभकामनाएँ,

—गंगाधरसिंह सुखलाल
उप महासचिव

मॉरीशस
21.12.2010



"भाषा संस्कृति का वाहन है और उसका अंग भी।"

—डॉ. रामविलास शर्मा



DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

1 साहित्य-पुरुष भारतेंदु

● डॉ. रत्नाकर पांडेय

आज हिंदी विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित है। लेकिन हिंदी को प्रतिष्ठा दिलानेवाले लोगों में खड़ी बोली के विकासकर्ता और हिंदी साहित्य की गद्य विधा शैलियों की शुरुआत विख्यात युग-प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र विश्व हिंदी और भारतीयता के उदय-पुरुष थे। जिस युग में भारतेंदु का उदय हुआ था, वह समय आधुनिक हिंदी के विकास की दृष्टि से 'बीज वपन' युग था। भाषा की समस्या स्थिर नहीं हो पा रही थी। भारतेंदु के पूर्व साहित्यिक व्यक्तित्व, जिनमें उनके गुरु राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' और आगरा के राजा लक्ष्मण सिंह थे, भाषा के प्रश्न पर दो दलों में विभक्त थे। राजा शिवप्रसाद 'अरबी-फारसी' मिश्रित भाषा को 'जनभाषा' का रूप देना उचित समझते थे। उन्होंने अनेक प्रयोग किए। उस युग के जन-जीवन में अरबी-फारसी की महत्ता अदालत और शिक्षण संस्थानों में व्यापक रूप से आदर पा रही थी और दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ हिंदी का झंडा कुछ ही लोगों ने ऊँचा उठा रखा था। राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृतनिष्ठ हिंदी के पक्षपाती थे। इसी संक्रमणशील परिस्थिति में साहित्य-पुरुष भारतेंदु का उदय हुआ था। यह मान लेने पर कि 'भाषा कुछ भी हो, परंतु भाव उत्तम हों' से साहित्य का उपकार तो होता रहता है, परंतु भाषा की एकता की समस्या जैसी-की-तैसी बनी रह जाती है।' भारतेंदुजी केवल साहित्यकार ही नहीं, जन-जीवन के भी प्रतिनिधि थे। साहस के साथ भाषा की अनेक समस्याओं का निराकरण करने का उनका प्रयत्न आधुनिक हिंदी की मूल आधारशिला है। वास्तव में भाषा के विकास की दृष्टि से देखा जाए तो राजा शिवप्रसाद की भाषा का रूप राजनैतिक समर्थन प्राप्त करता हुआ आज भी हमारे बीच है।

आम फहम भाषा ने देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों में सरलता का रूप प्राप्त किया। पुन: वह प्रेमचंद के माध्यम से हिंदी में और भी स्पष्ट रूप से व्यवस्थित हुई। अपनी 'आत्मकथा' में गांधीजी ने जिस 'हिंदुस्तानी' का प्रयोग किया, वह भारतेंदु नहीं, राजा शिवप्रसाद की भाषा का प्रभाव या विकास कहा जा सकता है। नेहरूजी भी 'हिंदुस्तानी' का ही समर्थन करते रहे। राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा का रूप क्षीण धारा के रूप में आज भी विद्यमान है, परंतु जिस एकान्वित ईमानदारी के साथ भारतेंदु ने भाषा की एकरूपता का मार्ग प्रशस्त किया, वह हिंदुस्तान नहीं, भारत की जनभाषा थी, और आधुनिक हिंदी में अनेक संघर्षों के उपरांत भी उसी भाषा के मान्यता मिली है। आज हम 'भारत' के नागरिक हैं 'हिंदुस्तान' के नहीं। इस दृष्टिकोण से विवेचन करने पर यही तथ्य सम्मुख आता है कि भारतेंदुजी का प्रयत्न राष्ट्रीय था। उन्होंने भविष्य को समझा था और उस युग में जहाँ अनेक रूपों में उनका 'राष्ट्रीय व्यक्तित्व' दिखाई पड़ता है, वही निज भाषा उन्नतिकर्ता के रूप में सर्वाधिक सबल और विशेष राष्ट्र-पुरुष के रूप में हिंदी जगत् में अमर हैं।

जिस समय भारतेंदु अपनी रचनाओं से जहाँ हिंदी की सेवा में



- वाराणसी, उ.प्र. में जनमे डॉ. पांडेय ने काशी हिंदू वि.वि. से एम.ए., पी-एच.डी., राँची वि.वि. से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। पहले प्राध्यापक, सन् 1967 में मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली के प्रिंसिपल बने
- नागरी प्रचारिणी सभा काशी, राष्ट्रीय हिंदी अकादमी कलकत्ता, हिंदी साहित्य सम्मेलन मुंबई, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बंगलौर, राष्ट्रीय हिंदी परिषद मेरठ आदि शीर्ष हिंदी संस्थाओं के पदाधिकारी रहे। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन, नागपुर और द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस तथा आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व किया। राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर के सामाजिक-सांस्कृतिक और श्रमिक संगठनों में महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित रहे
- सन् 1986 से 1992 तक राज्यसभा के सदस्य और कई संसदीय समितियों के सदस्य बने।
- अब तक 50 पुस्तकों का लेखन-संपादन और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 500 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित। संप्रति विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस की सर्वोच्च शासी-परिषद तथा केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य।

तल्लीन थे, वहीं दूसरी ओर एक साहित्यिक स्कूल का निर्माण कर उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं पर लिखनेवाले लेखकों का एक समर्थ दल पैदा किया। इन लेखकों ने पद्य-गद्य सभी विधाओं पर कार्य किया। साहित्यिक गोष्ठियों के माध्यम से भारतेंदु-युग का अधिकांश साहित्य प्रकाश में आया है। हिंदी के इस सामूहिक प्रयत्न की कार्यावस्था में भाषा के संबंध में अनेक विचार प्रकट हुए हैं।

भारतेंदु ने भाषा के संबंध में अनेकस्थलों पर विचार किया है। हिंदी भाषा के संबंध में एक निबंध में भारतेंदु ने सोदाहरण भाषा का विवेचन करके हिंदी के तीन रूप स्थापित किए। संस्कृत के शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य प्रथम रूप में, संस्कृत शब्दों का अल्प प्रयोग दूसरे रूप में और शुद्ध हिंदी का प्रयोग तीसरे रूप की विशेषता है। भाषा के तीनों रूपों का उदहारण देते हुए भारतेंदु ने स्पष्ट कहा है—

''हम इस स्थान पर वाद नहीं करना चाहते कि कौन भाषा उत्तम है और वही लिखना चाहिए, पर हाँ, यदि मुझसे कोई अनुमति पूछे तो मैं कहूँगा नंबर दो और तीन लिखने के योग्य हैं।''

आधुनिक हिंदी में जिस भाषा पर विशेष बल दिया जाता है, वह रूप भारतेंदु जी की तीसरे प्रकार की भाषा के प्रयोग में परिलक्षित होता है। उन्होंने उसका उदाहरण इस प्रकार दिया—

''पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए, क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फंदे में पड़ गए कि इधर की सुधि ही भूल गए! कहाँ (तो) वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी तक न भिजवाना! हा! मैं कहाँ जाऊँ, कैसे करूँ? मेरी तो कोई ऐसी मुँहबोली सहेली भी नहीं, जिससे दुखड़ा कह सुनाऊँ, कुछ इधर-उधर की बातों से ही दिल बहलाऊँ।''

यह उदाहरण हिंदी भाषा के सामूहिक स्वरूप का प्रतीक है। यह एक वर्ग विशेष में निहित रहनेवाली भाषा नहीं अपितु हिंदी के मध्यकाल से चली आ रही, भारतेंदु युग तक के संस्कार और उन्नति का पूर्ण विकसित रूप है। सच तो यह है कि यदि तुलसी हमारे सांस्कृतिक युग-कवि हैं तो भारतेंदु अधिकांश भाषा-प्रयोगों के माध्यम से हमारी राष्ट्रीय भाषा के प्रेरक और पथ-प्रदर्शक हैं।

भारतेंदु का परिवार दिल्ली से काशी आकर बसा था। वे अग्रवाल थे। परंतु तेगअली जैसे बनारसी बैठकबाज से लेकर पंडित सुधाकर द्विवेदी जैसे प्रकांड पंडित तक अनेक कोटि के लोग उनके साथ थे। काशी की भाषा दिल्लीवालों और पश्चिमी जनता के आने के पूर्व दूसरे रूप में थी।

जहाँ भारतेंदु ने विभिन्न नए प्रयोग किए, वहीं हिंदी पत्रकारिता के विकास के लिए 18 वर्ष की उम्र में सन् 1967 में 'कवि-वचन सुधा' का प्रकाशन किया। 'ज्ञान-प्रदीप', 'वृत्तांत-विकास' आदि का प्रकाशन इस पत्र के पूर्व हो रहा था। हिंदी में प्रथम बार इस पत्र के माध्यम से ग्राम कवि की कविताओं से अमृतवाणी की सोतस्विनी बहाने का कार्य भारतेंदु द्वारा किया गया। सन् 1973 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक पत्र निकला, जो विविधताएँ लेकर कुछ समय के उपरांत 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के रूप में परिवर्तित हो गया। हरिश्चंद्र के ही शब्दों में—'हरिश्चंद्र की यह चंद्रिका 'जय मंगल करने हेतु' प्रकाशित हुई थी।'

जन-जीवन में भोजपुरी के 'अइली गइली' का प्रयोग होता था। अग्रवाल घरों में बोली जाने वाली खड़ी बोली के समकक्ष दूसरी बोली थी। कसेरों में 'जाना' के लिए 'जात बाटो' जैसे प्रयोग चल रहे थे। काशीराज दरबार की दरबारी भाषा अपना विकास कर रही थी। एक ओर कविता के क्षेत्र में ब्रज की परंपरा का संधि-युग सम्मुख खड़ा था, दूसरी ओर आधुनिकता तथा अंग्रेजी के प्रभाव के कारण जनता भाषा-प्रयोग में नवीनता चाहती थी। भारतेंदु का आंतरिक समर्थन उसे प्राप्त था। अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती, बँगला, उर्दू आदि से हिंदी में विभिन्न शैलियों का विभिन्न रचनाक्रम के आधार पर स्वयं और मंडल द्वारा रूप स्थिर कराकर भारतेंदु ने नई-नई साहित्यिक विधाओं का प्रचलन किया। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतेंदु ने जन-मन के रागात्मक तार तंतुओं को पहचाना था। कजली, लावनी के राग पर 'खड़ी देखती गह, झमा-झम बरस रहा पानी' जैसी प्रचलित धुन पर रचना करके लावनीबाजों के बीच उनके द्वारा स्वयं लावनी गाया जाना उन्हें जनकवि के रूप में स्थापित करता है।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

रंगमंच और नाटक दोनों दृष्टियों से भारतेंदु के पूर्व हिंदी का कोई विकसित रूप नहीं मिलता। हिंदी नाट्य साहित्य के आलोचकों में बड़ा विवाद है कि हिंदी का प्रथम नाटककार होने का श्रेय किसे दिया जाए! भारतेंदुजी ने स्वयं इस पर प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने पिता श्री गोपाल चंद्र के 'नहुष' नाटक को हिंदी का प्रथम नाटक और राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुंतला' को दूसरा मौलिक नाटक स्वीकार किया है। मौलिकता की बात यदि छोड़ दी जाए तो यह कहना ही होगा कि अपने नाटकों के माध्यम से भारतेंदुजी प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने संस्कृत की बँधी हुई परंपराओं से निकलकर, पारसी रंगमंच में उत्तेजक और बनावटी प्रभाव से अलग हटकर, बँगला से ग्रहण योग्य नाट्य योजना को स्वीकार कर, वातावरण का ध्यान रखकर युगानुरूप स्वस्थ नाटकों की रचना की। काशी के पारसी रंगमंच पर खेले गए 'शकुंतला' के वीभत्स और भौंड़े अभिनय को देखकर भारतेंदु के साहित्य-मानस को चोट लगी थी। डॉक्टर थोबो, बाबू प्रमदा दासजै विद्वान् यह कहकर रंगशाला से बाहर आ गए कि कालिदास के गले पर छुरी फेरी जा रही है। उसी दिन भारतेंदु को हिंदी के स्वस्थ रंगमंच के विकास की कमी का अनुभव हुआ। उनके प्रयत्न-स्वरूप काशी का ही नहीं अपितु संपूर्ण उत्तर भारत का विशिष्ट रंगमंच काशी में स्थापित हो सका। भारतेंदु के विभिन्न नाटकों में (अनुवाद, मौलिक) भावप्रधान शैली की प्रधानता मिलती है। देश के प्रति उत्साह तथा मनोरंजन के निमित्त हास्य-व्यंग्य सबकुछ भारतेंदु के नाटकों में यथेष्ट मात्रा में मिलता है। एकीकरण की भावना से प्रबुद्ध होकर भारतेंदु ने जिन नाटकों की सृष्टि की, उनमें प्रथम बार आधुनिक परंपरा और आत्मा का दिग्दर्शन हुआ। भारतेंदु के नाटक संगीत की मधुर धुन लेकर स्वस्थ 'अभिनय' के प्रचार में सहायक हुए हैं।

जहाँ भारतेंदु ने विभिन्न नए प्रयोग किए, वहीं हिंदी पत्रकारिता के विकास के लिए 18 वर्ष की उम्र में सन् 1967 में 'कवि-वचन सुधा' का प्रकाशन किया। 'ज्ञान-प्रदीप', 'वृत्तांत-विकास' आदि का प्रकाशन इस पत्र के पूर्व हो रहा था। हिंदी में प्रथम बार इस पत्र के माध्यम से ग्राम कवि की कविताओं से अमृतवाणी की स्रोतस्विनी बहाने का कार्य भारतेंदु द्वारा किया गया। सन् 1973 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक पत्र निकला, जो विविधताएँ लेकर कुछ समय के उपरांत 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के रूप में परिवर्तित हो गया। हरिश्चंद्र के ही शब्दों में—'हरिश्चंद्र की यह चंद्रिका 'जय मंगल करने हेतु' प्रकाशित हुई थी।' गद्य, पद्य पुरातत्त्व, विज्ञान आदि की सामग्री से परिपूर्ण इस पत्रिका की लोकप्रियता बहुत दिन तक स्थिर रही। सन् 1974 में 'बालबोधिनी' महिलापयोगी पत्र का प्रकाशन भी भारतेंदु ने किया। नारियों की दयनीयता के प्रति भारतेंदु के मानस में क्षोभ था। पत्रकार के रूप में भारतेंदु की मौलिकता को स्वीकार करना पड़ता है। उनके द्वारा प्रकाशित पत्र अधिक स्थायी रूप से चल पाए। उस युग में पत्र निकालना साधारण बात नहीं थी और तीन पत्र निकालकर व्यापक दृष्टिकोण की स्थापना शायद राष्ट्रीय सुधारवादी संघर्ष-युग में भी समाचार-पत्रों के लिए चुनौती हो सकती है।

'नाटक' नामक निबंध में भारतेंदु के आलोचक का रूप देखकर आश्चर्य होता है। भारतेंदु के रंगमंचीय ज्ञान का विशाल अनुभव यहाँ भरा पड़ा है। डॉ. रामविलास शर्मा 'हिंदी नाट्य साहित्य' में अब तक जो कुछ लिखा गया है, उसमें इस निबंध को सिरमौर मानते हैं। उन्होंने इसके कारणों का उल्लेख करते हुए कहा कि भारतेंदु ने इसे नाट्यशास्त्र का अध्ययन करके ही नहीं लिखा, अपितु उसमें रंगमंच और नाट्य-रचना का सार भी मिला दिया है। हिंदी में व्यंग्यपूर्ण आलोचना के वे प्रथम सूत्रधार हैं। आत्मकथा, पुरातत्त्व एवं औपन्यासिक अंश भी भारतेंदु ने इन पत्रों में लिखे हैं।

जिस समय भारतेंदु का कार्यकाल था, उस समय सामाजिकता, राजनीतिक गौरांग प्रभुओं के पद-वंदन की प्रवृत्ति आदि के नाम पर आज से भी भीषण संघर्षमयी स्थिति विद्यमान थी। तब वादों का प्रचार नहीं था। अंधकार और संघर्ष का युग था। भारतेंदु के समस्त रचनात्मक व्यक्तित्व में नवीनता का आग्रह था। उनके कार्यों में भारतीय राष्ट्रीयता का संस्कार था। जिस व्यक्ति ने लक्ष्मी को लुटाकर सरस्वती की साधना में पैंतीस वर्ष तक लिप्त रहकर राष्ट्रीय और साहित्यिक जन-जागरण का मंत्र समाज में फूँका हो और साहित्य में अपनी दृढ़ स्थिति बनाए रखी हो, वह व्यक्ति सचमुच आधुनिक मौलिक साहित्य का जनक है। एक शब्द में भारतेंदु 'साहित्य-पुरुष' थे।

□

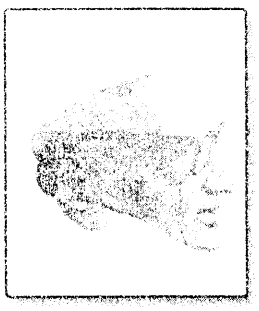
Plot : 113-114,
Krishnakunj, Lakshmi Nagar,
New Delhi-110092

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हिंदी का सबसे पहला कवि-सम्मेलन

श्रीनारायण चतुर्वेदी

मैं स्वयं कवि न होने पर भी, संयोगवश कवि-सम्मेलनों से उनके विकास काल में कई वर्ष संपर्क में रहा। उन दिनों हरिऔधजी और स्नेहीजी, जो स्वयं महान् कवि थे, सामान्यत: कवि-सम्मेलनों की अध्यक्षता भी करते थे। मैं केवल अध्यक्षता करता था। उन दिनों कवि-सम्मेलनों का अध्यक्ष गुड्डा बनकर सांख्य-पुरुष की तरह चुपचाप निष्क्रिय बैठा नहीं रहता था। तब तक 'संचालक' का जन्म नहीं हुआ था। अतएव कवि न होते हुए भी मेरा काम वास्तव में संचालन करने का ही रहता। उन दिनों के कुछ संस्मरण बड़े रोचक हैं। उस समय की दूसरी विशेषता यह थी कि तब तक कवि-सम्मेलनों में व्यावसायिकता नहीं आई थी। आरंभ में तो कविगण अपने व्यय से कवि-सम्मेलनों में जाते थे। इस कारण उनका सम्मान भी बहुत अधिक होता था। उन दिनों कुछ कवि हलकी या गहरी भंग पीते थे। कवयित्रियाँ बहुत कम थीं, जो कभी-कभी किसी मंच पर एक आश्चर्य की तरह दिखाई पड़ जाती थीं। किंतु मैं इस लेख में उस समय के अनुभव नहीं लिख रहा हूँ।



(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में)

"श्रद्धेय पं. श्रीनारायणजी चतुर्वेदी ने हिंदी साहित्य के लिए आजीवन अक्लांत भाव से कार्य किया है। उन्होंने साहित्य की भी सेवा की और हिंदी के साहित्य और साहित्यकारों के सम्मान की रक्षा के लिए बराबर संघर्ष भी किया है और विजयी भी हुए हैं। वे हिंदी के सजग पहरेदार रहे हैं। वे अत्यंत स्वाभिमानी व्यक्ति हैं और हर सच्चे स्वाभिमानी की तरह अत्यंत विनम्र भी। चतुर्वेदी ने स्वयं इंग्लैंड में ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी और यहाँ आने पर शिक्षा विभाग के उच्च पद पर आसीन थे। फिर भी उनमें भारतीय संस्कार पूर्ण रूप से जीवित ही नहीं, सक्रिय भी थे। 'विनोद शर्मा' के रूप में उनका निश्छल हास्य और साहित्यिक व्यंग्य बहुत ही सजीव रचना के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगे। उनके व्यक्तित्व का अत्यंत प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण दूसरा क्षेत्र विविध ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि करना है।"

'हिंदी-मन का दर्द' से साभार।

बहुधा मुझसे अनेक मित्र कवि-सम्मेलनों का इतिहास पूछा करते हैं। वे यह जानने को विशेष रूप से उत्सुक रहते हैं कि पहला कवि-सम्मेलन कब हुआ! बहुत प्राचीन काल में राजाओं, नवाबों और सामंतों के दरबारों में कवि रहते थे, किंतु वे उन्हें ही एकांत में या दरबार में उनकी रुचि की कविता सुनाया करते थे; भारतेंदु सामंत नहीं थे, किंतु उनके यहाँ प्राय: कविगण जमा होते थे, क्योंकि वे स्वयं कवि और कवियों के प्रशंसक एवं पोषक थे। वे भारतेंदु को अपनी-अपनी कविताएँ सुनाया करते थे और उनकी भी कविताएँ बड़े मनोयोग से सुनते थे।

उनके बाद कवियों के एकत्र होने के लिए पं. अंबिकादत्त व्यास ने 'काशी कवि समाज' की स्थापना की। इसमें केवल कवि एकत्रित होकर अपनी-अपनी कविताएँ सुनाते और उनकी आपस में आलोचना करते थे। बाद में अन्यत्र भी कई जगह ऐसे 'कवि समाज' स्थापित हुए। मेरे बचपन में प्रयाग में भी एक ऐसा कवि-समाज था, जो 'रसिक-समाज' के नाम से विख्यात था। जिसमें पं. श्रीधर पाठक और डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी बहुधा और जगन्नाथ दास रत्नाकरजी कभी-कभी आते थे। बीसवाँ (सीतापुर) का कवि-समाज तब तक प्रसिद्ध हो चुका था। इन कवि-सम्मेलनों में सामान्यत: कवि लोग ही आते, अपनी कविताएँ सुनाते और उन पर चर्चा भी करते थे।

समस्यापूर्ति का युग

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि वह समस्यापूर्तियों का युग था। एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि कविताओं को छंदशास्त्र के अनुसार परखा जाता और कविताएँ गंभीर होती थीं। उस समय हास्यरस की कविताएँ बहुत ही कम, प्राय: न के बराबर पढ़ी जाती थीं। उन दिनों कवि अपना कोई उपनाम भी रखते थे। सभी उपनाम गंभीर होते थे। बचपन में मैंने केवल एक अगंभीर

A-PDF Merger DEMO Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

उपनाम पहली बार सुना था—'संठ'। ये आगरे के थे। उनकी एक समस्यापूर्ति मेरे मस्तिष्क में अब भी अटकी हुई है, क्योंकि उन दिनों हास्यरस की कविता एक असाधारण बात समझी जाती थी। समस्या थी 'कारीगरी'। संठजी ने इसकी पूर्ति विचित्र ढंग से, अपने को ही कविता का नायक बनाकर की थी।

वह छंद है—

''कवि संठ गए कुंजड़ी के घरै,

मन में अति ही अभिलास भरी।

तब औचक आय गयो कुंजड़ा,

'अरी खोल किवाड़' पुकार करी।

निज मीत के प्रान बचावन कौ,

तिय ने चतुराई बिचारी खरी।

गृह-कोन में ढाँपि दियौ टोकना

अरू ऊपर तें तरकारी गरी॥''

'तरकारी गरी' में से 'तर' निकालने पर 'कारीगरी' रह जाती है। इसलिए समस्या की पूर्ति ठीक समझी गई। शायद 'संठजी' आधुनिक हास्यरस के कवियों के पूर्व-पुरुषों में एक हैं। खेद है कि उन दिनों मैं इतना छोटा था कि मुझे उनका वास्तविक नाम जानने की उत्सुकता ही नहीं हुई। बचपन से ही मेरे लिए कविता मुख्य और कवि गौण रहे हैं।

इस बीच मासिक पत्रों ने भी समस्यापूर्तियों में रुचि लेना आरंभ कर दिया था। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में कविताएँ तो प्रकाशित होती थीं, पर समस्यापूर्ति नहीं दी जाती थी। व्यासजी कवि थे और समस्यापूर्तियाँ भी करते थे, पर वे अपने 'पीयूष प्रवाह' में सामान्यत: समस्यापूर्तियाँ नहीं छापते थे। 'हिंदी प्रदीप' के संपादक पं. बालकृष्ण भट्ट स्वयं कवि नहीं थे, किंतु उन्होंने 'प्रदीप' में समस्यापूर्तियाँ छापना आरंभ किया था। कुछ अन्य पत्रिकाओं में भी वे छपने लगीं। वे समस्यापूर्तियाँ कवि-समाजों में नहीं पढ़ी जाती थीं। संपादक एक अंक में समस्या विज्ञापित कर देता और कविगण अपनी पूर्तियाँ भेज देते थे। वे अगले अंक में छाप दी जातीं। महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्रीधर पाठक तब तक प्रौढ़ और प्रसिद्ध नहीं हुए थे। वे कभी-कभी अपनी पूर्तियाँ भेजा करते थे, जो 'प्रदीप' तथा अन्य पत्रों में छपती थीं।

इस बीच दो महापुरुषों ने समस्यापूर्तियों को नियमित रूप से प्रोत्साहन देना आरंभ किया। आश्चर्य की बात है कि उनमें एक राजा थे और दूसरे एक अंग्रेज कलेक्टर। राजा रामपाल सिंह प्रतापगढ़ जिले में कालाकाँकर के अधिपति थे। वे हिंदी की एक विभूति थे। वे दस-बारह वर्ष इंग्लैंड में रहे। उनका हिंदी-प्रेम इतना उद्दाम था कि पिछली सदी के उत्तरार्ध में उन्होंने इंग्लैंड में कई वर्ष 'हिंदोस्थान' नाम का एक पत्र निकाला। जब वे भारत लौटे तो उन्होंने उसे दैनिक रूप में निकाला। वह शायद हिंदी का पहला दैनिक था, जो 'रूटर' से प्रतिदिन तार द्वारा समाचार मँगाकर अद्यतन छपा करता था। 'रूटर' से प्राप्त समाचारों को 'तड़ित समाचार' के नाम से छापा जाता था। उसके प्रथम संपादक महामना मदनमोहन मालवीयजी थे, जो तब बी.ए. पास कर कहीं अध्यापकी कर रहे थे। उन दिनों राजा साहब ने मालवीयजी को 250 रुपए मासिक वेतन पर बुलाया था। मालवीयजी ने प्राय: ढाई वर्ष तक 'हिंदोस्थान' का संपादन किया। राजा रामपाल सिंह हिंदी के प्रमुख निर्माताओं में थे। खेद है कि लोग उन्हें और उनकी महान् सेवाओं को भूल गए हैं। प्रसन्नता की बात है कि उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इस महान् हिंदी सेवक और महापुरुष की स्मृति में उन्हीं की तरह बहुमुखी सेवा के लिए 'राजा रामपाल सिंह स्वर्ण पदक' की स्थापना की और प्रथम वर्ष का वह पदक हिंदी की बहुमुखी सेवा करनेवाले डॉ. विद्यानिवास मिश्र को दिया गया था। राजा साहब को कविता से बड़ा प्रेम था। वे समस्यापूर्ति किया करते थे। उनकी समस्यापूर्तियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ था, जो मेरे संग्रह में है। उसमें राजा साहब की 187 समस्यापूर्तियाँ छपी हैं।

वह हिंदी-प्रेमी अंग्रेज

एक और व्यक्ति, जिन्होंने प्रोत्साहन और प्रकाशन द्वारा हिंदी कविता को जनता में लोकप्रिय बनाने का उल्लेखनीय कार्य किया था, वे थे एक अंग्रेज कलेक्टर श्री ग्राउस। यह स्वाभाविक है कि हम जैसे सामान्य जन अपने युग से आगे या पीछे की बात बहुत कम सोचते हैं। आगे की कल्पना करने या पीछे की जानकारी प्राप्त करने की प्रवृत्ति

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कम ही लोगों में होती है। हम वर्तमान में ही रहते हैं और उसमें इतने डूब जाते हैं कि आगे-पीछे की जानकारी की इच्छा ही नहीं होती। परिणाम यह होता है कि राजनीति में सामान्य शिक्षित व्यक्ति भी महात्मा गांधीजी के पहले के राजनैतिक आंदोलनों के बारे में बहुत कम जानते हैं। जिन्हें कुछ ज्ञान है, वह ज्ञान भी बहुत कम और धुँधला है। उसी प्रकार आज का सामान्य शिक्षित हिंदीवाला भी समझता है कि आचार्य द्विवेदी से पहले हिंदी में जो कुछ है, वह जानने योग्य नहीं है। उसके लिए हिंदी आचार्यजी से ही आरंभ हुई है। उसके लिए श्रीधर पाठक, गोविंद नारायण मिश्र, माधवप्रसाद मिश्र, किशोरीलाल गोस्वामी और अंबिकादत्त व्यास आदि महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। भारतेंदु का नाम तो वह जानता है। राजनीति में रुचि लेनेवाला भी कांग्रेस के प्रमुख अधिष्ठाता ह्यूम के बारे में नहीं के बराबर ही जानता है। ऐसी अवस्था में यदि हिंदीवाले हिंदी का उन्नयन करने या उसकी कुछ सेवा करनेवाले अंग्रेज अधिकारी श्री ग्राउस से अपरिचित हों तो आश्चर्य की क्या बात!

इस बीच दो महापुरुषों ने समस्यापूर्तियों को नियमित रूप से प्रोत्साहन देना आरंभ किया। आश्चर्य की बात है कि उनमें एक राजा थे और दूसरे एक अंग्रेज कलेक्टर। राजा रामपाल सिंह प्रतापगढ़ जिले में कालाकाँकर के अधिपति थे। वे हिंदी की एक विभूति थे। वे दस-बारह वर्ष इंग्लैंड में रहे। उनका हिंदी-प्रेम इतना उद्दाम था कि पिछली सदी के उत्तरार्ध में उन्होंने इंग्लैंड में कई वर्ष 'हिंदोस्थान' नाम का एक पत्र निकाला। जब वे भारत लौटे तो उन्होंने उसे दैनिक रूप में निकाला। वह शायद हिंदी का पहला दैनिक था, जो 'रूटर' से प्रतिदिन तार द्वारा समाचार मँगाकर अद्यतन छपा करता था।

ग्राउस साहब एक अंग्रेज प्रशासक थे। वे मथुरा, बुलंदशहर, फर्रूखाबाद (फतेहगढ़) आदि जिलों के कलेक्टर रहे। वे बड़े विद्या एवं कला-प्रेमी थे। मथुरा के लिए उन्होंने जो काम किया, वह भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने 'मथुरा मेमॉयर्स' नामक वृहत् ग्रंथ लिखा, जो आज भी मथुरा का प्रामाणिक और बहुमूल्य इतिहास माना जाता है। उन्होंने मथुरा के पुरातत्त्व में रुचि ली और बिखरी व नष्ट होती हुई उपेक्षित पुरानी मूर्तियों और कलाकृतियों को संग्रहित कर एक छोटा सा संग्रहालय बनाया। वह संग्रह इतना महत्त्वपूर्ण था कि बाद में लॉर्ड कर्जन ने जब उसे देखा तो मथुरा में उसके लिए विशाल भवन बनवा दिया, जो आज 'कर्जन म्यूजियम' के नाम से विश्वविख्यात है। वह संसार में कुषाणकालीन कला का सबसे महत्त्वपूर्ण संग्रहालय है।

उन्होंने तुलसी कृत 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी में गद्यानुवाद भी किया था। वे इतने कल्पनाशील और रामायण-प्रेमी थे कि उन्होंने अपने रामायण के अंग्रेजी अनुवाद के आवरण पर तत्कालीन प्रथा के अनुसार बेलबूटे न देकर रामायण की दो चौपाइयों को दिया था, और इन दो चौपाइयों का चुनाव ही उनकी रामायण-भक्ति को प्रकट करता है। आवरण के ऊपर अर्द्धाली थी—'रामचरित मानस यह नामा' नीचे छपी थी—'सुनत श्रवण पाइय विश्रामा' तथा दाएँ-बाएँ किनारों पर ये अर्द्धालियाँ छपी थीं—'मन करि विषय अनल बन जरहीं' तथा 'होंहि सुखी जो यहि सर परहीं'।

उन्हें हिंदी से अगाध प्रेम था और वे हिंदी कविता के भी प्रेमी थे। वे सदैव हिंदी कवियों को प्रोत्साहन देते थे। उन्होंने हिंदी की और भारतीय इतिहास तथा कला की इतनी महत्त्वपूर्ण सेवा की थी कि जब सेवानिवृत्ति के थोड़े ही दिन बाद इंग्लैंड में उनकी मृत्यु हो गई, तब श्रीधर पाठक ने उसके शोक में एक लंबी कविता लिखी थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"हाय! कहा दुर्दैव आज अनरथ तैं कीनौं
हम दुखियन को एक और दारुन दुःख दीनौ।
केशव, कुष्टो, हरिश्चंद्र, ब्रैडना सिधारे
तथा अजुध्यानाथ हते हमरे जो प्यारे
एक-एक करि गए अनेकन मीत हमारे
भारत उन्नति हेत रहे जो सुदृढ़ सहारे

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

आई अबकी ग्रौस साहब की बारी
मातृभूमि निज माँहि देह त्यागी संसारी
सुनिकैं विषम विषाद भयौ भारत में भारी
रोवत करि-करि सुधि जहं-तहं केतिक नर-नारी
हाय! गुरुस साहब, ठाकुरजी मनबारे
कहाँ गए तजि हमें हमारे परम पियारे।''

ग्राउस साहब के मुंशी (पेशकार के समकक्ष) पं. कुंदनलालजी थे। वे मथुरा निवासी थे। वे भी हिंदी-ज्ञाता और हिंदी-प्रेमी थे। ग्राउस साहब उनसे इतने प्रसन्न थे कि जिस जिले में उनकी बदली होती, उसी जिले में कुंदनलालजी की बदली करा लेते। अंतिम जिला, जहाँ की कलेक्टरी के पद से वे सेवानिवृत्त होकर इंग्लैंड चले गए, वह फर्रूखाबाद (फतेहगढ़) था। वे वहाँ कई वर्ष कलेक्टर रहे।

सदा की तरह कुंदनलालजी ही 'कवि व चित्रकार' के संपादक थे। ग्राउस साहब और उन्हें, दोनों ही को कविता और कला से प्रेम था। यह इन्हीं विषयों से संबंधित पत्र था। इसमें समस्यापूर्तियाँ भी दी जाती थीं। उनकी जो पूर्तियाँ आतीं, वे अगले अंक में छापी जाती थीं। उसमें कला पर भी लेख प्रकाशित किए जाते थे। एक बार पत्थर की जालियाँ पर तो विशेष अंक ही निकाला गया था। जालियों के चित्र लिथो में छापे गए थे। यह अपने ढंग का अनोखा और महत्त्वपूर्ण पत्र था। इसमें तत्कालीन अधिकांश नए और पुराने लेखक एवं कवि अपनी कृतियाँ भेजा करते थे। समस्यापूर्तियों पर विशेष बल दिया जाता था।

ग्राउस साहब के इंग्लैंड चले जाने के कुछ दिनों बाद कुंदनलालजी का देहांत हो गया। तब उनके मित्रों ने उनकी स्मृति में इसका अंतिम 'श्रद्धांजलि अंक' निकाला था। इस प्रकार ग्राउस साहब ने इस मासिक पत्र को प्रकाशित कर तत्कालीन हिंदी कविता और कवियों को बड़ा प्रोत्साहन दिया। वे अच्छी समस्यापूर्ति करनेवालों को उपहार में जेब घड़ी, दुशाला, चित्र, पुस्तकें या नकद रुपए आदि भी भेजा करते थे। उनकी पूर्तियाँ 'कवि व चित्रकार' में प्रकाशित भी करते थे।

पहला कवि-सम्मेलन यों हुआ

ऐसा मालूम होता है कि सेवानिवृत्त होकर भारत छोड़ने के पहले वे उस समय के हिंदी कवियों को देखना और उनके मुँह से उनकी कविताएँ सुनना चाहते थे। यह भी हो सकता है कि उस भावुक और कल्पनाशील हिंदी-प्रेमी ने भारत छोड़ने से पहले हिंदीवालों से विदा लेने के लिए स्वयं इसका विदाई-समारोह के रूप में आयोजन किया हो! जो भी हो, उन्होंने एक समस्या देकर पूर्ति करनेवालों को फतेहगढ़ बुलाकर एक उत्सव किया। वह उत्सव उन्हीं की कोठी पर, उन्हीं की अध्यक्षता में हुआ था। इसमें लगभग 50 प्रतियाँ भेज दी थीं। ग्राउस साहब कलेक्टर के पद पर थे। नगर के प्रतिष्ठित और कविता-प्रेमी व्यक्ति उनसे मिलते रहते थे। अतएव अपनी कोठी पर आयोजित कवितापाठ उत्सव में उन्होंने उनमें से भी अनेक रईसों, प्रतिष्ठित लोगों और कविता-प्रेमियों को भी निमंत्रित किया। इनमें सेठ हरप्रसाद उल्लेखनीय हैं।

उन्होंने यह घोषित किया था कि सर्वश्रेष्ठ समस्यापूर्ति करनेवाले को सोने का एक मेडल पुरस्कार में दिया जाएगा। द्वितीय और तृतीय पुरस्कार देने की भी घोषणा की गई थी। मैं इस उत्सव की ठीक तिथि नहीं बता सकता। मेरा अनुमान है कि वह सं. 1950 वि. में या उसके आस-पास हुआ था (संयोग से मेरा जन्म सं. 1950 वि. में हुआ था। यदि वह उत्सव वास्तव में उसी वर्ष में हुआ हो तो मेरे लिए यह व्यक्तिगत रूप से सुखद संयोग है।)

कवि-समाजों और इस उत्सव में दो मौलिक अंतर थे। एक तो यह कि कवि-समाजों में केवल कवि ही आकर एक-दूसरे को अपनी कविता सुनाते थे। जो कवि नहीं होते थे, वे निमंत्रित नहीं किए जाते थे। दूसरा अंतर यह था कि कवियों तक सीमित होने के कारण ये लोग पढ़ी गई समस्यापूर्तियों की चर्चा भी करते थे, जो कभी-कभी उच्च स्तर की समीक्षा का रूप ले लेती थी। किंतु ग्राउस साहब के उत्सव में श्रोता भी निमंत्रित किए गए थे तथा उसमें कवियों द्वारा की गई समस्यापूर्तियों के गुण-दोषों की चर्चा की कोई गुंजाइश नहीं रखी गई। मेरी समझ में इन्हीं अंतरों के कारण ग्राउस साहब का आयोजन कवि-समाजों से भिन्न था और उस उत्सव में यही दो तत्त्व प्रमुख थे, जो आजकल के कवि-सम्मेलनों में हैं। ग्राउस साहब के इस उत्सव

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

के पूर्व किसी ऐसे आयोजन की जानकारी मुझे नहीं है। इसी कारण मैं उसे ही हिंदी का पहला कवि सम्मेलन मानता हूँ। इस कवि-उत्सव में समस्या दी गई थी—

'भाल लिखी लिपि को सक टार'

सम्मेलन के अंत में पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' की पूर्ति सर्वश्रेष्ठ मानी गई थी। श्री ग्राउस साहब ने उन्हें अपने हाथ से एक स्वर्ण पदक, एक दुशाला और हिंदी में अपने हस्ताक्षर कर अपना एक फोटो पुरस्कार के रूप में दिया था। द्वितीय सर्वश्रेष्ठ पूर्ति के लिए बूँदी की श्रीमती चंद्रकला को पुरस्कार दिया गया। वे नहीं आई थीं। उन्हें डाक द्वारा कुछ पुस्तकें पुरस्कार के रूप में भेज दी गई थीं।

वह महत्त्वपूर्ण समस्यापूर्ति

शंकरजी की पूर्ति कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। पाठक याद रखें कि पिछली शती के उत्तरार्ध के अंतिम दशक में भारत में ब्रिटिश राज के प्रताप का सूर्य चरम उत्कर्ष पर था। राजभक्ति का प्रदर्शन तत्कालीन फैशन था। यहाँ तक कि इंडियन नेशनल कांग्रेस भी अपने प्रस्तावों में यदा-कदा इसे व्यक्त करना आवश्यक समझती थी। फिर यह भी याद रहे कि यह पहला सार्वजनिक कवि-सम्मेलन एक अंग्रेज कलेक्टर की अध्यक्षता में हो रहा था। अब शंकरजी की पूर्ति देखिए—

'शंकर' देसन कौ सिरताज,

धरा धन पास न त्रास अपार।

श्रीहत अंग, न गौरव संग,

दु:खी चित भंग, रहै मन मार।

हा! बनि भारत की बिगरी,

विधि भाल लिखी लिपि को सक टार।

उस युग में एक अंग्रेज कलेक्टर की अध्यक्षता में, उसी की कोठी पर ऐसी कविता पढ़ने का साहस भूषण आदि की परंपरा पर चलनेवाले, देशप्रेम से ओत-प्रोत और हृदय में भारत की दुर्दशा का वास्तविक रूप से दर्द अनुभव करनेवाले निर्भीक कवि ही कर सकते थे। किंतु उससे अधिक श्रेय निष्पक्ष काव्य-पारखी और ब्रिटिश उदारता की मूर्ति अंग्रेज कलेक्टर ग्राउस को है, जिन्होंने असीम अधिकार रखते हुए भी उन दिनों ऐसी कविता को सहन ही नहीं किया, उसे सर्वश्रेष्ठ माना और पुरस्कृत किया। आज तो हिंदी साहित्यकारों ने भवानी भाई को पुरस्कार समिति द्वारा अनुमोदित पुस्तक पर पुरस्कार भी नहीं मिलने दिया, क्योंकि उसमें प्रधानमंत्री की कुछ आलोचना थी। इस घटना से मालूम होता है कि ग्राउस साहब महान् थे। समझ में नहीं आता कि किसकी अधिक सराहना करूँ, अपने देश की दासता और अधोगति से हृदय में देश के लिए दर्द रखनेवाले निर्भीक कवि की या विशाल हृदयता, निष्पक्षता और विदग्धता की प्रतिमूर्ति अंग्रेज अधिकारी की! तुलसी बाबा का सहारा लेकर इतना कहकर ही संतोष किए लेता हूँ कि 'को बड़ छोट कहत अपराधु'। उनकी मृत्यु पर श्रीधर पाठक ने शोकगीत लिखकर हम हिंदीवालों की अपकृतज्ञता का थोड़ा-बहुत परिहार कर दिया है।

उस युग में एक अंग्रेज कलेक्टर की अध्यक्षता में, उसी की कोठी पर ऐसी कविता पढ़ने का साहस भूषण आदि की परंपरा पर चलनेवाले, देशप्रेम से ओत-प्रोत और हृदय में भारत की दुर्दशा का वास्तविक रूप से दर्द अनुभव करनेवाले निर्भीक कवि ही कर सकते थे। किंतु उससे अधिक श्रेय निष्पक्ष काव्य-पारखी और ब्रिटिश उदारता की मूर्ति अंग्रेज कलेक्टर ग्राउस को है, जिन्होंने असीम अधिकार रखते हुए भी उन दिनों ऐसी कविता को सहन ही नहीं किया, उसे सर्वश्रेष्ठ माना और पुरस्कृत किया। आज तो हिंदी साहित्यकारों ने भवानी भाई को पुरस्कार समिति द्वारा अनुमोदित पुस्तक पर पुरस्कार

शंकरजी को जब पुरस्कार मिला तब उन्होंने उसे स्वीकार करते हुए यह आशु दोहा कहा—

'मेडिल रजत सुवर्णमय चित-चकोर हित चंद आयौ, पायो संग में लायो परमानंद।'

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

मैं हिंदी भाषा या साहित्य का प्रोफेसर या ज्ञाता नहीं हूँ। कवि-सम्मेलनों से आठ-दस साल मेरा बादरायण संबंध रहा। इस प्रकार मुझसे बहुधा लोग कवि-सम्मेलनों के इतिहास या विकास के बारे में प्रश्न किया करते हैं। प्राय: अस्सी वर्षों की मुझे कम या अधिक याद है। पिछली पीढ़ी के साहित्यकारों से हुई बहुत सी बातें भी याद हैं। अनेक बातें भूल भी गया हूँ। इस प्रकार जो कुछ मेरी अल्प जानकारी है, उसके आधार पर मेरा विचार है कि ग्राउस साहब द्वारा संवत् 1950 वि. (सन् 1893) में आयोजित फतेहगढ़ (फर्रूखाबाद) का कवि-सम्मेलन हिंदी का प्रथम कवि-सम्मेलन था।

('धर्मयुग' में प्रकाशित रचना की पुन: प्रस्तुति : 'हिंदी जगत' से साभार)

□



शिक्षा, स्वदेशी तथा स्वराज—राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तंभ हैं। जिस समय तक तुम अपने परिश्रम तथा प्रयत्नों द्वारा उन्हें सुदृढ़ न कर लो, उस समय तक विश्राम न लो।

—मैजिनी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

3 अमेरिका में हिंदी : एक सिंहावलोकन

● सुषम बेदी

जब से अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने (जनवरी, 2006) यह घोषणा की है कि अरबी, हिंदी, उर्दू जैसी भाषाओं के लिए अमेरिकी शिक्षा में विशेष बल दिया जाएगा और इन भाषाओं के लिए अलग से धन भी आरक्षित किया गया है तो यह समाचार सारे संसार में आग की तरह फैल गया था। यहाँ तक की फरवरी 2007 को भी 'डिस्कवर लैंग्वेजेज महीना' घोषित किया गया है। अमेरिकी कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेज नामक भाषा-शिक्षण से जुड़ी संस्था ने विशेष रूप से राष्ट्रपति बुश के संदेश को प्रसारित करते हुए बताया है कि देश भर में कई तरह से स्कूलों और कॉलेजों के प्राध्यापक भाषाओं के वैविध्य को मना रहे हैं।

सच तो यह है कि दुनिया को चाहे अब जाकर पता चला हो कि इन भाषाओं को पढ़ाया जाएगा, इस दिशा में काम तो बहुत पहले से ही हो रहा था। भारत के साथ अमेरिका के सांस्कृतिक, राजनैतिक और व्यापारिक संबंध पिछले दस सालों में अचानक कई गुना और कई स्तरों पर बढ़ गए हैं, सो भारतीय भाषाओं में रुचि भी उसी हिसाब से कहीं ज्यादा बढ़ रही है। लेकिन जिन वजहों से बुश ने भाषाएँ सीखने की घोषणा की थी, उसकी मुख्य वजह एक ही थी—अमेरिकी सुरक्षा-नीति। आमतौर पर अपने अमेरिकी होने में गर्व रखनेवाला औसत अमेरिकी नागरिक यह सोचता है कि दुनिया का अंतिम और उच्चतम पड़ाव अमेरिका ही है, जहाँ कि वह पहले से पहुँचा हुआ है, सो न तो उसे कहीं जाने की जरूरत है, न ही किसी दूसरी भाषा या संस्कृति को सीखने की। बहुत देर तक इस देश में यही नीति अपनाई गई कि यह देश एक मेल्टिंग पॉट है, जहाँ आकर सारी संस्कृतियों के रंग एक ही मुख्यधारा में घुल जाते हैं। यही इस देशवालों का काम्य रहा। इसी से यहाँ एक ही भाषा, एक-सा पहनावा, एक-सा खानपान बना रहा। अमेरिकी संस्कृति का मूल स्रोत यूरोपीय संस्कृति और रहन-सहन है। चूँकि यहाँ पहले आप्रवासी इंग्लैंड से आए थे और उसके बाद भी देर तक यूरोप के विभिन्न हिस्सों से आवासन होता रहा, सो अंग्रेजी संस्कृति का ही प्राधान्य रहा, जिसमें फ्रेंच, इतालवी, जर्मन और पूर्वी यूरोपीय तत्त्व घुलते गए। हिटलर के अनाचारों से बचने के लिए यूरोप से यहूदियों की बाढ़ आई और वे भी अमेरिकीपन में काफी हद तक घुल गए। लेकिन यूरोपीय संस्कृति से बहुत अलग नस्लों का भी आवासन इस देश में हुआ, जो उस तरह से कभी घुल नहीं पाए, जैसे कि गोरी जातियाँ घुल पाईं।

अफ्रीकी नस्लों के लोग तो बहुत पहले से ही दासों के रूप में यहाँ लाए गए थे, जिन्हें यहीं की संस्कृति में ढाला गया, पर अपने शरीर के रंग की वजह से वे अपनी अलग हस्ती बनाए रहे। इसी तरह से चीन, जापान, वियतनाम, कोरिया और फिलीपीन आदि बहुत से एशियाई देशों से



- जन्म : 1 जुलाई, 1945, फिरोजपुर, पंजाब
- शिक्षा : भारत में हुई। इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली से 1964 में बी.ए., 1966 में एम.ए. और 1968 में दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.फिल. तथा 1980 में पंजाब यूनिवर्सिटी से पी-एच.डी.। हिंदी के प्रयोगशील नाट्यलेखन पर शोधकार्य तथा शोधग्रंथ 'हिंदी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में' पराग प्रकाशन से 1984 में प्रकाशित
- कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली (1966-72) तथा पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (1974-75) में अध्यापन कार्य
- सन् 1979 से न्यूयॉर्क में बसी। समसामयिक हिंदी रंगमंच और हिंदी भाषा की शिक्षा पर शोधकार्य जारी
- 1985 से कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क में हिंदी भाषा और साहित्य की प्रोफेसर हैं
- अमेरिका में हिंदी भाषा के अध्यापन पर भी काम कर रही हैं, विशेष रूप प्रामाणिक सामग्री के इस्तेमाल पर
- प्रकाशन : पहला उपन्यास 'हवन' 1989 में 'पराग' में प्रकाशित। 1992 में 'हवन' का उर्दू अनुवाद पाकिस्तान से और अंग्रेजी अनुवाद 'द फायर सेक्रिफाईस' नाम से हार्इमन प्रकाशन, इंग्लैंड से 1993 में प्रकाशित। हिंदी में 'हवन' का दूसरा संस्करण 1996 में ही 'पराग' से प्रकाशित, उपन्यास 'लौटता' 1994 में पराग से प्रकाशित। उपन्यास का उर्दू अनुवाद भी पाकिस्तान, लाहौर से (1995) में प्रकाशित। अंग्रेजी अनुवाद प्रकाश्य; 'इतर' (उपन्यास) 1992 में संडे मेल में धारावाहिक रूप से प्रकाशित; 'कतरा-दर-कतरा' (उपन्यास, 1994, अभिषेक); 'गाथा अमरबेल की' (1999); 'नवाभूत की प्रेमकथा' उपन्यास (नेशनल पब्लिशिंग हाउस); मोरचे (वाणी प्रकाशन 2006); 'मैंने नाता तोड़ा' (भारतीय ज्ञानपीठ, 2009) प्रकाशित।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

आनेवाले प्रवासी भी अपनी भाषा, रंग और नस्ल की वजह से इस मेल्टिंग पॉट से अलग-थलग पड़ गए।

भारतीयों का आवासन यूँ तो देश की आजादी से बहुत पहले हो गया था और कनाडा तथा कैलिफोर्निया में आनेवाले पंजाबी इनमें प्रमुख थे। लेकिन बड़े पैमाने पर अमेरिका में छठे दशक में इंजीनियरों इत्यादि की खपत बढ़ी और फिर टेक्नोलॉजी की क्रांति ने तो भारी संख्या में भारतीयों को यहाँ आने का अवसर दिया। भारतीय भी अपनी संस्कृति और भाषाएँ अपने साथ लेकर आए। यह सच है कि अंग्रेजी आने की वजह से वे इस मेल्टिंग पॉट में जल्दी घुल गए, पर उनका रंग, नस्ल, रहन-सहन का तौर-तरीका और उनकी विशिष्ट संस्कृति उन्हें पूरी तरह से नई संस्कृति में घुलने से बचाए रही। घर से बाहर चाहे वे जो भी बोलें, पर घर की चहारदीवारी में उनकी अपनी भाषाएँ पनपती रहीं। भारतीयों के आपस में मिलने-जुलने वाले दूसरे भारतीयों के बीच भी। चूँकि हमारे परिवार काफी हद तक संश्लिष्ट बने रहते हैं, इसलिए नानी-दादी से बात करने के लिए नई पीढ़ी के बच्चे भी इन भारतीय भाषाओं को बोलते-बोलते ही बड़े होते हैं। हाँ, कई परिवार जितने ज्यादा अमेरिकीकृत होते हैं, उतना ही हिंदी या दूसरी भारतीय भाषाओं का प्रयोग वहाँ कम मात्रा में होता है।

9/11 के हादसे ने निश्चय ही दक्षिण एशियाई और मध्य-पूर्व की भाषाओं की ओर सबका ध्यान खींचा है, क्योंकि अचानक अमेरिकियों को लगा की भाषा न जानने की वजह से वे इस सारे जाल से बाहर रह गए। हादसे के बाद प्राप्त रिकार्डिंग जब सुनी गईं तो उनकी भाषाएँ थीं उर्दू, अरबी, पश्तो इत्यादि। तभी यह महसूस किया गया कि दूसरी संस्कृतियों से अपरिचय अमेरिका के लिए महँगा पड़ रहा है और राजनीतिज्ञों का ध्यान तब भाषा अध्यापन की ओर गया। मुझे नहीं लगता कि बुश की इस घोषणा के बाद से अमेरिका में हिंदी के शिक्षण में बहुत अंतर आया है।

हिंदी का अध्यापन

दरअसल, अमेरिका की भाषाओं में रुचि दूसरे महायुद्ध के बाद से ही शुरू हो गई थी। महायुद्ध के समय ही अमेरिका को यह अहसास हुआ कि एक दुनिया बाहर भी है, जिसे जानना उनकी अपनी सुरक्षा के लिए जरूरी है। सन् 1947 में यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया में दक्षिण एशियाई विभाग खोला गया, जिसके अंतर्गत हिंदी भी शामिल थी। भारत में जब हम हिंदी भाषा का इतिहास पढ़ते हैं तो विदेशी विद्वानों के काम को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हम यह भी नहीं भूल सकते कि शुरू में ईसाई मिशनरियों ने हिंदी को अपनाने और उसमें अनुवाद आदि का काम किया था। यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिलवेनिया के दक्षिण एशियाई विभाग की स्थापना करनेवाले नारमन ब्राउन भी मिशनरी पृष्ठभूमि के थे।

छठे दशक में हिंदी का अध्यापन इस देश की लगभग नौ प्रमुख यूनिवर्सिटियों में शुरू हो चुका था, जिनमें शिकागो, मैडिसन, पेन कोलंबिया, बर्कले इत्यादि शामिल हैं। इन यूनिवर्सिटियों के नाम-पते प्रोफेसर प्रिचेट ने 'इल्म' नाम से अपनी वेबसाइट पर लगाए हुए हैं।

पढ़नेवालों की संख्या चाहे बहुत कम थी पर यूनिवर्सिटियों में तथा डिफेंस इंस्टीट्यूट जैसी जगह पर हिंदी की शुरुआत हो गई थी। आठवें दशक में अमेरिका की प्रमुख दस यूनिवर्सिटियों में दक्षिण एशियाई भाषाओं और अन्य विषयों के अध्ययन के विभाग थे। नवें दशक में अचानक यह संख्या और बढ़ी। इसकी कुछ बहुत दिलचस्प वजहें थीं। एक तो यह कि छठे-सातवें दशक में आनेवाले भारतीयों के बच्चे अब कॉलेजों में पढ़ने लगे थे। ज्यादातर अमेरिकी कॉलेजों में विदेशी भाषा एक अनिवार्य विषय बन गया है और भारतीय मूल के छात्रों की माँग थी कि वे विदेशी भाषा के रूप में (जो उनके कोर्स में अनिवार्य विषय है) हिंदी को लें। नवें दशक में बहुत से कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में हिंदी अध्यापन के कार्य शुरू हुए। दूसरे अमेरिकियों के साथ भारतीय मूल के विद्यार्थियों से यह कक्षाएँ खासतौर पर भर रही थीं। कई कॉलेज-यूनिवर्सिटियों

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

में तो विद्यार्थियों की माँग की वजह से ही हिंदी की पढ़ाई शुरू की गई। न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी में नवें दशक में हिंदी की स्थापना के लिए मैं खुद उत्तरदायी रही हूँ। इस समय 100 से अधिक कॉलेजों, विश्वविद्यालयों व भाषा संस्थाओं में हिंदी पढ़ाई जा रही है।

पर सच्चाई यह है कि भाषा सीखने की शुरुआत जब कॉलेज में आकर करते हैं तो बहुत देर तक सीखने का समय नहीं रहता। भाषा की विषय के रूप में अनिवार्यता एक या दो साल की होती है, जिसमें विद्यार्थी बहुत प्राथमिक स्तर पर ही रहते हैं। उनका शब्दज्ञान भी बहुत सीमित ही रहता है। सिर्फ इक्के-दुक्के छात्र ही दो साल से ज्यादा भाषा सीखते हैं। खासतौर से वही, जोकि इस दिशा में विशेषज्ञता हासिल करना चाहते हों। इसीलिए साहित्य पढ़नेवाले छात्र गिने-चुने ही होते हैं। दूसरे विषयों को हिंदी माध्यम से पढ़ना तो दूर की बात रही। हिंदी पर जो भी शोध का काम होता है, वह भी अंग्रेजी में ही होता है। जब तक हिंदी स्कूलों में शुरू नहीं हो जाती बहुत कम विद्यार्थी ही भाषा का उच्च स्तर का ज्ञान पा सकते हैं। इस साल यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास, ऑस्टिन में पहली बार चार साल का हिंदी का कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है। अगर उनका यह प्रयोग सफल रहा तो संभव है कि दूसरी यूनिवर्सिटियाँ भी दो या तीन के बजाय चार साल का पाठयक्रम हिंदी में रखें।

9/11 के हादसे ने निश्चय ही दक्षिण एशियाई और मध्य-पूर्व की भाषाओं की ओर सबका ध्यान खींचा है, क्योंकि अचानक अमेरिकियों को लगा की भाषा न जानने की वजह से वे इस सारे जाल से बाहर रह गए। हादसे के बाद प्राप्त रिकार्डिंग जब सुनी गईं तो उनकी भाषाएँ थीं उर्दू, अरबी, पश्तो इत्यादि। तभी यह महसूस किया गया कि दूसरी संस्कृतियों से अपरिचय अमेरिका के लिए महँगा पड़ रहा है और राजनीतिज्ञों का ध्यान तब भाषा अध्यापन की ओर गया। मुझे नहीं लगता कि बुश की इस घोषणा के बाद से अमेरिका में हिंदी के शिक्षण में बहुत अंतर आया है। यह उसी गति से बढ़ रहा है, जैसे नवें दशक में था। जिन भाषाओं को इससे खास फर्क पड़ा है, वे अरबी, पश्तो इत्यादि हैं, जिनका रिश्ता इसलामी दुनिया से है। पर उर्दू भी इसलामी दुनिया से जुड़ी भाषा मानी जाती है, सो उसके कारण हिंदी को भी कुछ तो लाभ हुआ है। आखिर हिंदी-उर्दू एक ही भाषा के तो दो रूप हैं।

अब हिंदी का अध्यापन न केवल बहुत से कॉलेजों में शुरू हो गया है बल्कि कई संडे स्कूल भी खुल गए हैं, जहाँ हिंदी जाननेवाली भारतीय महिलाएँ ही मुख्यत: पढ़ाती हैं। आजकल इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि इस तरह से हिंदी सीखे हुए छात्रों को परीक्षा के द्वारा किसी तरह की मान्यता की जाए! एकाध राज्य के एकाध स्कूल में ऐसा हुआ भी है, पर अभी इस दिशा में काफी कोशिशों की जरूरत है; क्योंकि अभी इस अध्यापन का कोई नियमित पाठयक्रम निर्धारित नहीं है, न शिक्षक ही शिक्षण-कला में प्रशिक्षित हैं। पहले पाठ्यक्रम को एक सही आकार देने की जरूरत है। अनगढ़ से अध्यापन में विद्यार्थी कुछ सीख जाते हैं, कुछ नहीं। कितना सीखे हैं, कितना नहीं, इसकी कोई विधिवत् परीक्षण या मूल्यांकन की भी पद्धति नहीं है। इस दिशा में भारतीय माँ-बाप कोशिशें कर रहे हैं। विशेष रूप से कुछ उत्साही महिलाएँ अमेरिका के काफी शहरों में बिखरी हुई हैं, जो बहुत लगन से यह काम कर रही हैं। यूनिवर्सिटियों के पाठ्यक्रम इन संडे स्कूलों पर लागू हो नहीं सकते, क्योंकि यूनिवर्सिटी के छात्र वयस्क हैं और संडे स्कूलों में स्कूली उम्र के बच्चे या किशोर! अमेरिकी स्कूलों में हिंदी पाठ्यक्रम में शामिल है ही नहीं।

हिंदी-शिक्षण सामग्री

अमेरिका से कहीं पहले ब्रिटेन में हिंदी पढ़ाने की पुस्तकें तैयार को चुकी थीं। उन्हीं का इस्तेमाल यहाँ भी किया जाने लगा! लेकिन यह महसूस किया गया कि वे यहाँ के सीखनेवालों के लिए उपयुक्त नहीं हैं और यहाँ के हिंदी प्राध्यापकों ने अपनी सामग्री तैयार करनी शुरू की। फेयरबैक्स और मिश्रा की हिंदी-शिक्षण की पुस्तक इसी दिशा में उठाए गए शुरुआत के कदम हैं। नॉर्मन जीद की प्रेमचंद रीडर या वेद वटुक और टेड रिकार्डो की समाज विज्ञान विषयों की पाठ्य पुस्तिका इसी दिशा के कदम हैं। आठवें दशक तक काफी पुस्तकें आ चुकी थीं। इनको अमेरिकी पाठक की जरूरतों को ध्यान में रखकर लिखा गया था। अमेरिकी यूनिवर्सिटी के कैंपस की सच्चाई और उस हिसाब से भाषा को काटा-छाँटा गया था। उन दिनों जो पुस्तकें विशेष

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

रूप से सामने आईं, वे थीं—हर्मन वैन आलफन की फर्स्ट इयर और सेकंड इयर हिंदी, उषा जैन की हिंदी ग्रामर, यमुना कचरु और राजेश्वरी पंढरीपांडे की इंटरमीडिएट हिंदी, उषा नील्सन की एडवांस हिंदी, शीला वर्मा की इंटरमीडिएट हिंदी तथा पीटर हुक की इंटरमीडिएट हिंदी इत्यादि।

इन सभी किताबों में बोलचाल की सरल हिंदी को अपनाया गया था, साथ ही अमेरिकी छात्र की जरूरतों के अनुरूप अंग्रेजी में अनुवाद और व्याकरण की टिप्पणियाँ थीं। इनमें से कुछ पाठ्य पुस्तकों के साथ मौखिक आडियो टेप्स भी उपलब्ध थे, जैसे कि उषा जैन और वैन आल्फन के। उषा जैन ने अपनी पाठ्य-पुस्तक में व्याकरण को बहुत सरल बनाकर पेश किया है, पर इससे व्याकरण की नींव तो अच्छी पड़ती है लेकिन बोलचाल की स्वाभाविकता नहीं आती। व्याकरणिक अभ्यास अच्छे हैं। इनकी इंटरमीडिएट हिंदी में पाठ दिलचस्प हैं। लोककथाओं से लेकर आधुनिक कहानियों को भी शामिल किया है। साथ में शब्दार्थ भी हैं।

हर्मन वैन आल्फन ने अपनी पुस्तक में हिंदी गानों का भी भाषा सीखने के उद्देश्य से खूब इस्तेमाल किया। कई तरह की दिलचस्प तसवीरों, नारों तथा विज्ञापनों को पुस्तक में शामिल करके इन्होंने आम बोलचाल की हिंदी का भरपूर इस्तेमाल अपनी पाठ्य-पुस्तकों में किया। साथ में टेप्स भी हैं। पुस्तकें दिलचस्प हैं। भाषा सीखने के साथ-साथ सांस्कृतिक वातावरण भी देने की कोशिश है।

फ्रैंक साउथवर्थ और विजय तथा सुरेंद्र गंभीर ने एक नया कदम इस दिशा में उठाया और 'नई दिशाएँ, नए लोग' शीर्षक से वीडियो टेप्स तैयार किए, जिनके साथ पुस्तक भी उपलब्ध कराई। इन टेप्स को भारत की जमीन पर मुख्यत: भारतीय एक्टरों के साथ मिलकर बनाया गया। इन वीडियों टेप्स की भाषा को आरंभिक विद्यार्थियों को ध्यान में रख आसान बनाया गया है। वे बोलते भी इतना धीरे हैं कि नए सीखनेवाले की समझ में आ जाए। 'नई दिशाएँ नए लोग' नाम से यह वीडियो सामग्री तैयार की गई है। ये टेप बच्चों को शिक्षा देने के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। इनमें दो युवा भाई-बहन हैं सुनिता और अशोक, जो भारत यात्रा पर जाते हैं, वहाँ अपनी मौसी के यहाँ जाते हैं, दिल्ली की सैर करते हैं, और फिर हर नए पाठ के साथ उन्हें नई-नई जगह ले जाया जाता है और भाषा के भी तरह-तरह के इस्तेमाल से छात्र अवगत होते हैं। टेप के साथ ट्रांसक्रिप्ट्स भी हैं। लोकप्रिय गाने भी सिखाए गए हैं। चूँकि दोनों भारतीय बच्चे भारत के अनुभव कर रहे हैं, इसलिए भारतीय बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए इनका अच्छा इस्तेमाल हो सकता है। भाषा और स्थितियों में कभी-कभी बनावट की गंध जरूर आने लगती है। कुछ असहजता भी है। चूँकि भाषा सिखाने के उद्देश्य से बने वीडियो हैं, इसलिए सभी पात्र बहुत साफ-साफ बोलते हैं, जो वास्तविक जीवन में नहीं होता, पर फिर भी भाषा सीखने के मकसद से वे अच्छे ही हैं। इनकी अब सीडी भी आ गई हैं और इनकी वेबसाइट भी तैयार हो रही है।

आठवें दशक के अंत में 'अमेरिकी कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेजस' का प्रभाव हिंदी की ओर भी आया, जिसके असर में एक ओर भाषा के मौखिक पक्ष पर विशेष जोर दिया गया और दूसरे पढ़ने और सुनने-समझने के लिए भी प्रामाणिक सामग्री तैयार की गई। यह सामग्री पहले की पाठ्य-सामग्री तैयार करने के लिए पाठ निर्मित किए जाते थे, जिससे उनकी भाषा कई बार बहुत बनावटी हो जाती थी, पर यह सामग्री भारतीय फिल्मों और अखबारों, टीवी कार्यक्रमों इत्यादि से उठा ली गई और इसके पढ़ाने का तरीका भी एकदम अलग था, जिसे कि संकलन में समझाया गया—जैसे कि यह अपेक्षा कि पाठक हर शब्द को समझने की कोशिश न करें, वरना उनको निराशा हो सकती है और वे अपनी रुचि खो सकते हैं। यह कहा गया कि पाठक हर प्रामाणिक टुकड़े के साथ संलग्न सवालों के जवाब देते हुए मूल को समझें, पर हर शब्द को समझने की कोशिश न करें, ताकि जो अपेक्षित है, वही ओझल न हो जाए।

दरअसल, यह पाठन की विधि यह मानकर चलती है कि जीवन में जो तरीके हम पढ़ने-सुनने-समझने के लिए अपनाते हैं, उन्हीं को दूसरी भाषा सीखने पर भी आरोपित किया जाए, जैसे कि यहाँ हर पाठ के लिए पूर्वपाठ, पाठ व उत्तरपाठ की विधि चुनी गई। पूर्वपाठ में छात्र जो पहले से जानता है, उसी को उकसाया जाता है, शीर्षक के जरिए से उसके पूर्वज्ञान या अनुमान को आधार बनाया जाता है, बहुत से शब्द, जो उसकी सुप्त स्मृति में होते हैं, वे चेतन में आ जाते हैं। फिर उसे पूरा पाठ पढ़ने को कहा जाता हैं। और फिर उत्तरपाठ में वह पढ़े को

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

समझता हुआ उसे आगे की सिखलाहट के साथ जोड़ लेता है। पढ़ने या सुनने के अलावा अभ्यासों में पाठ से जुड़ी लिखने, बात करने की गतिविधियाँ भी शामिल रहती हैं।

यूँ अगर भाषा के स्वाभाविक रूप को सीखना हो तो ये प्रामाणिक वीडियो टेप व टेक्स्ट 'अमेरिकी कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरन लैंग्वेजेज' के दफ्तर से प्राप्य हैं। श्रवण द्वारा भाषा सीखने के लिए ये 'ऑथेटिक मैटिरियल्स फॉर टीचिंग लिसनिंग कॉम्प्रिहेंशन इन हिंदी' हैं और पठन-सीखने के लिए 'ऑथेटिक मैटीरियल्य फॉर टीचिंग-रीडिंग कॉम्प्रिहेंशंस इन हिंदी' हैं। इसे तैयार करने में पाँच हिंदी प्राध्यापकों की कमेटी थी—सुषम बेदी, गंभीर दंपति, मणींद्र वर्मा और हर्मन वैन आल्फन। इस सामग्री में हिंदी फिल्मों और दूरदर्शन के विभिन्न कार्यक्रमों के दो-चार मिनटों के टुकड़े/क्लिप्स हैं, जिनके साथ भाषा की समझ को सिखाने के लिए सवालों की पुस्तिका है। ऐसी ही प्रामाणिक शिक्षण की हिंदी भाषा साम्रगी रीडिंग कॉम्प्रिहेंशंस के लिए भी हमारी कमेटी ने तैयार की। इस सामग्री में नए कोण से भाषा सिखाने का प्रयास है, और वह यह कि जिस तरह भाषा के मौलिक बोलने वाले सीखते हैं, उन्हीं तरकों से छात्रों को सिखाया जाए, बजाय की ड्रिल वगैरह के बनावटी तरीके अख्तियार किए जाएँ। साथ ही भाषा सीखते हुए छात्र पढ़ने और सुनने की बेहतर समझ बनाने की स्ट्रैटेजीज भी सीखते हैं।

इस दिशा में जो पहला कदम उठाया जा रहा है, वह है शिक्षा के मानकीकरण का (सुषम बेदी और विजय गंभीर इस योजना की सहअध्यक्षा हैं)। इसके लिए पूरे देश से दस सदस्य चुने गए हैं। यूनिवर्सिटी तथा संडे स्कूल में कार्यरत शिक्षक मिल-जुलकर यह काम कर रहे हैं। काम मानक निर्धारण का है, ताकि एक बार ये मानक बन जाएँ, तो संडे स्कूलों या आगे चलकर मान्यता प्राप्त अमेरिकी स्कूलों में जो मानक अपनाए जाएँ उनका आधार पहले से मौजूद हो। कॉलेजों में भी यही मानक इस्तेमाल किए जाने का विचार है। यह काम भी अमेरिकी कौंसिल की मदद से हो रहा है।

आखिरकार अपने जीवन में जूझना तो उनको प्रामाणिक भाषा रूपों से ही है, तो शुरू से उन्हीं को क्यों न सिखाया जाए! यही मूल सिद्धांत है इस पद्धति के पीछे। क्रैषन इस पद्धति के हिमायती हैं कि दूसरी भाषा सीखने में अपनी पहली भाषा सीखने के नियमों को ही लागू करने से सिखलाहट बेहतर और सफल होती है।

लेकिन कुछ विद्यार्थी पढ़ने के परंपरागत तरीकों से ज्यादा अच्छा सीखते हैं। इसलिए मैं एक से ज्यादा पढ़ाने की विधियों के इस्तेमाल के पक्ष में हूँ। हाँ, उनमें से एक संतुलन और दृष्टि रखने की बहुत जरूरी कोशिश यही होनी चाहिए कि उन तरीकों से छात्रों पर बोझ के बजाय भाषा के रिइनफोर्समेंट का ध्येय अपनाया जाए। यानी कि उदाहरण के लिए अगर विद्यार्थी भोजन के बारे में पाठ्य-पुस्तक में पढ़ रहे हैं तो वीडियो का क्लिप किसी रेस्तराँ में बैठे खाना ऑर्डर करने की बातचीत के बारे में हो! रीडिंग कॉम्प्रिहेंशन मेन्यू या सब्जी तथा अन्य भोज्य पदार्थों के बारे में हो तो अपने आप रिइन्फोर्समेंट होती रहेगी।

व्याकरण और ड्रिल वगैरह के इस्तेमाल के पक्ष मे जो लोग हों, उनके लिए बर्कले में उषा जैन ने प्राथमिक हिंदी-शिक्षण की व्याकरण के ज्ञान के साथ पुस्तक तैयार की है, जिसके साथ ऑडियो टेप भी हैं। व्याकरण की समझ के साथ सीखनेवालों के लिए लंदन यूनिवर्सिटी के रूपर्ट स्नेल और वेटमैन की किताब 'टीच योअरसेल्फ हिंदी' पुस्तक आरंभिक शिक्षण के लिए बहुत दुरुस्त है। इनमें बातचीत व्याकरण की कठिनाई को ध्यान के रखकर आसान से दुरूहतर की ओर क्रमश: आयोजित की गई है। मैं कई वर्षों से स्नैलजी की ही किताब का इस्तेमाल कर रही हूँ और एकेडेमिक झुकाववाले विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बहुत काम की है।

करीन शोमर के साथ मिलकर उषा जैन ने इंटरमीडिएट स्तर की पुस्तक तैयार की है, जिसमें व्रतकथाएँ, लोककथाएँ, महाभारत और रामायण की कहानियों के साथ-साथ हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों की भी कहानियाँ हैं। इसी तरह की माध्यमिक स्तर की किताब यमुना कचरु और राजेश्वरी पंढरीपांडे की है। आर.सी. जोसन की जातक

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कथाएँ और पंचतंत्र कथाएँ बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होंगी। जिन बच्चों को पहले से हिंदी आती हो, उनके लिए ये पुस्तकें उपयोगी होंगी। कहानियाँ सरल संस्कृतमयी भाषा में लिखी गई हैं। दोनों किताबों का प्रिंट खूब मोटा-मोटा है और हर कथा के साथ में ग्लॉसरी है।

यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास ऑस्टिन के प्रोफेसर हर्मन वैन आल्फेन ने प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की बहुत सुंदर पाठ्य-पुस्तकें तैयार की हैं, जो कई यूनिवर्सिटियों में हिंदी पढ़ाने के कार्यक्रम के सफलतापूर्वक इस्तेमाल की जा रही हैं। इन्हें बच्चों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है; क्योंकि इनकी भाषा बोलचाल की है और तसवीरें रुचिकर हैं। साथ में आडियो टेप्स भी हैं, जिनमें लोकप्रिय हिंदी गाने भी शामिल हैं। शीला वर्मा ने मैडिसन, विस्काउन्सन में प्राथमिक और माध्यमिक और उच्चतर स्तर पर टेक्स्ट बुक्स तैयार की हुई हैं। जो भाषा के साथ-साथ व्याकरण में भी रुचि रखते हों, उनके लिए प्रोफेसर पीटर ब्रुक्स (ईस्ट लैंसिंग, मिशिगन) की इंटरमीडिएट और एडवांस लेवल की किताब बहुत अच्छी रहेगी। सुरेंद्र गंभीर ने भी उच्च स्तर की बोलचाल की हिंदी की पुस्तक तैयार की है।

हमारे कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने घर में सुन-सुनकर हिंदी सीखी होती है। वे बोल लेते हैं पर पढ़ना-लिखना नहीं आता। बहुत बार ये छात्र लिपि भर ही सीखने में रुचि रखते हैं। यह स्थिति बाहर रहनेवाले भारतीय बच्चों की खासतौर से होती है। दूसरी विदेशी भाषाओं की भी अमेरिका में यही स्थिति है। इसलिए ऐसी सामग्री भी है जो देवनागरी लिपि से परिचित कराती है—हाल ही में रूपर्ट स्नेल की एक पुस्तिका निकली है—सिर्फ लिपि सिखाने के लिए। रूपर्ट स्नेल अमेरिकी नहीं हैं, अंग्रेज हैं, लेकिन इनकी पुस्तकों का इस्तेमाल अमेरिका में खूब होता है। बहुत साल तक लंदन में हिंदी पढ़ाने के बाद अब वे यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास, ऑस्टिन में हर्मन वेन आल्फन के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। हर्मन वेन आल्फन ने भी लिपि सिखाने के लिए आरंभिक हिंदी की पुस्तक कुछ साल पहले निकाली थी, जो बच्चों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती है; क्योंकि उसमें हिंदुस्तान की दुकानों, इश्तहारों इत्यादि की दिलचस्प तसवीरें हैं। साथ ही लिखने का अभ्यास कराने के खाली स्थान भी हैं। गंभीर-दंपती ने लिपि सिखाने का एक वीडियो टेप तैयार किया है, जो पैन यूनिवर्सिटी से उपलब्ध किया जा सकता है। लिपि सिखाने के लिए अब वेब पर भी उनका पृष्ठ देखा जा सकता है। सिराक्युज यूनिवर्सिटी की वेबसाइट पर भी लिपि सिखाने का प्रयोजन है।

इधर कंप्यूटर पर हिंदी-शिक्षण की भी शुरुआत हो गई है। भावी पीढ़ी कंप्यूटर से शैशवकाल से ही परिचित रहेगी, इसलिए कंप्यूटर हिंदी सीखने-सिखाने का बड़ा जोरदार माध्यम बन सकता है। इंटरनेट पर कुछेक वेब पेज भी शुरू हो गए हैं। यूँ जरूरी है कि इस माध्यम के लिए भी सही और बढ़िया शिक्षण सामग्री तैयार की जाए। यूपेन, ऑस्टिन, टेक्सास, येल में ये काम हो रहा है। जिम बेकर ने हिंदी की सारी शिक्षण संबंधी वेबसाइट्स को एक ही जगह इकट्ठा कर दिया है, जो बहुत लाभदायक वेबपृष्ठ है। इसका नाम रखा है सुपर हिंदी वेबसाइट्स।

जहाँ तक वेब का सवाल है। अब कई लोग इस दिशा में काम कर रहे हैं। न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी की प्रोफसर गैबरियेला इलेवा ने भी तसवीरों के साथ कहानियों के जरिए से हिंदी सिखाने का वेब पृष्ठ बनाया है। यहाँ प्रारंभिक और इंटरमीडिएट तथा एडवांस लेवल की कहानियाँ हैं, जिनको पढ़ा-सुना जा सकता है। साथ ही शब्दार्थ सूची भी उपलब्ध है। भारतीय लोककथाएँ इत्यादि इस शिक्षण को सांस्कृतिक दृष्टि से सघन बनाती हैं। इस वेबसाइट का नाम है 'वर्चुअल हिंदी'। अफरोज ताज ने 'अ डोर टु हिंदी' नाम से शिक्षण की वेबसाइट तैयार की है नार्थ कैरोलाइना विश्वविद्यालय की ओर से। शुरू के पाठ जो पूरे हो चुके हैं, वे उपयोगी हैं। अलग-अलग शहरों में जाकर वहाँ के प्रामाणिक दृश्य दरशाते हुए भाषा सिखाने की कोशिश है। एक तरह से कई शहरों की सैर करते हुए छात्र हिंदी सीखता है। भारत के अलावा इसमें पाकिस्तान के शहरों का दर्शन भी शामिल है। इसके अलावा कार्ला (यूनिवर्सिटी ऑफ मिनीसोटा की वेबसाइट) के माध्यम से भी सामग्री उपलब्ध की जा सकती है। वेब पृष्ठों की एक सूची यहाँ नत्थी है। ये कई स्तर के हैं और विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप शिक्षक इनका प्रयोग करते हैं।

अंत में भाषा-शिक्षण के लिए बहुत सहायक काम करते हैं

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

शब्दकोश और व्याकरण की पुस्तकें। चूँकि यहाँ ज्यादातर पढ़ने-पढ़ानेवाले अंग्रेजी बोलनेवाले हैं, इसलिए आर.एस. मैकग्रेगर का हिंदी व्याकरण या माइकेल शपीरो का हिंदी व्याकरण हिंदी के व्याकरण को समझने-समझाने में बहुत मदद करेंगे। इसी तरह मैकग्रेगर, बाहरी या चतुर्वेदी का हिंदी-अंग्रेजी या कामिल बुल्के और सुरेश अवस्थी का अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश विद्यार्थियों के लिए मददगार हैं। यह अच्छा रहेगा कि उनको इन शब्दकोशों का ज्ञान दिया जाए, वरना विद्यार्थी घटिया सा शब्दकोश उठा लेते हैं, जिनमें उनको न तो सही अर्थ मिलते हैं, न ही पूरे शब्द। इंटरनेट पर भी शब्दकोश तैयार हो रहा है।

इस सारी सामग्री की सूचनाएँ 'इल्म' सूची में शामिल हैं, जिसे इंटरनेट पर देखा जा सकता है। (फ्रैंसिस प्रिचेट की वेबसाइट पर देखिए)

इस समय अमेरिका में लगभग सैंतीस कॉलेज और विश्वविद्यालयों में हिंदी सिखाई जा रही है।

पाठ्यक्रम की एकरूपता का सवाल

अमेरिका में भाषा-शिक्षण के स्तरों में एकरूपता लाने का काम कर रही है एक अमेरिकी संस्था 'अमेरिकन कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेज'। इसी अमेरिकी कौंसिल ने हिंदी की मौखिक परीक्षा के भी प्रतिमान बनाए हुए हैं, जो देश भर में मान्य हैं और चार लोग इस परीक्षा को प्रशासित करने के लिए कौंसिल द्वारा सर्टिफाइड हैं (विजय गंभीर, सुषम बेदी, उषा जैन और नसीम हाईन्स)। पैन यूनिवर्सिटी से लिखित परीक्षाओं की भी सामग्री मिल सकती है। सुषम बेदी तथा विजय गंभीर 'अमेरिकन कौंसिल ऑन द टीचिंग ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेज' की ओर से मौखिक परीक्षण कला सिखाने के लिए प्रशिक्षक के रूप में भी सर्टिफाइड हैं। समय-समय पर ये दोनों अमेरिका में हिंदी पढ़ानेवालों के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाएँ देती रहती हैं।

इसके अलावा दक्षिण एशियाई भाषाओं के शिक्षकों की भी एक संस्था बनी है—'साल्टा' यानी 'साउथ एशियन लैंग्वेज टीचर एसोसिएशन'। इनका भाषा-शिक्षण संबंधी सूचनाओं का एक न्यूजलैटर भी निकलता है। इन्होंने वाशिंगटन के नेशनल फॉरेन लैंग्वेज सेंटर के साथ मिलकर हिंदी पढ़ाने की सामग्री का ब्योरा 'लैंगनेट' नाम के वेब पर दिया हुआ है। इसके अलावा कार्ला ने भी हिंदी शिक्षकों की एक इंटरनेट सूची बनाई हुई हैं।

कुछ साल यह संस्था सोई-सी रही। अब गेबिरयेला इलेवा, जिष्णु शंकर तथा गौतम शाह इत्यादि नई पीढ़ी के शिक्षकों के नेतृत्व में फिर से इसे जीवंत बनाया जा रहा है। लेकिन पाठ्यक्रम की एकरूपता अमेरिकी यूनिवर्सिटियों में नहीं है। यहाँ का प्रजातांत्रिक ढंग हर संस्था को अपने मानदंड खुद गढ़ने देता है। पर सबसे ऊपर जो एक तरीका इन मानदंडों की एकरूपता का दर्शन कराता है, वह है परीक्षण प्रणाली। अमेरिकी इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज ने कुछ परीक्षण-पत्र तैयार किए हुए हैं, पर उनका इस्तेमाल वे अपने लिए ही करते हैं। इस तरह सारे विश्वविद्यालय अपने स्वतंत्र परीक्षा-पत्र तैयार करते हैं।

हिंदी में भी ऐसे इम्तहान तैयार किए जा रहे हैं, जो किसी भी जगह पढ़े हुए छात्र के स्तर को बता सकते हैं। अमेरिकी कौंसिल के द्वारा ही दिए गए ये मानदंड हैं, जिनके आधार पर विभिन्न स्तर निर्धारित किए जाते हैं। मौखिक परीक्षा के मानदंड तो काफी सालों से मौजूद हैं। अभी रीडींग कॉम्प्रिहेंशन की परीक्षा का भी टेस्ट तैयार हुआ है। पोर्टलैंड में ओरेगन यूनिवर्सिटी इन परीक्षाओं को नियमित कर रही है। ये इम्तहान कंप्यूटर पर दिए जाते हैं।

भारतीय और अभारतीय मूल के छात्र तथा शिक्षण-प्रणाली की चुनौतियाँ

हिंदी-शिक्षण को लेकर आज जो बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया जा रहा है, वह है भारतीय मूल के छात्र। जब से भारतीय मूल के छात्र बड़ी मात्रा में हिंदी की कक्षाओं में पहुँच रहे हैं, शिक्षण की विधि आमूलचूल परिवर्तन की माँग कर रही है, जबकि ऐसे साधन अभी उपलब्ध नहीं है कि इनके लिए अलग से साम्रगी तैयार की जाए। अभी तो क्विकफिक्स जैसा ही चल रहा है और पहले से मौजूद शिक्षण-सामग्री को ही थोड़े कल्पनात्मक ढंग से इस्तेमाल किया जा रहा है, पर देखा जाए तो बहुत दूर तक यह बात हो नहीं सकेगी।

A-PDF Merger DEMO Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हैरिटेज छात्रों को नजर में रखकर जो थोड़ी-बहुत नई सामग्री तैयार की जा रही है, वह मूलत: इंटरनेट पर है। इंटरनेट पर शिक्षण की विधि लीनियर के बजाय सर्कुलर है, इसलिए हर मूल के विद्यार्थी अपनी योग्यता के अनुरूप कुछ-न-कुछ पा सकते हैं। भविष्य में यही अधिक लोकप्रिय और उपादेय होगी। अमेरिकी शिक्षा का वातावरण भी इंटरनेट को गले लगाता दिखता है। जैसाकि पहले भी कह चुकी हूँ अफरोज ताज, गेब्रियला इलेवा, राकेश रंजन, जिष्णु शंकर, तेज भाटिया, गौतमी शाह, सीमा खुराना (फिल्मी गानों की योजना) गंभीर दंपती, पीटर हुक (मल्हार वेबसाइट) हर्मन वेन ऑलफन इत्यादि कंप्यूटर पर ही वर्तमान और भावी सामग्री तैयार कर रहे हैं। मैं स्वयं भी हिंदी महिला कथाकारों की वेबसाइट तैयार कर रही हूँ।

हिंदी पाठ्यक्रम का मानकीकरण

इस समय भारतीय बच्चे इतनी बड़ी संख्या में हिंदी की माँग कर रहे हैं कि सारे अमेरिका के जगह-जगह मंदिरों, घरों इत्यादि में बहुत से उत्साही माता-पिता उन्हें हिंदी सिखलाने का यत्न कर रहे हैं। बात यह है कि जहाँ यूनिवर्सिटियों में हिंदी पढ़ाने का इंतजाम है, वहाँ अमेरिका के स्कूलों में हिंदी-शिक्षण का कोई स्थान नहीं है। कोशिश यह है कि ये बच्चे अगर स्कूलों में ही हिंदी सीख जाएँ तो यूनिवर्सिटी जाकर वे साहित्य-शिक्षा पा सकते हैं, जबकि अभी सबको क ख ग से ही शुरू करना पड़ता है। दूसरा यह भी है कि कॉलेज जाने का इंतजार करने से पहले ये बच्चे हिंदी घर से ही जान लें, ताकि कॉलेज में दूसरे विषयों पर ध्यान लगाएँ। खैर, दोनों बातें सही हैं।

इस दिशा में जो पहला कदम उठाया जा रहा है, वह है शिक्षा के मानकीकरण का (सुषम बेदी और विजय गंभीर इस योजना की सहअध्यक्षा हैं)। इसके लिए पूरे देश से दस सदस्य चुने गए हैं। यूनिवर्सिटी तथा संडे स्कूल में कार्यरत शिक्षक मिल-जुलकर यह काम कर रहे हैं। काम मानक निर्धारण का है, ताकि एक बार ये मानक बन जाएँ, तो संडे स्कूलों या आगे चलकर मान्यता प्राप्त अमेरिकी स्कूलों में जो मानक अपनाए जाए उनका आधार पहले से मौजूद हो। कॉलेजों में भी यही मानक इस्तेमाल किए जाने का विचार है। यह काम भी अमेरिकी कौंसिल की मदद से हो रहा है। अमेरिकी कौंसिल यह काम बहुत सी भाषाओं—अरबी, फ्रेंच, चीनी, जापानी, जर्मन इत्यादि के लिए पहले से ही कर चुकी है और हमारे इस काम का भी मूलाधार यही नींव होगी, जिस पर हिंदी के मानक ठहराए जाएँगे। अभी इस काम की शुरुआत ही हुई है। एकाध साल में इसे संपूर्ण हो जाना चाहिए।

हिंदी भाषा और साहित्य संबंधी अध्ययन और अनुसंधान हिंदी विषयों पर अनुसंधान

जैसाकि मैं पहले कह चुकी हूँ, दक्षिण एशियाई विभाग की शुरुआत यूनिवर्सिटी ऑफ पैन्सिलवेनिया, फिलाडेल्फिया में 1947 में हुई। जिसके अंतर्गत हिंदी भी पढ़ाई जाने लगी। संस्कृत का अध्ययन तो पहले से चला आ रहा था पर हिंदी की शुरुआत भारत की स्वाधीनता के बाद हुई।

जहाँ तक शोध का सवाल है, यूरोप के भाषा-वैज्ञानिक पहले से ही भाषा के शोध में लगे हुए थे। यहाँ भी भाषा-वैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान दिया।

ज्यादातर यूनिवर्सिटियों में छठे दशक में ही हिंदी का शिक्षण शुरू हुआ था। शुरू में विद्यार्थी अमेरिकी स्नातकोत्तर छात्र होते थे। लेकिन हिंदी पर विशेष शोध नहीं हुआ। हाँ, अनुवाद कार्य काफी हुआ। जिन प्रमुख नौ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी थी, वहाँ दो तरह के कार्य हुए— हिंदी-शिक्षण की सामग्री तैयार करना तथा अनुवाद कार्य।

इधर 1961 में 'अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज' की स्थापना हुई, जिसके माध्यम से यूनिवर्सिटी में शोध के इच्छुक छात्रों के लिए अनुदान की व्यवस्था थी। इससे बहुत तरह के शोध को बढ़ावा मिला। इस संस्था ने लगभग 5,500 छात्रों को शोध के लिए सहायता दी है। इनमें से कुछ हिंदी का काम करनेवाले भी हैं। इस संस्था के द्वारा भारत में ही भारतीय भाषाओं को सिखाने का भी विधान है। पहले यह काम दिल्ली-बनारस में होता रहा, अब राजस्थान में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। इस संस्था का मुख्य दफ्तर डिफेंस कॉलोनी दिल्ली में है, और अब गुड़गाँव में भी बड़ा दफ्तर खुल गया है।

सातवें-आठवें दशक में कुछ अनुवाद कार्य प्रकाशित हुए, जैसे

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कि डेविड रयूबिन का प्रेमचंद की कहानियों का अनुवाद, गौरडन रोडारमल का नई कहानियों का अनुवाद। यूँ तो रोडारमल की डॉक्टरेट के शोध प्रबंध का विषय भी नई कहानी था, पर वह शोध अभी तक अप्रकाशित है। डेविड रयूबिन आज तक अनुवाद का भरपूर काम कर रहे हैं। प्रेमचंद के बाद उनका निराला की कविताओं का अनूदित संग्रह कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ। इन्होंने चारों छायावादी प्रमुख कवियों का अनुवाद किया, जो कि अब ऑक्सफोर्ड प्रेस, दिल्ली से 'रिटर्न ऑफ सरस्वती' नाम से प्रकाशित हुआ है। नवें दशक में उनका प्रेमचंद की कहानियों का दूसरा संग्रह प्रकाशित हुआ ऑक्सफोर्ड प्रेस से ही। इससे पहले 'निर्मला' उपन्यास का अनुवाद भी छपा। डेविड रयूबिन ने मेरे भी दो हिंदी उपन्यासों—'हवन' तथा 'लौटना' का अंग्रेजी अनुवाद किया है। 'हवन : द फायर सेक्रिफाइस' नाम से हाइन्मन, इंग्लैंड से छपा तथा 'लौटना', 'पर्टिट ऑफ मीरा' नाम से नेशनल पब्लिशिंग हाउस ने छापा।

जहाँ तक अनुवाद का सवाल है, मेरा मत यह है कि डेविड रयूबिन के अनुवाद बहुत साफ-सुथरे और उनमें भाषा में बहुत रवानगी और पठनीयता है। वे चूँकि स्वयं एक उपन्यासकार है, उनके गद्य की भाषा बहुत बारीकी और काव्यात्मकता लिये है। जहाँ-जहाँ हिंदी का गद्य काव्यात्मक बना है, रयूबिन ने उसे अंग्रेजी अनुवाद में बहुत कुशलता से पकड़ा है। यही कारण है कि छायावादी कवियों के अनुवाद का कार्य उन्होंने अपने ऊपर लिया और उसे बखूबी निभाया। उनकी पुस्तक 'सरस्वती की वापसी' में चारों मुख्य छायावादी कवियों की कविताओं का अनुवाद है। उन्होंने निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और प्रसाद की 'प्रलय की छाया' जैसी दुरूह कविताओं का बहुत सुंदर अनुवाद किया है। ऑक्सफोर्ड से डेविड की सभी अनूदित रचनाएँ हाल में प्रकाशित हुई हैं। ये रचनाएँ यहाँ के यूनिवर्सिटी प्रेसों से भी छप चुकी हैं। खासतौर से प्रेमचंद, निराला तथा सरस्वती की वापसी। आदित्य बहल ने कृष्णा सोबती, फ्रासेस प्रिचिट ने प्रेमचंद, बॉब हक्सटेड ने मुद्राराक्षस की कृतियों का तथा जेसन ग्रुनबाम ने उदय प्रकाश की कहानियों का अच्छा अनुवाद किया है। कुछ और लोग भी अनुवाद कार्य में लगे हैं। फ्राँसेस प्रिचिट का मुख्य कार्य गालिब का अनुवाद है। महादेवी वर्मा पर करीन शोमर ने भी बर्कले यूनिवर्सिटी से अपना शोधग्रंथ लिखा। मुझे लगा कि जो कुछ महादेवी के बारे में हम सब भारत से जानते हैं, उसी को अंग्रेजी में रख दिया गया है। कोई बहुत मौलिक नजरिया या शोध मुझे नहीं दिखा।

कैथी हैन्सन का मुख्य काम थियेटर पर है। उनकी नौटंकी ड्रामा पर लिखी किताब भी शोध का बहुत महत्त्वपूर्ण काम है। इसके अलावा इन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों का अनुवाद किया है। शायद यहाँ यह कहना भी सही होगा कि आधुनिक हिंदी साहित्य के अलावा प्राचीन हिंदी साहित्य पर भी अमेरिकी विद्वानों ने काम किया है—विशेष रूप से भक्ति साहित्य पर। इस दिशा में जॉन स्ट्रैटन हाली का सूर पर, लिंडा हैंस का कबीर पर काम उल्लेखनीय है। ऐलिसन बुश रीति-साहित्य में केशवदास पर काम कर रही हैं। कुछ और विद्वान् भी इस दिशा में काम कर रहे हैं।

हिंदी-उर्दू का सवाल

अमेरिका की ज्यादातर यूनिवर्सिटियों में हिंदी उर्दू एक भाषा के रूप में ही पढ़ाए जाते हैं, उनके अलग-अलग विभाग नहीं हैं। मेरी अपनी कोलंबिया यूनिवर्सिटी को ही ले लीजिए। यहाँ पहले वर्ष में विद्यार्थी केवल देवनागरी लिपि में हिंदी-उर्दू सीखते हैं। दूसरे साल में हम उनको उर्दू की लिपि भी सिखला देते हैं। उसके बाद हिंदी साहित्य का कोर्स अलग होता है और उर्दू साहित्य का अलग। कभी-कभी इनको मिलाकर भी दिया जाता है। खासतौर से प्रगतिवादी लेखकों को मिलना आसान हो जाता है, चूँकि उनकी भाषा हिंदुस्तानी थी—न हिंदी न उर्दू। प्रेमचंद, मंटो, यशपाल, इस्मत चुगताई, कृश्न चंदर इत्यादि को दोनों लिपियों में पढ़ाना संभव है। अंग्रेज विद्वान् शैकल की एक ऐसी पाठ्य-पुस्तक भी है, जिसमें दोनों लिपियों का इस्तेमाल है और यह पुस्तक अमेरिका में भी प्रिय है। इनकी शुरुआत इंशा अल्ला खाँ से है, जिसने सचमुच ऐसी भाषा देनी चाही, जिसमें हिंदी को छोड़ और किसी भाषा का पुट न हो—न फारसी, न संस्कृत।

यूँ अब कई यूनिवर्सिटियों में अलग-अलग भाषा के रूप मे भी इन्हें पढ़ाया जाता है, जैसे कि यूपेन, मेडिसन और न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी में।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अंत में

उम्मीद करती हूँ कि ज्यों-ज्यों शिक्षण का प्रसार बढ़ेगा, त्यों-त्यों अनुवादों का काम भी तथा आलोचना का भी बढ़ेगा। यह सही है कि चाहे भारतीय मूल के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है, पर इनका ज्यादातर ध्येय होता है—बोलचाल भर की भाषा सीख लेने का। शोध के कार्य में ज्यादा भारतीय मूल के छात्र नहीं जाना चाहते। उनकी दिशाएँ कंप्यूटर, इंजीनियरिंग, मेडिकल या अर्थशास्त्र पढ़ने की होती हैं। शोध की दिशा में इक्के-दुक्के अमेरिकी मूल के ही छात्र जाते हैं। जब तक भारतीय छात्र इस दिशा में कदम नहीं रखेंगे, शोधकर्ताओं की संख्या गिनी-चुनी ही रहेगी। और इस क्षेत्र में काम भी नाममात्र का होगा।

NOTES

1. ACTFL has received greetings from the White House supporting February 2007 as Discover Languages month. The message recognizes the importance of effective communication to help build a world that lives in liberty, trades in freedom, and grows in prosperity. Click here

(http://www.magnetmail.net/images/clients/ACTFL/attach/WhiteHouse.doc) to view and excerpt of the massage.

2. From a college professor: "We plan on hosting a series of events in our Multimedia Languages on our campus during the month of February. Our main event will be held on February 14th and will be called "In Love with Languages'."

From a K-12 supervisor: "We are making a banner for our Literacy Showcase to celebrate our 50th anniversary of our Foreign Language programs."

From a middle school teacher: "Initially I want to put it on the top of all my classroom tests/quizzes, as well as on memos to other teachers in our middle school to promote awaerness of what we do in our classes."

From a media specialist: "I am going to use it on our school's library page (mansfieldisd.org/library) to promote Discover Languages Month in Feb."

From a high school teacher: "I would like to use the logo on an announcement to parents about our World Languages fair for incoming jr-hi students."

No matter how you are celebrating, take some time to post your activities on the Discover Languages bulletin board.

(http://www.discoverlanguages.org/custom/DL_Board/view_3.cfm?viewall=all) so everyone can see your great ideas.

3. www.columbia.edu/~fp7

4. "Language acquisition is very similar to the process children use in acquiring first and second languages. It requires meaningful interaction in the target

language--natural communication--in which speakers are not concerned with the from of their utterances but with the messages they are conveying and understanding."(Krashen, 1978" The monitor model for Second Language Acquisition", ed. by Rosario C.Gingras)

5. http://www.uni.edu/becker/hindi.html

6. www.carla.umn.edu

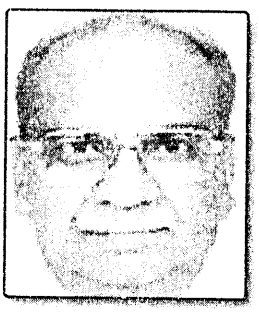
404 West, 116 apt. 33,
New York, NY 10027

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

4 रोमानिया में हिंदी का स्वर और स्वरूप

डॉ. रणजीत साहा

रोमानिया यूरोप के उन महत्त्वपूर्ण देशों में है, जिसने कई ऐतिहासिक उतार-चढ़ाव और राजनीतिक उथल-पुथल झेलने के बावजूद अपनी भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सत्ता और पहचान को सफलतापूर्वक बनाए रखा है। इसके उत्तर में उक्रेन (पूर्व सोवियत रूस का एक राज्य), दक्षिण में बुल्गारिया, पूर्व में मोल्दोवा और कालासागर तथा दक्षिण-पश्चिम में सर्बिया-मोंटेनेग्रो और पश्चिम में हंगरी है। यूरोपियन यूनियन में सम्मिलित यह देश अपने प्राकृतिक सौंदर्य, परंपरागत जीवन-मूल्यों और आधुनिक साधन-सुविधाओं के लिए भी अपने प्रशंसकों के बीच आकर्षण का केंद्र है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि रोमानिया के हर एक निवासी के मन में भारत के लिए अतिरिक्त सम्मान का भाव है और वह भारत को अपनी आँखों से देखना चाहता है। लेकिन भावनात्मक संबंध के बावजूद औपचारिक स्तर पर भारत-रोमानिया के बीच साहित्यिक-सांस्कृतिक संबंध बहुत पुराना नहीं है। वर्ष 1913 में रवींद्रनाथ ठाकुर को जब 'गीतांजलि' के लिए नोबेल सम्मान मिला तो रोमानिया के ओराश्तिए शहर के साप्ताहिक पत्र 'कोसन जोयना' (14 दिसंबर, 1914) में 'एक भारतीय कवि' शीर्षक से एक सचित्र आलेख लेखक के आद्यक्षर के साथ छपा था—एफ.एन.। उसके बाद आगामी कई वर्षों तक रवींद्रनाथ की रचनाओं के रोमानियाई भाषा में अनुवाद भी इक्का-दुक्का पत्र-पत्रिकाएँ समय-समय पर छापती रहीं।



- जन्म : 21 जुलाई, 1946
- हिंदी में एम.ए. (प्रथम श्रेणी), विश्वभारती।
- शांतिनिकेतन से पी-एच.डी
- तुलनात्मक साहित्य एवं ललित कला अधिकाय में भी उपलब्धियाँ प्राप्त
- भागलपुर, शांतिनिकेतन एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में शोध-संबंधी परियोजनाओं तथा अध्यापन से जुड़े
- दो दशकों तक साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के उपसचिव पद पर कार्य करते हुए हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों तथा कार्यक्रमों का नियमन एवं संचालन
- लगभग तीन दर्जन पुस्तकें और 60 से अधिक शोध लेख एवं 240 आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में प्रकाशित
- बांग्ला, अंग्रेजी एवं गुजराती से कई कृतियों का अनुवाद
- समकालजीन रोमानियाई कविता विशिष्ट संकलन
- रोमन कल्चरल इंस्टीट्यूट, रोमानिया द्वारा वर्ष 2007 में विजिटिंग फेलोशिप प्रदान
- भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर
- कला समीक्षा में गहरी रुचि
- मॉस्को, लंदन, बल्गारिया, मॉरीशस एवं नेपाल की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं में भारत का प्रतिनिधित्व
- भारत भाषा परिषद्, कोलकाता से सेतुबंध पुरस्कार, अंतरराष्ट्रीय इंडो-रशियन लिटरेरी सम्मान, दिनकर पुरस्कार तथा काकासाहब कालेलकर अलंकरण से सम्मानित।

वर्ष 1926में रवींद्रनाथ की रोमानिया यात्रा से न केवल भारत-रोमानिया संबंध में प्रगाढ़ता आई, बल्कि बांग्ला सहित भारतीय भाषाओं के प्रति रोमानियावासियों का प्रेम भी बढ़ा। रवींद्रनाथ की प्रतिनिधि रचनाओं के अनुवाद भी रोमानियाई भाषा में तेजी से होने लगे। हालाँकि ये अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी और इतालवी भाषा से होते थे। रवींद्रनाथ की कृतियाँ जहाँ रोमानियाई में अनूदित और प्रशंसित हैं, वहाँ उनकी मूर्तियाँ भी कई शहरों में प्रतिष्ठित हैं। रवींद्रनाथ के बाद प्रेमचंद ही ऐसे लेखक हैं, जिनकी रचनाओं के अनुवाद किए गए हैं। 'गोदान' के अलावा दनिल अंका ने प्रेमचंद की बाईस कहानियों का मूल हिंदी से रोमानियाई में अनुवाद किया है। यहाँ रोमानिया के एक उत्साही प्रकाशक एडितुरा हेराल्ड और इसके संचालक आरेलियन स्क्रिमा का उल्लेख आवश्यक है, जो भारतीय संस्कृति और मनीषा से संबद्ध कई महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन रोमानियाई में संबंधित विद्वानों के सहयोग से करते रहे हैं। इनमें योगसूत्र (पतंजलि), वाराह, शंकर, दत्तात्रेय (लिखित गीता), वृहत् जातक, सांख्य-कारिका, विज्ञान भैरव जैसे चिंतकों की कृतियाँ ही नहीं, भगवतद्गीता के साथ कबीर (साखी, पद और रमैनी) ग्रंथ भी प्रकाशित हैं। 8 जून, 2007 को महाभारत के प्रसिद्ध सावित्री-सत्यवान आख्यान को केंद्र में रखकर लिखी गई 'सावित्री' पुस्तक का लोकार्पण भी विद्वानों की उपस्थिति में हुआ था।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

वस्तुत: 1858में नाटो देशों की संस्तुति के अनुरूप एशियाई और अफ्रीकी देशों की भाषाओं के अध्ययन के लिए एक समिति गठित हुई थी। इसने अपने प्रतिवेदन में यूरोप और अमेरिका में स्थित भाषा संस्थानों और विश्वविद्यालयों में प्रमुख एशियाई भाषाओं के अध्ययन के आवश्यक साधन और सुविधाएँ जुटाने पर बल दिया। तदनुसार, रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट और यहाँ स्थित विश्वविद्यालय के भव्य परिसर में हिंदी भाषा के अध्ययन के लिए तैयारियाँ शुरू हुईं। विश्वविद्यालय के प्राच्य एवं क्लासिकी भाषा विभाग के अंतर्गत 1965 ई. में हिंदी का पठन-पाठन एक ऐच्छिक विषय के रूप में हुआ। इस द्विवर्षीय पाठ्यक्रम को आरंभ करनेवालों में पहला उल्लेखनीय नाम उक्त विभाग के डीन और संस्कृत भाषाविद् डॉ. पोखीर्ग का है, जिनके प्रयास से ही बाद में इसी विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना हुई।

आगे चलकर वर्ष 1971 में उक्त पाठ्यक्रम के साथ ही चार वर्षीय नियमित हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसमें विश्वविद्यालय के स्नातकों को एक विदेशी भाषा के नाते हिंदी का अध्ययन करना होता था। इन चार वर्षों में भाषा ज्ञान, भाषिक संरचना तथा सांस्कृतिक विषयों के साथ कुछ साहित्यिक रचनाओं को पढ़ना पड़ता था। प्राच्य विषयों से जुड़े छात्र संस्कृत का भी अध्ययन करते थे। यहाँ यह उल्लेख्य है कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी जैसी भाषाओं में छात्रों की संख्या तथा विश्व भर में उनकी माँग के कारण स्वभावत: इन्हें मुख्य भाषा (मेजर) का दर्जा दिया गया है, जबकि पुर्तगाली, जापानी अरबी, तुर्की और यहाँ तक कि चीनी भी बतौर गौण भाषा (माइनर) में गिनी जाती है। लेकिन कोई दस-बारह वर्ष बाद यह देखा गया कि हिंदी पढ़नेवालों के लिए रोमानिया में रोजी-राटी जुटा पाना कठिन था। सरकार को पहले से ही यह प्रश्न तंग करने लगा था कि किसी भी भाषा और संस्कृति के प्रति प्रेम की अपनी महत्ता और गरिमापूर्ण सत्ता के बावजूद उसे जीविका से कैसे जोड़ा जाए, ताकि इस समस्या का समाधान हो? अनुवादक या दुभाषिया बनकर भी जीविका चलाना संभव न था। भारतीय दूतावास या अन्य सरकारी या सार्वजनिक उद्यमों या वाणिज्यिक उपक्रमों में अधिकांश अधिकारी अंग्रेजी माध्यम से ही अपना कार्य संपन्न कर लेते थे।

इसलिए वर्ष 1982 के बाद रोमानियाई सरकार ने यह दु:खद निर्णय लिया कि हिंदी को गौण भाषा (माइनर) के रूप कें पढ़ाया जाएगा। यानी मुख्य भाषा के लिए जहाँ प्रति सप्ताह पंद्रह घंटों का पाठ्यक्रम निर्धारित था, वहाँ गौण भाषा (माइनर) के लिए प्रति सप्ताह दस घंटे। यही नहीं, इसे संस्कृत और बँगला भाषा की तरह ऐच्छिक तौर पर भी पढ़ाया जाएगा। इस निर्णय के पीछे रोमानिया की राजनीतिक और उससे जुड़ी तत्कालीन आर्थिक स्थितियाँ भी जिम्मेदार रहीं। वर्ष 1989 ई. में कम्युनिस्ट डिक्टेटर चाउशेस्कु की निरंकुश राजसत्ता को उखाड़कर तमाम सहयोगियों के साथ उसकी हत्या कर दी गई और रोमानिया में नई गणतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था लागू हुई।

इसी तरह बुखारेस्ट से कोई 800 कि.मी. दूर ट्रांसिल्वेनिया के प्राचीन नगर सिब्यू के लूचियान ब्लागा विश्वविद्यालय में भी एक वर्षीय हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किया गया था, लेकिन न तो इसे नियमित कर द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में परिणत किया गया और न स्थायी तौर पर कोई अध्यापक नियुक्त हुआ। बुखारेस्ट विश्वविद्यालय के हिंदी अध्यापक ही बारी-बारी से ट्रेन की लंबी यात्रा के बाद हिंदी में अध्यापन-कार्य संपन्न किया करते और फिर वापस घर लौटते। वैसे यहाँ संस्कृत का विभाग काफी पुराना है और वह दर्शन विभाग के अधीन है।

विश्वविद्यालय में पहला सत्र सितंबर में आरंभ होता है और दूसरा सत्र फरवरी में। संबंधित विभाग में प्रवेश के लिए पूर्व-परीक्षा और साक्षात्कार होते हैं, जिन्हें पार करना बहुत आसान नहीं होता। प्रवेश मिल जाने पर छात्र को 4 वर्षों तक स्नातक पाठ्यक्रम (आठ सेमेस्टरों या सत्रों में विभाजित) पूरा करना पड़ता है। इसके बाद यदि वह चाहे तो एक वर्ष का स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम दो सत्रों में पूरा कर सकता है। छात्र की शैक्षिक तैयारी और स्वभाव के साथ उसकी शिक्षा पर होने वाले खर्च पर भी विश्वविद्यालय की नजर रहती है। विशेषकर उन आनुषंगिक एवं ऐच्छिक पाठ्यक्रमों पर, जिनके लिए छात्रों की फीस

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

या बाहरी अनुदान द्वारा खर्च जुटाया जाता है। किसी भी विषय, जिसका सीधा संबंध देश या संबद्ध विश्वविद्यालयों से न हो, उनके मामले में अतिरिक्त सावधानी रखनी पड़ती है। क्योंकि किसी देश के भाषा या संस्कृति विषयक पाठ्यक्रम को प्रारंभ कर उसे किसी कारणवश, राजनीतिक या अर्थाभाव के कारण बंद कर देने पर कटु आलोचना झेलनी पड़ती है। उदाहरण के लिए, रोमानिया के उत्तर में 'याशी शहर स्थित एलेकजेंड्रयू ईवान-कूजा विश्वविद्यालय, जिनमें अनेकानेक संकाय हैं, वहाँ लगभग ढाई दशक पहले संस्कृत एवं भारतीय दर्शन का अध्ययन होता था, अब वह बंद है, कारण चाहे जो हो। इसी परिसर से थोड़ी दूर पर रोमानिया के राष्ट्रकवि मिहाई एमिनेस्कु के सम्मान में निर्मित संग्रहालय में उनके चित्रों, निजी संग्रहों, पत्रों और पुस्तकों के साथ उनके द्वारा संपादित संस्कृत शब्दकोश की मूल पांडुलिपि भी रखी थी। 2 जून, रविवार (2007 ई.) के दिन मुख्य सड़क के दोनों ओर फैले विस्तृत परिसर एवं विशाल इमारतोंवाले इस विश्वविद्यालय के कुछ विभागों में दीक्षांत समारोह का आयोजन देखकर मैं हैरान रह गया था।

इसी तरह बुखारेस्ट से कोई 800 कि.मी. दूर ट्रांसिल्वेनिया के प्राचीन नगर सिब्यू के लूचियान ब्लागा विश्वविद्यालय में भी एक वर्षीय हिंदी पाठ्यक्रम आरंभ किया गया था, लेकिन न तो इसे नियमित कर द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में परिणत किया गया और न स्थायी तौर पर कोई अध्यापक नियुक्त हुआ। बुखारेस्ट विश्वविद्यालय के हिंदी अध्यापक ही बारी-बारी से ट्रेन की लंबी यात्रा के बाद हिंदी में अध्यापन-कार्य संपन्न किया करते और फिर वापस घर लौटते। वैसे यहाँ संस्कृत का विभाग काफी पुराना है और वह दर्शन विभाग के अधीन है।

वैसे बुखारेस्ट स्थित (रोमानिया विश्वविद्यालय) के हिंदी विभाग का इतिहास कोई 35 साल पुराना है। इसकी स्थापना में संजू अल-जियार्जे जैसे भारतविदों का सक्रिय योगदान है। रोमानिया विश्वविद्यालय की कतिपय कक्षाओं में अनौपचारिक अध्ययन कार्य के दौरान मैंने यह पाया कि यहाँ सेमेस्टर प्रणाली पर बहुत जोर है। शिक्षा पर होने वाले व्यय और विश्वविद्यालय की फीस चुकाने और शहरों में होने वाले खर्च के चलते प्रतिवर्ष दो सत्रों 'मानसून' एवं 'विंटर' कक्षाओं में नियमित रूप से अध्ययन कर पाना उनके लिए कठिन होता है। यही नहीं, साहित्य का अध्ययन करने के साथ सामाजशास्त्र, पर्यटन, होटल प्रबंधन कोई अन्य विदेशी भाषा या मानवाधिकार संबंधी अध्ययन अथवा विदेश-नीति के साथ दुभाषिए या अनुवादक बनने के लिए व्यावसायिक कक्षाओं में अध्ययन करते हैं। भाषा या साहित्य का अध्ययन उनके लिए मानविकी से संबंधित एक व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने तक ही सीमित है। इसलिए विश्व के अन्य प्रतिनिधि, प्राचीन एवं प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की तरह न तो अध्ययन के स्तर पर और न अध्यापन की दृष्टि से भाषा एवं साहित्य संबंधी गंभीर विमर्श या शोधकार्य की अपेक्षा की जा सकती है।

नियमित या अनियमित तौर पर सफलता अर्जित करने के बाद ही विद्यार्थी स्नातकोत्तर उपाधि (पोस्ट ग्रैजुएट इन हिंदी) का अधिकारी बनता है। वैसे अधिकांश विद्यार्थी आठ सत्रोंवाले चार वर्षीय पाठ्यक्रम को पूरा कर इस योग्य हो जाते हैं कि हिंदी में कामचलाऊ अनुवाद या फिर भाषांतर से जुड़े कार्य या दायित्व का निर्वाह कर सकें। लेकिन रोमानियाई-हिंदी शब्दकोश का अखरनेवाला अभाव उन्हें अंग्रेजी शब्दकोश की सहायता लेने को बाध्य कर देता है।

रोमानिया विश्वविद्यालय में पहले हिंदी, संस्कृत और बांग्ला भाषाओं की पढ़ाई द्विवर्षीय और बाद में त्रिवर्षीय पाठ्यक्रमों तक ही सीमित रही थी। इनका नियमन भी पिछले 15-20 वर्षों के दौरान ही हुआ है। कारण स्पष्ट है कि उस छोटे से देश में हिंदी पढ़ने के बाद उसकी उपयोगिता क्या है! सिवा इसके कि विद्यार्थी दूसरे देशों में जाकर उच्चतर पढ़ाई पूरी कर कोई संबंधित नौकरी करें।

रोमानिया विश्वविद्यालय की हिंदी कक्षाओं में पढ़ाते हुए एकवचन से बहुवचन और वाक्य-संरचना के अंतर्गत तीनों कालों (भूत, भविष्य और वर्तमान) के अभ्यास पर कथोपकथन या संवाद की कमी को मैंने लक्ष्य किया। इस कमी को वार्तालाप पुस्तिका के अभ्यास से दूर किया जा सकता था। मेरे पास केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा वर्ष 2004 में प्रकाशित हिंदी रूमानियाई वार्तालाप पुस्तिका की एक प्रति थी, जिससे मैंने [illegible] लाभ उठाया ही था, मैंने कक्षा में भी इसका उपयोग किया। [illegible] डॉ. इंदु प्रकाश पांडेय ने रोमानियाई में पहली पाठ्यपुस्तक (1967 ई.) में तैयार की थी। इसके साल भर

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

बाद डॉ. विद्यासागर दयाल ने 'हिंदी भाषा कोर्स' के साथ इयोन पेतेरेस्तु के सहयोग से हिंदी-रोमानियन तथा रोमानियन-हिंदी शब्दकोश भी तैयार किया था। बाद में केंद्रीय हिंदी संस्थान के डॉ. सूरजभान सिंह ने रोमानिया-प्रवास के दौरान वर्ष 1980-81 में दो खंडों में 'हिंदी भाषा की पाठ्यपुस्तक' तैयार की थी। अब इन पाठ्य पुस्तकों की फोटोस्टेट प्रतियाँ तैयार करवाकर छात्रों में वितरित की जाती हैं। भाषा-अभ्यास के दौरान मैंने पाया कि मुद्रित या लिखित वाक्यों को बोलते हुए छात्रों को ख, घ, ध, झ, ढ़, ढ अक्षरों, जिनमें 'ह' या प्राण-ध्वनि मिश्रित होती है, के उच्चारण में कठिनाई होती है। इनका अभ्यास डी.वी.डी. द्वारा और फिल्मों के या गानों के अंश दिखा-सुनाकर कराया जा सकता है।

रोमानिया में भारतीय फिल्में अपने गानों और मसालेदार फॉर्मूलों और लटकों-झटकों के चलते बेहद लोकप्रिय हैं। ये फिल्में प्रत्येक रविवार को आठ बजे रात्रि से, यानी सर्वाधिक कीमती घड़ी में, भाषांतर पट्टी के साथ प्रदर्शित की जाती हैं। इसके प्रदर्शन के दौरान काफी विज्ञापन भी प्रसारित होते हैं। स्पष्ट है कि काफी बड़ी संख्या में न केवल रोमानिया में, बल्कि आस-पास के देशों के दर्शक भी इन भारतीय फिल्मों को देखते होंगे। एक समाजवादी देश होने के नाते रोमानिया में राजकपूर की फिल्में पहले काफी लोकप्रिय थीं। अपनी यात्राओं के दौरान भारतीय गानों की लोकप्रियता के चलते मुझे भी कई स्थानों पर इन गानों को गाकर सुनाना पड़ा। मैं टी.वी. पर जिन फिल्मों को देख पाया, उनमें से कुछ हैं—उमरावजान अदा (नई फिल्म), क्यों हो गया न, शब्द, (तीनों की नायिका ऐश्वर्या राय), ताजमहल (नई फिल्म) इत्यादि।

वस्तुतः रोमानियावासियों के लिए हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं बल्कि भारत की बहुसांस्कृतिक, बहुजातीय एवं बहुभाषिक संस्कृति से सीधे परिचित करानेवाली एक आत्मीय और परिचित भाषा भी है। उन्हें पता है कि अंग्रेजी, रूसी या जर्मन भाषा या संस्कृति में उनके लिए न तो अवकाश है और न उन बड़ी भाषाओं के पास रोमानियाई के लिए जिज्ञासाभाव। प्राच्य भारत की भाषा और संस्कृति, इसकी अवधारणा एवं अभिगम, इसकी सामाजिक-धार्मिक संरचना और व्यवस्था, आख्या एवं आख्यान, उत्सव एवं अनुष्ठान, व्यंजन एवं परिधान तथा इसकी बहुरंगी छटा और इंद्रधनुषी छवि के प्रति अब रोमानिया जैसे पूर्व-यूरोपीय देशों की जिज्ञासा तीव्रतर होने लगी है। चूँकि इन देशों के साथ हमारे व्यावसायिक या राजनयिक संबंध अभी भी बहुत कम हैं, इसलिए हम उनकी आकांक्षा को कार्यान्वित या अपनी सदाशयता को रूपायित नहीं कर पा रहे हैं। इक्का-दुक्का आयोजनों या प्रयत्नों से यह संभव नहीं होगा। सोफिया (बुल्गारिया), बुखारेस्ट (रोमानिया) बुडापेस्ट (हंगरी), प्राग (चेकोस्लोवाकिया), टर्की, ग्रीस आदि देशों के लिए अभी तक सीधी उड़ानें नहीं हैं। यही नहीं, भारत-रोमानिया के परंपरागत एवं सांस्कृतिक संबंध के साठ वर्ष (1948-2007) पूरा हो जाने पर भी भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा अभी भी बुखारेस्ट में 'नेहरू सेंटर' की स्थापना न हो पाना निस्संदेह चिंता का कारण है।

मैं जब रोमानियाई सांस्कृतिक संस्थान के आमंत्रण पर रोमानिया गया तो हिंदी और संस्कृत विभाग के वरिष्ठ अध्यापक और भाषाविद् प्रो. लोरेंत्सिउ थेबान के आग्रह पर मैंने हिंदी की कक्षाओं में अनौपचारिक ढंग से पढ़ाया भी था। बेहद सक्रिय और गंभीर स्वभाव के अध्यापक प्रो. थेबान उम्र में मुझसे काफी बड़े थे, लेकिन वे मुझे बहुत सम्मान देते थे। मुझे यह बताते हुए आज भी प्रसन्नता हो रही है कि तब सभी कक्षाओं (द्वितीय, तृतिय और चतुर्थ वर्ष) में बीस से अधिक छात्र थे। ये कक्षाएँ रोमानिया विश्वविद्यालय के मुख्य परिसर से कोई एक किलोमीटर दूर पीटरमॉस परिसर की एक इमारत में लगती थीं। हालाँकि विभाग के पास अपनी निर्धारित कक्षाएँ नहीं हैं। अलग-अलग समय और नियत तिथियों को विभिन्न विषयों की पढ़ाई के साथ हिंदी भी पढ़ाई जाती। कभी-कभी ये कक्ष, छात्र-छात्राओं की सौ फीसदी उपस्थिति के कारण छोटे लगने लगते। इनके लिए हिंदी सीखने के अलग-अलग कारण थे। लेकिन सबसे बड़ा कारण या आग्रह था—भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित होना। यहाँ के गौरवपूर्ण अतीत, यहाँ की मनीषा, दशहरा, दिवाली और होली जैसे उत्सव, तीर्थ-क्षेत्र, ऐतिहासिक इमारतें, व्यंजन और मिठाइयाँ (चॉकलेट भी) और साथ ही हिंदी फिल्में और इनके गाने।

भारत की गणतांत्रिक, राजनीतिक स्थिति, लगातार विकसित होती अर्थव्यवस्था तथा संपूर्ण विश्व में इसकी धर्मनिरपेक्ष और सकारात्मक भूमिका का रोमानिया के राजनीतिक और वैचारिक सोच पर तो असर है ही, लेकिन पुरातन के साथ नवीन के समन्वय को वहाँ

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

के लोग बड़ी हैरानी से देखते हैं। टेलीविजन, संचार माध्यम से जुड़े लोग और विश्वविद्यालय के कई छात्र और अध्यापक इस 'इंदी' (भारतीय) के भारत के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट करते। अंग्रेजी में बातचीत के दौरान अगर मैं रोमानियाई भाषा में कुछ कहता तो जहाँ उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता, वहाँ मेरी बातें उन्हें और भी आत्मीय एवं विश्वसनीय जान पड़तीं।

अपने रोमानिया-प्रवास के दौरान में हिंदी पढ़नेवाले ऐसे तीन विद्यार्थियों से मिलकर बेहद प्रभावित हुआ, जो हिंदी के साथ भावनात्मक तौर पर जुड़े थे। वे पाठ्यक्रम तक सीमित न रहकर जल्द ही भारत आकर किसी विश्वविद्यालय या शिक्षण संस्थान से जुड़कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद शोध कार्यादि में प्रवृत्त होना चाहते थे। वैसेली नामक गोरा-चिट्टा और छह-फुटे युवक ने बताया था कि वह यूरोपीय दोशों की प्रमुख भाषाएँ—अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन एवं स्पेनी के अध्ययन के साथ हिंदी का अध्ययन इसलिए कर रहा है, ताकि वह भविष्य में पर्यटन उद्योग संबंधी जानकारियों से अंतरराष्ट्रीय सैलानियों के लिए एक वेबसाइट तैयार कर सके। उसका मानना था कि भारत एक ऐसा देश है, जिसकी यात्रा किए बिना विश्व के पेशेवर सैलानी अपनी विश्व-यात्रा को अधूरा समझते हैं। मैं उसकी बात को याद कर आज भी रोमांचित हो उठता हूँ।

इलियान, एक पुत्री की युवा माँ, भारत को अपना बनाने के लिए निरंतर आतुर दिखती थी। कक्षा के बाहर, किसी सड़क पर साथ चलते वह हिंदी में सबकुछ जान लेना चाहती थी, जो किताबों में नहीं है। 'ठाकुर का कुआँ' पढ़ाते हुए जब मैंने ठेठ भारतीय गाँव की बात की तो उसका कहना था कि रोमानिया में भी ऐसे गाँव मिल जाएँगे। लेकिन ऊँच-नीच और छुआछूत की समस्या से वह हैरान थी और आहत भी। मेरे लिए तो यही आश्चर्य की बात थी कि वह अपनी गृहस्थी के साथ-साथ इतने युवोचित उत्साह से हिंदी सीख रही है! वह रोमानिया के राष्ट्रकवि मिहाई एमिनेस्कु और अन्य समकालीन रोमानियाई कवियों के मेरे द्वारा हिंदी अनुवादों पर भी चर्चा किया करती थी। मुझे लगता रहा कि उसकी रुचि साहित्यिक अनुवाद में है—हिंदी से रोमानियाई और रोमानियाई से हिंदी। लेकिन उसकी सहायता के लिए वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी।

तीसरा छात्र था क्रिस्टीन। लंबे बालोंवाला, आत्मस्थ और सदैव मुसकान बिखेरता शांत चेहरा! उसको यह बताते गर्व होता कि उसका पूर्वजन्म भारत में ही हुआ होगा और वह जितनी जल्द हो, भारत आएगा। श्रीकृष्ण को वह अपना आराध्य मानता। यह संयोग ही था कि वर्ष 2009 में वह आगरा स्थित केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी में एक वर्षीय डिप्लोमा कोर्स करने आया और जे.एन.यू में मुझसे दो-तीन बार मिला भी। तब पूरे आत्मविश्वास से लबालब उसने चुस्त और किताबी हिंदी में बातें कीं और बताया कि फीस वगैरह के लिए आवश्यक पैसे जुटाकर, पोस्ट डिप्लोमा का पाठ्यक्रम पूरा करने जल्द ही भारत आएगा। भारत को इतने निकट से देख-जानकर वह बहुत खुश था। पिछली बार राष्ट्रपति भवन में संस्थान के पुरस्कार-वितरण समारोह में वह मिला था, बेहद प्रसन्न और रोमांचित!

इनके साथ हिंदी विभाग की पूर्व स्नातका कार्मेन लियोकादिया का नामोल्लेख भी आवश्यक होगा, जो रोमानिया में अपने हाव-भाव और न बोलते हुए भी अपनी देहभाषा से हिंदी और हिंदुस्तानी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में व्यक्तिगत तौर पर सचेष्ट है। वह पेडागोजिकल इंस्टीट्यूट के निदेशक और भारत-प्रेमी प्राच्यविद् डॉ. जॉर्ज अंका की सचिव होने के साथ हिंदी से संबंधित लेखकों, पुस्तकों और गतिविधियों की भी पर्याप्त जानकारी रखती है। उसके कंप्यूटर में भारतीय उत्सवों, फूलों, व्यंजनों, परिधानों, नृत्यों, हिंदी फिल्मों, इनके नायक-नायिकाओं और गानों, भजनों, गजलों

ऐसी स्थिति में प्रश्न दोनों सरकारों के सम्मुख अवश्य रखा जाना चाहिए कि जिस विद्यार्थी या शोधार्थी की प्रवृत्ति एक-दूसरे देश की भाषा या भाषाओं को सीखने की है, उसकी यथासंभव आर्थिक एवं आनुषंगिक सहायता की जाए। समय का अंतराल जहाँ भाषा सीखने

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

में व्यवधान उत्पन्न करता है, वहाँ इस बात की संभावना बहुत कम रह जाती है कि विद्यार्थी दोबारा उसी भाषा से संबंधित अध्ययन या पाठ्यक्रम में दोबारा शामिल हो।

इनके साथ हिंदी विभाग की पूर्व स्नातका कार्मेन लियोकादिया का नामोल्लेख भी आवश्यक होगा, जो रोमानिया में अपने हाव-भाव और न बोलते हुए भी अपनी देहभाषा से हिंदी और हिंदुस्तानी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में व्यक्तिगत तौर पर सचेष्ट है। वह पैडागोजिकल इंस्टीट्यूट के निदेशक और भारत-प्रेमी प्राच्यविद् डॉ. जॉर्ज अंका की सचिव होने के साथ हिंदी से संबंधित लेखकों, पुस्तकों और गतिविधियों की भी पर्याप्त जानकारी रखती है। उसके कंप्यूटर में भारतीय उत्सवों, फूलों, व्यंजनों, परिधानों, नृत्यों, हिंदी फिल्मों, इनके नायक-नायिकाओं और गानों, भजनों, गजलों का अकूत भंडार सुरक्षित है। वह केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में हिंदी में डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्राप्त कर चुकी थी और दोबारा भारत आना चाहती थी। उसने कुछ कवियों की रचनाओं के अनुवाद हिंदी से रोमानियाई में किए हैं।

जर्मनी, हंगरी, इंग्लैंड के साथ रोमानिया में संस्कृत अध्ययन की लंबी परंपरा रही है और पैडागोजिकल इंस्टीट्यूट, जिसके निदेशक सुप्रसिद्ध भारतविद् और हिंदी-प्रेमी प्रो. जॉर्ज अंका हैं, वहाँ भारतीय संस्कृति और भाषा से संबंधित कई गतिविधियों के साथ संस्कृत-हिंदी-रोमानियाई शब्दकोश जैसी योजना चल रही हैं। मैं कई बार यहाँ आकर संबंधित विद्वानों से मिलता रहा। इस सवा सौ साल पुराने संस्थान ने अपने भव्य सभागार में मुझे 24 मई, 2007 को 'भारतीय भाषाओं के वर्तमान का परिदृश्य' विषय पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था। कहना न होगा, काफी बड़ी संख्या में साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी और भारत-प्रेमी इस कार्यक्रम में सम्मिलित थे।

वहाँ बेहद दुबली, सीधी-सादी और रक्तशून्यता का शिकार जैसी दिखने वाली हिंदी अध्यापिका डॉ. सबीना पोपरलान का उल्लेख भी आवश्यक है। ठहरे स्वर में नपी-तुली मुस्कान के साथ बातें करती। उसके चेहरे पर ठहरी मासूमियत से यही आशंका होती कि वह कक्षा में पढ़ाती कैसे होगी! एक तरह से हिंदी कक्षाओं में पढ़ाई का भार उसी के ऊँचे कंधों पर था। वह हिंदी की भाषिक संरचना, उसकी व्याकरणिक कोटियाँ और रोमानियाई तथा अंग्रेजी में इनकी भाषावैज्ञानिक पद्धति तथा जटिल प्रक्रियाओं को बड़ी सरलता से प्रस्तुत करती। यहाँ प्रत्येक सत्र में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए कक्षाओं में निश्चित तिथि को निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार अभ्यास-पुस्तिकाओं पर अनिवार्य रूप से अभ्यास कराया जाता। एकाधिक बार समझाने तथा ब्लैक बोर्ड पर वाक्यांशों और पदबंधों के प्रयोगों और नियत स्थान पर उनके विनियोग पक्ष को चार्ट द्वारा भी समझाया जाता। चूँकि हर भाषा की अपनी व्याकरणिक व्यवस्था और विशिष्टता होती है, इसलिए विषम भाषा-भाषी विद्यार्थी समूह या समाज को किसी भी अपरिचित भाषा के स्वभाव, उसकी संरचना या निर्मिति को समझने में परेशानी होती है। प्रो. थेबान या डॉ. सबीन का प्रयास इस दिशा में सचमुच प्रशंसनीय था। भले ही हिंदी के पर्याप्त शब्द-संभार अथवा शब्द-पर्याय से विद्यार्थी परिचित न हों, लेकिन वे भूत, वर्तमान और भविष्य काल की सुनिर्धारित कोटियों के अंतर्गत प्रदत्त वाक्यों के आलोक में स्वतंत्र वाक्यों की रचना करने में सक्षम थे। मुझे आज भी लगता है कि हमारे विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में हिंदी भाषा की व्याकरणिक एवं वैज्ञानिक संरचना पर अभी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अध्यापक यह मान लेते हैं कि हिंदी तो हमारी जेबी भाषा या टकसाली जुबान है, जब चाहेंगे निकालकर भुना लेंगे। उस दौरान भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा भारत की ओर से प्रतिनियुक्ति पर डॉ. शीलू अग्रवाल वहाँ पिछले दो वर्षों से हिंदी पढ़ा रही थीं। बाद में परिषद् ने उन्हें एक और वर्ष पढ़ाने की अनुमति दे दी थी।

सत्तर के दशक में यह देखा गया कि जो विद्यार्थी पहले संस्कृत और बांग्ला (माइनर) की कक्षाओं में दाखिला लेते थे, वे इनके बदले हिंदी में दाखिला लेने लगे। यह हिंदी के बढ़ते प्रभाव और फिल्मों का भी असर था। भारत सरकार की भाषा-नीति भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक रही है। रोमानिया जाकर मुझे पता चला कि इससे बांग्ला और रोमानियाई भाषा की अध्यापिका डॉ. अनिता बसु (1926-1992) बेहद खिन्न थीं और हिंदी का विरोध करने लगी थीं। उन्होंने कोलकाता में रोमानियाई भाषा की कुछ कविताओं के अनुवाद से अपनी साहित्य यात्रा शुरू की थी। वे वर्ष 1971 में बुखारेस्ट में एक संगोष्ठी के दौरान आई और फिर 1990 तक यहीं रहकर रोमानियाई और बांग्ला भाषा में लेखन, अध्यापन और अनुवाद कार्य किया। जो

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भी हो, पिछले 30-35 वर्षों में भारत से कई अध्यापक और भाषाविद्, जिनमें डॉ. इंदुप्रकाश पांडेय, डॉ. महावीर सरन जैन, डॉ. सूरजभान सिंह, डॉ. विद्यासागर दयाल, प्रो. इंद्रनाथ चौधरी, डॉ. शीलू अग्रवाल, डॉ. नरेंद्र व्यास आदि प्रमुख हैं, रोमानिया में अध्यापन कर चुके हैं।

यहाँ रोमानिया के सुप्रसिद्ध भारतविद् और दार्शनिक चिंतक प्रो. मिर्चिया एलियादे (1907-1986) का उल्लेख आवश्यक है, जिन्होंने अपनी युवावस्था में, कोलकाता में रहकर भारतीय दर्शन, संस्कृत और बांग्ला का अध्ययन किया था। भारतीय योग पद्धति और दार्शनिक परंपरा पर उन्होंने कई गंभीर पुस्तकें लिखीं। 'योग इंमोर्टलिटि एंड फ्रीडम','मिथ एंड रियलिटी' के अलावा वे सत्रह वृहद् खंडों में प्रकाशित 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजंस' के मुख्य संपादक भी थे। अभी तीन वर्ष पूर्व जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय समेत भारत के विभिन्न महानगरों में उसकी जन्मशती के अवसर पर कई विचार-संगोष्ठियाँ आयोजित की गई थीं। उन्होंने भारतीय आख्यानों और मिथकों पर भी विस्तार से लिखा, जो अंग्रेजी सहित बांग्ला तथा विश्व की कई भाषाओं में अनूदित हैं। यह आश्चर्य ही है कि उनकी प्रख्यात रचनाएँ अब तक हिंदी में अनूदित नहीं हुई हैं।

जहाँ तक रोमानियाई साहित्य का हिंदी में, और हिंदी से रोमानियाई अनुवाद का प्रश्न है, स्थिति निराशाजनक है। भारत के कुछ प्रतिनिधि और यशस्वी रचनाकारों तथा प्रेमचंद, मुल्कराज आनंद, आर.के. नारायण, जयंत नार्लीकर, सलमान रुशदी, फणीश्वरनाथ रेणु आदि की रचनाओं के छिट-पुट अनुवाद ही प्रकाशित हैं। प्रस्तुत लेखक ने अवश्य ही समकालीन रोमानियाई कविता का एक संकलन 'सच लेता है आकार' शीर्षक से तैयार किया था, जिसे भारत में रोमानिया के दूतावास के सहयोग से वर्ष 2002 में साहित्य अकादेमी ने प्रकाशित किया था। समकालीन रोमानियाई कवि-स्वर को समझने की दिशा में इस संकलन की भूमिका को काफी सराहा गया है।

रोमानिया जाकर मुझे यह महसूस हुआ कि पश्चिम के अन्य देशों की तरह रोमानियाई लोग भी भारत के बारे में यही धारणा रखते हैं कि यह वेद-उपनिषद्, गीता और रामायण-महाभारत से समृद्ध एक प्राचीन संस्कृतिवाला देश है। रोमानिया भले ही एक पश्चिमी देश है, लेकिन उसकी मानसिक संरचना में पूर्व के भी संस्कार हैं। इसलिए भारत के प्रति रोमानियावासियों के मन में मैंने एक विशेष लगाव लक्षित किया। दूसरी ओर रोमानियन (रोमानिया की प्रमुख भाषा) के प्रभाव और अंग्रेजी के प्रचलन से मूल रोमानी भाषा-भाषियों की संख्या कम हो गई है। इसे बोलनेवाले रोमा प्रजाति (जिप्सी) के लोग भी अपनी भाषा और संस्कृति से कटते जा रहे हैं। भारतीयों को अपना पूर्वज माननेवाले ये लोग अब भी भारत को बड़े सम्मान से देखते हैं। इसलिए रोमानी भाषा की वरिष्ठ प्राध्यापिका प्रो. देलिया ग्रेगोरे से जब मेरा परिचय हुआ तो उन्होंने मुझे अपने विभाग की कक्षाओं में आकर छात्रों को संबोधित करने का अनुरोध किया। उन कक्षाओं में छात्र और अध्यापक भारत के बारे में मेरी नई-पुरानी बातें सुनकर बेहद उल्लसित और चमत्कृत होते। प्रो. देलिया ने मुझे कई कैसेट्स और पुस्तिकाएँ भी दीं, जो रोमानी संस्थाओं द्वारा जारी की गई थीं।

वर्ष 2007 में 'रोमान कल्चरल इंस्टीट्यूट', बुखारेस्ट रोमानिया द्वारा मुझे विजिटिंग फेलोशिप दी गई थी, ताकि मैं रोमानिया के राष्ट्रकवि मिहाई एमिनेस्कु (1850,1889 ई.) के साथ अन्य प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं के बारे में सामग्री जुटा सकूँ। इस दिशा में कार्य करते हुए रोमानिया-प्रवास के दौरान मैं नियमित रूप से प्रतिदिन डायरी लिखता रहा, जो मेरे भारत लौटते ही, उसी वर्ष 2007 में 'रोमानिया में मेरी दुनिया' शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। मैंने एक पर्यटक या पेशेवर पत्रकार के नज़रिये से सर्वथा अलग, रोमानिया के आंतरिक स्वभाव, मानवीय अनुरोध के साथ भारत के बारे में वहाँ के लोगों के रवैए को उकेरने का यथासंभव प्रयास किया। चूँकि इसी वर्ष (2010 ई.) में इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ है, इसलिए मैं अपने इस प्रयास को सफल ही कहूँगा।

□

भारतीय भाषा केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
Email : dr-sha@rediffmail.Com
Email : drsaharanjit@gmail.com

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

5

फीजी में हिंदी : नए आयाम

● शरद कुमार

जब मेरा फीजी स्थित भारतीय उच्चायोग में द्वितीय सचिव (हिंदी) के पद पर चयन हुआ, उस समय मेरे मन में फीजी को लेकर अनेक सवाल उमड़ रहे थे : कैसा होगा वह देश, जिसमें आज से 131 वर्ष पूर्व भारतीयों को बंधुआ मजदूर के तौर पर ले जाया गया था? कैसी होगी उनकी संस्कृति, भाषा और वेशभूषा? ये सवाल स्वाभाविक थे। मेरा मन विमान में बैठे हुए इन्हीं उत्तरों को तलाश रहा था। 131 वर्ष पूर्व मई माह में जब 'लेओनादी दास' जहाज ने कलकत्ता छोड़ा था, तब उस पर सवार भारतीय तो इन प्रश्नों से भी अनजान थे; क्योंकि उनको तो यही बताया गया था कि उन्हें कलकत्ता से कुछ दूरी पर स्थित एक द्वीप में ले जाया जा रहा है, जहाँ काम समाप्त हो जाने के बाद उन्हें वापस उनके खेत-खलिहानों में भेज दिया जाएगा। शायद मैं सौभाग्यशाली था। मुझे पता था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। बचपन में पढ़ी कविता 'भारत से दूर एक नन्हा-सा भारत फीजी' याद आ गई।



- जन्म : उत्तर प्रदेश, परिवार शिक्षा जगत् से जुड़ा रहा। पिता अपने समय के जाने-माने शिक्षाविद्
- शिक्षा : आरंभिक शिक्षा स्नातक तक दिल्ली में, राजस्थान में जयपुर से स्नातकोत्तर। भारत के अलावा इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका के संस्थानों से भी शिक्षा ग्रहण
- पिछले 22 वर्षों से लोकसभा की संपादन तथा अनुवाद सेवा से जुड़े
- वर्ष 2007 से 2009 तक विदेश मंत्रालय में रहे
- फीजी स्थित भारतीय उच्चायोग में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृत) रह चुके हैं
- फीजी में हिंदी कंप्यूटर प्रशिक्षण पर भी हिंदी टीचर एसोसिएशन के साथ मिलकर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया
- संप्रति : लोकसभा के राजभाषा प्रभाग में संपादक के पद पर कार्यरत

'लेओनादी दास' मात्र एक जहाज नहीं था, यह एक समूची भाषाई संस्कृति को अपने में समेटे, एक नए देश की ओर जा रहा था और इसके वाहक कोई साहित्य-मनीषी नहीं थे। इसके वाहक थे भारत के खेत-खलिहानों में काम करनेवाले आम मजदूर, जिनके शब्द थे— तुदाल, पुल्लाड़ी, खेत, बिछौना, आँगन, तुलसी, कुआँ आदि। ये मजदूर उत्तर प्रदेश के अयोध्या, आजमगढ़, बहराइच, बस्ती, गोंडा, सुल्तानपुर, लखनऊ, जौनपुर, बनारस और गंगा किनारे के अन्य जिलों से थे। इनकी भाषा अवधी और भोजपुरी थी। भगवान् राम की यह प्रजा अपने साथ मुल्ला दाऊद की 'चंद्रायन', जायसी की 'पद्मावत' और तुलसी की 'रामचरितमानस' की भाषाई संस्कृति अपने साथ लेकर जा रही थी। साहित्य के नाम पर इनके पास तुलसीकृत 'रामचरितमानस' थी, जिसके भजन आज भी फीजी के खेतों, गाँवों और शहरों में रामायण-मंडलियों द्वारा बड़े ही श्रद्धाभाव से गाए जाते हैं। भगवान् राम ने एक सेतु रामेश्वरम् में बताया था और दूसरा सेतु उनकी प्रजा ने 1879 में भारत और फीजी के बीच बनाया। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह सेतु आज भी मजबूत है और भविष्य में भी रहेगा।

फीजी पहुँचने पर जब हम पहली बार टैक्सी में बैठे और जैसे ही टैक्सी चालक को पता बताया, उसने मुसकराकर कहा, 'आप भारत से हैं'? चेहरे से यह टैक्सी चालक भारतीय मूल का प्रतीत होता है। जब उत्तर 'हाँ' में दिया, तब उसने हिचकते हुए कहा, 'हमारी हिंदी आपके जैसी नहीं हैं।' मुझे उसकी हिंदी में कोई खास अंतर नहीं दिखाई पड़ा। दूसरा सुखद आश्चर्य मेरी 73 वर्षीय माँ को हुआ, जब उनसे एक फीजियन ने प्रातःकाल 'बहनी राम-राम' कह डाला। वह दौड़कर अंदर आई और आश्चर्यजनक भाव से बोली 'यह फीजियन तो हिंदी बोलता है!' यह हिंदी दिल्ली की 'गुड मॉर्निंग' हिंदी से कुछ अलग थी। लेकिन यही मेरे भारत की पहचान थी। अपने प्रवास के दौरान मैंने पाया की उत्तर भारत के अलावा दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश के रॉयलसीमा, विजयवाड़ा, गुंटूर, हैदराबाद के तेलुगु भाषी, केरल के तटवर्ती

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

इलाकों के मलायालम भाषी, तमिलनाडु के मद्रास और अन्य तटवर्ती जिलों के तमिल भाषी, पूर्व में ढाका, मुर्शिदाबाद, बर्धवान आदि जिलों के लोगों को भी बंधुआ मजदूर के तौर पर फीजी लाया गया। इन सभी के सम्मिश्रण से जो भाषा उपजी, वह 'फीजी हिंदी' कहलाई। उदारहण के लिए : तुम क्या करता, भैया कैसन। राईट हैं (यानी आप कैसे हैं, ठीक हैं)।

खेतों में काम करते-करते जो शब्द सामने आए, वे थे—अंग्रेजी का टास्क हो गया 'तास', (Cane-top) बन गया 'कुंताप' और (crowbar) को 'कुर्बाल' कहा गया। इसके साथ-साथ स्थानीय फीजी समुदाय के संपर्क में आने से कुछ नए शब्द जैसे 'यागोना' (एक प्रकार की मदिरा) भी हिंदी भाषा में जुड़ गए। कालांतर में अवधी, भोजपुरी, तेलुगु, तमिल, बँगला, फीजियन भाषा के सम्मिश्रण से उपजी भाषा 'फीजी हिंदी' कहलाई।

फीजी में हिंदी-इतिहास

फीजी में हिंदी का इतिहास फीजी में भारतीयों के आगमन की तरह ही रोचक है। सन् 1920 तक भारतीयों के लिए हिंदी की पढ़ाई-लिखाई की कोई व्यवस्था नहीं थी। 1920 में बंधुआ प्रथा की समाप्ति के बाद भारतीयों को हिंदी पढ़ाने का काम शुरू हुआ। फीजी में हिंदी के दो स्वरूप हैं—एक घर-दुकानों और रोजमर्रा में बोली जानेवाली हिंदी, जो आज भी 'फीजी हिंदी' ही है और दूसरी स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जानेवाली हिंदी, जो भारत में पढ़ाई जानेवाली मानक हिंदी है। फीजी संभवत: भारत के अलावा विश्व का एकमात्र ऐसा देश है, जिसके 1997 के संविधान में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त था। फीजी का राष्ट्रीय गीत सभा-संस्थाओं द्वारा हिंदी में गाया जाता है।

किसी भी राष्ट्र में भाषा का विकास पुस्तकों से नहीं, बल्कि उसके स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली भाषा से जाना जाता है। 1927 में मास्टर अमीचंद के फीजी-आगमन से फीजी में हिंदी के पठन-पाठन को गति मिली। मास्टर अमीचंद ने हिंदी में पोथी तैयार की, जिसे उन्होंने गाँव-गाँव घूमकर कुली कॉलोनी में बाँटा और मजदूरों के बच्चों को हिंदी पढ़ाने का बीड़ा उठाया। आज फीजी में हिंदी का जो स्थान है, उसमें मास्टर अमीचंद के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। फीजी में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जिसने मास्टर अमीचंद की पोथी से हिंदी न सीखी हो। सन् 1926और 1969 के शिक्षा अध्यादेशों के माध्यम से हिंदी की विधिवत् पढ़ाई आरंभ हुई।

शिक्षा क्षेत्र के साथ-साथ सामाजिक स्तर पर भी हिंदी का उत्तरोत्तर विकास हुआ। त्योहारों, मेलों, शादी-ब्याह आदि के अवसरों पर गाए जानेवाले गीतों ने भी हिंदी के विकास में योगदान दिया। जरा एक बानगी देखिए :

अब आए हैं श्रीमान स्वागत हम करते हैं
जथा जोग जो होए सभी को ऐसे भाई
राम-राम के साथ कहो अपनी कुशलाई
धन्यवाद होत तुम सबको, दर्शन दे दीन्हे
आन स्वागत हम करते, रखो परस्पर मेल
फूट को दूर भगाई मन-मंदिर के बीच दया के
दीप जलाई ईर्ष्या-द्वेष को सभी त्यागो तब पाओगे सम्मान

राम-राम कहो भाई सुजन राम-राम कहो भाई
राम-राम कहो सोवत-जागत राम कहो जमुआई
राम-राम गोहरावे सुजन जन
जो चाहे सो पावे

विवाह गीत

बाबा हमारे एक पेड़वा बोवायो
एक बसुईया एक बास,
मैया के कोखिया से दुई जीव जनमे
एक बहेन एक भाई
भईया के दिया अन्धन सोनवा
हमको दियो परदेश

इन्हीं गीतों ने, कविताओं ने हिंदी को फीजी में मजबूती प्रदान की। इनकी के गीत तो आज पूरे फीजी में गाये जाते हैं। फीजी में

कवियों की एक पूरी पीढ़ी है, जिसमें पंडित कमला प्रसाद मिश्र, पंडित नंद किशोर, स्व. प्रताप चंद्र शर्मा, राम समुझ प्रसाद, बाबू हरनाम सिंह, ए.ए. शमीन, राम शंकर चंद्रदेव और आज के समय में अमरजीत कँवल, जो फीजी के मशहूर लेखक जोगिंदर सिंह कँवल की पत्नी और फीजी की एक महान् कवयित्री हैं।

फीजी में हिंदी : चुनौतियाँ और संभावनाएँ

फीजी विश्व में उन गिने-चुने देशों में है जहाँ हिंदी की शिक्षा की समुचित व्यवस्था है। फीजी में हिंदी आज फॉर्म V यानी 10वीं कक्षा तक एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। फीजी में हिंदी अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए 'फीजी कॉलेज ऑफ एजुकेशन' और 'लौतोका टीचर ट्रेनिंग कॉलेज' में पूर्ण व्यवस्था है।

विश्वविद्यालय स्तर पर 'यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक' और 'यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी' में हिंदी विभाग हैं, जहाँ डिप्लोमा स्तर तक हिंदी पढ़ाई जाती है। यूनिवर्सिटी ऑफ फीजी में एम.बी.बी.एस., इंजीनियरिंग, विधि आदि सभी पाठ्यक्रमों में हिंदी को एक विषय के तौर पर पढ़ाया जाता है। हाल ही में स्थापित 'फीजी नेशनल यूनिवर्सिटी' में भी हिंदी विभाग खोला गया है और वहाँ भी स्नातक स्तर तक हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था की जा रही है।

फीजी में कई रेडियो स्टेशन हैं, जो 24 घंटे हिंदी में अपने कार्यक्रम देते हैं जिनमें रेडियो सरगम, रेडियो बुला नमस्ते, रेडियो मिरची, रेडियो फीजी प्रमुख हैं। रेडियो सरगम की उद्घोषिका नूरजहाँजी की आवाज हमें तबस्सुमजी की याद दिलाती है। 'फीजी टेलीविजन' भी हिंदी में 'झरोखा' नाम से एक नियमित कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

फीजी में माता-पिता अपने बच्चों को हिंदी इसलिए नहीं पढ़ाते कि इसमें रोजगार की संभावनाएँ हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी संस्कृति सुरक्षित रहे। लेकिन आज फीजी की युवा पीढ़ी में यह सवाल उठने लग गया है कि हिंदी को लेकर उनका भविष्य क्या है? फीजी में रोजगार के सीमित अवसर और भविष्य में अवसरों की कमी उन्हें यह सोचने पर मजबूर कर देती है। इसी कारण आज फीजी का युवा हिंदी बोलने तक ही अपने को सीमित करता जा रहा है और हिंदी बोलचाल की हिंदी तक सिकुड़ती जा रही है। ये कुछ चुनौतियाँ हैं, जिनसे फीजी के समाज, शिक्षा जगत् और सरकार को निबटना है। एक और चुनौती, जो फीजी में हिंदी को लेकर आ रही है, वह है कि क्षेत्रीय स्तर पर कुछ लोग इस बात का प्रचार करने लग गए हैं कि फीजी हिंदी भारत में बोली जानेवाली हिंदी से भिन्न है, यह प्रशांत क्षेत्र की एक क्षेत्रीय भाषा है और इसका भारत से कोई लेना-देना नहीं है। यह चिंता का विषय है और इस पर विचार करने की जरूरत है। वास्तव में फीजी हिंदी-अवधी सहित हिंदी की बोलियों और अन्य भारतीय भाषाओं का रूप है। लेकिन हमारे कुछ मनीषियों द्वारा 'फीजी हिंदी' के गलत हिंदी बताकर फीजी भारतीयों में विश्वास की कमी पैदा कर दी है, जिसे दूर किया जाना आवश्यक है। फीजी में हिंदी की वह पुरातन धरोहर, जो तुलसी की हिंदी है, आज भी सुरक्षित है। जरूरत है इसे पुष्पित और पल्लवित करने की। कहीं ऐसा न हो कि भारत में हम जो आज भाषा के क्षेत्र में खो चुके हैं और जो आज भी फीजी में सुरक्षित है, वह कहीं विलुप्त हो जाए!

फीजी पहुँचने पर जब हम पहली बार टैक्सी में बैठे और जैसे ही टैक्सी चालक को पता बताया, उसने मुसकराकर कहा, 'आप भारत से हैं'? चेहरे से यह टैक्सी चालक भारतीय मूल का प्रतीत होता है। जब उत्तर 'हाँ' में दिया, तब उसने हिचकते हुए कहा, 'हमारी हिंदी आपके जैसी नहीं हैं।' मुझे उसकी हिंदी में कोई खास अंतर नहीं दिखाई पड़ा। दूसरा सुखद आश्चर्य मेरी 73 वर्षीय माँ को हुआ, जब उनसे एक फीजियन ने प्रातःकाल 'बहनी राम-राम' कह डाला। वह दौड़कर अंदर आई और आश्चर्यजनक भाव से बोली 'यह फीजियन तो हिंदी बोलता है!'

C-275, Surajmal Vihar
Delhi-110092

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

6

सूरीनाम में हिंदी : वर्तमान स्थिति

● भावना सक्सेना

आज से लगभग सोलह माह पूर्व मेरे सूरीनाम आगमन के कुछ समय बाद सूरीनाम हिंदी परिषद् में एक स्वागत-समारोह का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम का आरंभ पारंपरिक तरीके से दीप प्रज्वलन के पश्चात् रामायण-चौपाइयों के वाचन से हुआ। 'रामायण समाज' की ही अगली समवेत प्रस्तुति पर मेरे नेत्र सजल हो उठे, यह वाचन था—

बिन विद्या भारत देश आज तेरी हुई ख्वारी।

बिन विद्या भारत देश

कभी विदेशी हमें कहे थे अपना ही मेहमान,

हमारी थी रिश्तेदारी,

बिन विद्या भारत देश...



- दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी और हिंदी में स्नातकोत्तर व अनुवाद प्रशिक्षण में स्वर्ण पदक
- समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख व कविताएँ प्रकाशित
- कविता संग्रह 'एक बाग के फूल' का संपादन
- प्रवासी साहित्य पर कार्य
- संप्रति सूरीनाम स्थित भारतीय राजदूतावास में अताशे (हिंदी और संस्कृति)।

भारत की स्वतंत्रता-पूर्व लिखे जिस गीत को मेरे बाबा ने बचपन में कंठस्थ कराया था और जो समय की परतों में धुँधला उठा था, जिसे भारत में शायद ही आज कोई गाता होगा, लगभग तीस वर्ष के बाद अकस्मात् उसका वाचन सुन इस देश से एक आत्मिक रिश्ता जुड़ गया। उसके बाद अनेक ऐसे अवसर आए, जब बार-बार यही अनुभूति हुई कि यह कोई दूसरा देश नहीं, भारत का ही एक टुकड़ा है, जिसे ज्यों-का-त्यों उठाकर इस सुदूर भूमि पर रख दिया गया है। इसकी आत्मा में भारत है, किंतु जिस प्रकार जड़ से उखाड़कर विस्थापित कर दिए जाने पर नए परिवेश से तादात्म्य स्थापित करते हुए पौधे की विकास गति मंथर पड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार यह समाज-आत्मा से भारत का होते हुए भी कुछ मायनों में भारत से पीछे रह गया है।

भारत से सोलह हजार किलोमीटर दूर दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में स्थित इस देश के अनछुए प्राकृतिक वैभव से सजी-सँवरी, सुवासित धरती पर प्रथम पदार्पण और कई ऐतिहासिक करवटों के बाद आज के जातीय सम्मिश्र में भी हिंदुस्तानी वर्ग अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। बहिनजी, भाईजी, श्रीमतीजी, श्रीमानजी आदि स्नेहासिक्त संबोधन सहज ही सुनाई देते हैं। रोटी, कढ़ी, दाल, फुलौरी, गुझिया, बाड़ा (वड़ा), समोसा, लड्डू दैनिक जीवन का हिस्सा हैं। 5 जून, 2010 को सूरीनाम में हिंदुस्तानियों के पदार्पण के 137 वर्ष पूरे हुए। इसी दिन 1873 में पहली बार 'लालरुख' जहाज से और कालांतर में चौंसठ अन्य जहाजों से उतरे 34,304 हिंदुस्तानियों की दूसरी, तीसरी और चौथी पीढ़ी आज भी 5 जून को 'आप्रवासी दिवस' के रूप में मनाती है। लगभग 5 लाख जनसंख्यावाले इस देश में मुख्यत: सात जातियों के लोग—अमर इंडियन, डच अथवा यूरोपियन, अफ्रीकी, चीनी, हिंदुस्तानी, इंडोनेशियन और लेबनीज बसे हुए हैं और डच, स्त्रनॉग टोंगो, हिंदी, इंडोनेशियन, चीनी तथा बुश नीग्रो जनजातीय भाषाएँ व अमर इंडियन भाषाएँ बोली जाती हैं। सूरीनाम के सांख्यिकी विभाग के अनुसार, सरनामी रूप में बोली जानेवाली हिंदी यहाँ की तीसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है। पहले स्थान पर डच व दूसरे स्थान पर स्त्रनॉग टोंगो है। इस लेख में ऐतिहासिक व भौगोलिक तथ्यों पर अधिक विमर्श नहीं करूँगी। गिरमिटियों के संघर्षमय जीवन की दास्ताँ

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

सर्वविदित है। यहाँ मैं संक्षेप में सूरीनाम में हिंदी की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालना चाहूँगी।

सूरीनाम में हिंदी : वर्तमान स्वरूप

आज सूरीनाम में हिंदी की स्थिति सुदृढ़ है। वर्ष 1873 से 1928तक सूरीनाम में सरकारी विद्यालयों, जिन्हें 'कुली स्कूल' कहा जाता था, में हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था थी। 1929 से सरकारी विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण बंद कर दिया गया और तब हिंदी-शिक्षण का बीड़ा उठाया धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं व स्वाध्याय मंडलों ने। आज हिंदी की सुदृढ़ स्थिति का श्रेय इन्हीं संस्थाओं को जाता है। मंदिरों में हिंदी कक्षाएँ लगाई जाती हैं और धार्मिक ग्रंथों की शिक्षा भी दी जाती है। यहाँ आर्य समाज व सनातन धर्म दोनों के ही अनुयायी काफी संख्या में हैं। वहाई मत के प्रचारक भी हैं। कुल मिलाकर लगभग 134 मंदिर व धार्मिक केंद्र/सभाएँ हैं। इन मंदिरों में प्रार्थना के अतिरिक्त हिंदी भाषा व धर्म संबंधी शिक्षा दी जाती है। हिंदी सेवा का कार्य स्वेच्छा से किया जाता है।

सन् 1977 में यहाँ 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' की स्थापना की गई, जिसे सूरीनाम सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' अखिल सूरीनाम में प्रतिवर्ष हिंदी की परीक्षाएँ आयोजित करती है। ये परीक्षाएँ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-भारत द्वारा निर्धारित पाठ्क्रम के अनुसार ली जाती हैं। यहाँ प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, प्रवेश, परिचय, कोविद, रत्न की परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। परिचय परीक्षा का स्तर हाई-स्कूल, कोविद का इंटरमीडियट तथा रत्न का स्तर स्नातक के समकक्ष है। सिर्फ रत्न परीक्षा के प्रश्नपत्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-भारत से तैयार होकर

आरंभ में हिंदी सीखने-सिखाने का स्रोत थी—नाथूराम की पहली से चौथी की पुस्तक। वर्ष 1960 में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की ओर से बाबू महातम सिंह यहाँ आए। सूरीनाम आने से पहले वे गयाना में हिंदी-शिक्षण कर रहे थे। सूरीनाम में मानक हिंदी-शिक्षण का पूरा श्रेय बाबू महातम सिंह को जाता है। उनके प्रयास से यहाँ विधिवत् रूप से हिंदी-शिक्षण आरंभ हुआ और एक नई ऊर्जा का संचार हुआ। आज तक जो स्थानीय हिंदी अध्यापक पढ़ा रहे हैं, वह बाबू महातमजी से पढ़े हुए हैं और सदैव उनके प्रति आदर से नत रहते हैं। वर्तमान आकलन के अनुसार यहाँ लगभग पचास हिंदी अध्यापक निस्स्वार्थ भाव से सतत हिंदी-अध्यापन कर रहे हैं और अन्य लोगों को इसके लिए प्रेरित कर रहे हैं।

सन् 1977 में यहाँ 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' की स्थापना की गई, जिसे सूरीनाम सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। 'सूरीनाम हिंदी परिषद्' अखिल सूरीनाम में प्रतिवर्ष हिंदी की परीक्षाएँ आयोजित करती है। ये परीक्षाएँ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-भारत द्वारा निर्धारित पाठ्क्रम के अनुसार ली जाती हैं। यहाँ प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, प्रवेश, परिचय, कोविद, रत्न की परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। परिचय परीक्षा का स्तर हाई-स्कूल, कोविद का इंटरमीडियट तथा रत्न का स्तर स्नातक के समकक्ष है। सिर्फ रत्न परीक्षा के प्रश्नपत्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा-भारत से तैयार होकर आते हैं व उनकी जाँच भी वहीं पर होती है। जनवरी 2010 में आयोजित परीक्षा में लगभग 600 छात्रों ने भाग लिया।

कोविद पाठ्यक्रम में जयशंकर प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी, संक्षिप्त गबन तथा राष्ट्रभाषा रत्न में दिनकर की रश्मिरथी, जयशंकर प्रसाद की अजातशत्रु, भगवती चरण वर्मा कृत चित्रलेखा, आधुनिक काव्य-संग्रह, हिंदी-साहित्य का इतिहास, राष्ट्रभाषा और लिपि, हिंदी भाषा सिद्धांत और अध्ययन आदि शामिल हैं। कठिन पाठ्यक्रम के रहते भी छात्रों की रुचि बने रहना दर्शाता है कि यहाँ के लोग हिंदी के गहन पठन-पाठन में भी रुचि रखते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य से भी जुड़े हुए हैं और कंप्यूटर पर हिंदी प्रयोग के लिए रुचि दर्शा रहे हैं।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हिंदी-शिक्षण में आधुनिक भाषा-शिक्षण तकनीक को सम्मिलित करने के लिए और इसे रुचिकर बनाने के लिए, भारत के राजदूतावास ने दो वर्ष पूर्व स्थानीय विद्वानों की सहायता से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं। ये पुस्तकें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) पर आधारित हैं, जिनमें शिक्षकों को बताया गया है कि भाषा कैसे पढ़ाई जाए! अभी तक प्रारंभिक तीन स्तरों की पुस्तकें तैयार की गई हैं, जिन्हें अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। भारत के राजदूतावास द्वारा विश्व हिंदी दिवस और अन्य अवसरों पर स्थानीय हिंदी-प्रेमियों, हिंदी अध्यापकों एवं छात्रों को सम्मिलित करके किए जानेवाले कार्यक्रमों से भी हिंदी के प्रति लोगों का उत्साह काफी बढ़ा है। प्रत्येक वर्ष भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान की ओर से पात्र व्यक्तियों को दो छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं और उन्हें आठ माह भारत रहकर हिंदी का उच्चतर अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया जाता है। अब तक यहाँ के काफी छात्र केंद्रीय हिंदी संस्थान से हिंदी-शिक्षा ग्रहण कर वापस आ चुके हैं और उस अध्ययन का लाभ उठाकर अपने देश में हिंदी-शिक्षण व प्रचार-प्रसार कर रहे हैं और निरंतर साहित्य-रचना भी कर रहे हैं।

" हिंदी को लोकप्रिय बनाने में जनसंचार माध्यमों का भी अत्यधिक योगदान है। पहले रेडियो और अब रेडियो के साथ-साथ टेलीविजन। यहाँ ऐसे कई चैनल हैं, जो दिन भर हिंदी के गाने और फिल्में दिखाते हैं। विभिन्न चैनलों में नवीनतम फिल्मों को दिखाने की होड़ रहती है। यहाँ के बहुत से लोग हिंदी गाने बहुत अच्छी तरह गाते हैं। लोकगीतों को भी मौखिक विरासत के रूप में सौंपा जाता रहा है। लोकगीत भारतीय प्रवासियों द्वारा लाई गई मौखिक परंपरा का एक हिस्सा थे। जैस-जैसे सामाजिक चेतना जाग्रत हुई, गाने की टोलियाँ बनने लगीं। ये संगठित समूह अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोए रहे। आज भी यहाँ अनेक रामायण समाज और भजन-मंडलियाँ हैं, जो विशेष अवसरों पर एकत्र होती हैं।

हिंदी फिल्में देखकर भी काफी लोग हिंदी सीखते हैं। कुछ समय पहले घर पर बिजली ठीक करने आए एक कामगार का शुद्ध उच्चारण सुनकर जब मैंने पूछा कि उसने हिंदी कहाँ से सीखी, तो उसका उत्तर था—फिल्मों से। यहाँ बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जो बहुत शुद्ध हिंदी बोलते हैं, किंतु उन्हें लिपि-ज्ञान बिलकुल नहीं है। लिपि-ज्ञान की दिशा में अधिक कार्य अपेक्षित है।

सूरीनाम में हिंदी ज्ञान आज प्रतिष्ठा का प्रतीक है। यहाँ आपस में हिंदी/सरनामी बोलने में किसी प्रकार का कोई संकोच अनुभव नहीं किया जाता। इतना सबकुछ होने के बाद भी हिंदी-शिक्षण में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसका मुख्य कारण है यहाँ की बहुभाषिक स्थिति। सात-आठ वर्ष का होते-होते यहाँ का हर बच्चा कम-से-कम चार-पाँच भाषाओं के संपर्क में आता है। राजभाषा व संपूर्ण शिक्षा प्रणाली डच में होने के कारण घर पर डच का वर्चस्व रहता है और यहाँ इसके प्रति वही मानसिकता है, जो भारत में अंग्रेजी के प्रति है कि डच-ज्ञान के बिना अच्छी नौकरी मिलना संभव नहीं है। इस वर्ग का मानना है कि हिंदी पढ़ने से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। इसके अतिरिक्त अनेक छात्रों की एक समस्या और भी है। स्कूल व कॉलेज की पढ़ाई के साथ हिंदी कक्षाओं में उपस्थित होना उन्हें कठिन लगता है, और वे पहले या दूसरे स्तर के बाद कक्षा में आना बंद कर देते हैं। हिंदी पढ़ने से यहाँ के लोगों को कोई व्यावसायिक या आर्थिक लाभ नहीं होता, बस उन्हें आत्म-संतुष्टि मिलती है। इन सब बातों के रहते भी सूरीनाम में हिंदी छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि न सिर्फ हर्ष का विषय है, अपितु वह यह भी दर्शाती है कि भाषा व संस्कृति-प्रेम के समक्ष सभी समस्याएँ गौण हो जाती हैं। आज सूरीनाम का हर हिंदुस्तानी हिंदी को अपनी अस्मिता का प्रतीक मानता है।

हाल ही में सूरीनाम में आम चुनाव हुए। यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि हिंदुस्तानी पार्टी ने अपने चुनाव-प्रचार में हिंदी का व्यापक प्रयोग किया। यह हिंदुस्तानी-वर्ग के दिल तक पहुँचने का प्रयास था। परिणाम चाहे जो भी रहे, इससे स्पष्ट होता है कि हर हिंदुस्तानी का हृदय अपनी मातृभाषा हिंदी-प्रेम से ओत-प्रोत है।

हिंदी के विकास में एक अड़चन हिंदी की राजनीति है। किंतु यहाँ की आम जनता यह समझती है और हिंदी के प्रति सच्चे

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

सेवाभाव से समर्पित व्यक्तियों की संख्या राजनीति करनेवालों से अधिक है, इसी कारण आज भी हिंदी यहाँ तीसरे स्थान पर बनी हुई है। यहाँ मैं विशेष रूप से पंडित हरिदेव सहतू का उल्लेख करना चाहूँगी, जो सूरीनाम में हिंदी भाषा के एक ठोस स्तंभ हैं। उनके अथक प्रयास हिंदी-सेवियों को जोड़े रखते हैं और उन्हें निरंतर दिशा प्रदान करते रहे हैं।

सूरीनाम में हिंदी-साहित्य

सूरीनाम में हिंदी-साहित्य की रचना कब से प्रारंभ हुई, यह निश्चित रूप से कह पाना कठिन है। सन् 1873 में जब भारतीय श्रमिकों को यहाँ लाया गया तो उनके पास लिखने-पढ़ने की सुविधा नहीं थी। दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात् वे संध्या को आपस में बैठते व किस्से-कहानियाँ कहते, गीत गाते, बच्चों को लोरियाँ सुनाते तथा महाभारत, रामायण, पंचतंत्र, हितोपदेश, बीरबल-बादशाह की कहानियाँ सुनाते, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद और महात्मा [illegible] पर चर्चा करते। इस तरह मौखिक साहित्य जीवित रहा।

धीरे-धीरे उनके अपने अनुभव, दिन भर की कठिनाइयाँ और जीवन का दर्द शब्दों में उभरकर आने लगा। और जैसे विलयम वड्र्सवर्थ ने कहा है कि काव्य हृदय की तीव्रतम अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है, तो अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होने लगीं और काव्य-रचना आरंभ हुई। किंतु यह मौखिक था। दिन भर के श्रांत-क्लांत श्रमिक अपने अनुभवों को पद्य (दोहा, चौपाई, गीत, भजन इत्यादि) में प्रकट करते। कुछ लोगों ने लिखना भी आरंभ किया, लेकिन अधिकांश उत्पीड़ित वर्ग के पास कोई साधन नहीं था। आज पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव (बग्गा), श्री मंगल प्रसाद, मुंशी रहमान खान, बाबू चंद्रमोहन रणजीत सिंह, महादेव खुखुन की आरंभ की गई परंपरा का भली प्रकार निर्वहन हो रहा है।

यहाँ के प्रमुख कवि और लेखक हैं—पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव (बग्गा), श्री मंगल प्रसाद, मुंशी रहमान खान, बाबू चंद्रमोहन रणजीत सिंह, महादेव खुखुन, अमर सिंह रमण, डॉ. जीत नराइन, सुरजन परोही, पं. हरिदेव सहतू, रामनारायण झाव, रामदेव रघुवीर, जनसुरजनाराइन सिंह सुभाग, प्रेमानंद भोंदू। लेखन से जुड़े अन्य लोग हैं—सुशीला बलदेव मल्हू, संध्या भग्गू, तेजप्रसाद खेदू, सुशील सुक्खू, देवानंद शिवराज, धीरज कंधई, रामदेव महाबीर। सूरीनाम के कुछ लेखक हॉलैंड जा बसे हैं। किंतु उन्होंने भी हिंदी/सरनामी साहित्य को काफी समृद्ध किया है। ये हैं—पंडित सूर्यप्रकाश बीरे, रबीन सतनाराइनसिंह, बलदेवसिंह, राजमोहन, सुश्री चाँदनी, चित्रा गयादीन, मार्तिन हरिदत्त लछमन, श्रीनिवासी, राज रामदास।

साथ ही नए साहित्यकारों की लंबी सूची है, जैसे—अमित अयोध्या, वीना अयोध्या, विकास समोधी, डॉ. कारमेन जगलाल, कृष्णा कुमारी भिखारी, संध्या लल्कू, तारावती बद्री, लीलावती कल्लू, सुमित्रादेवी बलदेव। ये सभी नए कवि और लेखक मुख्यत: मानक हिंदी में ही लिखते हैं। इनकी रचनाएँ 'शब्द-शक्ति' नामक पत्रिका में छपती रहती हैं। समय-समय पर यहाँ कई हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रही हैं, जैसे आर्य दिवाकर की 'धर्म-प्रकाश' और 'वैदिक संदेश', बाबू महातमजी के निर्देशन में 'शांतिदूत', सूरीनाम हिंदी परिषद् की 'सूरीनाम दर्पण' और 'हिंदीनामा' तथा सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था की 'शब्दशक्ति'। किंतु साधनों के अभाव में इनका सतत प्रकाशन नहीं हो पाता है। हाल ही में सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'एक बाग के फूल' का विमोचन हुआ। यह सूरीनाम के वरिष्ठ और नवोदित 27 कवियों की कविताओं का संग्रह है और यह पहला अवसर है कि यहाँ इस तरह का संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें सरनामी व खड़ी बोली हिंदी में लिखी देशप्रेम व आम जन-जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू पर लिखी कविताएँ हैं, जो देवनागरी व रोमन दोनों लिपियों में हैं।

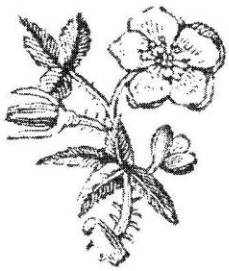
सूरीनाम के हिंदी लेखकों की रचनाएँ संभवत: शिल्प की दृष्टि से विद्वानों को आकर्षित न करें, उनमें भाषागत अशुद्धियाँ भी मिलें, किंतु भारत से दूर इन प्रवासी भारतीयों के सुख-दु:ख की सहज भावाभिव्यक्ति इनमें अवश्य मिलेगी। सूरीनाम के सभी साहित्यकार हिंदी में लिखकर अपने को भारत से जुड़ा पाते हैं। इनकी कविताओं

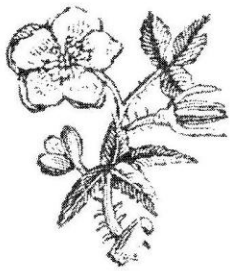
में संस्कृति और उससे जुड़ाव की झलक है, भाषा-प्रेम की अभिव्यक्ति है, हिंदी सीखने की प्रेरणा है, समस्त जीवन की अनुभूतियों के बहुआयामी चित्र हैं, अतीत की वेदना है और साथ में है धार्मिक आस्था, भक्ति और लोकजीवन का संगीत।

सूरीनाम का हिंदुस्तानी समाज आरंभ से अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति सजग रहा और विषम परिस्थितियों के बावजूद उसने अपनी भाषा की ज्योति को जलाए रखा। अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए वह अपनी भाषा का प्रयोग करना चाहता है। इन सभी तथ्यों को देखते हुए लगता है कि हिंदी के अधिक प्रचार-प्रसार के लिए ईमानदार प्रयास और सृजनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यहाँ के हिंदुस्तानी मूल के नेताओं और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को सरकारी स्कूलों में हिंदी-शिक्षण को स्थान दिलाने का सच्चा प्रयास करना होगा। और इन प्रयासों के साथ यदि भारत सरकार के योगदान का सही व सार्थक उपयोग किया जाए तो निश्चय ही हिंदी-भाषियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी; क्योंकि आम हिंदुस्तानी का मानना है—''जे हम ना बतियइए अपन भासा तो लड़कन के का बतइए, कौन भासा आज बोली उ ना जानि?'' (यदि हम अपनी भाषा में बात नहीं करेंगे तो बच्चों को क्या बताएँगे कि उनके दादा, परदादा कौन सी भाषा बोलते थे?)

□

Attache (Hindi, Culture & Administration),
Embassy of India, Paramaribo, Suriname
Email: bhawnasaxena@gmail.com





भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करने वाले राजनीतिज्ञ आते हैं, चले जाते हैं। ये राजनीतिज्ञ आज हैं, कल नहीं रहेंगे; किंतु भारतीय संस्कृति की प्रतीक 'हिंदी' सदा अमर रहेगी।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

7 दक्षिण अफ्रीका में हिंदी का अनोखा सफर

● चंपा विशष्ठमुनी

उन्नीसवीं सदी के इतिहास में दक्षिण अफ्रीका के नाम के साथ-साथ गिरमिटिया शब्द ऐसा जुड़ गया है, जैसे लोहे पर चुंबक! इन गिरमिटियों की कहानी कभी तीखी, कभी मनमोहक तो कभी शोकाकुल भावनाओं से परिपूर्ण थी। यह बात सर्वविदित है कि यद्यपि उनका जीवन घटनापूर्ण था, इन मजदूरों ने अपने अस्तित्व को किसी भी हालत में खोया नहीं। भारत माता के गर्भ से जनमे ये बच्चे सरहद पार कर दक्षिण अफ्रीका में विपन्नता के दलदल में डूबते हुए भी अपनी माँ के साथ संबंध हमेशा बरकरार रखे रहे। जैसे डूबता आदमी तिनके का सहारा लेता है, उसी तरह ये मजदूर अपने रीति-रिवाज एवं संस्कृति के सहारे दिन गुजारते थे।



- जन्म 02 जून, 1956
- शिक्षा :
- एडवान्स हिंदी डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2008
- हिंदी डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006
- शिक्षण पद्धति, हिंदी शिक्षा संघ, 1995
- संस्कृत तृतीया, हिंदी शिक्षा संघ, 1999
- संभाषण, हिंदी शिक्षा संघ, 1997
- 1993 से अब तक क्वाजुलू-नताल डिपार्ट्मेंट ऑफ एजुकेशन में हिंदी शिक्षक
- 1995 से 2005 तक हिंदी शिक्षा संघ में व्याख्याता
- पीटरमेरित्जबर्ग स्थित जागृति हिंदी स्कूल की संस्थापिका

कष्टों के महासागर से मुक्ति प्राप्त करने के लिए वे एक-दूसरे को सहारा देते थे। हिंदू, मुसलमान, तमिल और कभी-कभी देश के आदिवासी भी एक-दूसरे को सांत्वना देते-देते भाई बन गए। अपनी भाषाओं की लेन-देन से वे आपस में बातचीत करने लगे। हिंदी तो अपने सौंदर्य एवं सादगी के कारण इन श्रमिकों की आपसी भाषा बन गई। सच तो यह है कि हिंदी एक नाल का स्वरूप धारण कर इन श्रमिकों का अपनी माँ (भारत) से संपर्क बनाए रखने में सक्षम रही। तनाव के अंधकार में भटकते हुए भी इन अभागे इंसानों ने उस पोषण करनेवाले 'नाल' को कभी कमजोर नहीं होने दिया।

आरंभ में अपभ्रंश हिंदी बोली जाती थी। हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाएँ, जैसे अंग्रेजी, जूलू, तमिल, उर्दू एवं अफ्रीकांज के शब्दों का मिश्रण होने लगा। इन सब भाषाओं के मिश्रण में हिंदी सबसे प्रबल थी। हिंदी सबके मुँह की जबान बन गई थी, यहाँ तक कि अत्याचारी भी आसानी से लफ्जों को अपनी जबान पर लाने लगे। सभा शिविरों में, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में, रेलवे स्टेशनों में और सार्वजनिक स्थानों में हिंदी का सही स्वरूप जबान पर मौजूद था। हिंदी के इस नए स्वरूप को 'नटाली हिंदी' कहा गया। निम्नलिखित कुछ शब्द प्रस्तुत हैं, जो दैनिक प्रयोग में आते थे—

अफ्रीकान्ज भाषा से : 'पसोप' शब्द अर्थात् 'सावधान', 'बसोप' बन गया था—'बसोप रहना नहीं तो कुत्ता काट लैं' अर्थात् 'सावधान रहना, नहीं तो कुत्ता काट लेगा'।

जूलू भाषा से : 'ड़ागा'—अर्थ—'कीचड़' —''ओकर गोड़ में ड़ागा लगल है'' अर्थ—'उसके पैर पर कीचड़ लगा है।'

अंग्रेजी भाषा से : नेक्लीस—(गले का हार), 'टेबल' (मेज), 'कीचन'—(रसोईघर), 'प्लेट'—(थाली), 'हमबर'—(हथौड़ा) इत्यादि शब्दों का इस्तेमाल हुआ।

उपर्युक्त शब्दों के आदान-प्रदान से 'नटाली हिंदी' का उद्भव हुआ। 'नटाली हिंदी' अपभ्रंश तो जरूर थी, परंतु मजदूरों को दिलासा देने का यही एकमात्र साधन बन गई। यही उनकी आत्मा की आवाज थी। अपने रीति-रिवाज के संपर्क में रहने की यही उनकी आशा थी। दुनिया के सभी रत्नों से अनमोल हिंदी उनकी अपनी अमानत थी, जिसको वे भारत से लाए थे।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

आशा

हिंदी हमारी मातृभाषा

माँ की जुबान से निकली भाषा

माँ की गोद में सीखी भाषा

माँ की शिक्षा उपदेश की भाषा

माँ की आज्ञा पालन की भाषा

माँ की डाँट-डपट की भाषा

माँ की मधुर लोरी की भाषा

माँ के लाड़-प्यार की भाषा

माँ की चिंतित पुकार की भाषा

पुनर्जागरण की एकमात्र आशा

यही हमारी हिंदी भाषा

अपने जीवन को प्रफुल्लित रखने के लिए श्रमिक यही आशा की सौगात भारत से लाए थे। इतना ही नहीं, गर्व-मिश्रित खुशियों के साथ वे अपनी भाषा का लालन-पालन करते हुए उसे जीवित रखा।

समय का पहिया चलता रहा। मजदूरों में अपनी जिंदगियों को सुधारने का कौतूहल सदा बना रहा। समय की गति से दक्षिण अफ्रीका व्यापार का एक अच्छा केंद्र बना। मजदूर तो आर्थिक समस्याओं और संघर्षों से अभी तक जूझ रहे थे, कई हजार मीलों दूर भारत के बंबई शहर से कुछ व्यापारी और सौदागर आकर्षित होकर अपना भाग्य आजमाने के लिए दक्षिण अफ्रीका आने की तैयारियाँ कर रहे थे। हिंदी की दृष्टि से इन लोगों का आविर्भाव एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना साबित हुआ।

1870 से ये महाजन परिवार-सहित दक्षिण अफ्रीका की मिट्टी पर अपने पद रखने लगे। क्षितिज पर बदलाव की घड़ी नजर आने लगी। अपने व्यापार स्थापित करने के लिए वे नाटल प्रांत के शहर-शहर में बसने लगे। दक्षिणी तरीका पर उन्होंने टोंगाट (Tongaat), वेरूलम (Verulam), माउंट एडजकोंब (Mount Edgecombe), स्टेंगर (Stanger) आदि शहरों में अपना व्यवसाय स्थापित किया। मध्य प्रांत में रिछमन (Richmond), पिटरमेरिट्सबर्ग (Pietermaritz Burg), लाईंज रिवर (Lions River) और एस्टकोर्ट (Estcourt) जैसे शहरों में उन्होंने बसेरा लगाया। उत्तर प्रांत में लैडिस्मिथ (Ladysmith), डेनहाऊसर (Dan Hauser) और न्यूकासल (Newcastle) में वे बसे।

इनमें से कई लोगों ने अंग्रेजी सरकार को आँखें दिखाकर नटाल प्रांत की सीमा लाँघकर ट्रांस्वाल प्रांत (Transvaal) में अपनी धाक जमाई। इस तरह भारतीय मूल के लोगों ने दूर-दूर फैलकर दक्षिण अफ्रीका की परिस्थिति बदल दी। ये लोग बिहार और उत्तर प्रदेश के निवासी थे। इनकी आपसी भाषा भोजपुरी थी। भोजपुरी, हिंदी की एक उपभाषा है। अलग-अलग क्षेत्रों में रहने के कारण ये लोग प्रांतीय बोली बोलते थे। इसलिए भोजपुरी बोलते हुए भी इनके लफ्जों में विभिन्नता स्पष्ट सुनाई देती थी। इन सौदागरों और व्यापारियों की प्रांतीय भोजपुरी, नटाली हिंदी (जो पहले से ही अपभ्रंश थी) के साथ मिश्रित हो गई। तब क्या हुआ? एक नई भाषा का उद्‌भव हुआ। इस खिचड़ी को 'साउथ अफ्रीकन भोजपुरी' कहा गया। यही साउथ अफ्रीकन भोजपुरी श्रमिकों, सौदागरों, व्यापारियों और कई अन्य लोगों की 'लिंगुआ फ्रैंका' (Lingua Franca) बन गई।

एक बात भूली नहीं जा सकती है कि अंग्रेजी भाषा अपना प्रभुत्व जोरदार ढंग से फैला रही थी। रोजी-रोटी की भाषा अंग्रेजी बन गई। अंग्रेजी शिक्षा में ही आर्थिक विकास की पूँजी पड़ी हुई थी। 1950 से अंग्रेजी अपनी नींव घरों में, खेल के मैदानों में, स्कूलों में और नौकरी के स्थानों में जमाने लगी। बच्चों के लिए अंग्रेजी-माध्यम पुस्तकें खरीदी जाती थीं। बच्चों के जरिए घर-घर में माँ-बाप भी सामान्य रूप से अंग्रेजी से परिचित होने लगे। भारतीय मूल के लोग शिक्षा का महत्त्व भलीभाँति जानते थे, इसलिए वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भरती करने लगे। परंतु हिंदी को उन्होंने पीछे हटने नहीं दिया। रात-रात को आँगन में बैठकर, डिबरी और लालटेन के प्रकाश के सहारे वे हिंदी सीखते थे। उन दिनों हिंदी सीखने का [illegible] एक ही माध्यम था—रामायण। जिस ग्रंथ का संपूर्ण जगत [illegible] हो, वही ग्रंथ शिक्षा एवं सुकून देने का माध्यम बन जाएगा—यह कोई भूलनेवाली बात नहीं हो सकती। गोस्वामी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

तुलसीदास ने अपने अंत:करण के सुख के लिए 'रामचरितमानस' की रचना की। उन्होंने कहा कि जो इस ग्रंथ को नित्य पढ़ता और सुनता है, श्री रामजी की असीम कृपा से उसके समस्त दु:ख एवं पाप नष्ट हो जाते हैं। 'रामचरितमानस' की भाषा अत्यंत मनोहर एवं सरल है। बच्चे, बूढ़े और नौजवान श्रद्धा और विश्वासपूर्वक रामायण का मनन करने लगे। इस तरह आध्यात्मिक शिक्षा के साथ हिंदी पठन की प्रवृत्ति भी स्थापित होने लगी।

इन सब घटनाओं के दौरान भारत से स्वामी भवानी दयाल और अन्य कार्यकर्ता दक्षिण अफ्रीका पधारे। मजदूरों की दुर्दशा और खासकर हिंदी के दुरुपयोग से वे विचलित हुए। बिना हिचकिचाए ये महानुभाव खड़ी बोली के प्रचार में लग गए। उनकी अव्यक्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति से उन्होंने लोगों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। समाज में रुचि पनपने लगी। शनै:-शनै: पैसों का संग्रह होने लगा और शहर-शहर में मंदिर स्थापित हुए। लोगों के दिलों में अपनेपन की भावना उभरने लगी। मंदिरों के साथ-साथ एक ऐसा भव्य माहौल स्थापित होने लगा कि लोग तन्मयता और एकाग्रता के साथ भजन-कीर्तन के लिए उपस्थित होने लगे। मंदिरों में हिंदी की पढ़ाई आरंभ होने लगी। गीत-संगीत, नाटक और नृत्य जैसी कलाएँ सिखाई गईं। हिंदी भाषा के आधार पर इस तथ्य से हम मुँह नहीं मोड़ सकते हैं कि गीत-संगीत भाषा के विकास का एक प्रतिबिंब है (Music is the reflection of language evolution)। असल में गीत, कविता एक अर्थपूर्ण ढाँचा है। गीतों में मानव-जाति की भावना, सोच-विचार, कल्पना एवं सामाजिक अनुभव जुड़े हुए हैं। शब्दालंकारों से गीतों में मिठास उभरने लगता है। भाषा की जानकारी से शब्दों का सही उच्चारण होता है। सही उच्चारण से ही कलाकार अपने अंत:करण की भावना व्यक्त कर सकता है। दक्षिण अफ्रीका के मजदूर शर्तबंदी बनकर आए—न कोई आस, न कोई ठिकाना। गीत-संगीत से ही वे अपने पालनहार के करीब पहुँचे। इनके गीतों में प्रभु-भक्ति, प्यार एवं सुकून की रोशनी पाई जाती है। उनकी आत्मा को परमात्मा से मिलाने का यही एक माध्यम था। अपने जीवन के उत्थान के लिए वे भजन-कीर्तन, बिरहा, पचड़ा आदि गीतों से अपने दु:ख दूर करते रहे। उसी तरह नृत्य भी एक ऐसी कला है, जिसमें भाषा की जानकारी और बोध दिग्दर्शित होता है।

बच्चों के जरिए घर-घर में माँ-बाप भी सामान्य रूप से अंग्रेजी से परिचित होने लगे। भारतीय मूल के लोग शिक्षा का महत्त्व भलीभाँति जानते थे , इसलिए वे अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में भरती करने लगे। परंतु हिंदी को उन्होंने पीछे हटने नहीं दिया। रात-रात को आँगन में बैठकर, डिबरी और लालटेन के प्रकाश के सहारे वे हिंदी सीखते थे। उन दिनों में हिंदी सीखने का सिर्फ एक ही माध्यम था—रामायण। जिस ग्रंथ का संपूर्ण जगत में इतना मान हो, वही ग्रंथ शिक्षा एवं सुकून देने का माध्यम बन जाएगा—यह कोई भूलनेवाली बात नहीं हो सकती।

1947—दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की यात्रा की निर्णायक अवस्था थी। इस वर्ष पंडित नरदेव वेदालंकर इस देश में पधारे। पंडितजी के आगमन से हिंदी का नक्शा बदल गया। सनातन सभा और आर्य समाज जैसी धार्मिक संस्थाओं के योगदान एवं पंडितजी के मार्गदर्शन से 25 अप्रैल, 1948 में 'हिंदी शिक्षा संघ' का उद्घाटन हुआ। दक्षिण अफ्रीका के तमाम हिंदी प्रेमियों में हिंदी सीखने और सिखाने का नया जोश जाग्रत हुआ। संघ की प्रथम बैठक में पंडित वेदालंकर को सभापति बनाया गया। इस बैठक में लगभग 35 नई पाठशालाएँ संघ के अधीन हुईं। हिंदी शिक्षा संघ एक स्वैच्छिक संस्था है, जो सिद्धांतों के अनुसार चलती है। कुछ सिद्धांत इस प्रकार हैं : नैतिक रूप से हिंदी का प्रचार करना, प्रासंगिक रूप से हिंदी संबंधित कलाओं को प्रवृत्त करना—जैसे गीत, संगीत, नृत्य इत्यादि और हिंदी की समस्याओं पर नियंत्रण रखते हुए उन्हें सुलझाना।

हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों और प्रशिक्षण सामग्रियों के अभाव के कारण पंडितजी ने पुस्तक रची। शिक्षकों में विधिवत शिक्षण की असमर्थता के कारण उन्होंने शिक्षण- प्रविधि कार्यक्रमों का बंदोबस्त किया। आहिस्ता-आहिस्ता हिंदी पढ़ाने के स्तर में वृद्धि होने लगी।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भाषण, निबंध, गीत-संगीत, नृत्य, कविता, लघुकथाएँ, गीता-पाठ, रामायण-पाठ और नाटक की प्रतियोगिताएँ शुरू होने लगीं। इस तरह हिंदी-प्रेमियों के बीच एकता की भावना बरकरार रही। एक समय था जब पंडितजी विद्यार्थियों को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति—वर्धा की परीक्षाओं में भरती करते थे। 'आज हिंदी शिक्षा संघ' बराबर स्तर की परीक्षाएँ रख रहा है। इससे हजारों शिष्य उत्तीर्ण होकर हिंदी की शान बुलंद कर रहे हैं। हिंदी के विद्यार्थियों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है।

कुल 30-35 वर्ष पूर्व हमारे सरकारी स्कूलों में भारतीय भाषाएँ प्रविष्ट हुईं। इस नए अभिप्राय का जोरदार स्वागत हुआ। स्कूल के पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं को स्थान मिला। हिंदी सीखने के लिए असंख्य छात्र भरती हुए, जिनमें अहिंदी छात्र भी शामिल थे। आजकल भारतीय भाषाओं का विकास नियमपूर्वक नहीं हो रहा है, क्योंकि देश के नए संविधान के अनुसार ग्यारह स्वदेशी भाषाओं को महत्त्व देना आवश्यक है। परंतु एक बात सराहनीय है कि यद्यपि भारतीय मूल के लोगों की आबादी इस देश में अल्प मत में मानी जाती है, फिर भी सरकार की ओर से हमारी भाषाओं को मान मिल रहा है। स्कूलों में भारतीय भाषाओं की सुरक्षा अब भारतीय नेताओं पर और हिंदुस्तानियों पर निर्भर है।

आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी सर्वथा अपना सिर उठा रही है। प्रौद्योगिकी के जरिए सारी दुनिया पल-पल परिवर्तित हो रही है। जहाँ देखो वहाँ प्रौद्योगिकी अपनी उपस्थिति जमा रही है। इंटरनेट, वेबसाइट, ई-मेल इत्यादि आम गृहस्थीय वातावरण में पहुँच गए हैं। टी.वी. और रेडियो भी प्रचार के माध्यम हैं। बॉलीवुड फिल्मों के प्रसारण से लोग मोहित और प्रेरित हो रहे हैं। टी.वी. पर आजकल लाभकारी कार्यक्रमों का प्रसारण हो रहा है। हिंदी में अनेक विषयों पर चर्चा हो रही है। दक्षिण अफ्रीका में दर्शकों की प्रतिक्रिया साफ नजर आती है। बॉलीवुड फिल्मों से प्रभावित होकर वे धीरे-धीरे पाश्चात्य प्रभावों से अलग हो रहे हैं। भारतीय वस्त्राभूषण और ढंग अपनाया जा रहा है। धार्मिक जश्नों में लोग हिंदी में प्रणाम करते हैं और शाबाशी दे रहे हैं। हिंदी में वार्त्तालाप जारी रहता है और अपनेपन की भावना फैल रही है। प्रौद्योगिकी में रेडियो भी अपना योगदान दे रहे हैं। 1998में हिंदी शिक्षा संघ का अपना रेडियो स्टेशन उपलब्ध हुआ 'हिंदवाणी'। आरंभ में इस रेडियो की ध्वनि सिर्फ डरबन और पास के इलाकों में सुनाई दे रही थी। 2009 दिसंबर से पिटरमेरिट्सबर्ग के हवाई तरंगों में 'हिंदवाणी' की बेहतरीन ध्वनि अब पहुँच रही है। फिलहाल ऑडियो स्ट्रीमिंग के जरिए 'हिंदवाणी' संसार के कोने-कोने में पहुँच रही है। यह गौरव की बात है कि प्रौद्योगिकी के जरिए हिंदी का झंडा अब सारी दुनिया में फहरा रहा है। श्रोताओं की प्रतिक्रिया स्तुति-योग्य है। दूर देशों से फोन द्वारा लोग अपने-अपने सगे-संबंधियों के लिए संदेश भेज रहे हैं। इससे साबित होता है कि प्रौद्योगिकी हिंदी प्रचार करने में कामयाब है। यद्यपि 'हिंदवाणी' पर लगभग पचास प्रतिशत हिंदी बोली जाती है, इस छोटे से रेडियो स्टेशन ने लोगों का मन जीत लिया है।

अब हम इक्कीसवीं सदी में पहुँच गए हैं। दक्षिण अफ्रीका के प्राकृतिक दृश्य वही हैं। मौसम भी वही है, परंतु इंसान का रवैया बदल गया है। दिन-प्रतिदिन वह उन्नति की सीढ़ियों पर पग बढ़ा रहा है।

150 वर्ष पूर्व शर्तबंदी प्रथा के आधार पर मजदूर भारत छोड़कर यहाँ आए। उन्होंने इस देश में हिंदी का बीज बोया। उसे अपने आँसुओं से सींचा। अपने लाड़-प्यार से उसकी परवरिश की। आज शहर-शहर में उनके आने की सालगिरह मनाई जाती है। उसके संघर्ष और आँसू अब यादें बनकर रह गए हैं। हिंदी का झंडा ऊँचा रखने का दायित्व अब नई पीढ़ी को सौंपा जा रहा है।

□

6 Linum, Road
Bombay Heights
Pietermaritzburg
Kwazulu-Natal
South Africa-3201

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

8 इटली में हिंदी भाषा-शिक्षण

● डॉ. घनश्याम शर्मा



- जन्म : मुरैना, मध्य प्रदेश
- 1982 में आगरा विश्वविद्यालय से पं. विद्यानिवास मिश्र के निर्देशन में कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धांत को लेकर हिंदी में पी-एच.डी.
- केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में 1981 से 1986 तक हिंदी समाज भाषाविज्ञान में शोध-सहायक पद पर नियुक्त
- 1986से 1987 तक इतालवी सरकार की छात्रवृत्ति पर बोलोन्या विश्वविद्यालय में सीमिऑटिक्स का अध्ययन। हिंदी, अंग्रेजी, इतालवी, फ्रेंज तथा संस्कृत का ज्ञान
- 1987 से आज तक वेनिस विश्व-विद्यायलय के हिंदी विभाग से संबद्ध
- 1996 में प्रो. उम्बेर्तो एको के निर्देशन में बोलोन्या विश्वविद्यालय से सीमि-ऑटिक्स में दूसरी पी-एच.डी.
- बोलोन्या विश्वविद्यालय में चार वर्ष तक हिंदी भाषा का अध्यापन
- प्रकाशन :
- हिंदी-भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अनेक लेख।
- हिंदी-इतालवी, इतालवी-हिंदी कोश।
- इतालवी लेखक बुत्साती के उपन्यास का हिंदी में अनुवाद 'तातारी विरान'।
- अज्ञेय के 'अपने-अपने अजनबी' और भीष्म साहनी के 'तमस' का इतालवी में अनुवाद
- सम्मान : इतालवी राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित

यह इटली में हिंदी-शिक्षण की स्थिति पर घिसी-पिटी लीक पर लिखा लेख नहीं वरन् हिंदी भाषा की वास्तविक स्थिति को उजागर करते लिखा गया है, जिसका एकमात्र उद्देश्य स्थिति का ब्योरा प्रस्तुत करना है, न कि किसी भी संस्था अथवा व्यक्ति की प्रशंसा करना या किसी के खिलाफ आलोचनात्मक रुख अपनाना। फिर भी चाहे-अनचाहे हिंदी-शिक्षण के कुछ पक्षों पर मुझे अपने विचार व्यक्त करने ही होंगे।

यूरोप में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों की ही भाँति इटली में भी हिंदी-शिक्षण की परंपरा बहुत लंबी रही है। यहाँ प्रतिदिन हिंदी सीखने की लालसा रखनेवालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। हालाँकि पिछले कुछ वर्षों से चीनी और जापानी भाषाओं ने आर्थिक-व्यापारिक कारणों से हिंदी अध्येताओं की बढ़ती संख्या पर नकेल सी लगाकर मोरचा मार लिया है। इटली में आरंभ में वेनिस और नेपुल्स विश्वविद्यालय ही हिंदी भाषा के अध्ययन केंद्र माने जाते थे। जब भी इटली में हिंदी-भाषा या अन्य पूर्वी भाषाओं के अध्ययन का जिक्र होता तो इन्हीं दो विश्वविद्यालयों के नाम सामने आते थे, लेकिन गत कुछ दशकों में इटली के कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में भी हिंदी-शिक्षण का काम शुरू हुआ है। इनमें रोम और ट्यूरिन विश्वविद्यालय उल्लेखनीय हैं, जहाँ छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। वेनिस, नेपुल्स, रोम, ट्यूरिन तथा मिलान के अलावा बोलोन्या और विचेंसा नामक शहरों में भी हिंदी भाषा के अध्यापन की व्यवस्था स्थायी या अस्थायी रूप में चलती आ रही है। इस प्रकार यह कहना बिलकुल अतिशयोक्ति न होगी कि यूरोप में संभवत: इटली ही ऐसा देश है, जिसमें ज्यादा जगहों पर हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था है।

इतना होने पर भी पिछले कुछ वर्षों में इटली में हिंदी भाषा के अध्ययन में एक उल्लेखनीय मोड़ आया है। सन् 1997 तक इटली के विश्वविद्यालयों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर एक ही चार-पाँच वर्षीय डिग्री हुआ करती थी, जिसमें हिंदी के विद्यार्थी को अन्य भाषाओं के अध्ययन के साथ-साथ हिंदी को मुख्य विषय के रूप में विशिष्ट अध्ययन के लिए चुनने का अधिकार मिलता था। अर्थात् छात्र को विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते ही अपने पंचवर्षीय पाठ्यक्रम के बारे में तय करना पड़ता था। परिणामत: जो विद्यार्थी अपनी विश्वविद्यालयी शिक्षा के आरंभ में हिंदी भाषा और साहित्य का चयन करते थे, वे अकसर हिंदी में ही डिग्री प्राप्त करके अपनी शिक्षा पूरी करते थे। लेकिन जब से 'यूरोपीय समुदाय' के सदस्य देशों में शिक्षा के क्षेत्र में पुनर्गठन के प्रयास के तहत विश्वविद्यालय की उपाधियों में तालमेल बैठाने का प्रयास हुआ है, तब से इटली के पारंपरिक पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को स्नातक अर्थात् बी.ए. तथा स्नातकोत्तर अर्थात् एम.ए. दो भागों में बाँट दिया गया है। इस तरह इटली की शिक्षा-व्यवस्था के इस पुनर्गठन के परिणामस्वरूप जहाँ स्नातक स्तर

पर हिंदी अध्येताओं की संख्या में बढ़त हुई है, वहीं स्नातकोत्तर स्तर पर छात्रों की संख्या सीमित होने लगी है। स्नातक स्तर पर संख्या बढ़ने का एकमात्र कारण है भारत की निरंतर बढ़ती छवि। भारत की आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती छवि तथा भारतीय संस्कृति की लोकप्रियता ही छात्रों को हिंदी भाषा चुनने को प्रेरित करती है। स्नोतकोत्तर स्तर पर संख्या के कम होते जाने का पहला कारण है—इटली में नए स्नातकोत्तर हिंदी पाठ्यक्रम का पूर्णत: अभाव।

जब इटली के पारंपरिक पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को दो भागों में बाँटने की बात आई, तो इतालवी शिक्षाशास्त्री अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को आत्मसात् करने में पूर्णत: असमर्थ रहे। इस प्रकार इटली में पुराने पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को ही सालों के आधार पर, न कि विषय-वस्तु के आधार पर, दो भागों में जैसे-तैसे बाँटकर लागू कर दिया गया है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कोई छात्र स्नातक स्तर पर तीन साल के हिंदी अध्ययन के बाद और दो साल उसी बासी खिचड़ी को चखते रहने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं हो पाता। दूसरा कारण यह भी है कि स्नातक पाठ्यक्रम के दौरान छात्रों को जब भारत में हिंदी-भाषा की वास्तविक स्थिति का परिचय मिलता है, उन्हें थोड़ा मोहभंग भी होता है। अपनी पहली डिग्री प्राप्त करते समय उन्हें पता लग ही जाता है कि भारत में अंग्रेजी के माध्यम से सारा काम चल सकता है। यानी भारत की सांस्कृतिक परंपरा को आत्मसात् करने तथा भारतीय-विद्याओं से परिचित होने के लिए हिंदी का अध्ययन अनिवार्य कतई नहीं है। जाहिर ही है कि जो छात्र भारत की सांस्कृतिक परंपरा से प्रभावित होकर हिंदी अध्ययन का बीड़ा उठाते हैं, वे कुछ ही समय बाद जब हिंदीभाषियों के अपनी भाषा के रवैए से वाफिक होते हैं तो निराशा का शिकार बन जाते हैं। कुल स्थिति यह है कि आजकल बी.ए. के स्तर पर हिंदी को एक विषय के रूप में चुननेवाले छात्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हो रही है; लेकिन एम.ए. के स्तर पर हिंदी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन करनेवाले छात्रों की संख्या में बहुत कमी आई है। इटली में हिंदी की इस नवीन स्थिति का एक और कारण भी है।

इटली में एक दशक पूर्व विश्वविद्यालय आर्थित दृष्टि से पूरी तरह शिक्षा मंत्रालय पर निर्भर थे। इस प्रकार इतालवी शिक्षा मंत्रालय किसी विश्वविद्यालय में शुरू हुए पाठ्यक्रम को किसी-न-किसी तरह आगे बढ़ाने के लिए तत्पर रहता था, लेकिन जब से इटली में विश्वविद्यालयों को आर्थिक दृष्टि से स्वायत्तता मिली है, तब से शिक्षा मंत्रालय ने सारा जिम्मा विश्वविद्यालयों पर डालकर खुद को मुक्त कर लिया है। परिणमत: हिंदी भाषा को चाहे-अनचाहे अब सीधे-सीधे विश्वविद्यालय में पढ़ाई जा रही अन्य पूर्वी भाषाओं के साथ एक दुष्कर प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ रहा है। इस नवीन परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए लगभग इतालवी विश्वविद्यालय, जिसमें हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की लंबी परंपरा रही है, अब हिंदी के खाली पदों को भरने से कन्नी काटने लगे हैं। इस प्रकार इटली में हिंदी-शिक्षण तो कई जगहों पर है, लेकिन पर्याप्त शिक्षकों का अभाव लगभग सभी विश्वविद्यालयों में है। जहाँ तक हिंदी-शिक्षण के लिए प्रकाशित सामग्री का सवाल है, इटली किसी भी अन्य यूरोपीय देश से किसी भी माने में पीछे नहीं है। इतालवी भाषा में न केवल हिंदी के संदर्श व्याकरण तथा हिंदी-शिक्षण की पाठ्यपुस्तक का प्रकाशन हो चुका है बल्कि हिंदी-इतालवी, इतालवी-हिंदी कोश भी बाजार में कई सालों से उपलब्ध हैं।

साहित्य के क्षेत्र में आदिकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ जायसी, कबीर तथा मीराबाई की रचनाओं के अनुवाद हो चुके हैं तो वहीं आधुनिक लेखकों में प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, मुक्तिबोध, मोहन

साहित्य के क्षेत्र में आदिकालीन हिंदी साहित्य में जहाँ जायसी, कबीर तथा मीराबाई की रचनाओं के अनुवाद हो चुके हैं तो वहीं आधुनिक लेखकों में प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु, मुक्तिबोध, मोहन राकेश, राही मासूम रजा, अज्ञेय, कुँवर नारायण, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, अलका सरावगी आदि लेखकों की अनेक रचनाएँ इतावली भाषा में अनूदित हो चुकी हैं। इन प्रकाशित अनुवादों के अतिरिक्त हिंदी के अन्य प्राचीन, आधुनिक तथा समसामयिक लेखकों पर छात्रों द्वारा सैकड़ों शोध-प्रबंध लिखे जा चुके हैं, जो आर्थिक कारणों से अप्रकाश्य रह गए हैं।

राकेश, राही मासूम रजा, अज्ञेय, कुँवर नारायण, निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, अलका सरावगी आदि लेखकों की अनेक रचनाएँ इतावली भाषा में अनूदित हो चुकी हैं। इन प्रकाशित अनुवादों के अतिरिक्त हिंदी के अन्य प्राचीन, आधुनिक तथा समसामयिक लेखकों पर छात्रों द्वारा सैकड़ों शोध-प्रबंध लिखे जा चुके हैं, जो आर्थिक कारणों से अप्रकाश्य रह गए हैं। इतना होने पर भी हिंदी की रचनाओं के इतावली भाषा में अनुवाद की लंबे समय से चलती आ रही परंपरा में पिछले कुछ वर्षों में थोड़ा गतिरोध आया है, क्योंकि अनेक समर्थ अनुवादक सेवानिवृत्त हो चुके हैं। दूसरे अन्य लोग भी हैं, जो अपने को साहित्यिक अनुवाद के क्षेत्र में समर्थ मानते हैं, लेकिन कुल जमा साहित्य के विश्वसनीय अनुवादकों की संख्या कम होती जा रही है। इसका कारण है—अनुवादक को किसी भी प्रकार के पारिश्रमिक की व्यवस्था का अभाव। भारतीय लेखकों की अंग्रेजी रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए जहाँ इटली के प्रकाशकों में होड़ सी रहती है, वहीं हिंदी रचनाओं के इतालवी भाषा में प्रकाशन की व्यवस्था के लिए अनुवादक को प्रकाशकों के दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं। इस प्रकार इतावली प्रकाशन अंग्रेजी भाषा में इतावली में अनुवादों के लिए पारिश्रमिक प्रदान करता है, लेकिन हिंदी भाषा से किए गए अनुवादों के लिए किसी भी पारिश्रमिक की व्यवस्था नहीं हो पाती।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इटली के विश्वविद्यालयों में स्नातक स्तर पर हिंदी सीखनेवालों की संख्या बढ़ रही है, जो सभी विश्वविद्यालयों में कुल मिलाकर 350 से ऊपर पहुँच जाती है, लेकिन स्नातकोत्तर स्तर पर यह संख्या 50 तक ही रह जाती है। इटली में हिंदी सीखनेवाले छात्रों में ज्यादातर इतालवी मूल के ही लोग होते हैं, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से अनेक ऐसे छात्र भी प्रवेश लेने लगे हैं जो भारतीय मूल के हैं। भारतीय मूल के छात्रों द्वारा हिंदी भाषा के चयन के पीछे कार्यरत मनोवृत्ति निश्चय ही गंभीर शोध का महत्त्वपूर्ण विषय बन सकती है। मोटे रूप में भारतीय मूल के इन छात्रों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—पहले वर्ग में ऐसे छात्र आते हैं, जिनको बाल्यावस्था में ही किसी इतावली दंपती ने गोद ले लिया है। इन छात्रों की सांस्कृतिक अस्मिता पूर्णत: इतावली होती है तथा साथ ही इनकी मातृभाषा भी इतावली। दूसरे वर्ग में ऐसे छात्र आते हैं, जिनके माता-पिता भारतीय मूल के हैं, लेकिन जन्मभूमि इटली है। ऐसे छात्र अकसर द्विभाषी होते हैं। हिंदी के प्रति इन छात्रों का लगाव सीमित ही होता है। तीसरे वर्ग में उन छात्रों को रखा जा सकता है, जिनके माता-पिता नौकरी की तलाश में इटली में आप्रवासी बनकर पहुँचे हैं। इन छात्रों का मुख्य उद्देश्य इतावली भाषा का अध्ययन होता है, न कि हिंदी का। सुखद आश्चर्य इस बात से होता है कि पहले वर्ग के छात्र, अर्थात् वे छात्र जिन्हें इतावली दंपती द्वारा गोद लिया गया है, हिंदी भाषा सीखने की हर कोशिश करते हैं। इनमें से कई हिंदी इलाकों के न होने पर भी हिंदी सीखने को लालायित रहते हैं। निश्चय ही ये छात्र हिंदी भाषा को उस सूत्र के रूप में मानते हैं, जो उन्हें किसी-न-किसी तरह भारत की माटी से जोड़े रखता है।

दूसरे वर्ग के छात्रों का उद्देश्य मूलत: भारत और इटली के बीच किसी तरह का संपर्क बनाए रखना ही होता है। हिंदी सीखने में सबसे कम दिलचस्पी रखनेवाले छात्र तीसरे वर्ग के हैं। ऐसे छात्र अपने माता-पिता के साथ भारत छोड़कर इटली पहुँचते हैं, लेकिन भारतीय मानसिकता में निहित हीनता की भावना को अपने साथ लाकर इटली में बरकरार बनाए रखते हैं। अर्थात् जिस प्रकार भारत में हिंदीभाषी हिंदी की उपेक्षा करते हैं, ठीक वैसे ही ये भी इटली पहुँचने पर हिंदी सीखने को समय की बरबादी मानते हैं। फिर भी हिंदी के प्रति इस बेरुखी के लिए इस वर्ग के छात्रों की आलोचना करना बेमानी ही नहीं, हर दृष्टि से अनुचित भी होगा; क्योंकि ये छात्र वस्तुत: भारतीय मानसिकता में अंतर्भूत हीनता की भावना के प्रतिनिधि ही होते हैं। जिस तरह भारतीय लोग हिंदी को अक्षम भाषा मानकर चलते हैं, ठीक उसी प्रकार ये छात्र भी नए देश तथा नए वातावरण में पहुँचने पर हिंदी-अध्ययन को अनुपयोगी समझते हैं। अत: इसके पहले कि हम इस वर्ग के छात्रों को आलोचना का विषय बनाएँ, बेहतर तो यह होगा कि हम हिंदीभाषी आत्मविश्लेषण कर उन कारणों की तलाश करें, जो हिंदी जैसी समर्थ भाषा को भारत में पिछले पचास सालों से उपेक्षा का पात्र बनाए हुए हैं। हालाँकि इस बात पर लगभग सभी शिक्षाशास्त्री सहमत हैं कि मानविकी की सफल शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही संभव हो पाती है, फिर भी दुर्भाग्यवश भारत के लोगों में अपने बच्चों को शिक्षा के लिए 'इंग्लिश मीडियम' स्कूल भेजने की बेसब्र होड़ लगी होती है। परिणामत: संप्रति भारत में युवकों का ऐसा वर्ग तैयार हो रहा है, जो स्वयं को न तो

अंग्रेजी में ढंग से अभिव्यक्त कर पाता है, न ही अपनी मातृभाषा हिंदी में। अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी विदेशी भाषा का अध्ययन नवीन ज्ञान का अद्‌भुत स्रोत होता है, लेकिन मातृभाषा की उपेक्षा आत्मघात जैसा ही है।

अगर व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से हिंदी को यूरोप की अनेक भाषाओं के सामने रखकर देखा जाए तो विदित होता है कि हिंदी की व्याकरणिक व्यवस्था सचमुच अद्‌भुत है। उदाहरण के लिए, हिंदी में व्याकरणिक काल एवं पक्ष की व्यवस्था पूर्णत: नियमित है, जबकि अंग्रेजी जैसी समृद्ध भाषा में अधिकांशत: अनियमित। इसीलिए भाषा-शिक्षण की दृष्टि से हिंदी किसी छात्र के सामने कोई खास समस्या बनकर नहीं आती। अंग्रेजी भाषा के विपरीत, हिंदी में व्याकरणिक लिंग हैं, जो अध्येता के सामने कठिनाई खड़ी कर सकता है; लेकिन सभी रोमांस भाषाओं (यथा इतावली, फ्रेंच तथा स्पेनिश) में भी लिंग हिंदी की ही तरह हैं। यह बात अलग है कि हिंदी के विपरीत इन भाषाओं में लिंग क्रिया में वह व्यक्त नहीं होता। हिंदी की साहित्यिक संपदा पर अगर गौर किया जाए तो हमें सुखद आश्चर्य होता है कि हिंदी जवान भाषा होते हुए भी साहित्य की हर विधा में संपन्न है। दुनिया की भाषाओं के ऐतिहासिक विकास पर अगर थोड़ा गहराई से विचार किया जाए तो हमें पता चलता है कि स्वतंत्रताप्राप्ति से आज तक के सीमित समय में हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी भाषा को जिस गति से समद्ध किया है, उस गति से संभवत: दुनिया की किसी भाषा को उसके साहित्यकारों ने समृद्ध नहीं किया। कुल मिलाकर भाषा और साहित्य की दृष्टि से हिंदी इतालवी अध्येता के लिए रोचक ही नहीं बल्कि एक चुनौती बनकर सामने आती है। हिंदी भाषा की सबसे बड़ी दो कमजोरियाँ हैं—

(1) वर्तनी के स्तर पर मानकीकरण का अभाव;

(2) हिंदी की विपुल शब्द-संपदा का सदुपयोग न हो पाना।

वर्तनी के मानकीकरण के अभाव में हिंदी का इंटरनेट पर उपयोग फिलहाल सीमित ही है। हिंदी की शब्द-संपदा तो अत्यंत समद्ध है, क्योंकि इसमें उर्दू तथा हिंदी की विविध बोलियों की शब्दावली भी उपलब्ध है। लेकिन कोशकला के क्षेत्र में हिंदी में गंभीर शोध लगभग न के बराबर हुआ है। परिणामत: हिंदी में समृद्ध शब्द-संपदा होने पर भी हिंदीभाषियों को विदेशी भाषाओं से आई नवीन धारणाओं को व्यक्त करने में अंग्रेजी का सहारा लेना आसान रास्ता लगता है। हिंदी में दर्जनों ऐसे प्रकाशक हैं, जो अपने-अपने कोशों को सर्वोत्तम सिद्ध करने की कोशिश में एक-दूसरे की नकल करके काम चलाते रहते हैं। परिणामत: पाश्चात्य जगत से आयातित अनेक ऐसी धारणाएँ हैं, जिनके लिए चाहे-अनचाहे हिंदीभाषी को अंग्रेजी का सहारा लेना ही पड़ता है। मैं समझता हूँ कि यह स्वाभाविक ही है। अंग्रेजी से आए हजारों शब्द ऐसे हैं, जो हिंदी की शब्द-संपदा का अंग बन चुके हैं। लेकिन अंग्रेजी से आई कुछ नवीन धारणाएँ ऐसी भी हैं, जिनके लिए उपयुक्त शब्दों की तलाश की जानी चाहिए। हालाँकि ऐसी शब्दावली का अध्ययन इस निबंध की सीमा से बाहर है, फिर भी एक उदाहरण से अपनी बात स्पष्ट करना उपयुक्त समझता हूँ। यथा—अंग्रेजी में दो धारणाएँ हैं— jealousy तथा envy। ये दो शब्द समानार्थी नहीं हैं। यूरोप की लगभग सभी भाषाओं में इनका अनुवाद संभव है, लेकिन हिंदी में पहले शब्द के लिए कुछ भी नहीं है। हिंदी में भ्रमवश jealousy का अनुवाद 'ईर्ष्या', 'डाह', 'जलन' के रूप में किया जाता है। जो वास्तव में envy के लिए उपयुक्त है। jealousy का वास्तविक अर्थ होता है—'किसी प्रिय वस्तु या व्यक्ति को खो देने के भय का बोध', जबकि envy का अर्थ होता है 'स्वयं के पास अपने प्रतिद्वंद्वी जैसी किसी चीज या व्यक्ति के अभाव का बोध'। स्पष्ट ही है कि 'ईर्ष्या', 'डाह', 'जलन' तीनों शब्द envy के अधिक समीप हैं, jealousy के समकक्ष कदापि नहीं। ऐसी ही सैकड़ों धारणाएँ हैं, जिनके लिए हिंदी में उपयुक्त शब्दों की खोज करना अनिवार्य है। अंग्रेजी, फ्रैंच, जर्मन तथा इतालवी जैसी भाषाओं के मानकीकरण के लिए कई जानी-मानी संस्थाएँ कार्यरत हैं, जबकि हिंदी भाषा के लिए ऐसी अनेक दावेदार संस्थाएँ होने पर भी उनका योगदान न के बराबर है।

परिणामत: हिंदी शब्दावली के मानकीकरण के क्षेत्र में जो कार्य नागरी प्रचारणी सभा जैसी संस्थाओं ने वर्षों पूर्व किया, वही आज तक मानक बना हुआ है। हिंदी के नाम पर खोले गए विश्वविद्यालय तथा विविध संस्थानों का हिंदी-व्याकरण तथा हिंदी शब्द-संपदा के क्षेत्र में बहुत सार्थक योगदान नहीं रहा है।

□

Department of Eurasian Studies
S.Polo 2035
30125 Venice, Italy
Email: Sharma@unive.it
Mobile: 0039-3200 420 674

9

दक्षिण कोरिया और हिंदी : हार्दिक मिलन दो देशों का

● प्रो. दिविक रमेश

आँकड़ों के आधार पर तो हम विश्व-पटल पर हिंदी की उपस्थिति को लेकर गर्व भी कर सकते हैं, लेकिन कुछ देशों के संदर्भ में हकीकत चिंताजनक भी हुई है। एक ओर जहाँ हिंदी के वेबजालों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है और अमेरिका जैसे देश में तो हिंदी को स्कूलों के स्तर पर भी पढ़ाया जा रहा है—कितने ही अमेरिकी तो भारत आकर विशेष रूप से हिंदी सीख रहे हैं। वे हिंदी जानना अपना विकल्प नहीं, बल्कि अपनी आवश्यकता मानते हैं। वे जानते हैं कि भारत के भाषाई और सांस्कृतिक संसार तक पहुँच के लिए हिंदी का आना अनिवार्य है। भारतीय जीवन के गहरे एवं यथार्थपूर्ण अध्ययन के लिए भी वे हिंदी की जानकारी को अनिवार्य मानते हैं। कुछ का इरादा तो हिंदी में पारंगत होकर हिंदी का अध्यापक बनाना भी है। (स्पैन, मार्च-अप्रैल, 2007, पृ. 12) वहाँ हिंदी के गढ़ माने जानेवाले देशों, जैसे रूस और जर्मनी में हिंदी के पठन-पाठन और उसके विस्तार पर आघात भी पहुँचा है। कुछ ही पहले ब्रिटेन के एक स्थापित विश्वविद्यालय में हिंदी के पठन-पाठन को लेकर जो हुआ, वह भी काफी तकलीफदेह कहा जा सकता है। लेकिन सच्चाई यह भी है और यह कम महत्त्वपूर्ण भी नहीं है कि भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों या विदेशी कंपनियों के प्रभावशाली आगमन और उससे उपजे भारतीय बाजार के दबाव ने हिंदी की ओर बाहर और भीतर, दोनों ही लोगों का न केवल अधिक ध्यान आकृष्ट किया है, बल्कि उसकी उपयोगिता को सिद्ध करते हुए उसके अन्यान्य रूपों के विस्तार को भी संभव किया है, और यह क्रम बढ़ता ही जा रहा है। मीडिया और प्रोपेगेंडा साहित्य से लेकर वार्त्तालापी हिंदी (व्यावहारिक हिंदी) की दिशा में तो जैसे विस्फोट-सा हुआ है। हिंदी चैनलों की पहुँच उन देशों तक भी पहुँच चुकी है, जहाँ पहले इस दृष्टि से भयंकर उजाड़ था—जैसे दक्षिण कोरिया। डॉ. केदारनाथ सिंह के इस निष्कर्ष से सहमत हुआ जा सकता है कि "यूरोप केंद्रित सांस्कृतिक प्रभाव का क्षेत्र कुछ सिकुड़ा है और एशिया का साहित्य-मानस एक-दूसरे के निकट आने के नए रास्तों की तलाश कर रहा है, बल्कि इस वृत्त का विस्तार करते हुए हम कह सकते हैं कि इस गोलार्द्ध से कुछ पश्चिमी देशों, खासतौर से लैटिन अमेरिकी देशों के सृजन-सूत्र भी जुड़ते दिखाई पड़ रहे हैं और निस्संदेह अफ्रीका के भी।" (जनसत्ता, दिल्ली, 29 अप्रैल, 2007, पृ. 7)। यह कथन तथ्यों के आधार पर उचित सिद्ध किया जा सकता है। आज नार्वे, हंगरी, पोलैंड, हॉलैंड जैसे हिंदी-साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त उत्साहजनक यूरोपीय देशों के साथ हम चीन और जापान ही नहीं, दक्षिण कोरिया जैसे एशियाई देशों को भी सम्मिलित कर सकते हैं। अफगानिस्तान और पाकिस्तान जैसे देशों में भी हिंदी का प्रभुत्व-पग रख चुका है। मार्च, 2010



- वास्तविक नाम: रमेश शर्मा
- जन्म : 1946, किराड़ी गाँव, दिल्ली
- शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पी-एच.डी. (दिल्ली विश्वविद्यालय)
- प्राचार्य, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- देश-विदेश की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित :
- गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार, 1997
- सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, 1984
- दिल्ली हिंदी अकादमी साहित्यिक कृति पुरस्कार, 1983
- दिल्ली हिंदी अकादमी साहित्यिक सम्मान, 2003-2004
- एन.सी.ई.आर.टी. राष्ट्रीय बाल-साहित्य पुरस्कार, 1989
- दिल्ली हिंदी अकादमी बाल-साहित्य पुरस्कार, 1987
- भारतीय बाल-कल्याण संस्थान, कानपुर सम्मान, 1991
- बालकनजी बारी इंटरनेशनल, राष्ट्रीय नेहरू बाल साहित्य अवार्ड, 1992
- इंडो-रशियन लिटरेरी क्लब, नई दिल्ली सम्मान, 1995
- द्विवागीश पुरस्कार, भारतीय अनुवाद परिषद, 2009
- श्रीमती रत्न शर्मा बाल साहित्य पुरस्कार, 2009
- बंग नागरी प्रचारिणी सभा पत्रकार शिरोमणि सम्मान, 1976
- कविता संग्रह, काव्य-नाटक, अनूदित रचनाएँ, आलोचना, शोध, संपादन बाल-साहित्य संबंधी अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

में आई.सी.सी.आर. नई दिल्ली के सभागार में अफगानिस्तान में हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों से मिलकर और हिंदी पर उनकी पकड़ देखकर बहुत गर्व हुआ। अब तो देश के बाहर न केवल अनुवाद के माध्यम से, बल्कि रचनात्मक लेखन के द्वारा भी हिंदी अग्रसित हो रही है। इस प्रसंग में इतना अवश्य जोड़ना चाहूँगा, जो कि मेरे ही द्वारा बहुत पहले लिखे हुए एक लेख 'हिंदी और विदेश' में भी उपलब्ध है कि या तो हमें देश और विदेशों में भारत की तमाम भाषाओं के सीखने-सिखाने की स्थितियाँ पैदा करनी होंगी या फिर एक ऐसी भारतीय भाषा को चुनना होगा, जिसके माध्यम से भारत की अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को भी विदेशों में पहुँचाया जा सके, और साथ ही उस भाषा के विदेशों में अध्ययन-अध्यापन की भरपूर स्थितियाँ भी पैदा की जाएँ। और यह भी कि वह भाषा स्पष्ट कारणों से भारतीय मूल की ही होनी चाहिए। मेरी विनम्र राय है कि उपर्युक्त दूसरा रास्ता ज्यादा व्यावहारिक है। उदाहरण के लिए यदि हम हिंदी को विदेश के संदर्भ में देश की भाषा स्वीकार कर लें तो विदेशों में केवल हिंदी सीखने-सिखाने का प्रबंध करना होगा और देश में एक उचित योजना के तहत हिंदी में अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को उपलब्ध करना होगा, ताकि वह सब हिंदी के माध्यम से विदेशों में पहुँचाया जा सके। अच्छी बात यह है कि बिना हिंदीतर भारतीय भाषाओं का गला दबाए इस दिशा में काम चल निकला है।

पहली शताब्दी में अयोध्या की राजकुमारी हो (हॉ)हवाँग ओक और गया राज्य के राजा किम सूरो के विवाह की कथा (समगुक यूसा, 1986, पृ. 158) को किंवदंती भी मान लिया जाए तो भी कोरियाई लोगों की भारत के साथ अपने सांस्कृतिक संबंध जोड़ने की ललक की पुष्टि तो यह कथा भी कर ही देती है। अतः भारत के प्रति कोरियाई लोगों की बढ़ती दिलचस्पी के उपर्युक्त ये सांस्कृतिक, पारंपरिक एवं महत्त्वपूर्ण कारण हैं। पिछले कुछ वर्षों में कोरियाई कंपनियों की भारत में होती गई प्रभावशाली उपस्थिति ने व्यावहारिक जरूरत के तौर पर भी भारत और हिंदी को कोरियाई लोगों

जहाँ तक हिंदी का कोरियाई संदर्भ है, बखूबी एवं विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वह अपने वर्तमान रूप में तो उत्साहवर्द्धक है ही, साथ ही प्रभावशाली संभावनाओं से भी लहलहा रहा है। और यह बात मैं अपने 1994 से 1997 तक आई.सी.सी.आर. की ओर से दक्षिण कोरिया में अपने अध्यापन से जुड़े प्रवास के अनुभव, बाद में देश में रहते मिलती रही जानकारी और अप्रैल 2007 में अपनी दस दिवसीय दक्षिण कोरिया की राजधानी सोल की यात्रा से उपजे अनुभव के आधार पर पूरे आत्मविश्वास से दोहरा सकता हूँ। कोरिया में हिंदी की स्थिति को लेकर मेरा एक लेख 'कोरिया और भारत : संदर्भ, संस्कृति और भाषा' (भाषा, जुलाई-अगस्त, 1998) और दक्षिण कोरिया के हांगुक विश्वविद्यालय, सोल में हिंदी विभाग के वरिष्ठ आचार्य और सुविख्यात भाषाविद् डॉ. ली. जंग हो से मेरी भेंटवार्त्ता (गगनांचल, जनवरी-मार्च, 1996) को भी देखा जा सकता है।

वस्तुतः कोरिया में भारत की विशिष्ट पहचान प्रायः बुद्ध, गांधी और टैगोर के देश के रूप में होती आई है। बौद्ध धर्म तो एक समय में कोरिया का राजधर्म भी रहा है। सन् 1929 में टैगोर द्वारा लिखित कुछ कवितानुमा पंक्तियाँ 'पूर्व का दीप' कोरिया के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। ये पंक्तियाँ अंग्रेजी में लिखी गई थीं, जिनका लगभग 62 वर्ष बाद पहली बार मुझे हिंदी अनुवाद करने का मौका मिला। यह अनुवाद कवयित्री किम यांग शिक अपने द्वारा संपादित पत्रिका 'कोरियन इंडियन कल्चर' के पिछले पृष्ठ पर कोरियाई अनुवाद और अंग्रेजी मूल के साथ प्रकाशित करती हैं। पंक्तियाँ हैं—

''एशिया के स्वर्णिम युग में
रहा कोरिया एक दीप वाहकों में
और कर रहा फिर प्रतीक्षा
वही दीप होने को ज्योतित
करने को फिर से आलोकित
पूरब का प्रांगण यह सारा।''

पहली शताब्दी में अयोध्या की राजकुमारी हो (हाँ)हवाँग ओक और गया राज्य के राजा किम सूरो के विवाह की कथा (समगुक यूसा, 1986, पृ. 158) को किंवदंती भी मान लिया जाए तो भी कोरियाई लोगों की भारत के साथ अपने सांस्कृतिक संबंध जोड़ने की ललक की पुष्टि तो यह कथा भी कर ही देती है। अत: भारत के प्रति कोरियाई लोगों की बढ़ती दिलचस्पी के उपर्युक्त ये सांस्कृतिक, पारंपरिक एवं महत्त्वपूर्ण कारण हैं। पिछले कुछ वर्षों में कोरियाई कंपनियों की भारत में होती गई प्रभावशाली उपस्थिति ने व्यावहारिक जरूरत के तौर पर भी भारत और हिंदी को कोरियाई लोगों के करीब ला दिया है। विशेष रूप से कोरिया की नई पीढ़ी में भारत और हिंदी का महत्त्व सहज ही बढ़ ही रहा है। मीडिया ने इस कार्य को सुगमता भी प्रदान की है। अनुवाद द्वारा प्रदत्त आदान-प्रदान की दिशा में बढ़ती कुछ अधिक सजगता एवं सक्रियता भी हिंदी जानने के महत्त्व को बढ़ा रही है।

थोड़ा तुलनात्मक ढंग से कोरिया में भारत और हिंदी के परिदृश्य को देखा जाए तो वास्तविकता को और अच्छे से समझा जा सकता है। दक्षिण कोरिया में सोल स्थित हांगुक विश्वविद्यालय और बूसान स्थित पूसान विश्वविद्यालय हिंदी के पठन-पाठन के गढ़ हैं। एक कैंपस इमुन में हिंदी विभाग का सन् 1972 में खुल गया था। दूसरा कैंपस योंगिन में 1984 में खुला। इस विभाग के अंतर्गत हिंदी भाषा सीखने के साथ-साथ, व्याकरण, हिंदी-साहित्य, इतिहास राजनीति, अर्थशास्त्र आदि का भी अध्ययन किया जा सकता है। आजकल तो उर्दू भी सीख सकते हैं। विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी मिलती है। यूँ तो कोरियाई विश्वविद्यालयों में हिंदी में बी.ए. की उपाधि के लिए ही सामान्यत: विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं, लेकिन व्यवस्था एम.ए. करने की भी है और पी-एच.डी. की भी। हाल ही में एक विद्यार्थी ने पी-एच.डी. के लिए संस्कृत-हिंदी-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया है। हिंदी-साहित्य में एम.ए. के लिए भी कुछ विद्यार्थी हैं। हिंदी फिल्मों का पहले भी प्रभाव था, लेकिन वह अब और अधिक बढ़ा है। यहाँ तक कि हिंदी के प्रति या हिंदी-अध्ययन को अधिक रोचक एवं दिलचस्प बनाने के लिए न केवल हिंदी फिल्मों का सहारा लिया जाता है, बल्कि हाल ही में हांगुक विश्वविद्यालय के योंगिन कैंपस के हिंदी के एसोसिएट प्रो. ई. उंग गू ने 'मल्टीमीडिया हिंदी-1' नामक पुस्तक तैयार की है, जिसमें एक लंबी भूमिका तो लिखी ही है, हिंदी फिल्मों और उनके गानों के संबंध में जानकारी भी दी गई है, साथ ही राष्ट्रगान के अतिरिक्त 37 पुराने-नए फिल्मी गानों का एक चयन भी प्रस्तुत किया है। वे इन गानों को विद्यार्थियों को सुनाते-सुनवाते हैं, गवाते हैं और फिर उनके विश्लेषण, उन पर बातचीत के आधार पर हिंदी में बोलने और लिखने का अभ्यास भी कराते हैं। यानी गाते-बजाते हिंदी सिखाने का उन्होंने यह एक ऐसा तरीका निकाला है, जिसके चलते विद्यार्थी मन लगाकर हिंदी में सोचते हैं और पढ़ते भी हैं। यह जानकारी मुझे 2007 की यात्रा में ही प्राप्त हुई है। अत: स्पष्ट है कि कोरिया में हिंदी के पठन-पाठन को लेकर काफी गंभीरता है। प्रो. ई. उंग गू ने भारत में ही डॉ. रामदरश मिश्र के निर्देशन में पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की थी। भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी दिलचस्पी है और उसके ज्ञाता भी हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति संबंधी एक पुस्तक भी लिखी है—कोरियाई भाषा में। निर्मला का अनुवाद भी किया है। हिंदी के ही वरिष्ठ प्राचार्य प्रो. ली. जंग हो, जिन्होंने 'तमस' का पहले पहल अनुवाद किया था और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और कोरियाई कहानी विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि भी प्राप्त की है, हिंदी की सेवा निरंतर कर रहे हें। इन्होंने पहला हिंदी-कोरियाई शब्दकोश भी कोरिया में रहते तैयार किया और उसे प्रकाशित भी कराया। इसी प्रकार प्रो. किम ऊ जो और प्रो. छै भी बहुत सक्रियता से हिंदी के कोरियाई सरोकारों को निरंतर आगे बढ़ा रहे हैं। प्रो. किम ऊ जो की देखरेख में पहले कोरियाई-हिंदी शब्दकोश का कार्य संपन्न हो गया है।

किसी भी भारतीय एवं हिंदी-प्रेमी के लिए यह जानकारी उत्साहवर्द्धक है कि जहाँ कुछ वर्ष पूर्व हांगुक विश्वविद्यालय (आज जहाँ लगभग 38विदेशी भाषाओं का अध्ययन किया जा सकता है) में हिंदी की स्थिति दस नंबर पर थी, वहाँ आज उसके इमुन कैंपस में चौथे तथा योंगिन कैंपस में दूसरे नंबर पर है। कोरिया में 12वीं कक्षा के परिणाम के आधार पर विश्वविद्यालय और विषय दिया जाता है। आज हिंदी विषय लेनेवालों में खुशी से हिंदी लेनेवालों का प्रतिशत 50 से ऊपर पहुँच गया है। बहुत अच्छे अंक प्राप्त करनेवाले कोरियाई छात्र भी अपनी रुचि से हिंदी पढ़ना चाहते हैं। पहले इस विश्वविद्यालय में लगभग 250 विद्यार्थियों के लिए 4 कोरियाई और

एक भारतीय प्रो. का प्रबंध था। आजकल वहाँ 6कोरियाई और दो भारतीय प्रो. हैं। पूसन विश्वविद्यालय में भी लगभग 120-130 विद्यार्थी हिंदी पढ़ रहे हैं। कोरिया में हिंदी की प्रबल संभावनाओं और वहाँ के युवा पीढ़ी में 'हिंदी' का अध्ययन करने और भारत के प्रति उनकी बढ़ती हुई जिज्ञासा का एक सबल प्रमाण यह भी है कि आज वहाँ के एक अत्यंत प्रतिष्ठित सरकारी विश्वविद्यालय—सोल नेशनल विश्वविद्यालय में भी सेमिस्टर के आधार पर हिंदी पढ़ाने का प्रबंध करना पड़ा है। प्रो. किम ऊ जो ने न के बराबर पैसे लेकर हिंदी के प्रति अपनी सद्भावना से इस कार्य में सहयोग दिया। तीन विद्यार्थियों से हिंदी पढ़ाने का कार्य प्रारंभ हुआ था। आज यह संख्या 25 तक पहुँच गई है। अब उन्हें नारायण नाम के भारतीय हिंदी पढ़ाते हैं।

इसी प्रसंग में एक और पक्ष की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूँ। लगभग दस वर्ष पूर्व कोरिया में हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों के समूह हर वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय में आकर 21 दिनों तक हिंदी सीखने के एक विशेष कार्यक्रम में हिस्सेदारी करते थे। अब अलग-अलग समूह में 4-4 महीने के लिए वर्ष भर आते हैं। पूरा खर्चा स्वयं वहन करते हैं। यही नहीं, पूसान विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय के बीच भी आदान-प्रदान का एक करार हुआ, जिसके तहत वहाँ के विद्यार्थी यहाँ आकर एक महीने के लिए हिंदी का विशेष अभ्यास और अध्ययन कर सकें। ये विद्यार्थी हिंदी के न होकर मैनेजमेंट के थे। पूसान (बूसान) में बूसान विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग 1983 में खोला गया था। खुशी की बात है कि वहाँ वर्षों से अध्यापन कर रहे भारतीय मूल के प्रो. आलोक कुमार राय आज डीन के पद पर हैं।

हांगुक विश्वविद्यालय में एक और व्यवस्थागत नया परिवर्तन हुआ है कि जो विद्यार्थी अन्य विषयों के हैं, उनके लिए भी हिंदी पढ़ने की व्यवस्था कर दी गई है। हाल ही की यात्रा में मुझे हिंदी के विद्यार्थियों ने बताया कि फिलहाल इटेलियन, चीनी, स्वाहिली, स्पैनिश और जापानी भाषाओं के कुछ विद्यार्थी हिंदी भी सीख रहे हैं। मेरे लिए यह एक बहुत ही सुखद समाचार था। इमुन कैंपस के हिंदी विद्यार्थियों को भारतीय प्रोफेसर डॉ. प्रतिभा मुदलियार और योंगिन कैंपस के विद्यार्थियों को प्रो. ई उंग गू ने संबोधित करने की सुविधा प्रदान की थी। यह जानकारी भी हिंदी की कोरिया में प्रबल संभावनाओं की द्योतक है कि प्राय: हर विद्यार्थी ने अपना हिंदी नाम भी रखा हुआ था। मसलन, ओ मिन सॅक ने 'आकाश', शिन स्योल र्‌योन ने 'सरला', ची योंग मिन ने 'सीता' और 'किमह्यून' जिन ने 'जीवन' नाम रखा है।

उत्सुकता हो सकती है कि कोरियाई नई पीढ़ी में हिंदी सीखने के लिए दिलचस्पी बढ़ने के मुख्य कारण जाने जाएँ। बातचीत के आधार पर ही कह सकता हूँ कि सर्वप्रमुख कारण तो भारत की संस्कृति, जीवन और दर्शन की गहरी जानकारी लेना है। वस्तुत: आज भारत के अनेक पक्षों को उजागर करनेवाली सामग्री कोरियाई भाषा में उपलब्ध है। उनकी जानकारी ने कोरियाई नई पीढ़ी को भारत के संबंध में विस्तार और गहरे से जानने का इच्छुक बना दिया, और इस तरह वे हिंदी के अध्ययन की ओर झुके। कोरियाई अपनी भाषा को बहुत महत्त्व देते हैं। अत: भारत की भाषा हिंदी के प्रति भारत को जानने की दृष्टि से, उनका झुकाव स्वाभाविक ही माना जाएगा। यह भ्रम भी काफी हद तक टूटा है कि भारत को अंग्रेजी के माध्यम से पूरी तरह जाना जा सकता है, और यह भी कि अंग्रेजी जानकर भारत में पूरी तरह काम चलाया जा सकता है। व्यवसायियों ने तो इस तथ्य को और भी अच्छे ढंग से समझ लिया है। वे अपने प्रबंधकों को भारत भेजने से पहले कामचलाऊ हिंदी सीखने की सलाह देते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में जो बदलाव आए हैं और जिस प्रकार वह विश्व के लिए खुलती गई है, उस कारण से भी कोरियाई नई पीढ़ी भारत और भारत की कोरिया में उपलब्ध भाषा हिंदी की ओर उत्सुक हुई है।

एक और दिलचस्प कारण की जानकारी चौंका सकती है। कोरिया में एक विशेष धर्म के लोग हैं। वे अपने धर्म को 'यो हो वा ज्युन इन' कहते हैं। वे इसका प्रचार कोरिया के बाहर भारत में भी करना चाहते हैं। अत: हिंदी सीखनेवाले कुछ ऐसे कोरियाई विद्यार्थी भी हैं, जो अपने धर्म के सार्थक एवं व्यापक प्रचार के लिए हिंदी सीखते हैं।

हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों को तीन समूहों में बाँटा जा सकता

है। एक वर्ग है, जो कोरिया में औपचारिक रूप से हिंदी सीखता है, उपाधि प्राप्त करता है। दूसरा समूह ऐसा है, जो अपने आप हिंदी सीखता है और तीसरा है, जो भारत जाकर हिंदी सिखाता है।

जैसाकि पहले संकेत दिया जा चुका है, आज कोरिया के पुस्तकालयों में भारतीय साहित्यिक पुस्तकों के साथ-साथ अन्य विषयों की पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। हिंदी के समाचार एवं अन्य कार्यक्रम दिखानेवाले टी.वी. चैनल उपलब्ध होने से भी भारत के संबंध में जानकारी उपलब्ध होती रहती है और भारत के बारे में और अधिक जानने की स्वाभाविक रुचि कोरियाई लोगों में बढ़ती जाती है। लेकिन एक कोरियाई विद्यार्थी जिसका भारतीय नाम 'समीर' है, ने यह चिंता भी व्यक्त की कि हिंदी को भारत की राज एवं राष्ट्रभाषा जिस रूप में बना लिया जाना चाहिए था, उसमें भारतीय चूके हैं। उस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

वस्तुत: कोई भी भाषा अपने देश के जीवन, अपनी संस्कृति से काटकर नहीं देखी जा सकती, और आज के संदर्भ में अपनी अर्थव्यवस्था से भी। किसी देश की भाषा को जानना असल में उस भाषा के देश को जानना है। इसे हम विपरीत ढंग से भी कह सकते हैं। आज कोरिया में हिंदी की ओर नई पीढ़ी का इस हद तक रुझान हुआ है तो इसे भारत की ओर बढ़े रुझान के संदर्भ में ही समझा जा सकता था। पहले के भारतीय आज भी यही कहते मिल सकते हैं कि 'अरे भाई, कोरिया में खाने की बड़ी मुसीबत है।' लेकिन अब यह अतीत का कथन हो गया है। सन् 2007 में अकेले सोल में 12-15 से अधिक भारतीय भोजनालय हैं। दक्षिण भारत के लोगों ने तो 'चक्र' नाम से 8भोजनालय खोल दिए हैं। और यहाँ कोरियाई बड़े चाव से भारतीय भोजन खाते हैं। पारंपरिक वस्तुओं के बाजार इनसा डोंग का 'लिटिल इंडियन' और भी लोकप्रिय हो गया है।

आज कोरिया में हिंदी की ओर नई पीढ़ी का इस हद तक रुझान हुआ है तो इसे भारत की ओर बढ़े रुझान के संदर्भ में ही समझा जा सकता था। पहले के भारतीय आज भी यही कहते मिल सकते हैं कि 'अरे भाई, कोरिया में खाने की बड़ी मुसीबत है।' लेकिन अब यह अतीत का कथन हो गया है। सन् 2007 में अकेले सोल में 12-15 से अधिक भारतीय भोजनालय हैं। दक्षिण भारत के लोगों ने तो 'चक्र' नाम से 8भोजनालय खोल दिए हैं। और यहाँ कोरियाई बड़े चाव से भारतीय भोजन खाते हैं। पारंपरिक वस्तुओं के बाजार इनसा डोंग का 'लिटिल इंडियन' और भी लोकप्रिय हो गया है।

वहाँ के मशहूर बाजार इटेवान में जाइए और बँगलादेशी द्वारा खोली गई दुकान का नजारा देखिए! कौन सा मसाला है, कौन सी दाल है या चाय है, जो वहाँ नहीं मिलती। यहाँ तक कि बनी-बनाई रोटियाँ और पराँठे भी उपलब्ध हैं—और मैगी व आटा भी।

इन भोजनालयों और दुकानों ने कितने ही हिंदी शब्द प्रचलित कर दिए हैं। समोसा, तंदूर, दाल आदि कितने ही शब्द आज नई पीढ़ी की जानकारी में हैं।

अंत में वरिष्ठ कवयित्री किम यंग शिक का नाम लिये बिना बात नहीं बनेगी। वे पहली कोरियाई हैं, जिन्हें उनके भारत-प्रेम के कारण पद्मश्री की उपाधि प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे 'टैगोर सोसाइटी ऑफ कोरिया' की संस्थापक-अध्यक्ष हैं। भारत संबंधी अनेक कविताएँ लिखी हैं, जिनका अनुवाद इस लेख के लेखक ने ही किया है। कविताएँ पुस्तक रूप में प्रकाशित हैं। स्वयं उन्होंने दिविक रमेश की कविताओं का न केवल अनुवाद किया है बल्कि अपने ही द्वारा प्रारंभ 'शांति प्रकाशन' से प्रकाशित भी किया है। सुखद समाचार यह है कि अब उन्होंने भारतीय वाद्ययंत्रों आदि के प्रदर्शन के लिए गैलरी बनाई है। इस संबंध में उनसे चर्चा करते हुए लगभग निश्चय हुआ कि गैलरी का नाम 'ओऽम शांति गैलरी' रखा जाए। उन्होंने कोरिया स्थित भारत के राजदूत श्री एन. पार्थसारथी के उपन्यास का अनुवाद भी किया है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जिस तरह कोरिया का भारत में, खासकर भारत के बाजार में धमाकेदार प्रवेश हुआ है, उसी

प्रकार कोरिया में भारत की उपस्थिति बहुत दृढ़ता से देखी जा सकती है। इसी संदर्भ से कहा जा सकता है कि कोरिया में हिंदी की उपस्थिति भी उतनी ही दृढ़ता से अपना एहसास करा रही है। निश्चित रूप से, यदि हम भारतीयों व हमारी सरकार की ओर से भी हिंदी की केंद्रीय भूमिका को और अच्छे से निभाने की ओर उचित ध्यान दिया गया तो कोरिया में उसकी बढ़ती हुई प्रगति को कोई नहीं रोक सकेगा। यह बखूबी कहा जा सकता है आज कोरिया विश्व के उन गिने-चुने देशों में से एक है, जहाँ हिंदी का प्रभुत्व अग्रगामी है।

मैं भारत और कोरिया को और अधिक करीब लाने के लिए चल रहे भारत स्थित कोरिया दूतावास की अहम भूमिका का भी संक्षिप्त जिक्र करना चाहूँगा। यूँ तो पिछले दिनों कोरिया की अनेक साहित्यिक सामग्री हिंदी में उपलब्ध हुई है और उसके पीछे कोरियाई दूतावास की प्रेरणा का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है (साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, पीतांबर पब्लिशिंग कंपनी आदि ने महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की हैं)। अपने ढंग की ये पुस्तकें किसी भी भारतीय भाषा, अर्थात् हिंदी में पहली हैं। सौभाग्य से इन अनुवाद की पुस्तकों के सृजन का अवसर इस लेख के लेखक को ही मिला है। पुस्तकें हैं : कोरियाई कविता यात्रा, कोरियाई बाल कविताएँ, कोरियाई लोक कथाएँ, जादुई बाँसुरी और अन्य कोरियाई कथाएँ तथा 'ओ इंडिया' (किम यंग शिक की भारत संबंधी कविताएँ)। इसके अतिरिक्त इसी लेखक यानी दिविक रमेश के कितने ही कोरिया संबंधी प्रकाशित लेख भी उपलब्ध हैं। कोरिया संबंधी दो अन्य उल्लेखनीय पुस्तकों में रामदरश मिश्र की 'भोर का सपना' और पद्मा सचदेव की सीजो कविताओं के अनुवादों की पुस्तक 'शिशिर रात्रि का अनुराग' कही जा सकती हैं। लेकिन राजदूत महामहिम पेक योंग सुन (और सूचना एवं संस्कृति के पूर्व काउंसलर श्री किम सॅग हो) ने भी इस दिशा में विशेष रुचि ली है। वे आदान-प्रदान के आधार पर साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रभावी ढंग से बढ़ाने के हिमायती रहे हैं। एक बड़े साहित्यिक पुरस्कार की योजना पर भी उन्होंने काम किया है। स्पष्ट है कि दोनों देशों की करीबी दोनों देशों की भाषाओं के महत्त्व को और भी अधिक बढ़ाएगी। और हाँ, बावजूद विवादों के, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिंदी के रचनाकारों को साहित्य अकादेमी के तत्त्वावधान में कोरिया की बहुत बड़ी कंपनी सेमसोंग की केवल आर्थिक मदद के द्वारा स्थापित 'टैगोर पुरस्कार' भी भारत और हिंदी के प्रति एक सार्थक कदम है। उल्लेखनीय है कि इसका निर्णायक-मंडल साहित्य अकादेमी का ही रहेगा और पुरस्कृत रचनाकारों को कोरिया-दर्शन भी कराया जाएगा। अवश्य कोरिया स्थित 'टैगोर सोसाइटी ऑफ कोरिया', जिसकी संस्थापिका वहाँ की प्रथम पद्मश्री रचनाकार श्रीमती किम यांग शिक को भी जोड़ा जा सकता था। वैसे आश्चर्य मुझे भी हुआ कि समारोह की सूचना तक मुझे नहीं मिल पाई थी, जबकि स्वयं साहित्य अकादेमी ने मेरे द्वारा अनूदित कोरियाई कविताओं की पुस्तक 'कोरियाई कविता यात्रा' प्रकाशित की है और उसकी प्रस्तावना महामहिम कोरियाई राजदूत के द्वारा लिखी गई है तथा जिसे नामवरजी, गोपीचंद नारंगजी, विष्णु खरे जैसे विद्वान् साहित्यकारों की मान्यता भी मिली है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारत स्थित कितनी ही कोरियाई कंपनियों ने इस पुस्तक की प्रतियाँ खरीदकर नि:शुल्क वितरित भी की थीं।

न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन (जुलाई, 2007) में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव महामहिम बान की मून ने, जो कोरियाई हैं, अपने भाषण में हिंदी के उपयोग और हिंदी की महत्ता को रेखांकित करके दक्षिण कोरिया में हिंदी एवं भारत-प्रेम की ही स्थापना की है। उनके दामाद तो भारतीय हैं ही। मैं दोहराना चाहूँगा कि प्रथम ईस्वी के सन् 42 में अयोध्या की राजकुमारी हो ह्वांग ओक। समगुक यूसा, पृ. 162 के अनुसार) राजकुमारी ने कहा था—"मैं अयोध्या (भारत स्थित) की हूँ, मेरा पारिवारिक नाम हो (हॉ) है और रखा हुआ नाम ह्वांग-ओक (Yellow Jade) है। राजकुमारी का विवाह गया राज्य के किम सु रो, जिनका जन्म अंडे से माना जाता है, से हुआ था। यह बहुत दिलचस्प कथा है, जिसका हिंदी रूपांतर भी सबसे पहले इसी लेख के लेखक दिविक रमेश ने प्रकाशित कराया था। अत: निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत और कोरिया के बीच के सांस्कृतिक संबंध का अतीत बहुत पुराना है। सब जानते हैं कि बौद्ध धर्म चीन से कोरिया होते हुए जापान गया था।

□

B-295, Sector-20
Noida-201 301, India

10 दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण

● किम ऊ जो

कोरिया एवं भारत का सांस्कृतिक संबंध अत्यंत प्राचीन है। कोरिया के दक्षिणी भाग में स्थित गरक राजवंश की महारानी बनी, अयोध्या की राजकुमारी से संबंधित किंवदंती, कोरियायियों के जीवन एवं संस्कृति में व्याप्त बौद्ध मत का प्रभाव उसका साक्षात् प्रमाण है, परंतु दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण की परंपरा पश्चिमी देशों, जापान आदि की तरह लंबी नहीं है।



- जन्म : 15 दिसंबर, 1953
- शिक्षा : 1972-1976 हांकुक विश्व-विद्यालय से हिंदी में बी.ए.
- 1976-1978 लेंग्वेज प्रोफिशियन्सी में एडवांस डिप्लोमा
- 1978-1980 जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए.
- 1982-1988 विश्व भारती विश्व-विद्यालय, शांतिनिकेतन में हिंदी साहित्य (हिंदी काव्य) में पी-एच.डी. की उपाधि
- 1980 से हांकुक विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ा रही हैं। इस समय प्रोफेसर के पद पर कार्यरत
- आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में सम्मानित।

दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण एवं भारत विद्याध्ययन का व्यवस्थित रूप से प्रारंभ सन् 1972 में हुआ, जब दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल में स्थित हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज(हन्गुक विदेशी विद्याध्ययन विश्वविद्यालय) में हिंदी विभाग की स्थापना हुई।

सन् 1954 में हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज की स्थापना हुई थी, उस समय यह दक्षिण कोरिया में विदेशी भाषा एवं विद्याध्ययन संबंधी एकमात्र उच्च शैक्षिक संस्था थी. जहाँ अंग्रेजी, फ्रांसीसी, चीनी, जर्मन और रूसी पढ़ाई जाती थी। (अब पैंतालीस विदेशी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं।) सन् 1960 के बाद दक्षिण कोरिया में आयोजित आर्थिक विकास-कार्यक्रम तेजी से कार्यान्वित होने लगे थे। कोरिया के पास प्राकृतिक संसाधन नहीं थे, परंतु कोरिया मानवीय संसाधनों से संपन्न था। अत: राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक विकास के लिए विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ आर्थिक संबंध स्थापित करना आवश्यक था। हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज गैर-सरकारी विश्वविद्यालय होते हुए भी राष्ट्रीय माँग के अनुरूप विदेशी भाषा-शिक्षण एवं विद्याध्यय करने की जिम्मेदारी निभाता रहा है। कोरिया के आश्चर्यजनक आर्थिक विकास में इस विश्वविद्यालय का बड़ा योगदान रहा है।

इस विश्वविद्यालय की नीति रही है कि कोरिया की राष्ट्रीय आवश्यकताओं की दृष्टि से एक राष्ट्र विशेष के महत्त्व की ओर ध्यान देते हुए उस राष्ट्र की भाषा का विभाग स्थापित किया जाए। इस विश्वविद्यालय ने भारत के महत्त्व को पहचानकर सन् 1971 में हिंदुस्तानी भाषा विभाग खोलने का निश्चय किया था, जब भारत एवं कोरिया के बीच राजदूत स्तरीय संबंध स्थापित नहीं हुए थे। उसके अनुसार सन् 1972 में जिन तीस विद्यार्थियों की भरती हुई, उनमें से यह लेखिका अकेली विद्यार्थिनी थी। इस आलेख में तब से अब तक दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण का अति संक्षेप में सर्वेक्षण करने का प्रयत्न किया जाएगा।

कोरिया में हिंदी-शिक्षण की परंपरा

जैसे उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 1971 के निश्चय के अनुसार सन् 1972 में हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदुस्तानी भाषा विभाग में तीस विद्यार्थियों का प्रवेश हुआ। विभाग का नाम हिंदुस्तानी भाषा विभाग था, पर हिंदी पढ़ाई जाती थी। सन् 1973 में इस विभाग का नाम हिंदी विभाग में बदल गया, सन् 1972 में हिंदी-शिक्षण के लिए नियुक्त श्री पाक सक इल, जिन्होंने दिल्ली में भारतीय इतिहास का अध्ययन किया था, उनके बाद सन् 1975 में नियुक्त डॉ. किम हा उ, जिन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से बौद्ध

दर्शन पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी, दोनों प्रारंभिक दौर के प्राध्यापक थे। दोनों प्राध्यापकों ने न भारत में व्यवस्थित ढंग से हिंदी पढ़ी थी और न पहले हिंदी-शिक्षण से सीधे संबद्ध रहे थे। उस समय यहाँ भारतीय अध्यापक भी थे, परंतु उनका हिंदी-शिक्षण, विशेष रूप से विदेशियों के लिए हिंदी-शिक्षण से संबंधित कोई अनुभव नहीं था। अधिकांश भारतीय अध्यापकों की मातृभाषा हिंदी नहीं थी, विश्वविद्यालय ने उत्साह में विभाग तो खोला, परंतु उसके उपयुक्त प्रबंध किए बिना सब होते हुए भी प्रारंभिक दौर के कोरियाई एवं भारतीय अध्यापकों ने जिस असीम लगन एवं कर्मठता के साथ अपनी-अपनी जिम्मेदारी सँभाली थी, वह सराहनीय है और दक्षिण कोरिया में वर्तमान हिंदी-शिक्षण उसी पर खड़ा हुआ है। कहा जा सकता है कि सातवाँ दशक दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण के लिए तैयारी का समय था।

सन् 1980 के आस-पास से इस विभाग के पहले बैच के विद्यार्थी केंद्रीय हिंदी संस्थान, जे.एन.यू. आदि में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़कर कोरिया वापस आए और हिंदी विभाग सँभालने लगे, कहा जा सकता है कि उनके द्वारा दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण का वास्तविक प्रारंभ हुआ। इस दशक की एक और उल्लेखनीय बात यह है कि सन् 1984 में कोरिया के दूसरे बड़े शहर बुसान में स्थित बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में भी हिंदी विभाग की स्थापना हुई, इस प्रकार दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण का दूसरा केंद्र खुल गया। उसी वर्ष हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज द्वारा सियोल के बाहर योंइन परिसर में दूसरा हिंदी विभाग खोला गया। इस प्रकार हिंदी-शिक्षण की बाहरी परिधि विस्तृत हो गई, परंतु हिंदी-शिक्षण में अपेक्षित आंतरिक स्थिरता अभी तक नहीं आ पाई। माना जा सकता है कि आठवें दशक में दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण का वास्तविक प्रारंभ हुआ था।

नौवें दशक में दक्षिण कोरिया के हिंदी-शिक्षण में आतंरिक स्थिरता आ गई, इस दौरान अनेक महत्त्वपूर्ण हिंदी पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। सबसे उल्लेखनीय बात है कि सन् 1995 में हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के प्रकाशन विभाग से हिंदी-कोरियाई शब्दकोश का प्रकाशन हुआ था, जिसके निर्माण में कोरिया के शिक्षा मंत्रालय ने आर्थिक सहायता प्रदान की थी। नौवें दशक से कोरियाई विश्वविद्यालय अपने प्राध्यापकों से अकादमिक उपलब्धियाँ माँगने लगे थे, परिणामस्वरूप हिंदी के कोरियाई प्राध्यापकों द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य पर शोधपरक निबंध भी लिखे गए, जिससे दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण मजबूत होता गया। परंतु ये अकादमिक उपलब्धियाँ कोरियाई भाषा में होने के कारण कोरिया के बाहर हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित नहीं कर सकीं।

दोनों विश्वविद्यालयों के हिंदी संबद्ध पाठ्यक्रम में थोड़ा-बहुत अंतर पाया जाता है। परंतु आमतौर पर भारत संबंधी विशेषज्ञ को तैयार करने के समान उद्देश्य को लेकर प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति के साथ एवं द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा के साथ हिंदी पाठ, हिंदी व्याकरण, दृश्य-श्रव्य हिंदी, वार्त्तालाप एवं रचना आदि पढ़ाकर सुनने, पढ़ने, बोलने एवं लिखने का गहन शिक्षण प्रदान करने का प्रयत्न होता है। तृतीय वर्ष एवं चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थियों को उच्च स्तरीय हिंदी की जानकारी देने वाले विषयों के अतिरिक्त हिंदी भाषा विज्ञान, भारतीय एवं हिंदी साहित्य

सन् 2000 के बाद दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता गया। यह प्रवृत्ति नौवें दशक से दिखाई देने लगी थी, सन् 1991 में भारत के आर्थिक उदारीकरण की घोषणा के बाद भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में भारत एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरा। परिणामस्वरूप भारत के साथ वाणिज्य-व्यापार का अच्छा संबंध स्थापित करने के इच्छुक, राष्ट्र या व्यक्ति, हिंदी सीखने के लिए तैयार हो जाते हैं। शायद यही आर्थिक तत्त्व आजकल दुनिया भर में हिंदी सीखने का मुख्य प्रेरक बना है, कोरिया भी इसका अपवाद नहीं। एक ओर विश्वविद्यालय स्तर पर उच्च माध्यम स्कूल में अच्छे अंक प्राप्त विद्यार्थी हिंदी और भारत विद्याध्ययन को अपना मुख्य विषय चुनते हैं, दूसरी ओर

कोरिया की मुख्य बड़ी कंपनियाँ भारत संबंधी विशेषज्ञ प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाती हैं। उस कार्यक्रम के अनुसार अपने कर्मचारियों को भारत भेजने से पहले प्राथमिक हिंदी-शिक्षण दिया जाता है। अब भारत के साथ वाणिज्य-व्यापार का संबंध स्थापित करने की इच्छुक लगभग सभी कंपनियाँ इसी रास्ते पर चलती हैं, या फिर हिंदी विभाग के स्नातकों की नियुक्ति करती हैं। कोरिया एवं भारत के बीच बढ़ते हुए वाणिज्य-व्यापार को देखते हुए सन् 2005 में बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में रूस-हिंदुस्तान वाणिज्य-व्यापार केंद्र, सन् 2005 में बुसान में स्थित यंसन यूनिवर्सिटी में भारत व्यवसाय विभाग खुल गया, जहाँ हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है।

दक्षिण कोरिया में हिंदी के प्रति रुचि बढ़ने का एक और कारण है। पहले कोरियाई लोगों को गर्व था कि कोरिया एक जाति का, एक संस्कृति का, एक भाषा बोलने वालों का देश है। परंतु कोरियाई समाज में विविधता को स्वीकृत करने का बदलाव होने लगा है। विशेष रूप से नई पीढ़ी में विविध संस्कृतियों के प्रति जिज्ञासा तीव्र होती जा रही है। परिणामस्वरूप भारत के प्रति जिज्ञासा भी बढ़ती जा रही है, उसी के कारण कोरिया में सबसे प्रतिष्ठित सियोल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में सन् 2000 से सत्र आधारित कार्यक्रम में भारतीय संस्कृति के साथ हिंदी पढ़ाई जानी शुरू हुई है।

शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी-शिक्षण

दक्षिण कोरिया में हिंदी अध्ययन एवं शोध से संबद्ध दो प्रमुख केंद्र हैं—हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज तथा बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज। हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के दोनों परिसरों में हिंदी विभाग हैं। प्रतिवर्ष हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभागों में करीब 50-60 विद्यार्थियों का, और बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग में 50 विद्यार्थियों का प्रवेश होता है। दोनों विश्वविद्यालयों में चार वर्षीय स्नातक डिग्री पाठ्यक्रम होता है। दोनों विश्वविद्यालयों के हिंदी संबद्ध पाठ्यक्रम में थोड़ा-बहुत अंतर पाया जाता है। परंतु आमतौर पर भारत संबंधी विशेषज्ञ को तैयार करने के समान उद्देश्य को लेकर प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति के साथ एवं द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा के साथ हिंदी पाठ, हिंदी व्याकरण, दृश्य-श्रव्य हिंदी, वार्त्तालाप एवं रचना आदि पढ़ाकर सुनने, पढ़ने, बोलने एवं लिखने का गहन शिक्षण प्रदान करने का प्रयत्न होता है। तृतीय वर्ष एवं चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थियों को उच्च स्तरीय हिंदी की जानकारी देने वाले विषयों के अतिरिक्त हिंदी भाषा विज्ञान, भारतीय एवं हिंदी साहित्य, भारतीय दर्शन, भारतीय क्षेत्र अध्ययन आदि से संबंधित अनेक विषयों के साथ संस्कृत, उर्दू आदि भारतीय भाषाएँ भी पढ़ाई जाती हैं। अध्यापन की माध्यम भाषा कोरियाई है, हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग में तृतीय वर्ष एवं चतुर्थ वर्ष में पढ़ाए जाने वाले हिंदी साहित्य एवं भारतीय क्षेत्र अध्ययन के कुछ विषयों की माध्यम भाषा के रूप में कोरियाई प्राध्यापकों द्वारा हिंदी अथवा अंग्रेजी अपनाई जा रही है। यह विश्वविद्यालय की शैक्षणिक नीति है। न केवल हिंदी भाषा शिक्षण में बल्कि भारतीय संस्कृति, साहित्य आदि में भी दृश्य-श्रव्य माध्यमों का अच्छा प्रयोग होता है। बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग के पाठ्यक्रम में तृतीय एवं चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थियों को सिनेमा आदि दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्वारा हिंदी का गहन शिक्षण देने पर बल दिया गया है।

हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज की शैक्षणिक नीति के अनुसार अन्य विषय के कुछ विद्यार्थी भी हिंदी एवं भारत विद्याध्ययन को दूसरे मुख्य विषय के रूप में लेकर हिंदी पढ़ते हैं। इस यूनिवर्सिटी ने विश्वविद्यालय के स्तर पर यह निश्चय किया है कि स्नातक उपाधि प्राप्ति के लिए (Flex)(Foreign Language Examination) में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होगा, (Flex) विश्वविद्यालय के स्तर पर बनाई गई विदेशी भाषा दक्षता को जाँचने की परीक्षा है। (Flex) अंग्रेजी को राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। (Flex) हिंदी को अभी तक राष्ट्रीय स्वीकृति नहीं मिली है, परंतु विश्वविद्यालय के बाहर सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की परीक्षा में 'फ्लेक्स' हिंदी का प्रयोग हो रहा है।

जिन विभागों में मुख्य विषय से संबंधित करके हिंदी-शिक्षण को अनिवार्य बनाया गया है, वे हैं—बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में रूस-हिंदुस्तान वाणिज्य-व्यापार केंद्र, यंसन यूनिवर्सिटी में भारत व्यवसाय विभाग, रूस-हिंदुस्तान वाणिज्य-व्यापार केंद्र के

भारतीय वाणिज्य-व्यापार पाठ्यक्रम में प्रतिवर्ष 20 विद्यार्थियों का प्रवेश होता है और द्वितीय एवं तृतीय वर्ष के विद्यार्थियों को अंग्रेजी के साथ हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है, जबकि यंसन यूनिवर्सिटी में भारत व्यवसाय विभाग में प्रतिवर्ष 30 विद्यार्थियों का प्रवेश होता है और प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाती है। हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में (BRICs) (ब्राजील, रूस, इंडिया, चीन) से संबंधित एक विशेष पाठ्यक्रम होता है, जिसमें हिंदी विभाग के विद्यार्थियों के साथ अन्य विभाग के जो विद्यार्थी भारतीय वाणिज्य-व्यापार को दूसरे मुख्य विषय के रूप में पढ़ते हैं, उनके लिए हिंदी पढ़ना अनिवार्य होता है, एशिया संयुक्त ईसा धर्मशास्त्र विश्वविद्यालय में धर्म-प्रचारण विभाग के पाठ्यक्रम में हिंदी भी सम्मिलित थी, जो अब छोड़ दी गई है।

हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में अन्य विषयों के विद्यार्थियों के लिए मुख्य विषयेतर संस्कार संवर्द्धक विषय (The Liberal arts) के रूप में हिंदी पढ़ने की व्यवस्था की गई। जो विद्यार्थी और आगे हिंदी पढ़ना चाहें, वे हिंदी विभाग के निर्धारित पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो सकते हैं, इस संदर्भ में सियोल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में मुख्य विषयेतर संस्कार संवर्द्धक विषय के रूप हिंदी की पढ़ाई की ओर एक बार और ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। कोरिया में सियोल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की प्रतीकात्मकता को देखते हुए यह बात हिंदी के प्रचार के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है।

हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में स्नातकोत्तर स्तर पर भी हिंदी-शिक्षण होता है, परंतु विद्यार्थियों की संख्या अत्यंत कम है। खेद की बात है कि कोरियाई परिवेश के उपयुक्त हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन की परवर्ती पीढ़ी का आदर्श निर्माण नहीं हो पा रहा है। उस विश्वविद्यालय के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र अध्ययन स्नातकोत्तर स्कूल में भारतीय क्षेत्र अध्ययन अपेक्षाकृत सक्रिय है, जहाँ एक वर्ष उच्च स्तरीय हिंदी पढ़ना अनिवार्य है।

कोरियाई विद्यार्थियों के लिए भारत जाकर हिंदी और भारत संबद्ध विषय पढ़ने के कई आयोजित कार्यक्रम हैं। प्रतिवर्ष सर्दियों की छुट्टियों में दिल्ली विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान विभाग की देख-रेख में तीन सप्ताह हिंदी पढ़ने का कार्यक्रम है। विद्यार्थी अपने पैसों से इस कार्यक्रम में भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त आठ सत्रों में से एक सत्र विदेश में रहकर पढ़ने का मौका देने वाले विश्वविद्यालय के 7+1 कार्यक्रम या BRICs नामक एक विशेष पाठ्यक्रम के अंतर्गत कोरियाई विद्यार्थियों को 4-6 महीने भारत में ठहरकर पढ़ने का सुअवसर मिलता है, उनको छात्रवृति भी मिलती है। लगभग सभी विद्यार्थी इन कार्यक्रमों से लाभान्वित हुए हैं, इन कार्यक्रमों में प्राप्त ग्रेड विश्वविद्यालय द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकृत होता है।

शैक्षणिक संस्थाओं के बाहर हिंदी-शिक्षण

दक्षिण कोरिया में विभिन्न उद्देश्यों से अपने आप हिंदी सीखने के उत्सुक अनेक जनसाधारण लोग भी होते हैं। संभवत: इसी माँग के कारण छोटी प्राइवेट शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी पढ़ाई जाती है, वहाँ के अधिकांश विद्यार्थी ऐसी कंपनियों के कर्मचारी हैं, जो भारत के साथ व्यावसायिक संबंध स्थापित करना चाहती हैं। सियोल में स्थित जंगदोंग मेथोडिस्ट गिरजाघर द्वारा सामाजिक शिक्षा कार्यक्रम में अन्य एशियाई भाषाओं के साथ हिंदी की शाम कक्षा होती है, कुछ हिंदी-प्रेमी इंटरनेट की वेबसाइट पर हिंदी वार्त्तालाप सीखते हैं। वेबसाइट 'हिंदी पाठशाला', जो सन् 2003 में खुली थी और सन् 2009 में बंद हो गई तथा दूसरी वेबसाइट 'हिंदी वार्त्तालाप अध्ययन', जो सन् 2007 में खुल गई, दोनों वेबसाइटों की सदस्य संख्या एक हजार के आस-पास है। सन् 2001 में खुली एक वेबसाइट का नाम है 'भारतीय फिल्म-प्रेमियों की मंडली', जिसकी सदस्य संख्या तेरह हजार के करीब है। वेबसाइट के संचालक का कहना है कि उनमें से कम-से-कम दस प्रतिशत लोग हिंदी फिल्म के प्रति प्रेम के कारण हिंदी सीखने के लिए उत्सुक हैं। इस प्रकार कई कारणों से कोरिया के अनेक जनसाधारण लोगों में हिंदी के प्रति उत्साह बढ़ता जा रहा है।

हिंदी-शिक्षण से संबंधित शोधकार्य

दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता रहता है, उनमें से हाल में सेवानिवृत्त प्रो. स हो जंग की 'हिंदी उच्चारण प्रवेशिका', प्रो. ई जंग

हो की 'हिंदी व्याकरण', इस लेखिका की 'हिंदी भाषा की प्रवेशिका' आदि उल्लेखनीय हैं। भाषा-शिक्षण के लिए अत्यंत आवश्यक एक और चीज है शब्दकोश। सन् 1995 में प्रो.ई जंग हो के प्रधान संपादकत्व में 'प्रथम हिंदी-कोरियाई शब्दकोश' और सन् 2008में इस लेखिका के प्रधान संपादकत्व में प्रथम 'कोरियाई-हिंदी शब्दकोश' प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त कई कोरियाई एवं भारतीय प्राध्यापकों ने 'हिंदी वार्त्तालाप' की पुस्तकें छपवाई हैं।

हिंदी-शिक्षण से सीधे संबद्ध कुछ प्राध्यापकों के शोधकार्य के विषय में अति संक्षिप्त विवरण देना इस आलेख की पूर्ति के लिए अपेक्षित होगा, जिससे दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण गहन एवं दृढ़ बना है। प्रो. स हो जंग का शोधक्षेत्र हिंदी स्वनिम विज्ञान एवं भारतीय दर्शन रहा, वे सन् 2010 में तीस वर्षों के सफल अध्यापन के बाद सेवानिवृत्त हुए हैं। प्रो. ई जंग हो ने नई कहानी, हिंदी साहित्य के आधुनिकीकरण, रवींद्रनाथ एवं कोरियाई साहित्य आदि पर शोधप्रबंध लिखे हैं। कुछ वर्षों से उनका ध्यान गांधी के सम्यक् अध्ययन पर केंद्रित है। इस लेखिका ने मूल पाठ पर आधारित मध्यकालीन एवं आधुनिक हिंदी साहित्य, रामकथा, भारतीय नारी, भारतीय सांप्रदायिकता आदि से संबंधित पुस्तकें एवं शोधप्रबंध लिखे हैं और भारतीय साहित्येतिहास-लेखन में विशेष रुचि दिखाई है। बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के हिंदी विभाग के प्रो. को होंग गन ने केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ी। उनका शोधक्षेत्र राजनीतिशास्त्र है। उसी विभाग की प्रो. नोयंग जा की विशेष रुचि लोककथा में है। उन्होंने पंचतंत्र, कबीरदास आदि पर शोधप्रबंध लिखे हैं इन प्रोफेसरों से जूनियर हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज के प्रो. छोई जोंग छन ने हिंदी भाषा के कई पहलुओं का भाषा वैज्ञानिक अनुसंधान किया है और भारतीय सांप्रदायिकता, भारतीय मुसलमान, पंचायत व्यवस्था आदि पर शोधकार्य किया है। हाल में उनका ध्यान पाणिनि, भर्तृहरि पर केंद्रित है। प्रो. लिम गन दोंग ने कालिदास के मूल पाठ के विश्लेषण पर आधारित शोधप्रबंध लिखा है और उनका ध्यान योग, सांख्य आदि भारतीय दर्शन से संबंधित विषयों पर भी केंद्रित है। प्रो. ई उन गू ने प्रेमचंद के कथा साहित्य, दलित साहित्य आदि पर शोधप्रबंध लिखे हैं। उन्होंने हिंदू धर्म, भारतीय बौद्ध धर्म, भारतीय सिनेमा पर पुस्तकें भी लिखी हैं। उनकी रुचि विविध क्षेत्रों में है। कोरियाई प्रोफेसरों के भारत विषयक लगभग सभी शोध प्रबंध कोरियाई भाषा में प्रकाशित हुए हैं।

अनुवाद कार्य भी चलता रहता है, जिन साहित्यिक कृतियों का अनुवाद हुआ, उनमें से उल्लेखनीय हैं—तमस, भारतीय लोक कथाएँ (अनुवादक प्रो. ई जंग हो), भारतीय छोटी कहानियाँ और अपना मोरचा (अनुवादक यह लेखिका), निर्मला, प्रेमचंद की छोटी कहानियाँ (अनुवादक प्रो. ईउन गू) इत्यादि। हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक ग्रंथों का अनुवाद करने में प्रो. नो यंग जा सबसे आगे हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य की रूपरेखा आदि का अनुवाद किया है। कोरियाई कृतियों का भी हिंदी में अनुवाद हुआ है। कोरिया अनुवाद संस्था से अनुदान प्राप्त कर प्रो. स जोंग सुन एवं डॉ. ज्ञानम ने कोरिया की सुप्रसिद्ध प्राचीन कथाओं का, इस लेखिका एवं प्रो. कर्ण सिंह चौहान ने कोरिया की प्रतिनिधि आधुनिक कविताओं का, प्रो. नोयंगजा एवं प्रो. आलोक राय ने कोरिया में अतिचर्चित उपन्यास 'ग्वांजांग' का अनुवाद किया है।

शोध कार्य के संदर्भ में मैं यह भी बताना चाहती हूँ कि हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज का हिंदी विभाग समय-समय पर राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन एवं संचालन करता रहा है। सन् 2007 में भारत सरकार के पूर्ण समर्थन से 'पूर्वी एशिया में हिंदी-शिक्षण एवं अध्ययन' विषय पर अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन सुसंपन्न हुआ था।

हिंदी-शिक्षण में भारतीय प्राध्यापकों की भूमिका

विभाग में भारतीय प्राध्यापकों की दो-तीन वर्षों की सीमित कालावधि के लिए नियुक्ति की जाती है। अनेक भारतीय प्राध्यापक कोरिया में आए। उनका हिंदी-शिक्षण को मजबूत बनाने में बड़ा योगदान रहा है। वे न केवल हिंदी भाषा पढ़ाते हैं बल्कि भारतीय संस्कृति के संप्रेषण का काम भी करते हैं। विद्यार्थी उनके माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं और दिल-दिमाग पर

भारत से संबंधित एक छाप बना लेते हैं, जो हमेशा के लिए कायम रहती है। अधिकांश भारतीय प्राध्यापक भारत लौटकर कोरियाई संस्कृति के संप्रेषक बन जाते हैं। सचमुच, वे भारत एवं कोरिया, दोनों देशों के औपचारिक-अनौपचारिक सांस्कृतिक राजदूत होते हैं।

उपसंहार

सन् 1972 में हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण एवं भारत विद्याध्ययन के लिए उपयुक्त भूमि तैयार हुई। पिछले चालीस वर्षों में हिंदी-शिक्षण एवं भारत विद्याध्ययन में निरंतर प्रगति होती रही तथा अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुई हैं। अब पिछले चालीस वर्षों के दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण का आत्म-निरीक्षण करते हुए बदलते हुए परिवेश में दक्षिण कोरियायियों की अपनी आवश्कताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त हिंदी-शिक्षण-व्यवस्था एवं पद्धति के निर्माण की ओर अग्रसर होना होगा।

□

Professor, Department of Indian Studies,
270 Imun-dong, Dongdaemun-gu Seoul 130-791,
Korea

जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती।

—महात्मा गांधी

11 हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप : संभावनाओं की ओर एक सार्थक प्रयास

● जिष्णु शंकर

पिछले पाँच-सात सालों में अमेरिका में हिंदी-उर्दू के जानकार लोगों की माँग काफी तेजी से बढ़ी है। कारण कई हैं—यहाँ की संवर्धित होती भाषा विविधता, ग्लोकुलन-जनित व्यावसायिक जरूरतें, स्वास्थ्य, सुरक्षा समाज-सेवा इत्यादि सब में हिंदी-उर्दू जाननेवालों की आवश्यकता महसूस हो रही है। इसके मद्देनजर यहाँ की सरकार ने यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास ऐट ऑस्टिन में पहली हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप की स्थापना की है। वैसे फ्लैगशिप अन्य भाषाओं के भी हैं—मसलन अरबी, चीनी, रूसी, यूरेशियाई और अफ्रीकी भाषाओं के, लेकिन हिंदी-उर्दू का यह पहला फ्लैगशिप है। इस संस्था का ध्येय है—हिंदी-विज्ञ 'ग्लोबल प्रोफेशनल' का निर्माण। अर्थात् अपने क्षेत्र में व्यावसायिक रूप से सक्षम ऐसे ज्योति-पुंज, जिनकी हिंदी-उर्दू न सिर्फ व्यावहारिक हो, बल्कि किसी मातृभाषी की सी नैसर्गिकता से संपन्न हो। फ्लैगशिप संस्थाओं के निर्माण को मैं क्रांति या आंदोलन तो नहीं कहूँगा, लेकिन यह एक ऐसी प्राकृतिक चेष्टा है, जो उच्चस्तरीय भाषा-शिक्षण के परिणामों को आमूल-चूल बदल दे सकती है। इसमें विभिन्न सहयोगियों, जैसे—सरकार, वाणिज्य और शिक्षा-संस्थाओं के सहयोग से, ऐसे भाषा-निपुण व्यक्तित्वों के निर्माण की परिकल्पना है, जो अपने आप में अभूतपूर्व है।



- 2007 से यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सस ऐट ऑस्टिन के एशियन स्टडीज विभाग और हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप में वरिष्ठ व्याख्याता
- शिक्षा : दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्यूनिकेशन तथा सिराक्यूज यूनिवर्सिटी से स्नातक
- 1997 से 2007 तक सिराक्यूज यूनिवर्सिटी के भाषा विभाग में हिंदी शिक्षक और वहाँ के साउथ एशिया सेंटर में सह-निदेशक
- अंतर्जाल के माध्यम से भाषा सिखाने के उपक्रम, 1997 में सिराक्यूज यूनिवर्सिटी से ही आरंभ
- दिल्ली में कुछ काल संवाददाता के रूप में भी कार्य
- भाषा पढ़ाने के अतिरिक्त भारत की अघोर परंपरा पर शोध
- मुख्य प्रकाशन 'अघोर वचन शास्त्र', 'भगवानरामलीलामृत' एवं 'द बुक ऑफ अघोर विज्डम'।

सुनने में भले सरल लगे, यह काम वास्तव में काफी जटिल है। वजहों की कमी नहीं है, लेकिन कुछ खास गिनी जा सकती हैं। सबसे पहले तो रोमांस भाषाओं सरीखे हिंदी-उर्दू के लिए शिक्षण सामग्री की बहुलता नहीं है। प्राय: हिंदी पढ़ाने वाले हर विश्वविद्यालय में शिक्षक अपनी सामग्री स्वयं ही तैयार करते हैं। जो नहीं करते, वे कुछ गिनी-चुनी पाठ्यपुस्तकों पर आश्रित रहते हैं। अपने आप में यह बुरा नहीं है, यदि पढ़ानेवाले की अध्यापन-प्रतिभा विलक्षण हो! यदि नहीं, तो कक्षा बहुत जल्द नीरसता और महज व्याकरण के अथाह सागर में डूबने-उतराने लगती है। नवीन शिक्षा-पद्धतियों में आधुनिक दृश्य-श्रव्य सामग्री का समावेश वांछित है; जिससे छात्र को सांस्कृतिक वास्तविकता का भी प्रत्यक्ष परिचय हो। हिंदी-उर्दू अभी तक ऐसी सामग्रियों की न्यूनता से चित्रित रही हैं।

दूसरे, वैसे तो हिंदी-उर्दू-अध्यापन की कई प्रणालियाँ हैं, कई सिद्धांत हैं, कई मत और कई पाठ्यक्रम हैं, लेकिन अकसर यहाँ किसी भी आम विश्वविद्यालय का मूल भाषा-कार्यक्रम दो वर्षों का होता है, मतलब चार सत्र। चार सत्रों में एक नया-नवेला विद्यार्थी कितना भाषा-ज्ञान अर्जित कर पाएगा, यह कहना तो मुश्किल है, लेकिन किस स्तर तक ही पहुँच पाएगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। हर विश्वविद्यालय का अपना विदेश-यात्रा या विदेश में भाषा सिखाने का कार्यक्रम भी नहीं होता है। इसके कुछ अन्य विकल्प यहाँ उपलब्ध हैं, लेकिन हर छात्र

इनका पूरा फायदा नहीं उठा पाता। और दो साल हिंदी-उर्दू पढ़ने के बाद यदि छात्र तीसरे साल में आगे पढ़ना चाहे तो अमूमन विकल्प समाप्त हो जाते हैं। यह सही है कि कुछ जगहों पर हिंदी या उर्दू के साहित्य या इनके अनूदित साहित्य, हिंदी फिल्म, उर्दू गजल या इसलाम की संस्कृति शीर्षक के कोर्स उपलब्ध होते हैं, लेकिन उनसे भाषा-शिक्षण की मूल समस्या का निदान नहीं हो पाता है।

तीसरे, भाषा-अर्जन में लगनेवाले समय और अभिव्यक्ति-क्षमता का यदि ग्राफ बनाएँ तो वह किसी आइसक्रीम कोन की तरह दिखेगा। कुछ शब्दों या सूचियों को रट लेना बहुत आसान है, जैसे सप्ताह के दिन, महीनों के नाम, यदि मिल जाए तो हिंदी में किसी रेस्तराँ की व्यंजन-तालिका। किंतु भाषा उत्पादन की अवस्था तक पहुँचने में, यानी स्वयं सोचकर की गई अभिव्यक्ति, जो महत वाक्यांशों तक सीमित न हो, परिप्रेक्ष्य के अनुसार सटीक हो और सुननेवाले को ग्राह्य हो, बहुत समय लगता है। इसके लिए किसी भी पढ़नेवाले को न केवल समय, सामग्री और भाषा के इस्तेमाल के विकल्पों की जरूरत होती है, बल्कि एक ऐसी निष्ठा और नियमबद्ध अभ्यास की भी, जो भाषा को अन्य विषयों से हीन न समझे। हिंदी-उर्दू के व्यावसायिक जगत् से स्पष्ट रूप से न जुड़े होने के कारण प्रायः छात्रों में ऐसी लगन का अभाव ही देखा जाता है।

रूपर्टजी के ही तत्त्वावधान में दो और परियोजनाएँ साकार हो रही हैं। एक का शीर्षक है 'मेरा शहर' और दूसरी का 'स्पोकन थिसॉरस' यानी 'बोलता पर्यायवाची कोश'। पहली परियोजना, जैसाकि नाम इंगित करता है, साक्षात्कारों की एक ऐसी दृश्य-शृंखला है, जहाँ भिन्न-भिन्न शहरों में रहनेवाले शहर के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं। करीब तीस से पैंतीस मिनट की अवधि वाले इन साक्षात्कारों से छात्रों को न केवल भाषा को सुनने और सुनकर समझने की अच्छी सामग्री मिल जाती है, बल्कि किसी शहर के रहनेवाले की स्थानीय भाषा-शैली की जानकारी और नए शहर

तो चलिए आपको हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप परिकल्पना के बारे में कुछ विस्तार से बता दूँ। हिंदी-उर्दू शिक्षण की जो समस्याएँ मैंने भी गिनाईं, उनका ध्यान में रखते हुए इस फ्लैगशिप का पाठ्यक्रम चार वर्षों का रखा गया है—नवीन पूर्व स्नातकों के लिए। इससे दो साल की भाषा शिक्षा-सीमा की समस्या तो सुलझ जाती है, लेकिन चार सालों में भी भाषा से पूर्णतया अनभिज्ञ किसी विद्यार्थी को किसी मातृभाषी के समकक्ष ले जाना असंभवप्राय है। इसके लिए फ्लैगशिप ने 'फ्लैगशिप बाउंड,' यानी फ्लैगशिप-उन्मुख सत्र या वर्ष, छात्र की क्षमता के अनुसार, का अनुसंधान किया है। फ्लैगशिपोन्मुख छात्र औपचारिक रूप से फ्लैगशिप का सदस्य बनने से पहले ही हिंदी-उर्दू पढ़ना शुरू कर देते हैं, ताकि जब वे फ्लैगशिप के अभिन्न अंग बनें, तब तक भाषा का कुछ मूल अंश उनका अपना हो चुका हो। तात्पर्य यह कि फ्लैगशिप के चार सालों के अतिरिक्त वे पहले से ही पढ़ाई करके इतना भाषा-ज्ञान अर्जित कर लें कि फिर बाकी के चार साल उनके लिए एक अनूठे अनुभव का आगाज करें। इन चार सालों में से पहले साल में विद्यार्थी हिंदी और उर्दू, दोनों साथ-साथ बराबरी से पढ़ते हैं। इनमें दोनों भाषाओं का लिपि-ज्ञान सन्निहित है। पहले साल के बाद अपनी अभिरुचि के अनुसार छात्र हिंदी या उर्दू में से किसी एक भाषा में अधिक जोर देते हैं, हालाँकि दोनों भाषाओं की पढ़ाई साथ-साथ चलती रहती है।

दो सालों की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद तीसरे साल हिंदुस्तान आने का प्रावधान है। हालाँकि दो साल पूरे होने के पहले भी यदि छात्र चाहे तो अपने व्यय पर ग्रीष्म-सत्र में भारत जा सकता है, लेकिन फ्लैगशिप का यह तीसरे साल का प्रावधान पूरे एक एकेडेमिक वर्ष का कार्यक्रम है। वैसे एकवर्षीय कार्यक्रम भारत में 'अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज' के माध्यम से भी चलता है, लेकिन वह मूलतः स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए होता है। फ्लैगशिप के कार्यक्रम में विद्यार्थी न केवल हिंदुस्तान में हिंदी और उर्दू पढ़ते हैं, बल्कि बनारस, हैदराबाद आदि स्थानों में जाकर हिंदी-उर्दू की क्षेत्रीय विशेषताओं से अवगत होते हुए उनका रसास्वादन भी करते हैं। चौथे साल में वापस ऑस्टिन आकर वे स्वतंत्र किंतु मार्गदर्शित भाषा-अध्ययन करते हैं।

फ्लैगशिप के विद्यार्थियों के भारत-प्रवास कार्यक्रम की भी अपनी विशेषताएँ हैं। आमतौर पर हर ऐसे कार्यक्रम में देश, संस्कृति और भाषा के सभी आयामों में संपूर्ण अवगाहन की भावना निहित होती है। फ्लैगशिप के छात्र भी इसी उद्देश्य से भारतीय परिवारों के साथ रहते हैं। किंतु विशेष यह है कि भाषा पढ़ने और व्यवहार में लाने के साथ-साथ वे अपने स्कूल के मूल विषयों का अध्ययन भी हिंदू-उर्दू के समावेश के साथ भारत में ही करते हैं। इसके लिए फ्लैगशिप ने मान्य संस्थाओं के शिक्षकों से तारतम्य बैठाया है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रवास के अंतिम छह हफ्तों में उन्हें फ्लैगशिप-निर्देशित, किंतु उनके विषय के लिए उपयुक्त, किसी संस्था के साथ इंटर्नशिप करके हिंदी-उर्दू में कार्यानुभव भी प्राप्त करना होता है। अपने विषय में काम करते हुए हिंदी-उर्दू के व्यवहार की यह एक नवीन कल्पना है।

इस पूरी प्रक्रिया में हर विद्यार्थी की अभिरुचि, प्रगति और प्रतिभाओं का समीचीन ध्यान रखा जाता है। जाहिर है, आमतौर पर कक्षाओं में सभी छात्रों की सामर्थ्य एक जैसी नहीं होती। अकसर दक्षिण एशिया मूल के विद्यार्थी बोलने और सुनने में ज्यादा सक्षम होते हैं, जबकि वे, जो दक्षिण मूल के नहीं होते, लिखने-पढ़ने और व्याकरण में सशक्त होते हैं। इन सभी की विविध प्रतिभाओं को एक स्तर पर लाने के लिए फ्लैगशिप के अध्यापक और सह-अध्यापक एक-एक छात्र के साथ समुचित समय बिताने का प्रबंध रखते हैं। उच्चारण का अभ्यास कराया जाता है, बातचीत करने का रियाज किया जाता है। वर्तनी और लेखन, दोनों सुधारने में समय लगाया जाता है। व्याकरण की गुत्थियों को सुलझाने में मदद की जाती है।

सैद्धांतिक रूप से फ्लैगशिप एक नई दिशा की ओर बढ़ता कदम है। यहाँ पढ़ने-पढ़ाने की न केवल जानी-मानी पद्धतियों का इस्तेमाल होता है, वरन् नई शैलियाँ ईजाद करने पर भी बल दिया जाता है। क्लास के सामने खड़े होकर पारंपरिक रूप से लेक्चर देने के बदले छात्रों के साथ सतत आलाप द्वारा पढ़ाने पर जोर दिया जाता है। इसका भी पूरा प्रयास किया जाता है कि विद्यार्थियों को व्याकरण का ज्ञान तो पूरा हो, लेकिन पाठ्यक्रम मात्र व्याकरण पर आधारित न हो। इसी दिशा में नई-नई शिक्षण सामग्री का विकास भी फ्लैगशिप की न केवल विशेषता है, अपितु हिंदी-जगत् को एक देन भी है, क्योंकि यहाँ विकसित सभी सामग्री नि:शुल्क सबके उपयोग के लिए वेबजाल पर लगा दी जाती है। गौर करें तो पाएँगे कि फ्लैगशिप का मूल-मंत्र ही है हिंदी-उर्दू के अध्यापन को पारंपरिक भाषा-ज्ञान और साहित्य की स्वीकृत किंतु सीमाबद्ध परिपाटी से निकालकर इसका दायरा इतना विस्तृत किया जाए कि जीवन के सभी व्यावहारिक क्षेत्रों को यह आत्मसात् कर ले। महज भाषा या साहित्य की पढ़ाई न रहकर हर विषय और व्यवहार में इसका दखल हो जाए।

यहाँ कुछ उदाहरण बताना उपयुक्त रहेगा। नए-नए सीखनेवाले भाषा की मूल औपचारिकताओं को नहीं जानते हैं। विश्वविख्यात हिंदीविद् प्रोफेसर रूपर्ट स्नेल ने ऐसी ही कई अभिव्यक्तियों को लेकर मातृभाषी लोगों से बातचीत कर उन साक्षात्कारों का फिल्मांकन किया, फिर उन फिल्मों को विषय निर्धारित छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर वेब पर लगा दिया, जिससे विद्यार्थी न केवल उन अभिव्यक्तियों से परिचय पा सकें, बल्कि उनके प्रति अवधारणाओं से भी वाकिफ हो सकें। फ्लैगशिप की वेबसाइट पर ये सभी फिल्म क्लिप 'हमारी बोली' शीर्षक से प्रकाशित हैं। कुछ विषय हैं—नमस्ते और नमस्कार में फर्क; अभिवादन और विदा कहने के अलग-अलग तरीके; चिट्ठियों को शुरू और खत्म करने के तरीकों पर विचार; 'जी' का प्रयोग कैसे और कहाँ होता है; पहली बार किसी से मिलने पर किस तरह बात की जाती है; किसी प्रोफेसर का संबोधन कैसे हो; आप, तुम और तू के प्रयोगों की विशेषता; 'आप हो' के इस्तेमाल पर विचार; किसी से मिलने पर, निमंत्रण पाने पर कैसे पता चले कि यह वास्तविक निमंत्रण है या महज औपचारिकता; निमंत्रण पर न जा सकने की स्थिति में कैसे मना किया जाए; कहीं दावत खाने के बाद शुक्रिया कैसे कहा जाए इत्यादि। चिट्ठियों के शुरू और बंद करने की विधि और विभिन्न सर्वनामों के प्रयोग तो बहुत सी किताबों में समझाए गए हैं, किंतु इस प्रकार से इनका दृश्य-श्रव्य निरूपण फ्लैगशिप का ही प्रयास है। यह शृंखला सबके उपयोग के लिए उपलब्ध है।

रूपर्टजी के ही तत्त्वावधान में दो और परियोजनाएँ साकार हो रही हैं। एक का शीर्षक है 'मेरा शहर' और दूसरी का 'स्पोकन

थिसॉरस' यानी 'बोलता पर्यायवाची कोश'। पहली परियोजना, जैसाकि नाम इंगित करता है, साक्षात्कारों की एक ऐसी दृश्य-शृंखला है, जहाँ भिन्न-भिन्न शहरों में रहनेवाले शहर के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं। करीब तीस से पैंतीस मिनट की अवधि वाले इन साक्षात्कारों से छात्रों को न केवल भाषा को सुनने और सुनकर समझने की अच्छी सामग्री मिल जाती है, बल्कि किसी शहर के रहनेवाले की स्थानीय भाषा-शैली की जानकारी और नए शहर के बारे में सामान्य ज्ञान भी मिलता है। इस तरह 'हमारी बोली' और 'मेरा शहर' दोनों वीडियो फिल्मांकन पर आधारित दृश्य शृंखलाएँ हैं। दूसरी परियोजना, स्पोकन थिसॉरस एक अनूठा श्रव्य प्रयोग है। इसमें समानार्थी शब्दों का वाचिक निरूपण और विवेचन है। विद्यार्थियों के लिए यह जान पाना जटिल होता है—मातृभाषी आम शब्द जैसे कि प्रेम, प्यार, इश्क, मोहब्बत, स्नेह, वात्सल्य वगैरह में क्या फर्क समझते हैं और इनका प्रयोग कहाँ उचित माना जाता है। साक्षात्कारों के माध्यम से इनका खुलासा किया गया है। बहुत शीघ्र ही दोनों शृंखलाएँ 'मेरा शहर' और 'स्पोकन थिसॉरस' भी फ्लैगशिप की वेबसाइट को अलंकृत करेंगी।

एक और नई परियोजना अभी अपने शैशवकाल की अँगड़ाई ले रही है। न्यूयॉर्क, न्यू जर्सी जैसे इलाकों को यदि गौर से देखें तो पाएँगे कि यहाँ रहनेवाले बहुत से दक्षिण एशिया मूल के लोगों को अंग्रेजी का या तो नहीं या बिलकुल कामचलाऊ इल्म होता है। रोजमर्रा के काम में तो यह चल जाता है, मगर किसी खास अवसर पर, जैसे स्वास्थ्य संबंधी आपात स्थिति या शोषण के घरेलू प्रकरणों में, अस्पताल कर्मचारियों को भाषा के अभाव में खासी दिक्कत झेलनी पड़ती है। ऐसे समय वे अनुवादक कंपनियों से सहयोग लेते हैं। कुछ तो अपने ही अस्पताल में अनुवाद और भाषाबोध के विभाग ही खोल लेते हैं। ऐसी स्थिति को देखते हुए न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी के सहयोग से फ्लैगशिप एक 'लैंग्वेज फॉर हेल्थ,' यानी स्वस्थ्य-भाषा का एकसत्रीय पाठ्यक्रम तैयार करने में जुटा है। इस परियोजना का मकसद यह है कि इससे न केवल इस विश्वविद्यालय के छात्र लाभान्वित हों, अपितु स्वस्थ्य कर्मचारी भी अपने दैनंदिन कार्य में इसका उपयोग कर सकें। इसके अलावा जो छात्र भारत जाकर शोध करना चाहें या भारत से यहाँ आए हुए लोगों से हिंदी में व्यवहार करना चाहें, वे इसमें समर्थ हो सकें। इस परियोजना पर काम तीन वर्षों तक चलेगा। उसके बाद सभी तैयार सामग्रियों को, जिनमें स्वास्थ्य संबंधी फिल्में, हिंदी-उर्दू की स्वास्थ्य शब्दावली आदि शामिल हैं, फ्लैगशिप के वेबसाइट पर उपलब्ध की जाएँगी।

मगर सच पूछिए तो फ्लैगशिप की खासियत है इसके शिक्षकों की अध्यापन-प्रणाली। जैसाकि मैंने पहले जिक्र किया, पारंपरिक तौर से उपाख्यान करने के बदले छात्रों के साथ बातचीत या खेल-खेल में की गई विविध क्रियाओं के माध्यम से पढ़ाई को सरल और ग्राह्य, दोनों बनाने का प्रयास किया जाता है। रूपर्टजी की नवीन परिकल्पनाओं का उल्लेख मैं कर ही चुका हूँ, अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त हिंदी अध्यापक एवं फ्लैगशिप के भूतपूर्व निर्देशक हर्मन वेन ओल्फनजी, जो हाल ही में अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, रोचक फिल्मों, जीवंत पाठ्य-सामग्री, नवयुवकों में विचार-बोध उत्पन्न करनेवाले विषयों के माध्यम से पढ़ाते थे। सैयद अकबर हैदर, जो उर्दू की पूरी बागडोर सँभालते हैं, समसामयिक कहानियों, गजलों और प्रतिष्ठित साहित्यकारों से साक्षात्कार कराके पढ़ाते हैं। मैं स्वयं पावरप्वॉइंट का प्रयोग एक निरंतर बढ़ती पुस्तक के रूप में करता हूँ, इसके माध्यम से जीवंत सामग्री यानी वह सामग्री, जो पढ़ाने के उद्‌देश्य से न बनाई गई हो, बल्कि रोजमर्रा के जीवन से ली गई हो, जिसे कुछ लोग आधिकारिक सामग्री भी कहते हैं, जैसे समाचार-पत्रों के विज्ञापन व लेख, कहानियाँ, रोचक जानकारी, छोटे-छोटे फिल्म क्लिप, जिनमें विज्ञापन और फिल्में दोनों शामिल हैं, का इस्तेमाल व्याकरण, भाषा की विविधता, उसमें होने वाली गलतियों, शैली, रजिस्टर आदि समझाने के लिए करता हूँ। क्लास में अपने बनिस्बत छात्रों से बुलवाने और लिखवाने का प्रयास अधिक करता हूँ।

लेकिन इससे भी बात पूरी नहीं होती। विद्यार्थियों का हिंदी-उर्दू की संस्कृति के प्रति ज्ञान सर्वांगीण हो, इसके लिए दक्षिण एशिया से संबंधित अनेक कोर्स विभिन्न विभागों में फ्लैगशिप छात्रों को उपलब्ध रहते हैं। यूनिवर्सिटी के आम विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध साहित्य विषयक जो कोर्स फ्लैगशिप अध्यापकों द्वारा पढ़ाए जाते हैं,

उनका भी कुछ अंश फ्लैगशिप विद्यार्थी और अध्यापक के तालमेल से हिंदी या उर्दू में होता है। इस प्रकार फ्लैगशिप का कार्यक्रम यूनिवर्सिटी के विस्तृत विभागों में अन्यत्र उपलब्ध कई मेजर कार्यक्रमों के साथ समानांतर चलता है।

योजनाबद्ध तरीके से हम लोग साहित्यकारों और कलाकारों को भी आमंत्रित करते हैं। हालाँकि इसके श्रोता सिर्फ फ्लैगशिप के विद्यार्थियों का किसी जीती-जागती हस्ती को सुनने, उनसे मिलने और बातचीत करने का जो सुअवसर प्राप्त होता है उसका परिणाम महज अंकों या शब्दों में नहीं किया जा सकता। वस्तुत: फ्लैगशिप का पूरा प्रयास यही रहता है कि जिस प्रकार से भी हो, हम छात्रों को भाषा और उसकी संस्कृति का जितना ज्यादा ज्ञान, जितनी अधिक जानकारी दे सकें, जितनी अधिक उनकी रुचि को समृद्ध कर सकें, उतना करें।

किंतु फ्लैगशिप की कुछ कहानी अभी भी बाकी है। सामग्री विकास, आधुनिक पढ़ाई इत्यादि का लाभ केवल हम तक सीमित न रहे, इसका भी फ्लैगशिप में प्रावधान है। देश भर में कई कॉन्फ्रेंस और कार्यशालाओं में जाकर हम फ्लैगशिप की गतिविधियों से हिंदी-उर्दू के वृहद शिक्षण समाज को अवगत कराते हैं और यथासंभव अपनी सामग्री उनके उपयोग के लिए प्रस्तुत करते हैं। फ्लैगशिप में आनेवाले छात्र पूर्व से ही भाषा-संपन्न हों, इसके लिए उच्चतर या माध्यमिक विद्यालयों में भी हिंदी शुरू की जाए, इस विषय पर बात चल रही है, हालाँकि यह इतना सहज नहीं। फिर भी!

अधिक जानकारी के लिए देखें: http:www.hindiurduflagship.org

□

Department of Asian studies, WCH 5.105
University of Texas at Austin, TX 78712

भारतवर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केंद्रीय भाषा हिंदी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात् उसके हृदय और मस्तिष्क की भूख मिटाने वाली, करोड़ों की आशा-आकांक्षा, अनुराग-विराग, रुदन-हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊँचा करना, करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के सुख-दु:ख के प्रति संवेदनाशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और कुसंस्कार से मुक्त करना।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

12 फिनलैंड में हिंदी

● डॉ. अनीता गांगुली

उत्तरी यूरोप में ध्रुवीय क्षेत्र के नजदीक एक छोटा या देश है फिनलैंड। यह सच है कि एक आम भारतीय इस देश के बारे में बहुत कम जानता है। यदि आप ध्रुवीय क्षेत्रों की बातें करते हैं तो आँखों के सामने बर्फ सी छा जाती है। निस्संदेह एक आम आदमी वहाँ की ठंड एवं बर्फ से घबराएगा, परंतु हिंदी यहाँ बेरोक-टोक घूम रही है। उत्तरी यूरोप के दूसरे देश, जैसे—स्वीडन, डेनमार्क, विशेषकर नॉर्वे में हिंदी की स्थिति काफी अच्छी है तो फिनलैंड में भी कुछ बुरी नहीं। यहाँ मैं विभिन्न क्षेत्रों में, समाज में, स्कूलों में, विश्वविद्यालयों में प्रयुक्त होनेवाली हिंदी के बारे में चर्चा करूँगी।



- **जन्म :** 10.10.1954 (कलकत्ता)
- **मातृभाषा :** बँगला
- **शिक्षा :** एम.ए. (हिंदी, संस्कृत), अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान में डिप्लोमा। आगरा विश्वविद्यालय में 'हिंदी एवं बांग्ला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन' पर पी-एच.डी.।
- **रचानाएँ :** तीन पुस्तकें एवं साहित्य भाषा एवं तुलना से संबंधित लगभग 50 लेख लिखे हैं। इसके अलावा आदिवासी-जनजाति क्षेत्रों का कई वर्षों तक सर्वेक्षण किया एवं उनके लिए शिक्षण सामग्री तैयार की। कोश विज्ञान एवं तुलनात्मक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य। यात्रा (भ्रमण) करना एवं यात्रा-वृत्तांत लिखना मेरा शौक है। भाषा के साथ-साथ साहित्य में भी रुचि। बहुत से निबंध भी पुरस्कृत हुए हैं।
- तीन वर्ष तक हेलसिंकी विश्वविद्यालय (फिनलैंड) में अध्यापन का कार्य।
- **संप्रति :** केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत तथा हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न।

समाज में : यहाँ आनेवाले भारतीय बहुत पुराने नहीं हैं। मेरा अनुमान है पचास एवं साठ के दशक से भारतीय यहाँ हैं। यहाँ भारतीय दूतावास भी है, जो सन् 1968से कार्य कर रहा है। उससे पहले स्वीडन में स्थित भारतीय दूतावास यहाँ का कार्य देखता था। आजकल कुछ हैं। भारतीया यहाँ कार्यरत कुल मिलाकर एकत्रित आँकड़ों के अनुसार लगभग 445 परिवार फिनलैंड में हैं। यहाँ हम दो प्रकार के परिवार पाते हैं :

1. शुद्ध परिवार, और 2. इंडो-फिनिश परिवार।

शुद्ध भारतीय परिवार के लोग घर में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं, परंतु जब भारतीय दूसरे भारतीयों से मिलते हैं तो वे हिंदी का प्रयोग करते हैं। प्रारंभ में वे अवश्य अंग्रेजी में शुरुआत करते हैं, फिर धीरे-धीरे हिंदी बोलने पर आ जाते हैं। वे बच्चों के साथ हिंदी या मातृभाषा में बातें करते हैं। जहाँ माता-पिता बच्चों के साथ भारत जाते हैं, वहाँ वे हिंदी फिल्में देखते हैं या देखना पसंद करते हैं। यहाँ कम-से-कम दस भारतीय/पाकिस्तानी दुकानें हैं, जो हिंदी वीडियो कैसेट किराए पर देती हैं। उनके बच्चे हिंदी बोल एवं समझ सकते हैं, परंतु वे हिंदी लिख एवं पढ़ नहीं सकते हैं। यहाँ आने के बाद मैंने ऐसे कुछ बच्चों को पढ़ाया।

दूसरी बात यह है कि स्वयं हिंदी अच्छी तरह जानने पर भी उनके पास समय नहीं है कि वे अपने बच्चों को सिखाएँ। मैंने सुना है कि कुछ वर्ष पहले भारतीय दूतावास का एक व्यक्ति ऐसे बच्चों को अपनी रुचि से हिंदी पढ़ाता था। भारतीय दूतावास में हिंदी की बहुत सी पुस्तकें हैं एवं अच्छा-खासा पुस्तकालय भी है। उनके पास अच्छी हिंदी फिल्मों के कैसेट भी हैं, परंतु बिना व्यावहारिक शिक्षा के ये चीजें काम नहीं करती हैं।

2. इंडो-फिनिश परिवार जिन्होंने फिनिश लड़के या लड़कियों से शादी की है, वे अपने बच्चों, जिन्होंने फिनलैंड में जन्म लिया है एवं पति/पत्नी को हिंदी या अपनी मातृभाषा सिखा नहीं पाए। इसके विपरीत उन्हें स्वयं ही रोज के कार्य को चलाने के लिए अच्छी फिनिश सीखनी पड़ती है।

यहाँ भारतीयों के दो संगठन हैं :

(1) इंडो-फिनिश सोसाइटी–यह संस्था सन् 1954 में स्थापित हुई थी।

(2) इंडियन क्लब–आजकल 'भारत क्लब।' समय-समय पर इसके सदस्य एकत्रित होते हैं और त्योहार आदि मनाते हैं।

यहाँ रेडक्रॉस सोसाइटी है। उनके पास अनुवादक और हिंदी दुभाषिए हैं। इसके अलावा हिंदीभाषी राजनीतिक आश्रयों के लिए हिंदी में नियमावली भी है।

स्कूलों में—फिनलैंड स्कूल बोर्ड कमेटी का विचार है कि बच्चों का यह अधिकार है कि वे अपनी मातृभाषा सीखें। माता-पिता की माँग के आधार पर स्कूल हिंदी अध्यापक का चुनाव करता है, जो सप्ताह में दो दिन अपने निर्धारित समय में निर्धारित स्थान पर कक्षाएँ लेता है, जिसकी सूचना सभी छात्रों को दी जाती है। मैं सरकार अधिकृत एक ऐसे अध्यापक को जानती हूँ, जिसने मुझे बताया कि दुर्भाग्यवश बहुत ही कम बच्चे हिंदी कक्षा में आते हैं और पिछले पाँच वर्षों से अध्यापक नियुक्त होने पर भी छात्रों की संख्या शून्य है। वास्तव में बात यह है कि माता-पिता हिंदी पढ़ने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित नहीं करते हैं।

विश्वविद्यालय में हिंदी प्राथमिक विषय है, मुख्य विषय के रूप में नहीं। हिंदी के अलावा भारतीय भाषाओं में तमिल, मलयालम, बँगला, पाली पढ़ाई जाती हैं। पहले कुछ वर्ष तक उर्दू और कश्मीरी भी पढ़ाई गई थी। संस्कृत के प्रति यहाँ विशेष आदर है। सन् 1871 से हेलसिंकी विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाई जाती है। भारत विद्या के विद्यार्थियों के लिए संस्कृत अनिवार्य है। संस्कृत से कुछ पुस्तकें फिनिश में अनूदित हुई हैं, जैसे– भगवद्गीता, सात उपनिषद्, रामायण और महाभारत आदि। अभी हाल ही में विरपी हेमेनीन अंतीला ने संस्कृत से पंचतंत्र की कहानियों का अनुवाद किया है।

अभी हाल ही में मैंने एक प्राइवेट भाषा संस्था के बारे में सुना। मैं वहाँ गई तो पता चला कि इस वर्ष से ही वहाँ हिंदी पढ़ाना शुरू किया गया है। इसके अलावा यहाँ वयस्कों को अधिकार है कि प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत वे अपनी रुचि का विषय ले सकते हैं। जो प्रौढ़ हिंदी भाषा चुनते हैं, उनके लिए एक हिंदी अध्यापक भी नियुक्त है।

यहाँ एक 'ह्यूरेका' साइंस म्यूजियम है, जहाँ एक ग्लोब में भिन्न-भिन्न देश और उनकी भाषाएँ दरशाई गई हैं। आप किसी भी स्विच को दबाकर किसी भी भाषा में आत्म-परिचय सुन सकते हैं तथा उस भाषा के बारे में जान भी सकते हैं।

विश्वविद्यालय में–फिनलैंड में 17 विश्वविद्यालय हैं। उनमें से केवल हेलसिंकी विश्वविद्यालय में ही सन् 1972 से प्राथमिक स्तर की हिंदी पढ़ाई जाती है—हिंदी-1 एवं हिंदी-2, और किसी वर्ष विशेष पाठ्यक्रम के रूप में हिंदी, हिंदीभाषी स्थानीय अध्यापक द्वारा हिंदी पढ़ाई जाती है। किसी वर्ष फिनिश भाषी अध्यापक द्वारा भी यह पढ़ाई गई। सन् 1989 से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अंतर्गत हिंदी अध्यापक भेजा जा रहा है। यह विभाग के प्रो. पारपोला के परिश्रम और प्रयत्न का फल है। वे स्वयं और उनकी सहधर्मिणी भारत तथा भारतीय भाषा में काफी रुचि रखते हैं। वे भारतीय विद्या के असाधारण प्रोफेसर हैं।

सिर्फ फिनिश ही नहीं वरन् जर्मन, नेपाली, बँगलादेशी छात्र भी यहाँ हैं। हम यह नहीं कह सकते हैं कि कितने छात्रों ने अब तक हिंदी पढ़ी है, क्योंकि जितने छात्र कक्षा में आते हैं, सभी परीक्षा नहीं देते हैं। जितने छात्र परीक्षा देते हैं, विश्वविद्यालय में उनका रिकॉर्ड दर्ज रहता है और उसके अनुसार सन् 1975 से 1995 तक केवल 70 छात्रों ने इसकी परीक्षा उत्तीर्ण की है।

विश्वविद्यालय में हिंदी प्राथमिक विषय है, मुख्य विषय के रूप में नहीं। हिंदी के अलावा भारतीय भाषाओं में तमिल, मलयालम, बँगला, पाली पढ़ाई जाती हैं। पहले कुछ वर्ष तक उर्दू और कश्मीरी भी पढ़ाई गई थी। संस्कृत के प्रति यहाँ विशेष आदर है। सन् 1871 से हेलसिंकी विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाई जाती है। भारत विद्या के विद्यार्थियों के लिए संस्कृत अनिवार्य है। संस्कृत से कुछ पुस्तकें फिनिश में अनूदित हुई हैं, जैसे—भगवद्गीता, सात उपनिषद्,

रामायण और महाभारत आदि। अभी हाल ही में विरपी हेमेनीन अंतीला ने संस्कृत से पंचतंत्र की कहानियों का अनुवाद किया है।

यहाँ के वृद्ध व्यक्ति हिंदी के बारे में कम परंतु हिंदू धर्म के बारे में ज्यादा जानते हैं, जिसके कारण वे हिंदी के स्थान पर इसे हिंदू भाषा कहते हैं। यहाँ के हर व्यक्ति में भाषा सीखने के प्रति झुकाव है। हरेक व्यक्ति चार या पाँच भाषाएँ या उससे अधिक भाषाएँ भी जानता है। निस्संदेह भारतीय संस्कृति सभी को आकर्षित करती है, और इसी आकर्षण से आकर्षित होकर कभी वह दिन भी आएगा जब हिंदी मुख्य विषय के रूप में पढ़ाई जाएगी। बहुत से छात्र प्रतिवर्ष भारत आते हैं। लौटकर उनकी मुझसे यही शिकायत रहती है कि "वहाँ के लोग पूरी तरह हिंदी क्यों नहीं बोलते? बीच-बीच में अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार क्यों करते हैं? इतनी सुंदर भाषा को विकृत क्यों करते हैं? इतनी सुंदर भाषा पर आपको गर्व होना चाहिए! हम तो जब अपनी भाषा बोलते हैं तो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग नहीं करते? यद्यपि हम अंग्रेजी जानते हैं।"

'डॉ. बरतिल तिक्कनेन' डोसेंट दक्षिण एशियाई भाषाविद् ने फिनिश में तीन पुस्तकें लिखी हैं, जो हिंदी से संबंधित हैं—

1. हिंदी व्याकरण सन् 1991 में।

2. एशियाई मुहावरों के बारे में, जिसमें से एक भाग ही हिंदी मुहावरों के बारे में है।

3. 'गोदान' का 'पवित्र गाय' के नाम से फिनिश भाषा में अनुवाद।

फिनिश से सिर्फ एक पुस्तक 'कालेवाला', जो फिनलैंड का राष्ट्रीय महाकाव्य है, हिंदी में अनुवादित हुई है। अनुवादक हैं विष्णु खरे। यहाँ अनुवाद की प्रक्रिया नहीं के बराबर है। मुझे वर्तमान छात्रों से बहुत उम्मीद है कि वे भविष्य में इस तरह का बहुत सा काम करेंगे। तब हिंदी या फिनिश से अच्छी और साहित्यिक पुस्तकें एक-दूसरी भाषा में लिखी जाएँगी।

विश्वविद्यालय में समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा भी ज्ञानवर्धन किया जाता है। 5 नवंबर, 1995 को 'एशियन एवं अफ्रीकन दिवस' मनाया गया था। सन् 1994 में 'भारत का एक दिन' मनाया गया था, जिसमें भारत की झाँकी देखने को मिली थी।

विश्वविद्यालय की भाषा प्रयोगशाला में जिन 40 भाषाओं के लिए 'श्रव्य उपकरण' हैं, उनमें से हिंदी भी एक है।

अन्य क्षेत्र–भारत सरकार की हिंदी प्रचार-प्रसार योजना के अंतर्गत एक फिनिश व्यक्ति ने छात्र के रूप में केंद्रीय हिंदी संस्थान में पिछले वर्ष शिक्षण प्राप्त किया था। कुछ लोग स्वयं की रुचि से हिंदी सीखते हैं। यहाँ कुछ लोग भारत पर आधारित परियोजना/अनुसंधान कार्य से जुड़े होने के कारण हिंदी सीखते हैं। यहाँ योग का भी लोगों को काफी शौक है, जिसके लिए लोग भारत जाते हैं और हिंदी सीखते हैं।

फिनलैंड की भाषा फिनिश है। मैंने पाया कि फिनिश भाषा के कुछ शब्द हिंदी के बहुत करीब हैं, जैसे—कारवार (कड़वा), कहवी (कहवा), कोइरा (कुत्ता), कमरी (कमरा), साता (छाता), सत (सौ), साउना (स्नान), कोटि (कोठी, मकान), माइस (मनुष्य, आदमी), माइनन (मेरा), कुका (कौन)।

भारत और फिनलैंड के बीच मधुर संबंध नया नहीं है, यह पुराने समय से है। 'फिनएअर' की सीधी उड़ान ने इसे और मजबूत किया है।

'हिंदी सब संसार' से साभार।

□

केंद्रीय हिंदी संस्थान
सी-7, डी.डी. कॉलोनी
शिवम् रोड
हैदराबाद-500007 (आं.प्र.)



13 नीदरलैंड देश में हिंदी की स्थिति और विकास

● पुष्पिता अवस्थी

नीदरलैंड यूरोप के उत्तर-पश्चिम में समुद्र-तटीय देश है। इसे हॉलैंड भी कहते हैं, किंतु इसका राष्ट्रीय नाम नीदरलैंड है। इसका अधिकांश क्षेत्र समुद्र-तल से भी नीचे है। इस देश के क्षेत्रफल में तटीय कटाव के कारण कमी तथा प्रवाह-प्रणाली के घुमाव और बाँध द्वारा इसमें वृद्धि होती रहती है। यूरोपीय महाद्वीप के अन्य किसी भी देश के इतने निवासी अपने देश के क्षेत्र-निर्माण में नहीं लगे हैं जितने कि नीदरलैंड में। इस देश की स्थलीय आकृतियाँ तथा समुद्री सीमाएँ मुख्यतया मॉस, राइन और स्खैल्डै नदियों के डेल्टा से प्रभावित रहती हैं।

राइन और म्यूज नदियों के मुहानों के इलाके जुलियस सीजर ने 55 ई.पू. में जीत लिये थे। उस समय यहाँ केल्टिक और जर्मेनिक जातियाँ रहती थीं। राइन डेल्टा के उत्तर में बटावी और फीजन मुख्य जातियाँ थीं। आठवीं और नवीं शताब्दियों में वेस्ट फ्रैंको ने सैक्सनों और फ्रीजनों का पूरी तौर से दमन कर दिया, साथ ही फ्रांकिश भाषा भी जर्मेनियों पर छा गई। 13वीं शताब्दी में काउंट फ्लोरिस पंचम के शासन में हॉलैंड बहुत शक्तिशाली हो गया था। 15वीं शताब्दी में बर्गंडी के ड्यूक शक्तिशाली हो गए। 1547 में स्पेन के राजा चार्ल्स पंचम ने नीदरलैंड और ऑस्ट्रिया के संघ का आदेश जारी किया और 1549 में स्पेन में नीदरलैंड भी सम्मिलित कर लिया गया था। 1579 में सात उत्तरी प्रांतों का 'यूतरैक्ख्त संघ' बना, जिसमें हॉलैंड का स्थान महत्त्वपूर्ण था।



- जन्म : कानपुर, भारत
- शिक्षा : राजघाट, वाराणसी के प्रतिष्ठित जे. कृष्णमूर्ति फाउंडेशन में (बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से संबद्ध)
- अध्यापक, कवि, संपादक, अनुवादक, कहानीकार, कुशल संगठनकर्ता, हिंदी की विश्वदूत
- सन् 1984 से 2001 तक जे. कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के वसंत कॉलेज फोर विमैन के हिंदी विभाग की अध्यक्षा
- भारतीय दूतावास एवं भारतीय सांस्कृतिक केंद्र पारामारिबो, सूरीनाम में प्रथम सचिव एवं हिंदी प्रोफेसर के रूप में सन् 2001 से 2005 ई. तक कार्यरत
- इन्हीं के संयोजन में सन् 2003 में सूरीनाम में सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न
- सूरीनाम प्रवास के दौरान अथक प्रयास करके हिंदी प्रेमी समुदाय का संगठन
- सन् 2006 ई. से नीदरलैंड्स स्थित 'हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन' की निदेशिका
- सामाजिक सरोकारों से जुड़ी 'बचपन बचाओ आंदोलन' और स्त्री अधिकारों के लिए संघर्षरत समूहों में सक्रियता
- समकालीन सूरीनामी लेखन के दो संग्रह 'कविता सूरीनाम' और 'कहानी सूरीनामी' का अनुवाद और संपादन
- मोनोग्राफ 'सूरीनाम' (राजकमल प्रकाशन, 2003) भी प्रकाशित।

17वीं शताब्दी में यह संघ संसार में व्यापार और सागरीय शक्ति में सर्वाधिक संपन्न था। ईस्ट इंडीज, भारत, दक्षिण अफ्रीका और वेस्टइंडीज आदि इसके उपनिवेश थे। डच प्राय: उदार थे, अतएव उन्होंने स्पेनी, पुर्तगाली, यहूदी, अंग्रेज और फ्रांसीसी यात्रियों को शरण दी, जिनके पारस्परिक सहयोग से कला, साहित्य, विज्ञान और दर्शन की पर्याप्त उन्नति हुई। फ्रांस के आक्रमण को विफल करने के लिए नीदरलैंड की डच शक्तियों ने कई यूरोपीय देशों का संघ भी गठित किया। विलियम तृतीय की मृत्यु के पश्चात् डच गणराज्य एक शताब्दी तक चलता रहा।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय नीदरलैंड तटस्थ राष्ट्र था, किंतु 1940 ई. में जर्मनी द्वारा आक्रांत होने के कारण इसे तटस्थता की नीति छोड़नी पड़ी। रानी विल्हेल्मिना अपने अन्य सरकारी अधिकारियों के साथ इंग्लैंड चली गईं। नीदरलैंड की बहुत संपत्ति जर्मनी ने लूट ली थी। युद्ध में डच ठहर नहीं सके और उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ी। 1945 में मित्र-राष्ट्रों ने उसे जर्मनी के संकट से मुक्त कराया। 1948 में विल्हेल्मिना की पुत्री जुलियाना सिंहासनारूढ़ हुई। एक ओर वर्तमान समय में 'बियेट्रिक्स' यहाँ की महारानी हैं तो दूसरी ओर शासन की वोट-पद्धति के तहत बालकेनेंदन यहाँ की संसद् के प्रधान हैं।

'डच'—जिसे आजकल 'नीदरलांड्स ताल' कहते हैं, यहाँ की प्रधान और राजकाज की भाषा है। फ्रीसलैंड में 'फ्रीजन' का प्रचलन है। यह एंग्लो-सैक्सन भाषा के निकट पड़ती है, किंतु अनेक रूपों में यह डच से मिलती-जुलती है। नीदरलैंड के निवासी फ्रांसीसी, अंग्रेजी और जर्मन भी जानते हैं। ये भाषाएँ यहाँ के स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं।

जब 'नीदरलैंड' देश की राजनैतिक और ऐतिहासिक पहचान 'हॉलैंड' थी, तब देश की भाषा को 'डच' नाम से पहचाना जाता था। लेकिन इधर इसे 'नीडरलांड्स ताल' कहते हैं। नीदरलैंड देश के अतिरिक्त यह बेल्जियम के उत्तरी आधे भाग में, फ्रांस के नार्ड जिले के ऊपरी हिस्से में तथा यूरोप के बाहर सूरीनाम, कुरुसावा, अरुबा आदि देशों में बोली जाती है। सूरीनाम की राष्ट्रभाषा और राजकाज की भाषा भी डच है। यह डच न्युगिनी आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में रहनेवाले डच नागरिकों की भी मातृभाषा डच है। इस प्रकार इसके बोलनेवालों की कुल संख्या दो करोड़ के आस-पास है। दक्षिण अफ्रीका यूनियन राज्य में भी बहुत से डच मूल के नागरिक रहते हैं और उनकी भाषा भी डच भाषा से अधिकांश से मिलती-जुलती है, यद्यपि अब यह एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित हो गई है।

इस तरह नए सिरे से धर्म, भाषा, संस्कृति के अस्तित्व की आस्था को पुनः संरक्षित करने के उद्देश्य से हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हुआ। गुरुदत्त कल्ला सिंह, इसाक और कर्त्ताराम आदि सूरीनामी भारतवंशी द्वारा हिंदुस्तानी संस्कृति को बचाए रखने के लिए नाटक लिखे गए। इस प्रकार संगीत-मंडलियों और नृत्यकारों द्वारा सूरीनामी हिंदुस्तानी लोक संस्कृति के मूल्यों की पुनर्स्थापना का घोर प्रयत्न किया गया। जिसमें निकेरी से गणेश प्रसाद और पारामारिबो से मुंशी रहमान, श्री हरिदत लक्ष्मण श्रीनिवासी, महादेव खुनखुन, अमर सिंह रमण, सुरजन परोही

शुरुआत में हॉलैंडवालों की भाषा को उत्तर समुद्र तथा बाल्टिक समुद्र के तट पर रहनेवाले जर्मनों की स्थानीय बोलियों में एक स्वतंत्र स्थान प्राप्त था। पहले यह मुख्य रूप से पश्चिमी फ्लैंडर्स में प्रचलित थी। नीदरलैंड ताल यहाँ की प्रधान और राजकाज की भाषा है।

रोतेदम में यूरोप का सबसे विशाल और सक्रिय समुद्रपत्तन यूरापोर्ट होने के साथ-साथ एम्सटर्डम के सिश्वपहोल नाम से विस्तृत विमानपत्तन (एयरपोर्ट) है। एक समय में विश्व में वुडेन-शू (काष्ठ-जूता) और विंड-मिल (पवनचक्की) के कारण पहचाना जानेवाला देश आजकल विश्व में ट्यूलिप के कारण प्रसिद्धि पा चुके कोकेनहॉफ (फूलों का बगीचा) और कास (चीज) के नाम से जाना जाता है। चीज के विश्वव्यापी प्रतिमान यहीं की चीज के आधार पर निर्मित होते हैं, जिसका मुख्य निर्धारक केंद्र अलकमार सिटी सेंटर है, जहाँ एक चीज म्युजियम भी है। इस देश में संग्रहालयों की भरमार है। फ्रांस और उसके शहर पेरिस के बाद यह शहर रैंब्रा और फान गॉग जैसे विश्व-प्रसिद्ध कलाकारों के कारण कला की दुनिया में प्रसिद्ध है।

इस देश की राष्ट्रभाषा और राजभाषा 'डच' या 'नीदरलैंड' भाषा होने के बावजूद इस देश में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ हैं। सूरीनाम के भारतवंशियों की तरह इस देश में मोरकोन टर्की, इंडोनेशियन और नीग्रो जातियों की भी बहुलता है, क्योंकि एक समय में इन सभी देशों के नागरिकों की इस देश के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस देश के उत्कर्ष में इनकी पिछली पीढ़ियों की अथक परिश्रम का भारी योगदान है। जिस कारण इनकी वर्तमान पीढ़ी इस देश पर अपना पुश्तैनी अधिकार महसूस करती है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि इस लघुकाय देश में 165 देशों के नागरिक रहते हैं। इसके बावजूद यहाँ की जीवन-संस्कृति में एक अपनी तरह की सुरमयता और लय बनी हुई है। अपने देशों की संस्कृति को साधे हुए भी यहाँ के प्रवासी नागरिक भी डच संस्कृति को संपूर्णता से अपनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं का अद्भुत तालमेल यहाँ देखने को मिलता है। अम्स्टर्डम शहर में विश्व के सभी भोज्य पाक-शालाओं के रेस्तराँ हैं, जो इस देश की वैश्विकता का एक प्रमाण है। भारतीयों से अधिक इस देश में दक्षिण एशिया देशों से मुख्यतः बँगलादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका और नेपाल

के नागरिक रहते हैं।

सन् 1975 में सूरीनाम देश की आजादी के उपरांत जीविका और जीवन की असुरक्षा से भयभीत भारतवंशियों का एक बड़ा हिस्सा हॉलैंड आकर बस गया था। 7वें दशक में नीदरलैंड सरकार ने कियोला की माँगें स्वीकार कर लीं। हजारों की संख्या में नीदरलैंड भाग आए भारतवंशियों की नीदरलैंड सरकार ने जीवन और जीविका की व्यवस्था की। शनैः-शनैः डच सरकार की ही सहायता से स्वचालित संस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारतवंशियों ने अपने समाज में सामाजिकता और सांगठनिक शक्ति संवर्धित करने के लिए हिंदुस्तानी समाज के भीतर पठन-पाठन की कक्षाएँ आरंभ की। सनातन धर्म और आर्य समाज द्वारा अनेक संस्थाएँ गठित हुईं।

इस तरह नए सिरे से धर्म, भाषा, संस्कृति के अस्तित्व की आस्था को पुनः संरक्षित करने के उद्देश्य से हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन प्रारंभ हुआ। गुरुदत्त कल्ला सिंह, इसाक और कर्त्तीराम आदि सूरीनामी भारतवंशी द्वारा हिंदुस्तानी संस्कृति को बचाए रखने के लिए नाटक लिखे गए। इस प्रकार संगीत-मंडलियों और नृत्यकारों द्वारा सूरीनामी हिंदुस्तानी लोक संस्कृति के मूल्यों की पुनर्स्थापना का घोर प्रयत्न किया गया। जिसमें निकेरी से गणेश प्रसाद और पारामारिबो से मुंशी रहमान, श्री हरिदत लक्ष्मण श्रीनिवासी, महादेव खुनखुन, अमर सिंह रमण, सुरजन परोही, हरिदेव सहतू, जानकी प्रसाद सिंह जैसे अनेक आर्यसमाजी और सनातनी कार्यकर्ता सक्रिय हुए। नीदरलैंड के लाइडन विश्वविद्यालय से डॉ. स्खोकूर और यूतरैख्त विश्वविद्यालय के डॉ. गैफ्कै आदि डच विद्वानों ने हिंदी व्याकरण के साथ-साथ भक्तिकालीन और आधुनिक हिंदी साहित्य पर अनेकानेक लेख लिखकर विद्यार्थियों में हिंदी भाषा और साहित्य की गहरी जड़ें जमाईं। समय-समय पर इस सिलसिले में भारत से हिंदी विद्वानों को भी इस आमंत्रित करते रहे। सूरीनाम के हिंदुस्तानी भारतवंशी जनसमाज ने भी हॉलैंड में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 14 सितंबर को यहाँ आज भी हिंदी-दिवस मनाया जाता है। इस अवसर पर संस्थाओं में वाद-विवाद, भाषण, निबंध-लेखन आदि प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं।

वस्तुतः हॉलैंड देश में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार की वही स्थिति है, जो सूरीनाम देश में हिंदी की है। दरअसल, हॉलैंड में हिंदीभाषी प्रवासी भारतीयों की संख्या अत्यल्प है। यहाँ का हिंदुस्तानी बनाम भारतीय समाज सूरीनामी भारतवंशियों से रचा-बसा और बना है। इनके संस्कार और खानपान का मूल आधार सूरीनाम का हिंदुस्तानी समाज है। इनके पूर्वज पुरखे हैं। इनकी हिंदी भाषा मूलतः सरनामी है, यद्यपि सरनामी की संरचना का आधार हिंदी भाषा की बोलियों के परिवार का ही हिस्सा है। डॉ. ग्रियर्सन के समय की अवधी, भोजपुरी, मैथिली और मगही की बोलियों तथा तुलसी के मानस और कबीर के निर्गुण के लोक-साहित्य के भाषा-संस्कार से निर्मित सरनामी भाषा है। जो सूरीनाम देश में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ प्रदेशों से गए हुए किसान-मजदूरों की बोलियों से बनी हुई भाषा है और अपनी मिठास के साथ वैसी ही बनी और बची हुई है। हिंदी भाषा के लेखक-कवि इसे आज भी अपनी मातृभाषा और सरनामी-भाषा के रूप में सरनामी भारतवंशियों के बीच में प्रसिद्ध है। यह उनके बोलचाल, संबंध, संपर्क और साहित्य अभिव्यक्ति की साहित्यिक भाषा बनी हुई है।

इस तरह से हॉलैंड में भी 'सरनामी भाषा' में साहित्य लिखनेवालों का अपना एक समाज बन गया है। इस भाषा में कई प्रतिष्ठित लेखक हुए हैं, जिनकी कविताओं और उपन्यासों में आज भी अपने पुरखों के संघर्ष की संवेदनशील अभिव्यक्ति पढ़ने को मिलती है, जिसमें चित्रा गयादीन, उषा मार्ढे, चाँदनी, राज रामदास, राबिन गंगादीन, राजमोहन, संदीप बदलू, मालाकिशुन दयाल और पुष्पिता अवस्थी आदि प्रमुख हैं।

नीदरलैंड के लाइडन विश्वविद्यालय में सरनामी भाषा के प्रोफेसर डॉ. तेयो दम्स्त्यैख हिंदी और संस्कृत में एम.ए. करने के उपरांत पी-एच.डी उपाधि के लिए मथुरा गए और वहाँ के शिलालेखों पर अपना शोधप्रबंध प्रस्तुत किया। सरनामी भाषा और हिंदी भाषा के संबंधों के क्रम में दम्स्त्यैख का इलाहाबाद, वाराणसी, पटना और अयोध्या का भ्रमण हुआ। डच भाषा में लिखित कुछ साहित्य का सरनामी में अनुवाद हुआ। बाइबिल का भी सरनामी भाषा में अनुवाद हो चुका है। लाइडन विश्वविद्यालय के केरन इंस्टीट्यूट के अंतर्गत हिंदी और संस्कृत के साथ-साथ सरनामी भाषा का भी

एक अलग से विभाग है, जहाँ सरनामी भाषा का विधिवत् शिक्षण होता है। तेयो दम्स्त्यैख ने इस भाषा को विश्वविद्यालयी स्तर पर शिक्षण की मान्यता प्रदान की है। जिसमें 'का हाल' प्रमुख है। इस पुस्तक के माध्यम से सरनामी व्याकरण की शिक्षा देने का सरल और सहज प्रयत्न है।

नीदरलैंड में इसी के समानांतर हिंदी-शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य भी प्रगति पर हैं, जिसमें कई संस्थाएँ सक्रिय हैं। एम्सटर्डम स्थित 'इंडियन इंस्टीट्यूट' भारतीय संस्थान है, जहाँ डॉ. डिक प्लकर के निर्देशन में संस्कृत और बँगला भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य चलता है। रामचरितमानस, महाभारत, वेद और उपनिषद् आदि पर भी प्रवचन और चर्चाएँ होती हैं। उनके कुछ अंशों का परिचय और ग्रंथ के संदर्भ में विवरणादि भी डच भाषा में प्रकाशित है। जिससे इंडोलॉजी और भारतीय संस्कृति तथा धर्म में रुचि रखनेवालों को सहायता प्राप्त होती है। डॉ. डिक प्लकर एक साधक की तरह अपनी ही शक्ति से अन्य स्रोतों को जुटाकर हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में संलग्न है। इन्होंने हिंदी भाषा के शिक्षण के लिए, विशेषकर डच विद्यार्थियों के लिए, दो सी.डी. सहित पुस्तक भी तैयार की हैं, जो अत्यंत उपयोगी और लोकप्रिय हैं। इनकी प्रसिद्धि सूरीनाम देश के हिंदी सीखनेवाले विद्यार्थियों तक में व्याप्त है।

'संवाद' संस्था के माध्यम से डॉ. अनैत फान द हुक भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में लगी हुई हैं। वे कुछ इच्छुक विद्यार्थियों को लेकर समय-समय पर हिंदी-शिक्षण का कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं के महत्त्वपूर्ण आयोजनों के अवसर पर डॉ. डिक प्लकर की तरह ही हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति पर समयानुकूल अपने व्याकरण प्रस्तुत करती हैं।

इस तरह से डॉ. तेयो दम्स्त्यैख, डॉ. अनैत फॉन द हुक के रूप में तीन डच विद्वान् हिंदी के प्रचार-प्रसार निमित्त नीदरलैंड में सक्रिय हैं, जो इन लोगों की जीविका का आधार है और जीवन का भी। इन विद्वानों ने पाँच वर्षों से अधिक का समय लगाकर भारत से हिंदी भाषा और साहित्य की पढ़ाई की और आगे चलकर शोधकार्य भी यहीं पूर्ण किया। तदुपरांत नीदरलैंड वापस आकर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में प्राणपण से जुट गए और अपना जीवन समर्पित किए हुए हैं।

इसके अतिरिक्त नीदरलैंड में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में वे संस्थाएँ भी सक्रिय हैं, जिनका मूल संबंध सूरीनाम देश से है। वे सूरीनाम के भारतवंशी हैं, जो सरनामी भाषी होने के बावजूद हिंदी प्रचार-प्रसार की संस्थाएँ स्थापित कर 'वर्धा' के राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति के पाठ्यक्रम की प्रतिवर्ष परीक्षाएँ करवाकर हिंदी भाषा को प्राथमिक स्तर पर जीवित बनाए हुए हैं, जिसमें एक संस्था हिंदी प्रचार संस्था, नीदरलैंड (H.P.S.N.) है, जिसके अध्यक्ष और निदेशक डॉ. उर्षदेव.वी.रामदास थे, जो जीविका से स्त्री रोग विशेषज्ञ थे, लेकिन जीवन से हिंदीभाषी समर्थक थे। वे शुद्ध हिंदी के हिमायती थे। अपनी हिंदी प्रचार पत्रिका के दिसंबर, 2001 के अंक में 'शुद्ध हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा है' आलेख में लिखा है—"विदेश में रहनेवाले भारतीय और प्रवासी भारतीय की समझ में यह बात नहीं आती है कि अरबी, फारसी और तुर्की की तरह ही अंग्रेजी भी आक्रामकों की भाषा है। हम विदेशी शब्दों का प्रयोग करके अपनी भाषा को दूषित करते हैं, जबकि संस्कृत में पर्याप्त शब्द हैं, जिनसे हिंदी की श्रीवृद्धि हो सकती है। हमें ऐसी हिंदी का प्रचार-प्रसार करना चाहिए, जिसमें विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं हो या कम हो। इसको हमें भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अगर यह कार्य इस रूप में परिणत हो जाए, तभी दक्षिण भारत हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी को आसानी से स्वीकार करेगा। यह बहुत ही अपमानजनक नजरिया है कि हम लोग एक ओर तो अपनी भाषा में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का विराध करते हैं, परंतु अरबी, फारसी, तुर्की आदि के विदेशी शब्दों का हम निरर्थक रूप से विरोध करते हैं।" इस अर्थ में वे सरनामी को बोली मानते हुए भी उसे भाषा का दर्जा नहीं देते थे। जर्मन के इंडोलॉजी विभाग के डॉ. सत्य नारायण शर्मा इनके गुरु थे, जिनका मानना था—"हिंदी विश्व की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। क्रियाकलाप की निष्पत्ति हिंदी में ही होनी चाहिए, अंग्रेजी में नहीं।"

डॉ. रामदास ने 'वर्धा' से आचार्य की उपाधि प्राप्त थी। इन्हीं के संपादन में 32 पृष्ठ की 'हिंदी प्रचार पत्रिका' नाम से द्विभाषी (डच और हिंदी) पत्रिका का यदा-कदा सुविधानुसार जुलाई, 1997 से प्रकाशन प्रारंभ हुआ था, जो प्राथमिक स्तर की पत्रिका थी, जिसमें

प्राय: संस्था की गतिविधियों, हिंदी प्रचार-प्रसार की सूचनाएँ, परीक्षा संबंधित जानकारियाँ और परीक्षोपरांत हिंदी-भाषा के विद्यार्थियों के परिणाम, पुरस्कार वितरण, प्रमाण-पत्र वितरण आदि की जानकारियाँ रहती हैं।

इसी के समानांतर श्री नारायण मथुरा की अध्यक्षता और निर्देशन में 'हिंदी परिषद्, नीदरलैंड' संस्था है, जहाँ से वर्धा की राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा प्रवेशिका आचार्य की परिक्षाएँ होती हैं। जिसके लिए भारतवंशियों द्वारा बहुत से जिलों में हिंदी-प्रेमियों द्वारा प्राथमिक स्तर पर नि:शुल्क कक्षाएँ होती हैं, जिसमें आर्य समाज और सनातन धर्म की अनेक संस्थाएँ और संगठन भी हिंदी-भाषा के प्रचार-प्रसार में सक्रिय हिस्सा लेते हैं। इसमें सूर्य प्रसाद बीरे का नाम प्रमुख है, जो तीन दशकों से हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में प्राणपण से लगे हुए हैं। इन्होंने टी.वी. के साप्ताहिक (रविवार) OHM के एक घंटे के कार्यक्रम द्वारा और अन्य संस्थाओं के सहयोग के माध्यम से हिंदी का उल्लेखनीय उत्थान किया है। वे आर्य समाज के कार्यकारी पंडित होने के साथ-साथ संस्कृत और हिंदी भाषा की भी सधी हुई जानकारी रखते हैं।

एक बार पारामारिबो में आयोजित हिंदी सम्मेलन में सरनामी के समर्थकों ने हिंदी का विरोध ही नहीं किया अपितु 'सरनामी' को ही अपने पूर्वजों की 'मूलभाषा' के रूप में घोषणा भी की थी। लेकिन कुछ लोगों ने फिर भी स्वीकार और महत्त्व दिया कि 'हिंदी' 'सरनामी' की 'महतारी भाषा' है।

हॉलैंड में आरंभ के पाँचवें दशक में सूरीनामी हिंदुस्तानी बहुत कम थे। पर जितने भी थे, उन्हें 'मनन' नाम की संस्था ने हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार से जोड़े रखा, जिससे मंदिरों, संस्थाओं और पाठशालाओं में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार होता रहा।

हिंदी परिषद्, नीदरलैंड संस्था के श्री नारायण मथुरा द्वारा ग्यारह हजार चार सौ दो प्रमाण-पत्र वितरित किए जा चुके हैं। नवंबर, 2009 में इस संस्था के सेवा करते हुए 25 वर्ष पूर्ण हुए हैं, जिसमें प्राय: औसतन पाँच सौ विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिस्सा लेते हैं।

'विश्व ज्योति' नाम से सन् 1993 के आस-पास के वर्षों में डच और हिंदी भाषा में द्विभाषी पत्रिका निकलती थी, जिसमें भारतीय संस्कृति और बहुसंस्कृति के बीच जीवनयापन की सामग्री सहित हिंदी-शिक्षण पर सामग्री रहती थी। यह हिंदी की सांस्कृतिक तथा सामाजिक पत्रिका थी। अस्सी के दशक में 'सरनामी' नाम से 20 पृष्ठों की पत्रिका प्रकाशित होती थी, जो एक ओर तो सरनामी साहित्य और भाषा ज्ञान की प्रस्तोता थी, तो दूसरी ओर आवरण पृष्ठ पर देवनागरी अक्षरों का भी भाषिक ज्ञान प्रदान करते हुए हिंदी को सरनामी की 'महतारी भाषा' होने की भी घोषणा करती थी; जिसमें डॉ. वी.एस. मिश्र, सूर्यप्रसाद बीरे, संपत राही, शाबित एस. बलदेव सिंह, डॉ. लाल गुरदयाल, जुंपा गुरु आदि का प्रमुख सहयोग रहता था।

'विश्वज्योति' पत्रिका में सुचंदना चौधरी, डॉ. बी. राम अवतार सिंह और आचार्य शंकर के सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती थी। डॉ. रामदास के संपादन में प्रकाशित होनेवाली 'हिंदी प्रचार पत्रिका' में रमेश रामअवतार सिंह, रूप लाल बहादुर सिंह, आर. रघुवर सिंह, के. मँगरे, पंडित के. वंशीधर, जे. खेदू, मोहन गौतम, एच. सूर्यवली, श्रीमती उर्मिला मुंशी आदि का सहयोग रहता था।

इस तरह से कुछ दिनों के लिए कभी-कभी पुस्तिका या पत्र के रूप में हिंदी का कुछ देखने-पढ़ने को मिल जाता है। पर मूलत: यहाँ हिंदी भाषा का स्तर अत्यंत प्राथमिक है तथा भारतीय संस्कारगत अतिशय प्रेम के कारण हिंदी भाषा का शिक्षण-कार्य चल रहा है। लेकिन हिंदी भाषा में साहित्य-लेखन का कोई स्वरूप देखने को नहीं मिलता है। अगर मानें तो हिंदी को सरनामी भाषा में साहित्य-लेखन के कुछ सार्थक प्रयास हो रहे हैं। लेकिन यह सरनामी साहित्यकार (कवि और लेखक) अपने को हिंदी से बिलकुल इतर 'सरनामी भाषा' का साहित्यकार मानते हैं। ये सूरीनाम देश के अपने पुरखों की जीवन-संस्कृति को और नीदरलैंड

के भारतवंशियों के संस्कृतिगत संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान करने में संलग्न हैं, जिसमें सबके अलग-अलग अपने खेमे हैं और नीदरलैंडवासियों के बीच अपने को स्थापित करने की रणनीतियाँ हैं। यही सब कारण है कि सरनामी भाषा की लिपि 'रोमन' रखी गई है, जिससे कि बोधगम्यता के कारण विश्व की दूसरी भाषाओं के लोग भी पढ़ सकें। लेकिन शब्द के अर्थज्ञान के अभाव में भाषा की बोधगम्यता का प्रश्न फिर भी बचा रह जाता है। सरनामी भाषा की वैश्विक पठनीयता कायम रखने के लिए ही इस लिपि को कायम रखा गया है, क्योंकि विदेशों में संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन का प्राथमिक आधार भी रोमन लिपि ही है, जबकि सूरीनाम आदि देशों में डच कोलोनाइजर लोगों ने अपनी स्मृति-सुविधा और उच्चारण-पुकार के लिए हिंदुस्तानी किसान, मजदूरों 'कुली' द्वारा जो कहा जाता था, वे उसे रोमन लिपि में लिख लेते थे। बाद में इन्हीं मजदूरों के बच्चों ने स्कूलों में इन्हीं रोमन लिपि में पढ़ाई-लिखाई करते हुए इसी रोमन लिपि में अपनी हिंदुस्तानी बोली भी लिखने लगे, जिसे बाद में सरकारी तौर पर सरनामी भाषा के रूप में मान्यता मिल गई।

गत पाँच दशकों में नीदरलैंड में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार तो हुआ, पर उसके अनवरत विकास में प्राय: बाधाएँ रहीं हैं। सूरीनाम की तरह ही यहाँ भी राजकाज और नौकरी की भाषा डच होने के कारण प्राथमिकतापूर्वक यहाँ की नई पीढ़ी अपना संपूर्ण ध्यान डच भाषा पर केंद्रित करती है और अभिभावक भी इनके सार्थक भविष्य के लिए यही चाहते हैं।

यूरोप में लगभग 25 लाख हिंदीभाषी हैं। वे हिंदी बोलते हैं। नीदरलैंड में हिंदी-भाषा के विकास में अवरोध 'सरनामी भाषा' के कारण भी प्रकट होते रहे हैं। सरनामी भाषा के प्रचार और विकास अभियान से भी इसका कई बार खुलेआम सार्वजनिक विरोध हो चुका है। सरनामी भाषा का आंदोलन सन् 1970 के दशक से लाइडन विश्वविद्यालय के नवतुरिया विद्यार्थियों द्वारा चलाया गया था। इसका विरोध सूरीनाम के क्रियोलों की भाषा को अस्वीकृति के समर्थन में भी किया गया था।

एक बार पारामारिबो में आयोजित हिंदी सम्मेलन में सरनामी के समर्थकों ने हिंदी का विरोध ही नहीं किया अपितु 'सरनामी' को ही अपने पूर्वजों की 'मूलभाषा' के रूप में घोषणा भी की थी। लेकिन कुछ लोगों ने फिर भी स्वीकार और महत्त्व दिया कि 'हिंदी' 'सरनामी' की 'महतारी भाषा' है।

हॉलैंड में आरंभ के पाँचवें दशक में सूरीनामी हिंदुस्तानी बहुत कम थे। पर जितने भी थे, उन्हें 'मनन' नाम की संस्था ने हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार से जोड़े रखा, जिससे मंदिरों, संस्थाओं और पाठशालाओं में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार होता रहा। लाइडन विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के अध्ययन की शुरुआत प्रो. फोगल ने कि थी। बाद में इस हिंदी के प्रभाव में नीदरलैंड के अन्य विश्वविद्यालय भी आ गए, जहाँ हिंदी की पढ़ाई होने लगी थी।

यूरोप के अन्य देशों की तरह ही नीदरलैंड में भी संस्कृति की तुलना में हिंदी को कम महत्त्व मिला और वह दोयम दर्जे की भाषा बनी रही। फिर भी यह नीदरलैंड के डच-हिंदी विद्वानों के लिए यह रोजी-रोटी की भाषा बनी हुई है। जबकि डच सरकार की नीतियों को देखते हुए लगता है कि 'इंडोलॉजी' भारतीय विद्या के विषय की तरह ही हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला जल्दी ही यहाँ अपने अंत को प्राप्त हो जाएगा। फिर भी सरकारी तौर पर हम हिंदी के वैश्विक होने का जयघोष करते रहेंगे, बगैर इसकी सत्यता का अन्वेषण किए कि विश्व के अन्य देशों में हिंदी की वास्तविक स्थिति क्या है!

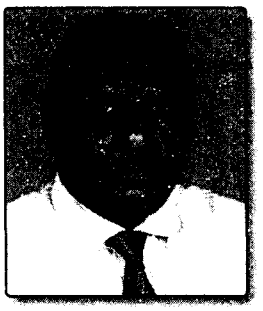
हिंदी भाषा के लिए नीदरलैंड सरकार यदि अपने हाथ समेट भी लेती है तो भी यूरोप के अन्य देशों की सरकारों को इस संदर्भ में सोचना चाहिए कि वह जो सहायता अन्य अल्पसंख्यक वर्गों के समुदायों को विभिन्न कारणों से प्रदान कर रही है, वह उन्हें नीदरलैंड की हिंदी संस्थाओं को भी प्रदान करनी चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि हिंदी का भविष्य यूरोप में तभी निर्धारित होगा, जब भारत देश संयुक्त राष्ट्र संघ 'सुरक्षा परिषद्' का स्थायी सदस्य बन जाएगा और 'हिंदी' संयुक्त राष्ट्रसंघ की भी भाषा मान ली जाएगी, तभी यूरोप के साथ-साथ नीदरलैंड में भी अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगीज की तरह ही हिंदी को भी जनप्रिय प्रतिष्ठा मिल सकेगी।

□

P.O. Box 1080
1810 KB Alkmaar
The Nethe lands

14 मॉरीशस में हिंदी : वर्तमान स्थिति

● सत्यदेव टेंगर



- जन्म : 12 अप्रैल, 1954, काँ तोरेल, मॉरीशस।
- सरकारी हिंदी अध्यापक संघ के प्रधान।
- प्राथमिक सरकारी स्कूल सहकारिता संघ के महासचिव।
- विश्व हिंदी सचिवालय की शासी परिषद् के सदस्य।
- मॉरीशस से प्रकाशित होनेवाली हिंदी पत्रिका 'आक्रोश' के संपादक।
- अनन्य हिंदी प्रेमी।
- मॉरीशस में हिंदी भाषा-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में तथा विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण को उचित स्थान दिलाने में ऐतिहासिक योगदान।

आज जब हिंदी भाषा को वैश्विक भाषा के पद पर आसीन करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ में औपचारिक भाषा के रूप में उसका यथोचित स्थान दिलाने का प्रस्ताव विश्व हिंदी सम्मेलनों में अन्यान्य देशों के साथ-साथ मॉरीशस भी प्रस्तुत करता आ रहा है, तब यह स्वाभाविक है कि स्वयं मॉरीशस में हिंदी की स्थिति पर, भारत या किसी अन्य देश से उसकी तुलना किए बिना विचार किया जाए। मॉरीशस में हिंदी के बीते कल पर विचार करना उचित लग रहा है, क्योंकि बिना ऐसा किए वर्तमान स्थिति का पूर्वापर क्रम कृत्रिम लग सकता है।

मॉरीशस में हिंदी कैसे?

ब्रिटिश उपनिवेशों में दासप्रथा का सफाया 1833 में संभव हो पाया था। दासों ने खेतों में काम करना दास-प्रथा का पर्याय मानकर खेतों से नाता तोड़ लिया था। सफेद सोना अर्थात् शक्कर की पैदावार कम हो चली थी। अत: उपनिवेशों में दासों के स्थान पर काम करने के लिए भारतीय गिरमिटियों को सर्वप्रथम मॉरीशस भेजा गया। 2 नवंबर, 1834 को मॉरीशस पहुँचे प्रथम गिरमिटियों ने अपनी लगन और श्रम से उपनिवेशकों का दिल जीत लिया था। तभी तो अन्य उपनिवेशों में भारतीय गिरमिटियों की माँग बढ़ गई थी। मॉरीशस लाए गए साढ़े चार लाख गिरमिटियों में अधिकतर भोजपुरी-भाषी पूर्वज थे। अल्पसंख्यकों को भोजपुरी सीखनी और बोलनी पड़ी थी। भोजपुरी भारतीय गिरमिटियों के बीच संपर्क-भाषा का रूप ले चुकी थी। विश्व-प्रसिद्ध भारतीय प्रवासी मोहनदास करमचंद गांधी के वर्ष 1901 में मॉरीशस पधारने के बाद मॉरीशस भारत में बह रही प्रमुख भाषा-धारा हिंदी से जुड़ने लगा था। इसीलिए गांधीजी द्वारा भेजे गए मणिलाल डॉक्टर ने मॉरीशस के भोजपुरी भाषी गिरमिटियों को ध्यान में रखकर भी भोजपुरी नहीं अपितु हिंदी और अंग्रेजी में 15 मार्च, 1901 में 'हिंदुस्तानी' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। यहीं से मॉरीशस में हिंदी ने अपनी विजय-यात्रा शुरू की थी। शेष इतिहास है। लंबी यात्रा तय करने के बाद हिंदी अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुँची है, जिस पर क्रम से विचार किया जाएगा।

हिंदी-पत्रकारिता

15 मार्च, 1909 में प्रारंभ 'हिंदुस्तानी' 1914 में दैनिक प्रकाश में आकर बुझ गया था। वर्ष 1914 से आज 2010 के बीच पुल के नीचे से काफी पानी बह चुका है। आज मॉरीशस में न कोई दैनिक और न ही कोई साप्ताहिक अखबार हिंदी भाषा में निकलता है। गवर्नमेंट हिंदी टीचर्स यूनियन का 'आक्रोश' मुख्यत: हिंदी में प्रकाशित होता है। 'आक्रोश' में फ्रेंच और अंग्रेजी को भी स्थान मिलता है। 'आक्रोश' हिंदी अध्यापकों का मासिक है, जिसमें हिंदी, हिंदुत्व और भारतीयता के रक्षण संबंधी अधिकतर रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। देश के प्रसिद्ध हस्ताक्षर अपनी साहित्यिक रचनाएँ 'आक्रोश' में सगर्व प्रकाशित करवाते हैं। कहानी, कविता, निबंध, लेख आदि सर्जनात्मक लेखन के अलावा 'आक्रोश' में देश की राजनीति पर भी वस्तुपरक और विश्वसनीय लेख प्रकाशित होते हैं। स्थायी स्तंभों में—बच्चों का कोना, आइए संस्कृत सीखें, हिंदुत्व, फिल्मी चर्चा, गृहस्थ विज्ञान, राशिफल, स्वास्थ्य ज्ञान आदि बहुत पसंद किए जाते हैं। थोड़े में बहुत कहने की शैली

'सिंहावलोकन' 'देखन में छोटे लगे पर घाव करे गंभीर' का काम करता है। 'आक्रोश' मासिक का नाम आंदोलन या क्रांति भी हो सकता था, परंतु जब हिंदी को मॉरीशस से समूल उखाड़ फेंखने का षड्यंत्र सफल सा लग रहा था, जैसे 'राम की शक्ति-पूजा' में रावण की संभावित विजय से श्रीराम चिंतित और सशंकित हो गए थे—यथावत् उसी भाँति इस देश के प्राथमिक स्तर के हिंदी अध्यापकों ने इंग्लैंड की महारानी की प्रीवी काउंसिल पहुँचकर हिंदी को सकुशल और सुरक्षित लाने में सफलता प्राप्त की थी। वह एक 'आक्रोश' ही था, जिसमें उत्साह और हिंदी के रक्षण का थोड़ा-बहुत उन्माद भी था! उसी हिंदी-प्रेम, श्रद्धा, लगन, भक्ति, तत्परता, त्याग और तपस्या को प्रज्वलित रखने के लिए संकल्पित 'आक्रोश' परिवार वर्ष 2010 में भी सजग और सक्रिय है। सीमित आर्थिक साधनों और सुविधाओं के बावजूद आज 'आक्रोश' मासिक है, एकमात्र सजग हिंदी-प्रहरी मॉरीशस का! इतिहास के झरोखों से झाँकने पर मॉरीशस में हिंदी-पत्रकारिता का एक संपन्न और समृद्ध उत्थान-क्रम का साक्षात्कार होता है जो शनैः-शनैः भारतीय मूल के लोगों के बीच अपनी भूमिका निभाकर अपना महत्त्व खोते दृष्टिगोचर होता है। स्वर्ण-काल के 'मॉरीशस आर्य पत्रिका', ओरियंटल गजट, मॉरीशस मित्र, मॉरीशस इंडियन टाइम्स, आर्यवीर, जागृति, आर्योदय, जनता और जमाना आदि शीर्षकों को भुलाया नहीं जा सकता। महात्मा गांधी संस्थान से 'वसंत' और 'रिमझिम' नामक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। आज साप्ताहिक 'आर्योदय' हिंदी में एक धार्मिक प्रकाशन है, जैसे कि 'दर्पण' है। जब-तब 'पंकज' और 'इंद्रधनुष' भी प्रकाशित हो रहे हैं। 'सुमन' भी कभी-कभार खिल जाता है। हाँ, विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा प्रकाशित 'विश्व हिंदी समाचार' तीन वर्षों से लगातार छप रहा है। आज का सच यही है कि मॉरीशस में 'आक्रोश' अपनी रचनाधर्मिता और उपयुक्तता के कारण हिंदी पत्रकारिता का चमकता सितारा है।

सात सौ बीस वर्गमील वाले मॉरीशस द्वीप-देश में मात्र बारह लाख की आबादी है। बिना किसी प्राकृतिक संसाधन के, विकसित महाद्वीपों से दूर, हिंद-महासागर में स्थित मॉरीशस में उसकी साक्षर जनता ही सर्वप्रमुख उपलब्धि है। पूर्व प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक मॉरीशस में शिक्षा निशुल्क है। प्रत्येक नागरिक चाहता है कि उसकी संतान उच्च एवं उत्तम शिक्षा प्राप्त करे। जहाँ तक हिंदी-शिक्षण का प्रश्न है—यह प्रमाणित एवं स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वज गिरमिटियों में मात्र अनपढ़ लोग ही नहीं आए थे, अपितु साक्षर लोग भी मॉरीशस पधारे थे। वे अपने साथ लाए 'रामचरितमानस' और संतनाम का पाठ किया करते थे।

हिंदी-शिक्षण

सात सौ बीस वर्गमील वाले मॉरीशस द्वीप-देश में मात्र बारह लाख की आबादी है। बिना किसी प्राकृतिक संसाधन के, विकसित महाद्वीपों से दूर, हिंद-महासागर में स्थित मॉरीशस में उसकी साक्षर जनता ही सर्वप्रमुख उपलब्धि है। पूर्व प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक मॉरीशस में शिक्षा निशुल्क है। प्रत्येक नागरिक चाहता है कि उसकी संतान उच्च एवं उत्तम शिक्षा प्राप्त करे। जहाँ तक हिंदी-शिक्षण का प्रश्न है—यह प्रमाणित एवं स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वज गिरमिटियों में मात्र अनपढ़ लोग ही नहीं आए थे, अपितु साक्षर लोग भी मॉरीशस पधारे थे। वे अपने साथ लाए 'रामचरितमानस' और संतनाम का पाठ किया करते थे। शाम के समय अपने बच्चों को संध्या-हवन, पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन सिखाया करते थे। 1892 से रॉयल कॉलेज में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। 1924 में नंकू नामक अंतिम हिंदी शिक्षक रिटायर हुए थे। सरकारी पाठशालाओं में नियमित समय-सारिणी से पहले या बाद में सप्ताह में दो दिन सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं में भी हिंदी पढ़ाई जाती थी। 1949 में प्रो. राम प्रकाश मॉरीशस आए। उन्होंने विधिवत् हिंदी शिक्षकों को प्रशिक्षित किया था और वर्ष 1954 से 157 सरकारी स्कूलों में 118प्रशिक्षित हिंदी शिक्षक कार्यरत थे। उस समय छहों कक्षाओं में सर्वजोड़ 45,203 छात्र हिंदी पढ़ते थे। दूसरी ओर प्रो. बासुदेव विष्णुदयाल ने भी जीवन भर समाज में रहकर हिंदी का खूब प्रचार-

प्रसार किया था।

आज की स्थिति

पूर्व प्राथमिक स्तर पर छात्रों को तीन से पाँच वर्ष तक की आयु तक शिक्षित करने के लिए मॉरीशस भर में स्कूल हैं। प्रस्तुत तालिका को देखा जा सकता है—

पूर्व प्राथमिक स्कूलों की संख्या	1,048
छात्रों की संख्या	34,289
शिक्षकों की संख्या	2,313
शिक्षक/छात्रों का अनुपात	93%
छात्र/शिक्षकों का अनुपात	15%

वर्ष 2010 में तैयार की गई इस तालिका में 73 प्रतिशत पूर्व प्राथमिक स्कूल निजी हैं और मात्र 17 प्रतिशत सरकारी हैं। इन स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिंदी नाम की चिड़िया नहीं है। व्यायाम, गीत, तुकांत, खेल आदि व्यावहारिक क्रियाओं से छात्रों को मनोरंजन तथा खेल-खेल में शिक्षा दी जाती है। परंतु माध्यम न भोजपुरी और न ही हिंदी होता है। फ्रेंच और उसके बिगड़े रूप 'क्रियोल' का जी खोलकर प्रयोग किया जाता है। यहीं से हिंदी-शिक्षण की नींव निर्बल पड़ जाती है। जब ये भारतीय मूल के बच्चे प्राथमिक स्कूलों में आते हैं, तब हिंदी न के बराबर जानते हैं, जबकि फ्रेंच-अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान उनके पास होता है। हिंदी में तुकांत, गीत और खेल पूर्व-प्राथमिक शिक्षण के पाठ्यक्रम में जोड़ना आवश्यक है।

प्राथमिक स्कूल

भारतीय मूल के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान उनकी मातृभाषा में दिए जाने के लिए राज्यपाल हिग्गिनसन ने सन् 1854 में कर दिया था। सन् 1864 में 'हिंदुस्तानी स्कूल' में बच्चे प्राथमिक पढ़ाई करते थे। लेओविल लोम नामक फ्रेंच विद्वान् ने 1909 में शिकायत की थी 'हिंदुस्तानी स्कूल्स' में मात्र भारतीय 'डाइलेक्ट' पढ़ाई जाती है। निजी तौर पर कबीरपंथी लोग कैथी लिपि में हिंदी-शिक्षण प्राथमिक स्तर पर किया करते थे। सनातनी लोग मानस पाठ करने की योग्यता हासिल करते थे। वर्ष 1910 में मणिलाल डॉक्टर ने आर्य समाज की विधिवत् स्थापना करवाई थी, जिससे हिंदी-शिक्षण को बल मिला था। प्राथमिक स्तर पर सरकारी स्कूलों में परंतु समय-सारणी में हिंदी को स्थान 15 मार्च, 1954 को ही मिला था। प्रो. रामप्रकाश ने सन् 1949 में मॉरीशस पधारकर अध्यापकों को प्रशिक्षित किया था। अतः डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम की सरकार की हिंदी भाषा-नीति को कार्यरूप दिया गया था—और हिंदी प्राथमिक स्कूल में पहुँच गई थी। तब से अब तक हिंदी माध्यमिक और उच्च शिक्षा तक पहुँच गई है।

आज 2010 की स्थिति यह है कि पूर्ण निशुल्क होने पर भी मान्यता प्राप्त तीन प्रकार के प्राथमिक स्कूल हैं—सरकारी, चर्च के स्कूल और निजी। शायद ही किसी स्कूल में हिंदी नहीं पढ़ाई जाती है। पहली से छठी कक्षाओं तक अन्य भारतीय भाषाएँ तो पढ़ाई जाती हैं, परंतु हिंदीभाषी अधिकतर छात्र होने के कारण हिंदी देश के सभी सरकारी, गैर-सरकारी-निजी एवं चर्च द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ाई जाती है। एक बात की ओर संकेत करना अनिवार्य है कि हिंदी सभी छात्रों के लिए अनिवार्य विषय नहीं है। मात्र हिंदी या भोजपुरीभाषी अभिभावकों के बच्चे हिंदी विषय रूप में लेते हैं। छठे साल में सर्टिफिकेट ऑफ प्राइमरी एजूकेशन नामक परीक्षा ली जाती है। अच्छे नंबरों से सफल छात्रों को राष्ट्रीय स्तर के कॉलेजों में माध्यमिक पढ़ाई जारी रखने के लिए सीटें मिलती हैं। माध्यमिक स्तर के छात्रों को स्टेट कॉलेजों में दाखिला मिलता है, अंततः निम्न स्तर के छात्रों को प्राइवेट कॉलेजों में प्रवेश मिलता है। छात्र क्रिश्चियन कॉलेजों में प्रवेश पाने के लिए स्वतंत्र होते हैं। सात विषयों में से पाँच सर्वाधिक अंक प्राप्त विषयों की गिनती कॉलेजों में प्रवेश के लिए होती है, जिनमें हिंदी भी एक विषय है। प्राथमिक स्तर पर हिंदी-शिक्षण संतोषजनक है। निम्न तालिका से अधिक जानकारी मिल जाएगी—

पाठशाला-संख्या	305
छात्र-संख्या	117,427
अध्यापकों की संख्या	5,435
छात्रों/शिक्षक अनुपात	28

मॉरीशस में पाँच से लेकर तेरह वर्ष की उम्र के बच्चे प्राथमिक स्कूलों में पढ़ते हैं। शिक्षण पूर्णत: निशुल्क है

माध्यमिक स्कूल

माध्यमिक स्कूल को मॉरीशस में कॉलेज कहा जाता है। सी.पी.ई. में प्राथमिक शिक्षणोपरांत प्राप्त परीक्षा-फल कॉलेजों में प्रवेश पाने के लिए निर्णायक होता है। श्रेष्ठतम परीक्षाफलवाले छात्र सरकारी राष्ट्रीय कॉलेज में प्रवेश पाते हैं। अभिभावक, शिक्षक एवं छात्र के लिए यह गर्व की बात समझी जाती है। श्रेष्ठतर परीक्षाफल वाले बच्चे स्टेट या चर्च द्वारा संचालित कॉलेज चुनते हैं। सामान्य छात्र उन प्राइवेट कॉलेजों में प्रवेश पाते हैं, जिनकी देख-रेख कॉलेज के मैनेजर करते हैं। परंतु सारा खर्च सरकार प्राइवेट सेकेंडरी स्कूल अथॉरिटी के माध्यम से चुकाती है। इन तीनों श्रेणियों के कॉलेजों में कैंब्रिज स्कूल तथा हायर स्कूल सर्टिफिकेट की तैयारियाँ की जाती हैं। इन सभी कॉलेजों में हिंदी का शिक्षण होता है। हिंदी साहित्य भी छात्रगण स्कूल सर्टिफिकेट लेवल पर एक विषय रूप में लेते हैं। सी.पी.ई. फेल बच्चों के लिए भी शिक्षण का प्रावधान है, जहाँ वे कोई एक व्यवसार्य सीखते हैं, साथ-साथ साक्षरता भी प्राप्त करते हैं; परंतु इन्हें हिंदी नहीं पढ़ाई जाती है। माध्यमिक स्तर की बात की जाए तो कतिपय ऐसे कॉलेज हैं जहाँ धनकुबेर अपने बच्चों को भेजते हैं, परंतु जहाँ मॉरीशस में प्रसिद्ध कैंब्रिज की परीक्षाओं की तैयारी नहीं होती बल्कि उनसे हटकर फ्रेंच शिक्षण प्रणाली 'बाकालोरेआ' का अनुसरण होता है। पब्लिक कॉलेज निशुल्क हैं जबकि इन प्राइवेट कॉलेजों में शुल्क लिया जाता है। हाँ, इनमें से अधिकतर में हिंदी नहीं पढ़ाई जाती है। कुछ प्री-प्राइमरी और प्राइमरी स्कूल भी प्राइवेट हैं, जहाँ माँ-बाप अपने बच्चों को अपनी खुशी से भेजते हैं और फीस के रूप में मोटी रकम भी हर महीने चुकाते हैं। अन्यथा शेष ऊपर चर्चित प्रमुख धारा में माध्यमिक स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है और शिक्षा पूर्णत: निशुल्क है। प्रस्तुत तालिका से अधिक जानकारी मिल सकती है :

माध्यमिक स्कूलों की संख्या	182
छात्रों की कुल संख्या	1,22,321
शिक्षकों की सर्वजोड़ संख्या	8,323
कुल अनुपात	73%
छात्र/अध्यापक अनुपात	15

वर्ष 1973 से माध्यमिक शिक्षा निशुल्क घोषित की गई थी। उसके बाद क्या सरकारी, क्या गैर-सरकारी—चर्च या निजी। सभी कॉलेजों में हिंदी विषय रूपों में स्वीकृत हुई। आज स्थिति यह है कि शायद ही कोई एसा कॉलेज मॉरीशस भर में होगा, जहाँ एस.सी और हायर स्कूल सर्टिफिकेट की तैयारी हो रही हो और हिंदी विषय का शिक्षण न होता होगा।

वर्ष 2010 से माध्यमिक स्तर के फॉर्म 3 में एक प्रायोगिक परीक्षा का आयोजन शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया गया है, जिसमें हिंदी को स्थान नहीं दिया गया है, इस कमी को हिंदी के प्रचार-प्रसार में एक बाधा स्वरूप देखा जा रहा है।

उच्च शिक्षा (टर्सरी शिक्षा)

मॉरीशस भर में विभिन्न विषयों में माध्यमिकोत्तर तृतीया शिक्षा प्रदान करने वाली साठ-बासठ संस्थाएँ हैं, जहाँ डिप्लोमा, हायर डिप्लोमा, बी.ए., बी.एस-सी, एम.ए, एम.एस-सी आदि स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तरों की शिक्षा वर्षों से प्रदान की जा रही है। ये संस्थाएँ विदेशों में मान्यताप्राप्त किसी-न-किसी विश्वविख्यात विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं। मॉरीशस में ये संस्थाएँ व कोर्स प्रदान करती हैं। मॉरीशस एक्जामिनेशन सिंडीकेट जैसे विश्वसनीय संस्थान की देख-रेख में परीक्षाएँ होती हैं और विदेशी विश्वविद्यालय डिग्रियाँ प्रदान करते हैं, जिनको पूर्ण मान्यता मॉरीशस की सरकार ने दे रखी है। कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी की हिंदी बी.ए. और एम.ए. परीक्षाओं की तैयारी भी गत् दो-तीन वर्षों से छात्रगण आर्यसभा मॉरीशस के प्रबंध से कर रहे हैं। कुछ छात्र प्राइवेट रूप से इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी के भी हिंदी कोर्सों की तैयारी करते रहे हैं। जहाँ तक पूर्णकालिक हिंदी के स्नातक और स्नातकोत्तर कोर्सों का प्रश्न है, मॉरीशस विश्वविद्यालय ने दिल्ली यूनिवर्सिटी की देख-रेख में ये कोर्स महात्मा गांधी संस्थान को सौंप रखे हैं। डिग्री मॉरीशस का

विश्वविद्यालय प्रदान करता है। ऐसा गायन-वादन, नृत्य एवं ललित कलाओं को लेकर भी प्रबंध किया गया है। बात यदि हो रही है तृतीय शिक्षा की तो यहाँ हिंदी प्रचारिणी सभा का भी नाम सादर लेना चाहिए, क्योंकि वर्षों पहले से हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की विशारद एवं साहित्य-रत्न परीक्षाओं का आयोजन सभा करती आ रही है। कृपया प्रस्तुत तालिका देखिए :

स्वैच्छिक संस्थाएँ

मॉरीशस में बिना किसी के आर्थिक सहयोग के गिरमिटियों के वंशजों ने भारत से दूर उस समय के इस बंजर टापू में यथाशक्ति एवं यथायोग्य भारतीयता की अमर ज्योति जलाए रखी। जब-जब भारतभूमि से कोई भी अपना इस टापू में पधारा, जोड़ने के रूप में उससे इस देश के भारतीय वंशजों को अपने पूर्व संचित संस्कारों,

वर्ष	प्रवेशिका	परिचय	प्रथमा	मध्यमा	उत्तमा-1	उत्तमा-2	उत्तमा-3
2006-सर्वजोड़	1760	1111	764	450	426	223	188
सफल	1124	960	636	378	372	192	164
%	66.4	89.6	87.2	90.7	93	89.6	97.6
2007-सर्वजोड़	1619	1048	725	526	338	328	801
सफल	1162	935	596	464	244	281	144
%	75	93.2	84.1	93.1	77.2	89.7	91
2008-सर्वजोड़	1580	1090	746	485	421	231	260
सफल	1099	918	606	401	360	213	233
%	72.3	88.5	83.5	86	90.9	95.9	95.8
2009-सर्वजोड़	1485	984	706	450	344	303	199
सफल	1016	912	629	385	315	280	186
%	70	96	93	92	94	97	97

भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में विशारद से बी.ए एवं साहित्य रत्न से एम.ए हिंदी की जा सकती है।

मॉरीशस की सरकार चाहती है कि हरेक घर में कम-से-कम एक स्नातक किसी भी विषय में हो। यूनिवर्सिटी में सीटें डबल किए जाने की योजना भी है। आशा की जा रही है कि इससे हिंदी पढ़नेवालों की संख्या भी डबल हो जाएगी।

परंपराओं एवं भारत-प्रेम में ऊपर से अतिरिक्त रूप में अपना विश्वास प्रबल करने का अवसर मिला। गांधीजी 1901 में पधारे, उनसे जोड़ने को मिला-बच्चों को पढ़ाएँ, राजनीति में भाग लें!

मणिलाल डॉक्टर 1907 में पधारे—उन्होंने हिंदी की नींव 1909 में 'हिंदुस्तानी' द्वारा रखी और 1910 में आर्य समाज की स्थापना की। डॉ. चिरंजीव भारद्वाज को उन्होंने 1912 में आर्य समाज के प्रचारार्थ भेजा। पं. आत्माराम एक बार जो आए तो यहीं 1954 में स्वर्ग सिधारे।

1925 में भारत की अंग्रेज सरकार द्वारा भेजे गए महाराज कुँवरसिंह के आगमनोपरांत हिंदू महासभा 1925 में ही स्थापित हुई। उनके हिंदी में दिए गए धुआँधार भाषणों से प्रेरित होकर एक वर्ष बाद तिलक महाविद्यालय की स्थापना हुई थी। पं. आत्माराम विश्वनाथ ने 1936में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'हिंदू मॉरीशस' में हिंदी माध्यम से प्रचार-सुधार करनेवाली अनेक सभाओं का उल्लेख किया है। तिरसठ चर्चित हिंदू संस्थाओं में मात्र हिंदी प्रचारिणी सभा हिंदू धर्म नहीं, बल्कि हिंदी भाषा के प्रचारार्थ स्थापित हुई थी। आज स्थिति यह है कि हिंदी प्रचारिणी सभा आधुनिक युवकों को हिंदी पारंपरिक विधि से सिखाने के लिए कटिबद्ध है। दूसरी ओर आर्य सभा हिंदी माध्यम से धर्म प्रचार-कार्य कर रही है तथा चार कदम आगे बढ़कर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से संबद्ध होकर बी.ए. और एम.ए. की डिग्रियों के कोर्स प्रदान कर रही है! 1940 से 'आर्योदय' का लगातार प्रकाशन हो रहा है। अन्य आर्य शब्दधारक सभाओं में 'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' भी हिंदी माध्यम से प्रचार कार्य कर रही है। धर्म प्रचारार्थ स्थापित 'सनातन धर्म टेंपल्स फेडरेशन' भी 'दर्पण' हिंदी में प्रकाशित करती है। अन्य छोटी-मोटी संस्थाएँ एवं सभाएँ भी हैं, जो सरकारी अनुदान से चलती हैं, परंतु उनके द्वारा संपन्न कार्य हिंदी के क्षेत्र में कम नजर आते हैं।

प्रसारण क्षेत्र में हिंदी

एक समय था जब पूरा मॉरीशस 'आकाशवाणी' और 'रेडियो सिलोन' का प्रसारण सुनता था, क्योंकि स्थानीय प्रसारण केंद्र से बहुसंख्यक मॉरीशसीय हिंदी भाषी जनता की पसंद और रुचि को दरकिनार करके व्यक्तिपरकता जनमानस पर लादकर मात्र फ्रेंच और अंग्रेजी में कार्यक्रम प्रसारित किए जाते थे। चुनाव प्रणाली में परिवर्तन हुआ और हरेक नागरिक के मतदाता बनते ही उसकी रुचि, पसंद और आवश्यकता का महत्त्व बढ़ चला था। देश में बहुसंख्यक जनता को प्रसन्न रखने के लिए सरकार ने उसकी भाषा को मात्र स्कूलों में ही नहीं, अपितु प्रसारण केंद्र में भी बिना भेदभाव के उचित समय देना स्वीकार किया। बारह लाख की आबादी में आठ लाख अर्थात् दो-तिहाई जनसंख्या हिंदी और भोजपुरी के श्रोताओं की जब हों तो कोई भी प्रसारण केंद्र उसकी अवहेलना कैसे कर सकता है? बाजार का कानून लागू होते ही सहज हिंदी और सहज उर्दू ने मिलकर हिंदुस्तानी के श्रोता-स्वरूप बाजी मार दी है। गांधीजी ने जो सपना अविभाज्य भारत का देखा था—वह 'हिंदुस्तानी' को लेकर मॉरीशस प्रसारण क्षेत्र में साकार हुआ। वर्ष 1983 से छह चैनलों में चौबीसों घंटे रेडियो प्रसारण होने लगा। एफ.एम. रेडियो प्रणाली प्रारंभ हुई। फिर भी बहुभाषी मॉरीशस में जनसंख्या के अनुसार प्रसारण समय विभाजित नहीं किया जा सका। अत: हिंदी को ठेठ रूप से उन आठ लाख श्रोताओं में से छह लाख अर्थात् आबादी की आधी जनसंख्या होने के नाते किसी प्रसारण केंद्र से पचास प्रतिशत समय नहीं मिला था। फिर 2002 में प्रसारण सुविधा मुक्त होते ही प्राइवेट रेडियो स्टेशन स्थापित हो गए। रेडियो प्लस, टॉप एफ.एम.रेडियो वैन चालू हो गए। बाजार नहीं, जंगल का कानून जारी हो गया। जो स्टेशन या चैनल जितना जनता के करीब, उसके उतने ही अधिक श्रोता! मात्र रेडियो वैन से हिंदी में प्रसारण गीत, संगीत, कमेंट्री आदि न के बराबर होते हैं। जब कि रेडियो प्लस और टॉप एफ.एम. रेडियो से फिल्मी गाने प्रसारित तो होते हैं परंतु कमेंट्री हिंदी की अपेक्षा फ्रेंच के बिगड़े रूप क्रियोल में की जाती है। अब शेष रह जाता है 'मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन'। देश का पहला स्टेशन, जो सरकारी देख-रेख में स्वतंत्र रूप से कार्यरत है। कुछ वर्षों से भारत के दूरदर्शन की नकल की जा रही है मॉरीशस में भी! हिंदी समाचार तक में 'हिग्लिश' को सुनने से रक्तचाप बढ़ जाता है। मानक हिंदी जिस देश मॉरीशस में प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक पढ़ाई जाती हो, शुद्ध हिंदी में, अनैतिक मिलावट करके पूरी हिंदी-शिक्षण व्यवस्था को गाली-सी दी जाती रही है। ऊपर से अशुद्ध उच्चारण! एकवचन और बहुवचन की परवाह किए बिना—'जाता हैं, किया हैं।' मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन से सुनकर अब कोई श्रोता आश्चर्य प्रकट नहीं करता! इसमें दो मत हो ही नहीं सकते कि मॉरीशस में रेडियो मॉरीशस एवं ताल एफ.एम. द्वारा प्रसारित हिंदी कार्यक्रमों से जनता उतना संतुष्ट नहीं थी। अन्य भारतीय भाषाओं के कार्यक्रमों, गीत, संगीत, वार्ता, विशेष प्रसारण आदि को उनमें जोड़ने पर हिंदी को उसका हक नहीं मिलता था। इसलिए गत दिनों बेस्ट एफ.एम. नामक हिंदी रेडियो चैनल चालू किया गया, जिस पर चौबीसों घंटे मात्र मनोरंजक गीत-संगीत

प्रसारित होते रहते हैं। शेष चैनलों में बिना अंकों-आँकड़ों के झमेलों में पड़े मात्र इतना जान लेना चाहिए कि हिंदी से सौतेला व्यवहार किया जाता है। टेलीविजन पर इन दिनों बारह चैनलों में छह चैनल और जोड़ दिए गए हैं। दूरदर्शन से लेकर हू-ब-हू उर्दू, तमिल, तेलुगु और मराठी टी.वी. कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। चीन से भी यथावत चीनी चैनल प्रसारित हो रहा है और स्थानीय कल्चरल चैनल का भी अब कार्यक्रम चल रहा है। अब तो सीधे एंटीना लगाकर डेढ़ सौ चैनल घर बैठे देखे जा सकते हैं—रेडियो भी वाया इंटरनेट सुने जा रहे हैं। वेब में रेडियो, गीत और संगीत भी सम्मिलित हो रहे हैं। मोबाइल पर टी.वी., ई-मेल आदि की सुविधाएँ हैं। रेडियो और टी.वी. आज स्टेशन और समय सापेक्ष्य न होकर श्रोता-दर्शक सापेक्ष्य हो गए हैं। दर्शक-श्रोता अपनी सुविधा और समय के आधार पर कार्यक्रम देख-सुन सकते हैं। केबल टी.वी. और एंटीना द्वारा प्राप्त चैनलों के किन्हीं दृश्यों से हमारे किशोरों का नाश हो रहा है। मुक्त प्रसारण सुविधा से दुनिया भर के स्टेशनों से हिंदी कार्यक्रम भी मॉरीशस में प्राप्त हो रहे हैं।

हिंदी साहित्य

2 मार्च, 1913 के 'हिंदुस्तानी' अखबार में प्रकाशित एवं उपलब्ध 'होली' शीर्षक कविता और 'सत्य होली' शीर्षक लेख मॉरीशस की प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्यिक रचनाएँ हैं। तब से आज तक के इन अठानबे लंबे वर्षों में मॉरीशस के हिंदी साहित्य ने काफी लंबी यात्रा तय की है। बिना विश्व साहित्यधारा में बहे अथवा भारत के समृद्ध हिंदी साहित्य के वादों के विवाद में डूबे, मॉरीशस के हिंदी साहित्य की आज अपनी अलग पहचान है, अलग विकास-क्रम है, इतिहास है और उपलब्धियाँ हैं। विश्व अथवा भरतीय साहित्यधारा के सामने हमारा हिंदी साहित्य बौना सा है। फिर भी मॉरीशस की उर्वर साहित्यिक भूमि ने एक अभिमन्यु अनत, एक रामदेव धुरंधर और डॉ. बीरसेन जागासिंह को जन्म दिया है। आज भी मॉरीशस में साहित्य-साधना की जा रही है। हाँ, यह भी सत्य है दिन-प्रतिदिन पाठक घटते जा रहे हैं। आज भी पुराने साम्राज्यवादी उपनिवेशक यूरोपीय देश जैसे कि फ्रांस, अपनी संस्कृति और भाषा के प्रसार-प्रचार के लिए अरबों यूरो खर्च कर रहे हैं। अपने पुराने उपनिवेशों में सांस्कृतिक और भाषिक प्रभाव इतना बढ़ा रहे हैं कि वहाँ या यहाँ बसे देश के लालों का आत्मविश्वास डगमगा जाता है। यह भी एक प्रमुख कारण है सृजनात्मक लेखन एवं प्रकाशन की कमी का तथा पाठककों की संख्या घटने का। और ऊपर से भारत में हिंदी का घटता प्रभाव एवं अंग्रेजी के बढ़ते कदम! हाथ कंगन को आरसी क्या? हमारे प्रेरणा-स्रोत में ग्रहण लग गया है।

हिंदी और नौकरी

हिंदी प्रारंभ में हमारी पहचान की भाषा बनी, फिर धर्म की, फिर संस्कृति की और अंत में वोट की भाषा बनी। हाँ, आंशिक रूप से नौकरी की भाषा भी रही है। शिक्षा क्षेत्र में हिंदी एक विषय के रूप में स्थापित हो चुकी है, क्योंकि भारतीय मूल का हरेक अभिभावक चाहता है कि भारतीयता का प्रथम प्रतीक हिंदी भाषा से उसकी संतान अवगत हो' उनकी सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहचान हो। यदि हिंदी में महारत के कारण हिंदी संबंधी कोई नौकरी मिल जाए तो ठीक है, अन्यथा ऊपर चर्चित लाभ तो हिंदी से अवश्य होते हैं। हिंदी में डिप्लोमा, बी.ए. एवं एम.ए. करनेवाले छात्रों के लिए शिक्षा-क्षेत्र में प्राइमरी स्कूल हिंदी टीचर या हिंदी एज्यूकेटर की नौकरी संभव होती है। डॉक्टरेट करने पर लेक्चरर भी बना जा सकता है। पत्रकारिता का दरवाजा बंद है, क्योंकि न कोई हिंदी दैनिक और न ही कोई साप्ताहिक इन दिनों प्रकाश में आ रहे हैं। मात्र महात्मा गांधी संस्थान में वैतनिक संपादक रखकर 'वसंत' और 'रिमझिम' का प्रकाशन किया जाता है। रेडियो प्रसारण केंद्रों में भी शुद्ध भाषाज्ञान एवं शुद्धोच्चारण होने पर हिंदी नौकरी दिलाती रही है। अन्यथा पंडित-पुजारी के लिए हिंदी आवश्यक होती है। राजनेता, सामाजिक नेता या आम जनता के संपर्क में आनेवाले लोगों के लिए हिंदी का ज्ञान एक प्लस सिद्ध होता है। हिंदी कोर न होकर ऑप्शनल भाषा स्कूलों में है, जीवन में है और समाज में भी है!

बोलचाल की भाषा

प्रारंभ में बहुसंख्यक गिरमिटियों की भाषा होने के कारण

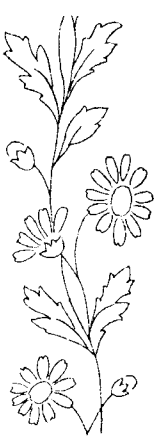
भोजपुरी ने तमिल, तेलुगु, मराठी, बँगला, ओड़िया आदि बोलनेवाले गिरमिटियों को लाचार कर दिया था कि वे भोजपुरी को संपर्क की भाषा स्वीकारें। फिर जब भोजपुरी का स्थान 1909 से हिंदी ने लेना शुरू कर दिया तो अन्य लोग हिंदी को न अपनाकर क्रियोल की ओर झुक गए। पठन की बात चली तो स्कूलों में अल्पसंख्यक भारतीय वंशजों ने पुनः तमिल, तेलुगु, मराठी और उर्दू को अपनाया। बिहार और उत्तर प्रदेश से आए हुए ठेठ भोजपुरी भाषी ही हिंदी वाले बनकर मॉरीशस में रह गए। वे आज कुल जन-संख्या के 50 प्रतिशत हैं। हाँ, पूरे मॉरीशस में फ्रेंच की बिगड़ी बोली 'क्रियोल' सभी नागरिक बोलते और समझते हैं। दूसरे स्थान पर भोजपुरी है बोलचाल की भाषा के रूप में। ये ही 50 प्रतिशत भोजपुरीभाषी मॉरीशस में हिंदी के पक्षधर हैं।

उपसंहार

देश, काल और परिस्थिति के कारण आज हिंदी मॉरीशस में जीवित है। कल की हुई भूलों से, जो मॉरीशस, भारत और अन्यत्र घटी हों, उनसे शिक्षा प्राप्त करके आज हम वर्तमान सँवार सकते हैं, ताकि भविष्य सुनहरा हो सके। अभी हिंदी को मॉरीशस में संस्कृति की भाषा की सीमा पार करके बाजार की भाषा बनने में समय लगेगा। भारत से मॉरीशस सीखता रहा है—दिन-रात दूरदर्शन और एनडीटीवी में अपने पूर्वजों के देश में नेता तो नेता आम जनता को हिंदी न जानने का बहाना करते हुए देख-सुनकर हम मॉरीशस के हिंदीवाले क्या महसूस करते हैं—है किसी को इसकी परवाह ? मैंने दुनिया भर के देशों के हमारे जैसे हिंदीमना लोगों को ऐसा ही प्रश्न करते सुना है! धर्म, संस्कृति और भाषा के उदाहरणीय हमारे प्रेरणा-स्रोत देश भारत में मानो अंग्रेजी का ग्रहण लग रहा है! अब तो भारत के गाँव में 'इंग्लिश देवी' के स्कूल स्थापित होना तय हो गया हैं! अतः हमें गर्व है कि हमारी हिंदी भाषा और साहित्य जैसा भी मॉरीशस में है, हमारा अपना है, विश्व हिंदी का हिस्सा है। हमारा परिश्रम और उपाय यही रहेगा कि हिंदी विश्व-भाषा बने, संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपना आधिकारिक स्थान पाए। हमें वास्तव में गर्व है कि हम हिंदी—भाषी हैं। जय हिंदी!

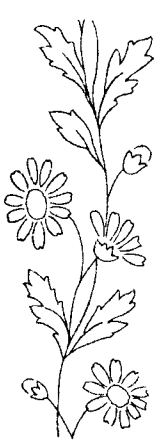
□

President, Govt. Hindi Teacher's union
2nd Floor, Gujadhar Bldg.
2, Mgr. Gonin St.
Port Louis,
Mauritius



मैं मानता हूँ कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिंदी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरंतर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती है। और सभी भाषाओं में प्रदेश बोला है—कई बार बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला है, हिंदी में आरंभ से ही देश बोलता रहा है—भले ही कभी-कभी कमजोर स्वर में भी बोला है।

—सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय



15 मॉरीशस में हिंदी : एक सर्वेक्षण

डॉ. जयप्रकाश कर्दम

भारत एक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ बोली, पढ़ी और लिखी जाती हैं। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ शामिल हैं, जिन्हें हम भारत की राष्ट्रीय भाषाएँ कह सकते हैं। इनमें से कई भाषाएँ राज्यों की राजभाषाएँ हैं। किंतु कुल मिलाकर भारत हिंदी का देश है। हिंदी भारत की केंद्रीय सरकार की राजभाषा है और समस्त देश की संपर्क-भाषा भी है। संपूर्ण भारत के लोग, चाहे वे किसी भी राज्य या क्षेत्र के रहनेवाले हों, उनकी कोई भी मातृभाषा हो, अधिकांशत: हिंदी समझते हैं तथा अपने-अपने ढंग से हिंदी बोलते हैं। भारत के लोग भारत से बाहर विश्व में जहाँ-जहाँ पर भी जा रहे हैं, अपने साथ हिंदी भाषा को ले जा रहे हैं। आज पूरे विश्व में हिंदी बोलने और पढ़ने-लिखने वाले लोग फैले हुए हैं। भारत से बाहर जिन देशों में हिंदी का सर्वाधिक प्रसार है, उनमें मॉरीशस का प्रमुख स्थान है। मॉरीशस के इस महत्त्व को देखते हुए ही भारत सरकार ने मॉरीशस की सरकार के साथ मिलकर विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना मॉरीशस में की है।

मॉरीशस की कुल (लगभग बारह लाख) जनसंख्या में दो-तिहाई संख्या आप्रवासी भारतीयों की है। इनमें अधिकांश संख्या बिहार और उत्तर प्रदेश प्रांतों से आए लोगों की है, जिनकी बोलचाल की भाषा भोजपुरी रही है, जो हिंदी की एक बोली है। हिंदी या भोजपुरी से अलग जो लोग मराठी, तेलुगु या अन्य भाषा-भाषी थे, इनके संपर्क में रहकर उन्होंने भी हिंदी या भोजपुरी को अपनाया। प्रारंभ में भोजपुरी ही उनकी पारस्परिक संपर्क और व्यवहार की भाषा थी। बाद में अफ्रीकी, फ्रेंच और अंग्रेजी के संपर्क में रहने पर उनके जीवन में क्रियोली का प्रभाव बढ़ता गया। मॉरीशस में आम बोलचाल की भाषा क्रियोल है। आप्रवासी भारतीयों के जीवन में भी धीरे-धीरे क्रियोल इतनी उतर गई है कि हिंदी का प्रयोग काफी पीछे चला गया है। आज स्थिति यह है कि शहरों में हिंदी का प्रयोग बहुत कम अथवा नगण्य देखने को मिलता है। गाँवों के लोग, जो प्राय: कम पढ़े-लिखे, मजदूरी करनेवाले हैं, अवश्य भोजपुरी या हिंदी में बोलते हैं। वहाँ के गैर-भारतीय मूल के लोग भी आम बोलचाल में, विशेष रूप से भारतीयों के साथ, भोजपुरी या क्रियोल मिश्रित भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। मंदिरों में भजन-कीर्तन हिंदी में होते हैं।

मॉरीशस में आज प्राथमिक से लेकर स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर तक हिंदी की पढ़ाई होती है। कुछ वर्ष पहले तक वहाँ पर विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई नहीं होती थी। इसके लिए वहाँ के एक जुझारू हिंदी सेवी और अध्यापक सत्यदेव टेंगर ने न्यायालय में लड़ाई लड़ी। मॉरीशस के उच्च न्यायालय में हार जाने



- **जन्म** : 5 जुलाई, 1958, इंदरगढ़ी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश (भारत)
- **शिक्षा** : एम.ए.(दर्शन), एम.ए.(हिंदी), एम.ए.(इतिहास), पीएच.डी. (हिंदी)
- **प्रकाशन** : दो काव्य रचनाएँ, दो उपन्यास, एक कहानी की पुस्तक, पाँच आलोचनाएँ, दो संपादन और एक अनुवाद के साथ-साथ बाल साहित्य पर पुस्तकें
- 1999 से निरंतर 'दलित साहित्य' (वार्षिक पत्रिका) का संपादन
- 'नया मानदंड' दैनिक के तीन अंकों (दलित चेतना, दलित साहित्य और दलित आत्म-कथा) का संपादन
- अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक सम्मेलनों ओर सेमिनारों में भागीदारी और कविताएँ, कहानियाँ तथा व्याख्यान
- इनके जीवन और रचनाओं पर 25 से भी अधिक एम.फिल./पीएच.डी शेध संपन्न तथा तीन रचनाएँ प्रकाशित
- अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत
- मॉरीशस स्थित भारतीय उच्चायोग में 2007 से 2010 तक द्वितीय सचिव पद पर कार्यरत।
- **संप्रति** : संयुक्त निदेशक (राज भाषा), खान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

के बाद उन्होंने इंग्लैंड में प्रीवी काउंसिल में जाकर मुकदमा लड़ा और विजय प्राप्त की। इस मुकदमे को लड़ने के लिए उन्हें अपना मकान गिरवी रखकर दस लाख रुपए का इंतजाम करना पड़ा। उसी निर्णय का परिणाम है कि आज मॉरीशस के स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है। मॉरीशस में भाषा के रूप में हिंदी के अस्तित्व का यह सबसे बड़ा आधार है, क्योंकि कोई भी भाषा घरों में बोले जाने और स्कूल स्तर पर पढ़ाए जाने पर ही जीवित और विकसित हो सकती है। यह वह अवस्था होती है, जिसमें बच्चा जो कुछ भी पढ़ता, सुनता या सीखता है, उसका प्रभाव जीवन भर उसके मानस पर रहता है। मॉरीशस में दसवीं कक्षा तथा अंग्रेजी और फ्रेंच की पढ़ाई अनिवार्य है, हिंदी की पढ़ाई स्वैच्छिक विषय के रूप में होती है। सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी स्तर पर विद्यार्थी कॅरियर के लिए उपयोगी विषयों का चुनाव करते हैं। मॉरीशस जैसे देश में, जहाँ की राजभाषा अंग्रेजी है, हिंदी कॅरियर-निर्माण में सहायक नहीं है। वहाँ की स्थिति भारत की तरह नहीं है, जहाँ हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी भाषा तथा इसके माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर लेने के अवसर सहज रूप में उपलब्ध होते हैं। मॉरीशस में हिंदी कैरियर-निर्माण में कोई भूमिका नहीं निभाती, इसलिए सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी स्तर पर विद्यार्थी हिंदी की अपेक्षा अन्य विषयों को वरीयता देते हैं।

मॉरीशस में हिंदी रोजगार की भाषा भले ही नहीं हो, यह धर्म और संस्कृति की भाषा अवश्य है। भारतीय मूल के लोग अपने धार्मिक संस्कार हिंदू धर्म के अनुसार करते हैं। वहाँ पर मंदिरों में अधिकांश पुजारी भारत से जाते हैं, जो प्राय: बिहार और उत्तर प्रदेश से होते हैं। ये पंडित और पुजारी अपने प्रवचन हिंदी में देते हैं। कहा जा सकता है कि मॉरीशस में हिंदी के प्रसार में इस पंडित-पुजारी वर्ग की बहुत बड़ी भूमिका है। इसके अलावा मॉरीशस आर्य महासभा, सनातन धर्म टेंपल्स फेडरेशन, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, मॉरीशस हिंदू महासभा, ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट, हिंदू हाऊस, रामायण सेंटर तथा राजपूत महासभा और सूर्यवंशी गहलौत राजपूत महासभा आदि धार्मिक संस्थाएँ भी हिंदी को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। ये संस्थाएँ अपने कार्यक्रम हिंदी में करती हैं। महा प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय आदि संस्थाओं के कार्यक्रमों में भी हिंदी का थोड़ा-बहुत प्रयोग देखने को मिलता है। पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और विश्व हिंदू परिषद् आदि संस्थाएँ भी मॉरीशस में सक्रिय हुई हैं और अपनी गतिविधियाँ हिंदी के माध्यम से ही संचालित करती हैं। इन संस्थाओं के पदाधिकारी एवं सदस्य आपसी व्यवहार में भी हिंदी का प्रयोग करते हैं।

हिंदी प्रचारिणी सभा और हिंदी संगठन हिंदी के प्रचार-प्रसार को समर्पित हैं। ये संस्थाएँ नियमित रूप से हिंदी के कार्यक्रम चलाती हैं। हिंदी के प्रशिक्षण और प्रसार के अपने नियमित कार्यक्रमों के साथ-साथ हिंदी प्रचारिणी सभा और हिंदी संगठन द्वारा क्रमश: 'पंकज' और 'सुमन' नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया जाता है। 'सुमन' बाल पत्रिका है तो 'पंकज' एक सामाजिक-साहित्यिक पत्रिका है। हिंदी प्रचारिणी सभा और हिंदी संगठन के पास पर्याप्त संख्या में हिंदी पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जानेवाली 'आजकल' और 'बाल भारती' की प्रतियाँ भी इन संगठनों के सदस्यों को निशुल्क सुलभ होती हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा के पास मॉरीशस में प्रारंभ की गई प्रथम हिंदी पत्रिका 'दुर्गा' के अंक भी सुरक्षित हैं, जिनमें प्रारंभ के हस्तलिखित अंक भी शामिल हैं। हिंदी संगठन द्वारा एम.बी.सी. पर हिंदी में वार्त्ता का एक साप्ताहिक कार्यक्रम 'ज्ञान-सरोवर' भी प्रसारित कराया जाता है। इनके अलावा, गवर्नमेंट हिंदी टीचर्स यूनियन, हिंदी लेखक संघ, हिंदी-साहित्य अकादेमी आदि कई अन्य संस्थाएँ भी हिंदी भाषा और साहित्य को बढ़ावा देने में अपना योगदान दे रही हैं। इनके साथ-साथ मॉरीशस में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में भारतीय उच्चायोग और इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। विभिन्न शैक्षिक-सांस्कृतिक संस्थाओं को समय-समय पर हिंदी पुस्तकें भेंट करने के अलावा इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र हिंदी-साहित्य की गतिविधियों का एक प्रमुख केंद्र बना हुआ है। प्रत्येक माह यहाँ पर 'साहित्य-संवाद' का आयोजन किया जाता है, जिसमें मॉरीशस के हिंदी लेखक बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (एम.बी.सी.) द्वारा भी रेडियो और टेलीविजन पर हिंदी में कई कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं, जिनमें समाचार से लेकर सीरियल, फिल्में, शिक्षा और सामयिक

विषयों पर वार्त्ता, परिचर्चाएँ तथा धार्मिक-सांस्कृतिक और गीत-संगीत के कार्यक्रम शामिल हैं। अन्य के अलावा, मॉरीशस के शीर्ष लेखक अभिमन्यु अनत के निर्देशन में उनकी ही कहानियों पर आधारित धारावाहिक 'नया आयाम' एम.बी.सी. पर प्रसारित होनेवाला एक सफल कार्यक्रम है। समय-समय पर पंडितों के धार्मिक प्रवचनों का प्रसारण भी होता है। भारत के राष्ट्रीय टी.वी. चैनल दूरदर्शन तथा एन.डी.टी.वी. और संस्कार चैनल के कुछ हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण भी एम.बी.सी. के चैनलों के माध्यम से होता है। हिंदी फिल्में और हिंदी गाने यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं। हिंदी फिल्में जिस दिन भारत में रिलीज होती हैं, मॉरीशस में भी उसी दिन या उसके आस-पास ही रिलीज होती हैं।

मॉरीशस में सेकेंडरी/हायर सेकेंडरी स्कूलों में नियमित पाठ्यक्रम के रूप में हिंदी की पढ़ाई के अलावा बहुत से स्कूलों में हिंदी की सांध्यकालीन कक्षाएँ भी चलाई जाती हैं। स्कूलों के अलावा विभिन्न धार्मिक संस्थाओं द्वारा मंदिरों में हिंदी की कक्षाएँ चलाई जाती हैं। ये भी 'बैठका' का ही एक रूप हैं। स्कूलों की तरह बैठकाओं में भी प्राइमरी से लेकर सेकेंडरी स्तर तक की कक्षाएँ चलाई जाती हैं, जिनमें प्राय: हिंदी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (इलाहाबाद) द्वारा अनुमोदित प्रथमा, मध्यमा आदि का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। मॉरीशस में इन पाठ्यक्रमों को सरकारी मान्यता प्राप्त है। यह कहना शायद अनुपयुक्त नहीं होगा कि मॉरीशस में हिंदी को अध्ययन-अध्यापन की भाषा के रूप में जीवित रखने में बैठकाओं का सर्वाधिक योगदान रहा है। धार्मिक संस्थाओं द्वारा मंदिरों में हिंदी की पढ़ाई वस्तुत: उनके धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम का एक हिस्सा हैं, जो इस बात को पुष्ट करता है कि मॉरीशस में हिंदी प्रमुख रूप से धर्म और संस्कृति की भाषा है। यह बात इससे भी प्रमाणित होती है कि हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों में दो-तिहाई से अधिक संख्या लड़कियों की है। मंदिरों में तथा अन्य धार्मिक कार्यक्रमों में भी महिलाएँ ही अधिक संख्या में भाग लेती हैं। संख्या हिंदी संगठन का सूत्र वाक्य है—'भाषा गई तो संस्कृति गई।' यह स्लोगन भी इस ओर ही संकेत करता है कि मॉरीशस में हिंदी को जीवित रखने की कोशिश इसे जन-जीवन, उद्योग या रोजगार की भाषा बनाने पर जोर नहीं है, अपितु प्रमुख बल इसे संस्कृति की भाषा बनाने पर है। शायद यही कारण है कि अन्य धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं की तरह हिंदी संगठन का भी प्रत्येक कार्यक्रम या बैठक गायत्री मंत्र के साथ शुरू होती है तथा शांतिपाठ के साथ समाप्त होती है।

मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (एम.बी.सी.) द्वारा भी रेडियो और टेलीविजन पर हिंदी में कई कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं, जिनमें समाचार से लेकर सीरियल, फिल्में, शिक्षा और सामयिक विषयों पर वार्त्ता, परिचर्चाएँ तथा धार्मिक-सांस्कृतिक और गीत-संगीत के कार्यक्रम शामिल हैं। अन्य के अलावा, मॉरीशस के शीर्ष लेखक अभिमन्यु अनत के निर्देशन में उनकी ही कहानियों पर आधारित धारावाहिक 'नया आयाम' एम.बी.सी. पर प्रसारित होनेवाला एक सफल कार्यक्रम है। समय-समय पर पंडितों के धार्मिक प्रवचनों का प्रसारण भी होता है।

मॉरीशस में भारत सरकार के सहयोग से स्थापित महात्मा गांधी संस्थान स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर भारतीय भाषाओं और कलाओं के प्रशिक्षण का सर्वप्रमुख केंद्र है। यहाँ पढ़ाई जानेवाली भारतीय भाषाओं में हिंदी सर्वप्रमुख है। हिंदी में शोध की व्यवस्था यहाँ पर है। मॉरीशस के कई विद्यार्थियों ने महात्मा गांधी संस्थान से हिंदी में शोध कार्य किया है। यू.जी.सी. (भारत का यूनिवर्सिटी ग्रांटस कमीशन) और टी.ई.सी. (मॉरीशस का टर्सरी एजुकेशन कमीशन) के मध्य समझौते के अंतर्गत तथा महात्मा गांधी संस्थान के अपने कार्यक्रमों के अंतर्गत भारतीय विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक भी अल्पकाल के लिए महात्मा गांधी संस्थान जाते हैं तथा हिंदी-साहित्य के अध्ययन और शोध में अपना योगदान देते हैं।

हिंदी में साहित्य-लेखन के क्षेत्र में भी मॉरीशस में काफी विकास हुआ है। मॉरीशस ने कई अच्छे लेखक हिंदी-साहित्य को

दिए हैं। अभिमन्यु अनत किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। हिंदी की जन्मभूमि, मातृभूमि और राष्ट्रभूमि भारत में भी अनतजी उतने ही सम्मान के साथ पढ़े जाते हैं, जितने सम्मान के साथ भारत के शीर्ष हिंदी लेखक पढ़े जाते हैं। अनतजी ने न केवल अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक विशेष पहचान बनाई है अपितु मॉरीशस को भी उन्होंने एक पहचान दी है। अभिमन्यु अनत मुख्यत: कथाकार हैं। चालीस से अधिक उपन्यास तथा कई कहानी-संग्रहों का सृजन उन्होंने किया है। कविता-लेखन के क्षेत्र में भी उन्होंने अपना योगदान दिया है। मॉरीशस के हिंदी लेखकों में दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम रामदेव धुरंधर का है। धुरंधरजी भी मुख्यत: कथाकार हैं। उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यासों के अलावा अनेक कहानियाँ तथा पंद्रह सौ से अधिक लघु कथाओं का सृजन किया है, जो अपने आप में किसी कीर्तिमान से कम नहीं है। अन्य उपन्यासों के अलावा 'पथरीली सोना' हिंदी-साहित्य को उनका एक बड़ा योगदान है। छह खंडों में समाहित इस उपन्यास का प्रत्येक खंड लगभग पाँच सौ पृष्ठ का है। सोमदत्त बखौरी, ब्रजेंद्र मंगरभगत, हरनारायण सीता, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, दीपचंद बिहारी, बेणीमाधव रामखेलावन, पूजानंद नेमा, श्रीमती भानुमती नागदान, हरनारायन सीता, सूर्यदेव सोबरत, जय जीऊत, सीता रामयाद और इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ आदि से आती हुई मॉरीशस से हिंदी-साहित्यकारों की समृद्ध होती परंपरा में राज हीरामन, डॉ. हेमराज सुंदर, कल्पना लालजी, गुलशन सुकलाल आदि अन्य महत्त्वपूर्ण नाम हैं, जो कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि विधाओं में लेखन कार्य कर रहे हैं। प्रह्लाद रामशरण ने हिंदी आलोचना और इतिहास-लेखन के क्षेत्र में योगदान दिया है तो महेश रामजीयावन की नाट्य लेखन और मंचन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन लेखकों के अलावा मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास में सर शिवसागर रामगुलाम, बासुदेव बिसुनदयाल, राजकुमार गजाधर, पंडित जयनारायण राय, पंडित काशीनाथ किष्टो, पंडित आत्माराम विश्वनाथ, एच. रामनारायण, सूर्यप्रसाद मंगरभगत व पंडित धर्मवीर घूरा आदि का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी मॉरीशस में काफी काम हुआ है। भारत से मणिलाल डॉक्टर के मॉरीशस जाने के बाद उनके प्रयासों से 1909 में 'हिंदुस्तानी' समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ, जो प्रारंभ में साप्ताहिक था, लेकिन बाद में 1910 से 1914 तक यह दैनिक के रूप में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् अनेक पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों का प्रकाशन हुआ, जिसमें से कुछ द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेजी में) तथा कुछ त्रिभाषी (हिंदी-अंग्रेजी-फ्रेंच में) थे। इन समाचार-पत्रों ने हिंदी-भोजपुरी भाषी जनता को अपनी इतिहास-परंपरा के साथ-साथ देश और दुनिया की हलचलों के बारे में जानने तथा स्वयं को अपने मन-मस्तिष्क में उठनेवाले प्रश्नों, विचारों तथा संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का अवसर और प्रोत्साहन दिया। इन पत्रों में 'जनता', 'जमाना', 'स्वदेश' प्रमुख थे। 'जनता' का प्रकाशन प्रसिद्ध हिंदीसेवी जयनारायण राय के संपादन में मॉरीशस के राष्ट्रपति और प्रथम प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम द्वारा शुरू किया गया था और 'जमाना' का प्रकाशन बी. बख्तावरसिंह के संपादन में मॉरीशस के सांस्कृतिक पुरुष प्रो. बासुदेव बिसुनदयाल द्वारा शुरू किया गया था। इनके अलावा, मॉरीशस आर्य पत्रिका (1911 से 1913 और 1924 से 1940), मॉरीशस इंडियन टाइम्स (1920-1924), मॉरीशस मित्र (1924 से 1932), आर्यवीर (1929 से 1945), सनातन धर्म (1933 से 1942), जागृति (1939 से 1945), आर्यवीर जागृति (1945 से 1950), सैनिक (1946से 1947), मजदूर नवजीवन (1960 से 1964) तथा जनवाणी (2001 से 2005) आदि पत्र भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। आजकल आर्य समाज द्वारा 'आर्योदय', गवर्नमेंट हिंदी टीचर्स यूनियन द्वारा 'आक्रोश', मॉरीशस सनातन धर्म टेंपल्स फेडरेशन द्वारा 'संदेश' पत्रों का भी नियमित प्रकाशन हो रहा है। ये सभी मासिक रूप से प्रकाशित होते हैं। जहाँ तक साहित्यिक पत्रिकाओं का संबंध है, महात्मा गांधी संस्थान द्वारा प्रकाशित 'बसंत' (मासिक) और 'रिमझिम' (मासिक बाल पत्रिका) हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा 'पंकज' (त्रैमासिक), हिंदी संगठन द्वारा 'सुमन' (त्रैमासिक बाल पत्रिका), हिंदी लेखक संग द्वारा 'बालसखा' (त्रैमासिक बाल पत्रिका), नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं। इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद् की ओर से प्रह्लाद रामशरण द्वारा 'इंद्रधनुष' (त्रिभाषी) भी प्रकाशित हो रही है। यह एक त्रिभाषी पत्रिका है, जिसकी एक-तिहाई सामग्री हिंदी में होती है। इन सभी पत्र-पत्रिकाओं ने मॉरीशस में हिंदी के संरक्षण और प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

मॉरीशस के अधिकांश हिंदी लेखक इन पत्र-पत्रिकाओं की ही देन हैं। किंतु हिंदी भाषा का इतना प्रसार तथा हिंदी पत्रकारिता की इतनी समृद्ध परंपरा होते हुए भी आज मॉरीशस में इस क्षेत्र में शून्य सा दिखाई देता है। मॉरीशस में अनेक दैनिक और साप्ताहिक पत्र हैं, जो सब फ्रेंच और अंग्रेजी में निकलते हैं। हिंदी में एक भी दैनिक या साप्ताहिक पत्र नहीं है।

बैठकाओं के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि भारतीय मजदूरों को जब गन्ने के खेतों में काम करने के लिए कुली के रूप में मॉरीशस लाया गया था तो उनमें से कुछ लोग थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना जानते थे और धार्मिक भक्ति-भावना में डूबे वे लोग अपने साथ 'रामचरितमानस' की प्रतियाँ लेकर आए थे। दिन भर के कठोर श्रम और अंग्रेज मालिकों द्वारा अमानवीय यातनाओं के बीच 'रामचरितमानस' जीवित रहने का उनका बहुत बड़ा सहारा थी। काम से लौटने के बाद सायं के समय वे किसी स्थान पर समूह में बैठकर आपस में बातचीत करते थे, गाते-बजाते थे तथा अपने दु:ख-दर्द आपस में बाँटते थे। इससे निराश, त्रस्त और जिंदगी की मार से टूटे हुए वे लोग एक-दूसरे का सहारा बनते थे। इसी को 'बैठका' कहा जाता था। यहीं से उनको जीवित रहने और आगे बढ़ने की प्रेरणा और शक्ति मिलती थी। 'रामचरितमानस' का पाठ भी इन बैठकाओं में होता था। 'रामचरितमानस' का पाठ करने के पीछे उनका उद्देश्य हिंदू धर्म की रक्षा अथवा उसका प्रचार-प्रसार करना नहीं था। भूखे-नंगे, अभावग्रस्त और उत्पीड़ित लोगों के लिए धर्म की रक्षा या उसका प्रचार कोई मुद्दा नहीं होता। ऐसे लोग हर जगह अपने जीवित रहने के लिए सुख-सांत्वना का आधार या सहारा ढूँढ़ते हैं। मॉरीशस के आप्रवासी भारतीयों के लिए भी 'रामचरितमानस' उनके सुख-सांत्वना का एक आधार था। 'रामचरितमानस' की रामकथा लोक-समाज में प्रचलित एक लोकप्रिय कथा है। ले-देकर 'रामचरित मानस' ही एकमात्र ग्रंथ था, जो उनके पास उपलब्ध था और जिसे पढ़कर वे अपना मनोरंजन कर सकते थे और उससे कुछ सहारा पा सकते थे। उनके जाने के सैकड़ों वर्ष बाद भारत से ब्राह्मण-पंडितों की वहाँ आवाजाही शुरू होने पर धर्म के प्रचार-प्रसार की चेतना विकसित हुई है और 'रामचरितमानस' के पाठ ने एक धार्मिक अनुष्ठान का रूप लिया है।

पहले गाँवों में लोग इस तरह समूह में बैठकर गाते-बजाते थे तथा किस्से-कहानियों के जरिए अपने सुख-दु:ख और अनुभव आपस में बाँटते थे। ये बैठकाएँ आप्रवासी भारतीयों के बीच एकता का बहुत बड़ा आधार रही हैं। मॉरीशस के स्वाधीनता के आंदोलन में भी इन बैठकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हालाँकि अब उस तरह से प्रतिदिन शाम को सामूहिक रूप से बैठकर देश-दुनिया और धर्म-समाज की बातें या मनोरंजन करने की परंपरा प्राय: नहीं रह गई है। आधुनिक जीवन शैली और आर्थिक विकास ने बैठकाओं को महत्त्वहीन बना दिया है। लेकिन यह सुखद है कि हिंदी भाषा के शिक्षण के रूप में नई भूमिका में बैठकाओं का अस्तित्व आज भी है और इन बैठकाओं में पढ़ानेवाले शिक्षकों को मॉरीशस सरकार द्वारा पारिश्रमिक दिए जाने की व्यवस्था है।

सामान्यत: मॉरीशस में हिंदी धर्म और संस्कृति की भाषा है। इसलिए प्राय: अपने धर्म और संस्कृति को संरक्षित रखने के लिए ही हिंदू समुदाय के लोगों द्वारा हिंदी का अध्ययन किया जाता है। इसके पीछे बहुत कुछ भारत और भारतीयता से जुड़ने या जुड़े रहने की भावना काम करती है। भारत और भारतीयों से जुड़ाव रखनेवाले बहुत से लोग बाजारों और अन्य स्थानों पर भारतीयों के साथ प्यार और अपनेपन से हिंदी में बोलते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मॉरीशस में लोग हिंदी अच्छी तरह समझते हैं, और यदि उनके साथ हिंदी में बात की जाए तो वे सहजता के साथ हिंदी में जवाब देते हैं। मॉरीशस के कई मंत्री और राष्ट्रीय असेंबली के सदस्य जन-सभाओं में धाराप्रवाह हिंदी में भाषण देते हैं। किंतु राष्ट्रीय असेंबली में केवल अंग्रेजी में या फ्रेंच में ही बोलने की अनुमति के कारण वे वहाँ पर हिंदी में नहीं बोल पाते हैं। यदि राष्ट्रीय असेंबली में हिंदी में बोलने की व्यवस्था हो तो बहुत संभव है कि वे वहाँ पर हिंदी में बोलने को प्राथमिकता दें। मॉरीशस में हिंदी भाषा के प्रसार और विकास को इससे निश्चित रूप से बहुत गति और बल मिलेगा।

मॉरीशस में हिंदी भाषा बोली जाती है, पढ़ी-लिखी जाती है। अनेक संस्थाएँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगी हैं, सरकारी अनुदान भी उनको मिल रहा है, किंतु एक सच्चाई यह है कि इस सबके होते हुए, धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं को छोड़ दें तो मॉरीशस में हिंदी कहीं दिखाई नहीं देती है। सड़कों, दुकानों, कार्यालयों के नाम हों या घरों

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

के बाहर लगी नेमप्लेट, हिंदी कहीं पर नहीं दिखाई देती है। सबकुछ या तो अंग्रेजी में है या फ्रेंच में। यहाँ तक कि अनेक दुकानों आदि पर चीनी भाषा में लिखे बोर्ड भी दिखाई देते हैं, जबकि चीनी लोगों की जनसंख्या मॉरीशस की कुल जनसंख्या के दो प्रतिशत के आस-पास है। यह विचार का विषय है कि थोड़े से चीनी लोग गर्व से अपनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, आपस में चीनी बोलते हैं, अपनी दुकानों आदि के बोर्ड चीनी भाषा में लगाते हैं, यानी व्यापार में भी वे चीनी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन बहुसंख्यक आप्रवासी भारतीय अपनी भाषा का इस्तेमाल नहीं करते हैं। पूरे मॉरीशस में पोर्ट लुई में देवीप्रसाद पोआग और नालंदा बुक स्टोर के अलावा अन्य किसी दुकान का बोर्ड हिंदी में नहीं मिलता है। कोई भी भाषा उसके प्रयोग से जीवित रहती है, प्रयोग बंद हो जाने से कोई भाषा जीवित नहीं रह सकती।

पर्यटन मॉरीशस की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। दुनिया भर से बड़ी संख्या में पर्यटक धरती का स्वर्ग कहे जानेवाले इस खूबसूरत द्वीप में भ्रमण के लिए आते हैं। एक दशक पूर्व तक यूरोपीय देशों के पर्यटक ही यहाँ प्राय: आते थे। किंतु अब भारतीय पर्यटक भी पर्याप्त संख्या में मॉरीशस जाने लगे हैं। सिंगापुर, दुबई, मलेशिया, थाईलैंड, ऑस्ट्रेलिया भारतीय पर्यटकों के सबसे ज्यादा पसंदीदा स्थान हैं। अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त होने के साथ-साथ भारतीय धर्म और संस्कृति का एक केंद्र होने के कारण मॉरीशस भारतीयों को सर्वाधिक आकृष्ट करता है। मॉरीशस जानेवाले भारतीय पर्यटकों की संख्या में प्रतिवर्ष निरंतर वृद्धि हो रही है। भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपनी एक यात्रा के दौरान मॉरीशस को 'छोटा भारत' की संज्ञा दी थी। भारत के लोग मॉरीशस को 'छोटा भारत' के रूप में ही मानते हैं तथा मॉरीशस के बारे में उनकी प्राय: यह धारणा होती है कि वहाँ पर सबकुछ भारत जैसा होगा। इस सबकुछ में जनजीवन में भारतीय भाषाओं का, विशेष रूप से हिंदी का प्रयोग भी शामिल है। किंतु मॉरीशस में कहीं पर भी हिंदी दिखाई नहीं देने से उनको निश्चित रूप से थोड़ी निराशा होती है। इसका भारत में यह संदेश जाता है कि मॉरीशस में हिंदी नहीं है। इसलिए भारत के बहुत से ऐसे लोग, जो पर्यटन के लिए मॉरीशस जाने की आर्थिक क्षमता रखते हैं और मॉरीशस जाना चाहते हैं, किंतु अंग्रेजी (या फ्रेंच) भाषा का ज्ञान नहीं रखते, सिर्फ हिंदी भाषा जानते हैं, वे मॉरीशस जाने से रुक जाते हैं। यदि मॉरीशस के बाजारों, सड़कों और पर्यटन केंद्रों पर अंग्रेजी और फ्रेंच के साथ-साथ हिंदी भी दिखाई और सुनाई देने लगे तो मॉरीशस जानेवाले भारतीय पर्यटकों की संख्या में निश्चित रूप से उल्लेखनीय वृद्धि होगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इससे मॉरीशस में हिंदी स्वत: फलने-फूलने लगेगी।

□

बी-634, डी.डी.ए. फ्लैट्स
ईस्ट ऑफ लोनी रोड,
दिल्ली-110093

भारतीय धर्म की है घोषणा घमंड भरी
'हिंदी' नहीं जाने उसे हिंदी नहीं जानिए।
—नाथूराम शंकर शर्मा

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

10 वियतनाम में हिंदी

साधना सक्सेना

मैं सन् 1987 से अपने परिवार के साथ वियतनाम में रह रही हूँ। उस समय यहाँ भारतीय परिवारों की संख्या बहुत कम थी, धीरे-धीरे भारतीय परिवारों की संख्या में वृद्धि होने लगी। तब मेरा ध्यान हिंदी-शिक्षण की ओर गया। यहाँ जो भी अंतरराष्ट्रीय विद्यालय हैं, उनमें हिंदी भाषा पाठ्यक्रम में नहीं है। सन् 1993 से मैंने भारतीय बालक-बालिकाओं को हिंदी पढ़ाने का मन बनाया, जिससे कि भारतीय बच्चे हिंदी-शिक्षण से वंचित न रहें। उसके बाद सन् 1996 से 1998 में दो अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम से अलग मुझे भारतीय छात्रों को हिंदी पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया। किंतु भारतीय छात्रों की संख्या कम होने की वजह से विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका। मैं लगातार ही भारतीय बच्चों को हिंदी पढ़ाती रही। गत वर्षों में लगभग 65 भारतीय बच्चे वियतनाम से हिंदी का ज्ञान प्राप्त करके भारत जा चुके हैं। इन बच्चों को भारतवर्ष में हिंदी की आगे की पढ़ाई में कोई परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा।



- **जन्म :** 1958 भारत में
- **शिक्षा :** विज्ञान में स्नातकोत्तर की उपाधि और शिक्षण में डिग्री तक की पढ़ाई
- 1987 से वियतनाम में, भारतीय परिवारों के बच्चों के साथ-साथ, स्थानीय छात्रों को भी हिंदी पढ़ाने के कार्य से जुड़ी हुई हैं
- वियतनाम स्थित भारतीय महाकौंसिल तथा अन्य भारतीय और स्थानीय संस्थाओं द्वारा आयोजित हिंदी गतिविधियों में लगातार सहयोग
- लंबी अवधि के कार्य तथा सतत सेवा के लिए भारत सरकार, भारतीय महाकौंसिल तथा अनेक भारतीय एवं वियतनामी संस्थाओं द्वारा सम्मानित
- **संप्रति :** नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ विएतनाम में हिंदी शिक्षण

सन् 2000 में वियतनामी विश्वविद्यालय और भारतीय दूतावास के सौजन्य से भारतीय शिक्षण विभाग का शुभारंभ हुआ। मुझे हर्ष है कि भारत जैसे विशाल, प्राचीन संस्कृति से परिपूर्ण देश की राजभाषा हिंदी के शिक्षण के लिए चुनने का मुख्य कारण था मेरा वियतनामी भाषा का ज्ञान। उस समय वियतनामी छात्रों का अंग्रेजी भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं था। मैं आज भी छात्रों को अंग्रेजी व वियतनामी माध्यम से हिंदी पढ़ाती हूँ। सन् 2000 से आज तक हिंदी-शिक्षण का कार्य सुचारू रूप से प्रगति की ओर अग्रसर है।

वियतनाम में केवल यही एकमात्र विश्वविद्यालय है, जिसमें हिंदी भाषा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। यहाँ प्रति दो वर्ष में दो सत्र होते हैं। कुल मिलाकर छात्र 6 सत्र हिंदी पढ़ते हैं। वियतनामी छात्रों को हिंदी पढ़ाने में कई समस्याएँ आती हैं और कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हिंदी-शिक्षण की सबसे बड़ी चुनौती है—छात्रों को हिंदी शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करना। वियतनाम में भारतीय समुदाय विभिन्न प्रदेशों से आए हैं, अधिकांश भारतीयों को अंग्रेजी में बात करना पसंद करते हैं, यहाँ तक कि कई दक्षिण प्रदेशों के भारतीयों को हिंदी भाषा का ज्ञान नहीं है। जब वियतनामी छात्र ऐसे भारतीयों के संपर्क में आते हैं तो उनका मनोबल व हिंदी के प्रति उत्साह क्षीण हो जाता है।

वियतनामी भाषा स्वर पर आधारित है। थोड़ा सा भी स्वर की ध्वनि बदलने से शब्द का अर्थ बदल जाता है, जबकि हिंदी भाषा में ऐसा नहीं होता है।

हिंदी वर्णमाला में कई व्यंजन ऐसे हैं, जिनका उच्चारण वियतनामी और अंग्रेजी भाषा में नहीं किया जा सकता है, जैसे ड़ ढ़ ण आदि।

विश्वविद्यालय में एक कक्षा की समय-सीमा चार-पाँच घंटे की है। वियतनामी छात्र एक साथ इतने घंटे ध्यान नहीं लगा पाते हैं। साथ ही देवनागरी लिपि भी कठिन है। इन सब समस्याओं के बावजूद ये छात्र बहुत मन लगाकर हिंदी सीखते हैं। मुझे यह बताते हुए हर्ष है

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कि सौ से अधिक वियतनामी छात्र हिंदी का अध्ययन कर चुके हैं। अधिकांश छात्र हिंदी लिख-पढ़ और बोल लेते हैं। बोलने का अभ्यास अधिकतर मुझ तक ही सीमित रहता है। मेरा वियतनामी भाषा का ज्ञान मेरे छात्रों को अत्यंत प्रोत्साहित करता है। जब वे मुझसे वियतनामी भाषा में वार्त्तालाप करते हैं तो बहुत प्रसन्न होते हैं। उनमें यह भावना रहती है कि जब हमारी शिक्षिका वियतनामी भाषा बोल सकती हैं तो हमें भी उनकी भाषा हिंदी बोलनी चाहिए।

छात्रों के लिए हिंदी का पाठ्यक्रम मेरे द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। मैंने देखा हैं और अनुभव किया है कि छात्रों की रुचि भारतीय संस्कृति में अत्यधिक है। छात्र हिंदी गाने, हिंदी कविताएँ व नृत्य शीघ्र ही सीख जाते हैं। मैं छात्रों को अपनी संस्कृति के माध्यम से भी हिंदी पढ़ाती रहती हूँ, जैसे कि जब छात्र कोई गाना सीखते हैं तो गाना स्मरण करने के पूर्व वे सर्वप्रथम गाना देवनागरी लिपि में लिखते हैं। प्रत्येक शब्द का अर्थ सीखते हैं। इससे हिंदी की शिक्षा ग्रहण करना उनके लिए सरल, सहज व मनोरंजक हो जाता है।

आज हिंदी केवल होचीमिन्ह तक ही सीमित नहीं है, यह पूरे वियतनाम में भ्रमण कर रही है। गत वर्ष चाविन्ह प्रांत में दो दिनों के लिए हिंदी-शिक्षण का आयोजन किया गया। यह आयोजन भारतीय दूतावास और चाविन्ह विश्वविद्यालय के सौजन्य से हुआ। हिंदी-शिक्षण व भारतीय संस्कृति को दरशाने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया। वहाँ के छात्रों की हिंदी व भारतवर्ष के प्रति जिज्ञासा और उत्साह ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। लगभग 300 छात्र इसमें सम्मिलित हुए थे। इतने थोड़े समय में ही छात्रों ने हिंदी के स्वर व बहुत सारे शब्द सीख लिये। यहाँ तक कि छात्र श्यामपट पर शब्द लिखने में सक्षम थे। छात्रों ने भारतीय पोशाकें पहनीं और हिंदी संगीत पर नृत्य किया। यह कार्यक्रम काफी सफल रहा और सराहा गया।

इस वर्ष हुए शहर के वार्षिक 'हुए त्योहार-2010' में भी वियतनामियों ने भारतीय पोशाकें पहनकर प्रदर्शन किए। यह कार्यक्रम वियतनामी सरकार द्वारा आयोजित किया गया था, जिसमें विभिन्न देशों के लोग सम्मिलित थे। कार्यक्रम 13 दिनों तक चला। हिंदी गाने व भारतीय पोशाकें दर्शकों ने बहुत पसंद की। सन् 2010 में ही वियतनाम के वुंगताव शहर में 'विश्व पकवान समारोह' का आयोजन हुआ, जिसमें वियतनामी छात्र भारतीय पोशाकें पहनकर, भारत का तिरंगा झंडा हाथ में लेकर परेड में सम्मिलित हुए। यही नहीं, पूरा वियतनाम भारतीय संस्कृति व हिंदी भाषा से प्रभावित है। अनेक रंगारंग कार्यक्रमों में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के छात्रों को गाने व नृत्य के लिए आमंत्रित किया जाता है।

विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष एशियाई त्योहारों का आयोजन होता है, जिसमें भारतीय शिक्षा विभाग के छात्र भारत के प्रसिद्ध स्मारकों की शक्ल में स्टॉल लगाते हैं, जैसे ताजमहल, लालकिला, इंडिया गेट आदि। इसके माध्यम से छात्र भारतीय संस्कृति को दरशाते हैं, गत वर्षों में कृष्ण व राधा की जीवन-शैली, महात्मा बुद्ध की जीवन-शैली, भारतवर्ष में वर-वधू द्वारा पहने जानेवाले वस्त्रों को दरशा चुके हैं। विश्वविद्यालय व भारतीय कौंसलावास ने कई बार छात्रों को पुरस्कारों से सम्मानित किया है। वियतनामी छात्र एवं छात्राएँ भारतीय पकवान खाने और बनाने में भी रुचि लेते हैं।

हिंदी-शिक्षण के सुचारू रूप से प्रगति करने में भारतीय कौंसलावास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। समय-समय पर उनका सहयोग सराहनीय है। संपूर्ण शिक्षण सामग्री कौंसलावास द्वारा ही उपलब्ध होती रही है। प्रतिवर्ष यह 'हिंदी दिवस' मनाते हैं, जिसमें छात्र हिंदी में भाषण देते हैं, हिंदी गीत व कविताएँ गाते हैं तथा हिंदी गानों पर नृत्य करते हैं। समाचार लेख छपते हैं, जिससे पूरे वियतनाम में हिंदी भाषा का प्रचार होता है। भारतीय कौंसलावास द्वारा आयोजित कार्यक्रम जैसे स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि में वियतनामी छात्र सम्मिलित होते हैं, नृत्य और संगीत के द्वारा अपना योगयदान देते हैं।

भारत सरकार प्रति वर्ष वियतनामी छात्रों को भारतवर्ष में शिक्षा ग्रहण करने के लिए छात्रवृत्ति देती है। इससे छात्रों को बहुत प्रोत्साहन मिलता है व अन्य छात्र भी प्रोत्साहित होते हैं। सभी छात्रों को यह आशा रहती है कि शायद उन्हें भी छात्रवृति मिल जाए और उनका

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

सपना साकार हो जाए। इससे उनकी हिंदी सीखने के प्रति दृढ़ता, रुचि व उत्साह बढ़ जाता है। गत वर्षों में अनेक वियतनामी छात्र भारतवर्ष में शिक्षा ग्रहण करके वियतनाम वापस आ गए हैं व अनेक छात्र आज भी भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों में अध्ययन कर रहे हैं। जो छात्र वियतनाम से हिंदी सीखकर भारत गए हैं, उनका कहना है कि हिंदी शिक्षा ग्रहण करने के फलस्वरूप उनका भारतवर्ष में रहना सरल व सहज हो गया। ये सभी छात्र वियतनाम वापस आकर अच्छी नौकरियों में कार्यरत हैं।

विश्वविद्यालय भी हिंदी-शिक्षण के प्रति जागरूक है तथा हर प्रकार की सहायता के लिए तत्पर रहता है। विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष एशियाई त्योहारों का आयोजन होता है, जिसमें भारतीय शिक्षा विभाग के छात्र भारत के प्रसिद्ध स्मारकों की शक्ल में स्टॉल लगाते हैं, जैसे ताजमहल, लालकिला, इंडिया गेट आदि। इसके माध्यम से छात्र भारतीय संस्कृति को दरशाते हैं, गत वर्षों में कृष्ण व राधा की जीवन-शैली, महात्मा बुद्ध की जीवन-शैली, भारतवर्ष में वर-वधू द्वारा पहने जानेवाले वस्त्रों को दरशा चुके हैं। विश्वविद्यालय व भारतीय कौंसलावास ने कई बार छात्रों को पुरस्कारों से सम्मानित किया है। वियतनामी छात्र एवं छात्राएँ भारतीय पकवान खाने और बनाने में भी रुचि लेते हैं। वे कई पकवान बनाना सीखते हैं, जैसे गाजर का हलवा, खीर, नारियल बरफ, केसर चावल, मठरी, नमकीन, पकौड़ी, पूड़ी, आलू की टिक्की आदि। ये छात्र प्रतिवर्ष विश्वविद्यालय में लगभग 300 अन्य छात्रों के लिए हिंदुस्तानी खाना बनाते हैं व सब प्रकार के खानों के नाम, उनमें प्रयोग में आनेवाली सारी चीजों के नाम हिंदी में लिखते हैं व स्मरण करते हैं।

हिंदी-शिक्षण के दौरान एक बात ने अत्यधिक प्रभावित किया है, वह है छात्रों का शिक्षकों के प्रति आदर-सम्मान एवं उनका असीम स्नेह। कबीर का एक दोहा है—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताए॥

इन पंक्तियों का जीता-जागता स्वरूप वियतनाम में दिखाई देता है। मेरा अपने छात्रों के साथ माँ-बच्चों जैसा संबंध है। मेरे छात्र बेझिझक मेरे घर आते हैं। वे अपनी किसी भी समस्या के निदान के लिए मेरी राय लेते हैं। हम एक-दूसरे की खुशियों व परेशानियों में शामिल रहते हैं। गत वर्षों में अनेक छात्रों के विवाह-समारोह, जन्मदिन, नव वर्ष आदि समारोह में मैं उनके साथ हमेशा ही उपस्थित रही हूँ। मेरे व मेरे परिवार द्वारा आयोजित समारोह में मेरे छात्र सम्मिलित होते हैं। मेरे जन्मदिन पर तो सुबह से ही छात्रों का ताँता लगा रहता है। यहाँ तक कि जो छात्र वर्षों पहले पढ़ाई समाप्त कर चुके हैं, वे भी मेरे घर आते हैं और मुझे जन्मदिन की शुभकामनाएँ देते हैं। छात्रों का यह प्यार मुझे आत्मविभोर कर देता है। यह बहुत ही सराहनीय है।

भारतीय व्यापारिक समुदाय भी सक्रिय योगदान देता है। छात्रों को छात्रवृति, पुरस्कार देकर प्रोत्साहित करता है। प्रतिवर्ष भारतीय व्यापार समुदाय द्वारा आयोजित कार्यक्रमों जैसे होली, दीवाली उत्सव आदि में वियतनामी छात्रों को भी आमंत्रित किया जाता है। छात्र नृत्य-गानों द्वारा अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सक्षम होते हैं। कई भारतीय कार्यालयों में वियतनामी छात्र कार्यरत हैं।

हिंदी-शिक्षण में मेरे परिवार का भी मुझे पूर्ण सहयोग प्राप्त है। मेरे पति श्री अमित सक्सेना, मेरा बेटा विशाल तथा मेरी बेटियाँ आँचल एवं आशी सदा ही मेरी मदद के लिए तत्पर रहते हैं और छात्रों के हर कार्यक्रमों में उपस्थित रहते हैं। बिना परिवार के सहयोग के मैं इस मुकाम तक नहीं पहुँच सकती थी।

विश्व में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में (बॉलीवुड) हिंदी चलचित्र का बहुत बड़ा योगदान है। संपूर्ण विश्व में हिंदी चलचित्र के माध्यम से हिंदी जानी और पहचानी जाती है। इससे हिंदी के ज्ञानवर्धन के साथ-साथ मनोरंजन भी होता है। वियतनाम में इस सुविधा का अभाव है। हालाँकि भारतीय कौंसलावास ने इस ओर कदम बढ़ाए हैं। उसने सन् 2009 में चाविन्ह प्रांत और होचिमिन्ह शहर में 'भारतीय चलचित्र सप्ताह' का आयोजन किया था, जो दर्शकों द्वारा पसंद किया गया। पर ये आयोजन प्रतिवर्ष होते रहने चाहिए। वियतनामी सरकार को भी इस ओर कदम बढ़ाना चाहिए।

हिंदी भाषा, भारतवर्ष की संस्कृति, परंपरा और सभ्यता को वियतनाम के मंच पर बखूबी प्रस्तुत करती है। हो चिमिन्ह के अतिरिक्त अन्य कई विश्वविद्यालय हिंदी भाषा को अपने पाठ्यक्रम

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

में सम्मिलित करने के लिए उत्सुक हैं। वियतनाम में अभी भी हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। वियतनाम में अभी तक वियतनामी-हिंदी तथा हिंदी-वियतनामी शब्दकोश का निर्माण नहीं हुआ है। मुझे हर्ष है कि भारतीय कौंसलावास का ध्यान इस ओर गया है। मुझे इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया है। मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि जल्द ही यह शब्दकोश वियतनाम में उपलब्ध हो जाएगा। इससे वियतनाम में उपलब्ध हो जाएगा। इससे वियतनामी छात्र हिंदी सरलता से सीख सकेंगे। यह शब्दकोश छात्रों के लिए अत्यंत लाभकारी होगा।

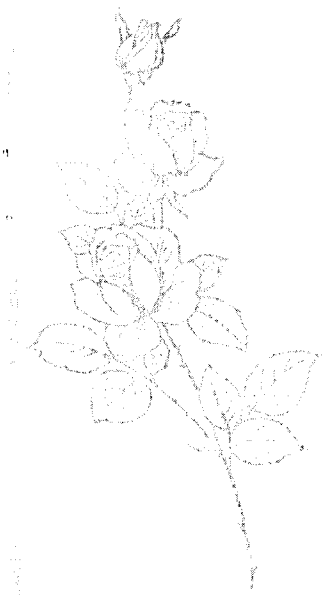
कुल मिलाकर यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हिंदी भाषा की प्रतिभा वियतनाम में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए आगे आ चुकी है।

इस पत्रिका के माध्यम से मेरा निवेदन है विश्व हिंदी सचिवालय हमें अपने यहाँ छपनेवाली पत्रिकाएँ भेजे, वहाँ के कार्यक्रमों में हमें आमंत्रित करें, जिससे मुझे भी सीखने का अवसर मिले। मेरा भी ज्ञानवर्धन हो, जिसे मैं अपने छात्रों में बाँट सकूँ। विभिन्न हिंदी संगठनों से लोग वियतनाम आएँ, अपने विचार व अनुभव छात्रों में बाँटें। इससे छात्रों का उत्साह बढ़ेगा। अभी तक वियतनाम में हिंदी-शिक्षण मेरे द्वारा ही हो रहा है। आप सबके सहयोग से वियतनाम में हिंदी-शिक्षण में निश्चित ही प्रगति होगी।

हिंदी भाषा रूपी पुल हिंदुस्तानियों और वियतनामियों के विचारों के आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम बन रहा है। मेरा भरसक प्रयत्न है कि हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति के जरिए दोनों देशों के मैत्री संबंध और भी मधुर एवं घनिष्ठ हों।

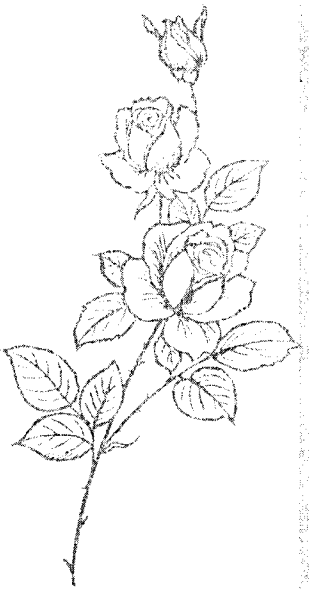
□

Villa no-704,
Street no-24,
Anh phu Anh Khan
Block B, Ho Chi minh City, Vietnam.



यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हमारी जाति की जीवित भाषा होने का गौरव प्राकृत को ही प्राप्त हुआ है, जो देववाणी संस्कृत की वरिष्ठतम पुत्री है और आज की भाषा में वह 'हिंदी' अथवा हिंदुस्तानी कहलाती है।

—विनायक दामोदर सावरकर



DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

न्यूजीलैंड में हिंदी भाषा और संस्कृति

सुनीता नारायण

दक्षिण प्रशांत महासागर, भूमध्य रेखा के दक्षिण में 40 डिग्री पर एक छोटा सा द्वीप है न्यूजीलैंड। न्यूजीलैंड बड़े-बड़े देशों और महाद्वीपों से कोसों दूर है। यहाँ की जनसंख्या चार लाख से कुछ ज्यादा है। सबसे बड़ा शहर ऑकलैंड है और राजधानी वेलिंग्टन। यहाँ के आदिवासियों को 'माओरी' कहते हैं। सन् 1840 में अंग्रेजों और माओरी के बीच एक संधिपत्र (ट्रीटी) तैयार हुआ था। कहा जाता है कि यहाँ पर प्रथम भारतीय उन्नीसवीं शताब्दी में आए थे। भारतीय मूल के आप्रवासियों की संख्या बढ़ती जा रही है—इसमें ज्यादातर फीजी और भारत के आप्रवासी हैं। दक्षिण अफ्रीका, कीनिया, जिबाब्वे, यू.के. इत्यादि से भी भारतीय आ रहे हैं।



- जन्म : फीजी
- गत चौबीस वर्षों से न्यूजीलैंड में
- शिक्षा :
- प्रारंभिक शिक्षण फीजी में, जहाँ अध्यापन कार्य के लिए प्रशिक्षण भी प्राप्त किया
- स्नातक और स्नातकोत्तर उपाधियों के लिए न्यूजीलैंड में अध्ययन
- आगरा स्थित केंद्रीय हिंदी निदेशालय से एडवांस हिंदी डिप्लोमा की पढ़ाई
- पिछले सत्रह वर्षों से हिंदी-शिक्षण, अनुरक्षण और भाषा प्रचार से संलग्न : इसी अभियान के अंतर्गत 2004 से आज तक न्यूजीलैंड के अन्य हिंदी विद्यालयों के साथ मिलकर पाठ्यक्रमों में एकरूपता लाने और शिक्षण की चुनौतियों पर सहयोगपूर्ण विचार-विमर्श की कई योजनाओं पर कार्य का नेतृत्व
- वेलिंग्टन हिंदी विद्यालय की संचालिका होने के अतिरिक्त कंयुनिटी लैंग्वेजेज एसोसिएशन ऑफ न्यूजीलैंड की प्रधान भी हैं
- संप्रति : भावन संसाधन कंसलटेंट के रूप में कार्यरत

न्यूजीलैंड में हिंदी के विकास में चार पक्ष प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं—प्रवासी भारतीय माता-पिता, हिंदी विद्यालय, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाएँ और भारतीय दूतावास। अगर ये चारों संगठित रूप से कार्य करते हैं तो यहाँ हिंदी शिक्षण की प्रगति को और बढ़ा सकते हैं। सबसे पहले तो मातृभाषा सिखाने की जिम्मेदारी माता पिता की होती है। बच्चों की मातृभाषा का प्रथम शिक्षण माँ और घर से शुरू होता है। परंतु दुर्भाग्यवश आजकल हम हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी को अधिक महत्त्व दे रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारा भारतीय समुदाय यह नहीं समझ पा रहा है कि अपनी मातृभाषा में निपुण होने से हमारा आध्यात्मिक व मानसिक विकास और प्रबल होता है।

हिंदी के प्रसिद्ध कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है—"निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिये को शूल।" इंग्लैंड के श्री प्राण शर्मा ने भी क्या कविता रची है—'अपनी बोली माँ की बोली!' जिसका आखिरी छंद है—

"अपनी बोली का सिक्का तुम,
दुनियावालों से मनवाओ।
खुद भी मान करो तुम इसका,
औरों से भी मान कराओ॥
माँ बोली के बेटे हो तुम,
बेटे का कर्तव्य निभाओ।
अपनी बोली माँ होती है,
क्यों न सिर पर इसे बिठाओ॥"

हम अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, एक्स्ट्रा-करिकुलर गतिविधियों, खेल-कूद, नृत्य-संगीत पर ज्यादा ध्यान देने लगे हैं। इसमें बहुत धन खर्च करते हैं। कई लोगों का विचार है कि यह सब करने से उनके परिवार का दर्जा ऊँचा हो जाता है! हिंदी-शिक्षण का सवाल उठता ही नहीं है। एक तरफ गैर-भारतीय हिंदी सीखना चाहते हैं तो दूसरी तरफ हमें यह भी देखने को मिलता है कि हमारे अपने युवा अपनी संस्कृति और भाषा से मुँह मोड़ते जा रहे हैं—हिंदी बोलने से हिचकिचाते हैं और अपना नाम भी बदल लेते

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हैं—कोमल से कोमाल, कृष्ण से कृशान, कमल से कमाल आदि। इनको हम दोषी नहीं ठहरा सकते।

न्यूजीलैंड में हिंदी-शिक्षण

हम भारत, फीजी, दक्षिण अफ्रीका आदि से दूर यहाँ न्यूजीलैंड में भी हिंदी और भारतीय संस्कृति के अनुरक्षण और प्रसार में लगे हुए हैं। यहाँ हिंदी की पढ़ाई का कोई औपचारिक साधन नहीं है, फिर भी हम कई जगहों पर छोटे-छोटे स्कूल चला रहे हैं, जहाँ शनिवार-रविवार को हिंदी की पढ़ाई होती है। पिछले बीस वर्षों से यहाँ बहुत सारे हिंदीभाषी हिंदी भाषा के संरक्षण और इसे पढ़ाने-लिखने में लगे हुए हैं। उन सबका एक ही लक्ष्य है कि हमारे बच्चों और युवाओं में भारतीय और हिंदी-भाषी होने का गर्व हो।

हम समय-समय पर अपने पाठ्यक्रम में सुधार लाते रहते हैं, ताकि हमारे विद्यार्थियों का पूर्णरूप से विकास हो सके। वेलिंग्टनवालों का सौभाग्य है कि हमारे पास प्रशिक्षित अध्यापक हैं, जो शौक और लगन से सप्ताहांत-विद्यालय चलाते हैं। समय-समय पर हम नृत्य, नाटक, योग और चित्रकारी सिखाने के लिए समाज के निपुण सदस्य और भारतीय दूतावास के उच्चायुक्त और कूटनीतिज्ञों को आमंत्रित करते रहते हैं। वे भी हमें पूर्ण सहयोग देते हैं। अपनी इन गतिविधियों में सुधार लाने के लिए हम निरंतर अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन भी करते रहते हैं।

ऑकलैंड, वेलिंग्टन, हेमिल्टन, क्राइस्टचर्च आदि शहरों में कई विद्यालयों का संचालन हो रहा है। शायद 8पाठशालाएँ अपने-अपने ढंग से हिंदी पढ़ा रही हैं। कइयों ने तो अपने पाठ्यक्रम भी तैयार कर लिये हैं। आजकल सभी पाठशालाओं में शिक्षित अध्यापक (इनमें अवकाश प्राप्त अध्यापक भी सम्मिलित हैं) भी हैं। ये अध्यापक पूरे सप्ताह नौकरी करते हैं और शनिवार व रविवार को हिंदी स्कूलों में पढ़ाते हैं। कक्षा का समय 1 से 3 घंटे का होता है। स्कूलों में हिंदी भाषा, इतिहास, संस्कृति, संगीत, नृत्य आदि सिखाया जाता है। सभी विद्यालय अपना वार्षिक समारोह आयोजित करते हैं, जिसमें माता-पिता, परिवार और जनसमुदाय को आमंत्रित किया जाता है।

पाठशालाओं, मंदिरों, सामुदायिक केंद्रों, घरों और कहीं-कहीं स्कूलों में ये शिक्षक अपनी कक्षाएँ करते हैं। पिछले 6 सालों से हिंदी-शिक्षण के प्रयास में भारतीय दूतावास भी सहयोग कर रहा है। तीन सालों से छात्रों को पुस्तकें भी प्रदान की जा रही हैं, जिनमें पाठ्य-पुस्तक के साथ-साथ सामान्य ज्ञान की पुस्तकें भी हैं। फिर भी हमें यहाँ की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्य सामग्री खुद तैयार करनी पड़ती है।

हिंदी-शिक्षण में श्री रोहित कुमार 'हैप्पी' का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा। उन्होंने अपनी वेबसाइट 'भारत दर्शन' (http://www.bharatdarsan.co.nz/hinditeacher/) पर ऑनलाइन हिंदी-शिक्षण शुरू किया और बारीकी से पाठ तैयार किए, जहाँ छात्र को उच्चारण विधि भी समझाई गई है। यह एक प्रगतिशील कदम रहा। पाठ के अलावा वे अपनी रचनाएँ, कविताएँ और कहानियाँ भी लिखते हैं।

भारतीय दूतावास से हमारा निवेदन है कि वे विदेश मंत्रालय के हिंदी विभाग से जुड़कर हमारे इस प्रयास में हमारी सहायता करे, हमें पुस्तकों के अलावा अध्यापकों के प्रशिक्षण, पठन-पाठन की व्यवस्था में सहायता करे। दुनिया के सभी प्रांतों में हिंदी अधिकारियों की नियुक्ति और सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना करे, जो हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में हमारी सहायता करे और हिंदी-सेवकों को प्रोत्साहित करे।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम

सन् 2007 में न्यूजीलैंड के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन लाए गए थे। इसके अंतर्गत भाषा-वर्ग को दो भागों में विभाजित कर

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

दिया गया था—1. अंग्रेजी, और 2. अन्य भाषाएँ। पाठ्यक्रम अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाया जाता है। भाषाओं में चीनी, जर्मन, स्पैनिश, फ्रेंच, जापानी, मावरी जैसी कुछ प्रांतीय भाषाएँ और संकेत भाषा शामिल हैं।

स्कूल में क्या पढ़ाया जाएगा, इसका निर्णय खुद स्कूल का संचालन-मंडल करता है। एक तरफ यह स्वतंत्रता है तो दूसरी तरफ पूरे साधन न होने की लाचारी। छात्रों की संख्या उपयुक्त है तो अध्यापक नहीं—अध्यापक हैं तो उपयुक्त संख्या में छात्र नहीं! अभी न्यूजीलैंड में केवल 'ग्लोबल इंडियन इंटरनेशनल स्कूल' में सी.बी.एस.सी. पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी पढ़ाते हैं।

वेलिंग्टन हिंदी विद्यालय

मेरा अनुभव वेलिंग्टन हिंदी स्कूल से जुड़ा हुआ है, जहाँ मैं सत्रह सालों से काम कर रही हूँ। इस विद्यालय की स्थापना कुछ आप्रवासी फीजी परिवारों द्वारा श्री जगदीश प्रसाद के नेतृत्व में की गई थी। वे विद्यालय छोड़कर चले गए परंतु जगदीशजी का सहयोग अभी भी प्राप्त है।

वेलिंग्टन हिंदी विद्यालय की स्थापना 1992 में हुई थी। आज विद्यालय की तीन शाखाएँ हैं, जहाँ प्रशिक्षित अध्यापक पढ़ाते हैं। सन् 2003 में हमने एक पाठ्यक्रम बनाया, जिसमें डॉ. पुष्पा वूड का बहुत बड़ा योगदान था। 'प्रोफेशनल' रूप से पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए हमारे विद्यालय को एक पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। हमारा पाठ्यक्रम हिंदी भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और सभ्यता, इतिहास और साहित्य को भी प्राथमिकता देता है। पाठ्यक्रम की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. हिंदी भाषा के दैनिक जीवन में प्रयोग को बढ़ावा देना।
2. हिंदी भाषा साहित्य के प्रति सही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को महत्त्व देना।
3. हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा प्रोत्साहन।
4. स्वस्थ सामाजिक परंपराओं को गहरा करना, जिससे विद्यार्थियों का भविष्य बन सके।

हम समय-समय पर अपने पाठ्यक्रम में सुधार लाते रहते हैं, ताकि हमारे विद्यार्थियों का पूर्णरूप से विकास हो सके। वेलिंग्टनवालों का सौभाग्य है कि हमारे पास प्रशिक्षित अध्यापक हैं, जो शौक और लगन से सप्ताहांत-विद्यालय चलाते हैं। समय-समय पर हम नृत्य, नाटक, योग और चित्रकारी सिखाने के लिए समाज के निपुण सदस्य और भारतीय दूतावास के उच्चायुक्त और कूटनीतिज्ञों को आमंत्रित करते रहते हैं। वे भी हमें पूर्ण सहयोग देते हैं। अपनी इन गतिविधियों में सुधार लाने के लिए हम निरंतर अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन भी करते रहते हैं।

विद्यालय के कुछ सिद्धांत भी हैं, जो हमें मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। सन् 2003 में हमारी वेबसाइट (http://www.hindischool.wellington.net.nz/) इंटरनेट पर आ गई। हमारी त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी वाणी' 2006 से बराबर प्रकाशित होती आ रही है। बच्चों का हिंदी-लेखन प्रकाशित करने का हमारा प्रयास जारी रहेगा। आशा है कि हम शीघ्र ऐसा कर लेंगे। अपनी पंद्रहवीं वर्षगाँठ पर हमने 'दर्पण' नामक एक पत्रिका प्रकाशित की। विद्यार्थियों को हम उनकी वार्षिक रिपोर्ट भी देते हैं, जिनमें उनकी उन्नति और क्षमता का विवरण किया जाता है। विद्यालय के संचालन में हमें धन की आवश्यकता भी पड़ती है। परिवारों और दानी लोगों के दान और फंड-रेजिंग से हम धन एकत्रित करते हैं।

बड़ों के लिए भी तीन प्रोग्राम तैयार हैं—'सरल मौखिक हिंदी, सरल व्याकरण और कॉनेक्टिंग विध इंडिया फॉर बिजनेस पीपल'। इनमें ज्यादातर गैर-भारतीय छात्र दाखिला लेते हैं।

सन् 2008 में हमने एक नर्सरी की भी शुरुआत की, जिसे बच्चों की संख्या कम होने के कारण बंद करना पड़ा। अब कुछ माता-पिता पुनः यह व्यवस्था चाहते हैं। सन् 2011 से हम इसे फिर एक बार स्थापित करने का प्रयास करेंगे।

इस साल मेरी अपनी कक्षा के छात्रों ने एक एकांकी—'दीवाली का दीवाला' तैयार किया है, जो हमारे वार्षिक उत्सव में प्रस्तुत होगा।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

इनकी उम्र 10-13 तक के बीच हैं। इसमें से कुछ टूटी-फूटी हिंदी बोलते हैं। मगर मेरा यह विचार है कि ऐसे ही बच्चे और प्रोत्साहित होंगे और उनकी योग्यता बढ़ती रहेगी।

हाँ, कुछ चुनौतियाँ भी हैं—कक्षा के लिए पर्याप्त जगह, माता-पिता की बढ़ती अपेक्षाएँ, दुभाषिए और अभाषीय बच्चों को पढ़ाने की गतिविधियाँ और एक्स्ट्रा-करिकुलर क्रियाकलापों के कारण छात्रों की अनुपस्थिति। एक कक्षा में बच्चों की योग्यताओं में बहुत अंतर होता है, जो एक अध्यापक के सामने चुनौतियाँ खड़ी कर देता है। फिर भी अध्यापक हार नहीं मानते। हमारा यही संकल्प है कि हिंदी को औपचारिक तौर पर महत्ता दी जाए।

सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ

न्यूजीलैंड में आजकल अनेक सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ खड़ी हो गई हैं। कई मंदिर भी बन गए हैं, जहाँ भारत से लाई गई मूर्तियाँ मंदिरों की शोभा में चार चाँद लगा रही हैं। यहाँ हर त्योहार मनाए जाते हैं। लोग इनमें भारी संख्या में आने लगे हैं और सम्मिलित होकर पूजा-अर्चना करते हैं। दीवाली, होली, रामनवमी, रामकथा, शिवरात्रि, श्रीकृष्णाष्टमी, दुर्गापूजा, गणेशचतुर्थी, नवरात्रि आदि त्योहार घरों में बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते हैं और जनता को भी आमंत्रित किया जाता है। इस समय लगता है कि हम फीजी या भारत में हैं! हर्ष की बात है कि कई मंडलियों द्वारा बच्चों और युवाओं को भी गीत-संगीत, भजन-कीर्तन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। निर्धारित समय पर बच्चों के लिए अभ्यास भी होता है। एक कमी है—नई पीढ़ी को हिंदी पढ़ना नहीं आता तो गाने रोमन लिपि में लिखे जाते हैं, जिससे उच्चारण में बाधाएँ आती हैं। लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। सामाजिक और धार्मिक संस्थाएँ हिंदी और भारतीय संस्कृति को बचाने तथा उसके विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

एशिया-न्यूजीलैंड न्यास को सरकार द्वारा सन् 2000 में स्थापित किया गया था। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य है—यहाँ के नागरिकों को एशियाई देशों के विषय में प्रशिक्षित करना। कारण—बढ़ते हुए व्यापारिक और आर्थिक संबंध। एशिया-न्यूजीलैंड न्यास चीन और भारत के त्योहारों को विस्तारपूर्वक मनाने का अवसर प्रदान करते हैं। दीवाली के समय वेलिंग्टन और ऑकलैंड नगरों में धूम-धाम से दीवाली मेला लगाया जाता है। आजकल यह मेला एक दिन से दो हफ्तों का कार्यक्रम बन गया है। इसके दौरान कई तरह की प्रदर्शनियाँ, बॉलीवुड फिल्में व दूसरे कार्यक्रमों को आयोजित किया जाता है। बड़े-बड़े बिजनेस-घरों के प्रायोजन से ही यह सब मुमकिन हो पाता है। अक्तूबर-नवंबर महीने में इस मेले का सभी इंतजार करने लगे हैं। हमें एक और सुनहरा मौका मिलता है, जब हम अपनी संस्कृति को सबके साथ गर्व से बाँट पाते हैं। इस उत्सव में गैर-भारतीय लोग भी बड़े उत्साह से शामिल होते हैं।

एशिया-न्यूजीलैंड न्यास को सरकार द्वारा सन् 2000 में स्थापित किया गया था। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य है—यहाँ के नागरिकों को एशियाई देशों के विषय में प्रशिक्षित करना। कारण—बढ़ते हुए व्यापारिक और आर्थिक संबंध। एशिया-न्यूजीलैंड न्यास चीन और भारत के त्योहारों को विस्तारपूर्वक मनाने का अवसर प्रदान करते हैं। दीवाली के समय वेलिंग्टन और ऑकलैंड नगरों में धूम-धाम से दीवाली मेला लगाया जाता है। आजकल यह मेला एक दिन से दो हफ्तों का कार्यक्रम बन गया है। इसकेदौरान कई तरह की प्रदर्शनियाँ, बॉलीवुड फिल्में व दूसरे कार्यक्रमों को आयोजित किया जाता है।

ऐसे महोत्सव, भारतीय शादियों, बॉलीवुड कार्यक्रमों से गैर-भारतीय लोग भी परिचित हो गए हैं। भारतीय वेश-भूषा और खान-पान यहाँ बहुत लोकप्रिय हो रहा है। गैर-भारतीय लोग भारतीय भोजन को दिलचस्पी के साथ अपने आहार में शामिल कर रहे हैं। देखा जा रहा है कि वहाँ की स्त्रियाँ भी भारतीय कपड़े और आभूषणों को अपना रही हैं। शादियों में गैर-भारतीय युवा अकसर भारतीय वेश-भूषा, कुरता, साड़ी में दिखते हैं।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

संचार माध्यम

हिंदी के प्रचार-प्रसार में 25 सालों से कम्यूनिटी रेडियो स्टेशनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। करीब 10 सालों से ऑकलैंड से 'रेडियो तराना' पूरे चौबीस घंटे राष्ट्रीय स्तर पर चलता रहता है। यह स्टेशन फीजी आप्रवासी रॉबर्ट खानजी द्वारा स्थापित किया गया। यह रेडियो आज दुनिया के कई जगहों पर सुना जा सकता है। फीजी से रोजाना जुड़कर प्रोग्राम प्रसारित किए जाते हैं। भारतवंशी लोगों के लिए इस माध्यम से गीत-संगीत, बॉलीवुड की खबरें, दुकानदारी, विज्ञापन, सामाजिक सूचनाएँ, मेहमानों से मुलाकात इत्यादि प्रसारित होते हैं।

हिंदी की पत्रिकाएँ अभी तक नहीं हैं। हालाँकि मासिक भारतीय अखबार 'इंडियन न्यूजलिंक' कई सालों से प्रकाशित हो रहा है। प्रकाशक रविंद्र लालजी और संपादक व मुख्य रिपोर्टर वेंकट रमणजी हैं, जो दुनिया भर के, खासकर भारत, फीजी और न्यूजीलैंड के समाचारों को विस्तार से लिखते हैं। 'ग्लोबल इंडियन' और 'इंडियन वीकेंडर' ऑनलाइन अखबार हैं।

यहाँ जी टी.वी. अत्यंत लोकप्रिय है। आज घर-घर में स्टार प्लस चैनल है। समाचार, धार्मिक कार्यक्रम, मनोरंजन, डेसोप्स, बॉलीवुड फिल्में, पकवान और कई मुख्य धारावाहिक प्रसारित होते हैं। बच्चे से बूढ़े तक के लिए यह माध्यम मनोरंजन के अतिरिक्त हिंदी के सृजन के लिए भी महत्त्वपूर्ण बन गया है। ऑकलैंड में रीजनल टी.वी. भी चलता है, जो जी टी.वी. की तरह कार्यक्रम प्रसारित करता है। 'स्त्राटोस' नामक चैनल पर भी हिंदी प्रसारित होती है। मावरी टी.वी. चैनल पर समय-समय पर भारतीय सांस्कृतिक प्रोग्राम और बॉलीवुड फिल्में देखने को मिलती हैं। बॉलीवुड फिल्में अत्यंत लोकप्रिय हो गई हैं। गैर-भारतीय भी बॉलीवुड फिल्में देखते हैं। सिनेमा में भी लगातार फिल्में चलती हैं और वीडियो की दुकानें पुरानी से लेकर नई-नई फिल्मों की कॉपियाँ रखती हैं। बालीवुड डॉस प्रतियोगिताओं में अकसर गैर-भारतीय लड़कियाँ भाग लेती हैं। ऑकलैंड और वेलिंग्टन में कई नाट्यशालाएँ हैं, जहाँ भरतनाट्यम, मणिपुरी, कथक जैसे शास्त्रीय नृत्य सिखाए जाते हैं तथा दर्शकों के लिए प्रदर्शित भी होते हैं।

न्यूजीलैंड में हिंदी का भविष्य और सिफारिश

सन् 2010 में कई हिंदी विद्यालयों ने जुड़कर काम करने का निश्चय किया है। इस बार हमने एक प्रस्ताव भारतीय दूतावास को भेजा है। हमारे कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

- अध्यापकों के लिए शिक्षण को और प्रोत्साहित करने की सुविधाएँ।
- अगले विश्व हिंदी सम्मेलन में एक अतिरिक्त धारा हो, जो हमारे प्रतिनिधियों के शिक्षण के लिए हो।
- अभाषियों और दुभाषियों को हिंदी पढ़ाने की विधियों का शिक्षण।
- हमारे युवा विद्यार्थियों के लिए आदान-प्रदान एक्सचेंज योजनाएँ।
- अन्य प्रांतों में हिंदी अधिकारियों की नियुक्ति और सांस्कृतिक केंद्रों को खोलकर हिंदी-सेवियों का उत्साह बढ़ाना।
- अगले विश्व हिंदी सम्मेलन में न्यूजीलैंड का प्रतिनिधित्व।

हम भविष्य में विश्व हिंदी दिवस, विश्व मातृभाषा दिवस और अन्य राष्ट्रीय कार्यक्रम मिलकर करने की आशा रखते हैं। हमारे बच्चों के हिंदी-शिक्षण में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए। हम माता-पिताओं को शिक्षित होकर आनेवाली पीढ़ी को अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी भाषा में प्रवीणता हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और उनमें यह भावना जाग्रत करनी चाहिए—"इट्स कूल टु बी इंडियन!" हमें अभाषियों को भी हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

हम सब मिलकर अपनी मातृभाषा की रक्षा और उसका सृजन करें तथा साथ मिलकर इसका दीप दुनिया भर में जलाते रहें।

□

38, Priscila Crescent, Kingston,
Welington
New Zealand

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

18

हिंदी धैर्य की भाषा है–उत्तेजना और हिंसा की नहीं

बालकवि बैरागी

जब-जब भी मुझे अवसर मिलता है तब-तब यहाँ-वहाँ जहाँ-तहाँ प्रसंगानुकूल में हिंदी के संदर्भ में बहुत कुछ कहने की कोशिश में दो-एक बातें ऐसी कह देता हूँ कि सुननेवाले चौंक जाते हैं, किंतु समझनेवाले हर्षोल्लास में सभागार को अपनी तालियों की फड़फड़ाहट से गुंजायमान कर देते हैं। मैं बहुत सावधानी से कहता हूँ कि हिंदी आज किसी संविधान, किसी संसद् की मोहताज नहीं है। न वो कल किसी की मोहताज थी, न आने वाले कल में भी किसी की मोहताज रहनेवाली है। संविधान उसे जो देना चाहता था, वह उसे कितना दे पाया, सरकार या सरकारें उसे कितना लाना चाहती थीं, वो कितना ला पाईं और संसद् उसके लिए जो कुछ करना चाहती थी या करना चाहती है, वो कितना कर पाई, ये तीनों तथ्य न किसी से छिपे हैं, न कोई छिपा ही सकता है। भारत की लोकसभा और राज्यसभा का सदस्य रहते हुए मैं संसद् की संसदीय राजभाषा समिति का सदस्य लंबे समय तक रह चुका हूँ और उपरोक्त तीनों तथ्यों को सारे देश में घूम-फिरकर अपनी आँखों से देख चुका हूँ। संपूरक स्थिति यह भी है कि मैं मध्य प्रदेश की विधानसभा का दो बार सदस्य रहा और वहाँ के मंत्रिमंडल का छोटा-बड़ा सदस्य भी रहकर हिंदी के हालातों को प्रदेश के सचिवालय में भी देख चुका हूँ। सरकार चाहे केंद्र की हो या प्रदेश की, मैं दोनों सरकारों की क्षमताओं से भी अवगत हूँ और इन सरकारों की विवशताओं से भी भली-भाँति परिचित हूँ। मेरा यह भी विशेष भाग्य, सौभाग्य या आप चाहे जो विशेषण लगाएँ, यह भी है कि मैं मध्य प्रदेश जैसे भारत के हृदय प्रदेश—मध्य प्रदेश के भी मालवांचल में पैदा होकर अपनी राजनैतिक तथा साहित्यिक यात्राओं के माध्यम से पूरे भारत का भ्रमण मोटे तौर पर चार-पाँच बार कर चुका हूँ। हिंदी की गति-प्रगति और दुर्गति को मैं बहुत करीब से देखता रहा हूँ। आज भी सारे परिवेश को मैं अपनी अध्ययनशील चेतना और आँखें से देख रहा हूँ। सबकुछ देखने और जानने के बाद ही मैं कहता रहा हूँ कि हिंदी किसी संविधान, किसी सरकार और किसी संसद् की मोहताज नहीं है। भारत की राजभाषा वह कब बनेगी। इस बहस में कोई दम नहीं है। क्योंकि बिना किसी सरकारी सहायता, बिना किसी संवैधानिक संरक्षण और बिना किसी संसदीय कवच के वह भारत की कोटि-कोटि जनता के दम पर अपने देश की राष्ट्रभाषा अवश्य है। और फिर से, कल भी थी आज भी है और कल भी रहने वाली है। भारत की आबादी जब दस-बीस करोड़ थी, तब भी और जब चालीस करोड़ थी, तब भी तथा आज जब एक सौ बीस करोड़ है, तब भी यह समीकरण लागू है और लाख आक्रमणों के बावजूद यह समीकरण लागू ही रहेगा।

एक बात और भी मैं कहता रहा हूँ। वह यह है कि हमारे प्राइमरी और मिडिल स्कूलों



जन्म : 10 फरवरी, 1931 को रामपुरा, जिला—नीमच (म.प्र.)में

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी, प्रथम श्रेणी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन)

प्रकाशन : कविता संग्रह—'दरद दीवानी', 'जूझ रहा है हिंदुस्तान', 'ललकार', 'भावी रक्षक देश के', 'दो टूक', 'रेत के रिश्ते', 'वंशज का वक्तव्य', 'कोई तो समझे', 'ओ! अमलतास', 'आओ बच्चो', 'गाओ बच्चो', 'गौरव गीत', 'दादी का कर्ज', 'मन ही मन', 'शीलावती आग'; काव्यानुवाद—'सिंड्रेला' तथा 'गुलिवर'; मालवी गीत-संग्रह—'चटक म्हारा चंपा' और 'अई जावो मैदान में'; उपन्यास—'सरपंच'; यात्रा-वृत्तांत—'कच्छ का पदयात्री'; कहानी-संग्रह—'मनुहार भाभी','बिजूका बाबू'। इसके अलावा सैंकड़ों संस्मरण एवं आलेख प्रकाशित

मूलत: 'मालवी' बोली के कवि। 1953 से आज तक देश के कवि-सम्मेलनों में निरंतर आमंत्रित। आकाशवाणी और दूरदर्शन से सतत प्रसारित। देश के प्राय: सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। छोटी-बड़ी 25-26फिल्मों के लिए गीत लेखन

सन् 1945 से ही कांग्रेस में सक्रिय; 1967 में मध्य प्रदेश में विधायक और फिर राज्य मंत्री बने; 1984 में लोकसभा के लिए चुने गए; 1998में मध्य प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य चुने गए। अब तक लगभग दस देशों की यात्रा कर चुके हैं

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

तथा छोटे-बड़े स्कूलों में हमारे शिक्षक हमें पता नहीं किस कारण से पढ़ाते-पढ़ाते पढ़ाई में यह भी शामिल कर देते थे—"प्यारे बच्चो! अंग्रेज और अंग्रेजी के राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता है।" अपनी तब की परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए हम लोग भी यह वाक्य अपनी उत्तर पुस्तिकाओं में लिख मारते थे। यह आलेख छपते-छपते मैं अपनी आयु के 80 वर्ष पूरे करने जा रहा हूँ। आज कोई उत्तर पुस्तिका मेरे सामने नहीं है, किंतु मैं गर्व से कहता रहता हूँ—"प्यारे पाठको! आज अंग्रेजों के राज्य में प्रतिदिन सूर्यास्त होता है और अब हिंदी के उजले आकाश में, चाहे आप ग्लोब को अपने हाथ से पूरब से पश्चिम घुमाओ या पश्चिम से पूरब घुमाओ, हिंदी का सूर्यास्त कहीं नहीं होता। संसार के एक सौ पचास से अधिक देशों में एक सौ नब्बे विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है और हिंदी पर शोधार्थी लोग शोध कर रहे हैं। जी हाँ, यह सब हिंदी में और रेखांकित करके लिखिए कि यह सब विश्व की अत्यंत प्रामाणिक वैज्ञानिक लिपि देवनागरी में हो रहा है। क्या यह सब बिना किसी के किए हो रहा है? हिंदी की यह प्रभा, यह प्रभावना और प्रसार-प्रज्ञा कैसे प्रकट हो गई? कल तक हिंदी के लिए इसके भविष्य पर खीजनेवाले, झल्लानेवाले, चिढ़नेवाले और हताशा में बातें करने तथा विचलित चिंताओं से भरपूर चेतावनियाँ देने वाले लोग आज नए तेवर से आशा भरी बातें करने लगे हैं। भारत के सिवाय सारे संसार के कई देशों में अपना काम-काज और कारोबार करनेवाले कम-से-कम तीन करोड़ लोग हिंदी बोलते, बतियाते हैं और हिंदी से हार्दिक सरोकार रखते हैं। संसार के पचासों देशों में हिंदी फिल्में हिंदी का प्रसार कर रही हैं।

वैश्विक बाजारवाद प्रतिदिन नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है। भारत आज संसार का सबसे बड़ा बाजार सिद्ध हो गया है। यहाँ अपना ठेला, गुमटी या दुकान लगानी हो तो भाषा की पहली शर्त हिंदी हो गई है। कहीं यह पहली भाषा तो कहीं दूसरी भाषा है। बेशक कई जगहों पर यह तीसरी ही सही, पर एक उपस्थित और आवश्यक भाषा जरूर हो गई है। कहीं बोली जाती है, कहीं लिखी जाती है तो कहीं समझी जाती है। चीन, जापान, अमेरिका और इंग्लैंड जैसे देश हिंदी की महत्ता तथा आवश्यकता से अपनी जनता और अपनी पीढ़ियों को चेतावनी भरे लहजे में अवगत करवा रहे हैं। कल तक जो देश हिंदी को अवहेलना की दृष्टि से देखते थे, आज वे हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान देनेवाली पुस्तकों को या तो ढूँढ़ रहे हैं या खुद अपने यहाँ तैयार करवा रहे हैं। आपके टेलीविजन पर बीते दिनों जो चैनल अंग्रेजी चैनल के तौर पर शुरू हुए थे, वे आज चौबीसों घंटे हिंदी में चल रहे हैं। जो कंप्यूटर हिंदी में हिचकिचाता था। आज वह पूरी विनम्रता से आपकी सेवा अच्छी-खासी हिंदी में कर रहा है। इतना ही नहीं, आपका यह नया कारकून, जिसे आप 'कंप्यूटर' कहते हैं, आपकी वर्तनी की भूलों को भी स्वमेव शुद्ध करके आपकी विशेष सहायता कर रहा है। यह बेहतर भविष्य का शकुन है। महीनों का काम दिनों में और घंटों का काम मिनटों में आनन-फानन होने लगा। यह कोई छोटा परिवर्तन नहीं ही, अपितु बहुत बड़ी घटना है।

एक बात और भी है, जो मैं सिर ऊँचा करके कहा करता हूँ। विशेषकर उन लोगों से, जो हिंदी को अपनी माँ और मातृभाषा कहते हैं तथा भारत को भारतमाता कहकर अपना जीवन जी रहे हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि यदि हिंदी आपकी 'माँ' है तो अपनी माँ की सेवा और अर्चना स्वयं करो। अपनी माँ को किसी कारकून, कलेक्टर, मंत्री-संतरी या प्रधानमंत्री के भरोसे मत छोड़ो। वे आपकी माँ की सेवा क्यों करेंगे? और अगर करेंगे तो फिर कैसी करेंगे, यह आप मुझसे ज्यादा जानते हैं! हमारी सरकारें राष्ट्रभाषा और मातृभाषा के लिए कोई अनाथालय नहीं चलाती हैं।

एक बात और भी है, जो मैं सिर ऊँचा करके कहा करता हूँ। विशेषकर उन लोगों से, जो हिंदी को अपनी माँ और मातृभाषा कहते हैं तथा भारत को भारतमाता कहकर अपना जीवन जी रहे हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि यदि हिंदी आपकी 'माँ' है तो अपनी माँ की सेवा और अर्चना स्वयं करो। अपनी माँ को किसी कारकून, कलेक्टर, मंत्री-संतरी या प्रधानमंत्री के भरोसे मत छोड़ो। वे आपकी माँ की सेवा क्यों

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

करेंगे ? और अगर करेंगे तो फिर कैसी करेंगे, यह आप मुझसे ज्यादा जानते हैं! हमारी सरकारें राष्ट्रभाषा और मातृभाषा के लिए कोई अनाथालय नहीं चलाती हैं। जहाँ आप अपनी भाषा माँ को इन प्रबंधकों के सहारे छोड़ दें या भरती कर दें! मेरी इस बात पर सरकारी तामझाम के लोग बगलें झाँकने लगते हैं। सरकारों से अपेक्षाएँ रखनेवाले 'सपूत' शर्म से गड़ जाते हैं। किसी को अपमानित करना न तो मेरा लक्ष्य है, न अभीष्ट।

हिंदी को सम्मान देने की शुरुआत हम कहाँ से करें ? एक बहुत छोटे और आसान काम से यह शुरुआत हो सकती है। कृपा करें और अपने हस्ताक्षर हिंदी में करना शुरू करें। आप अगर किसी बैंक के खातेदार हैं तो तत्काल वहाँ अपने नमूने के हस्ताक्षर को बदलें। यदि बैंकवाले मना करें तो फौरन वहाँ से अपना खाता उठा लें। ये काम अत्यंत सरल और आसान है। जो हाथ अपना हस्ताक्षर तक हिंदी में करने से काँपते हों वे हिंदी का झंडा कैसे उठाएँगे ? अंग्रेजी में हस्ताक्षर करके आप किस पर रोब जमा रहे हैं ? किसे आतंकित कर रहे हैं ? अपना नाम भी आप हिंदी में नहीं लिख सकते हैं तो आप कैसे हिंदीवाले हैं ? जब हिंदी राष्ट्रसंघ में अधिकृत भाषा के स्थान पर जाने के लिए अपना 90 प्रतिशत रास्ता तय कर चुकी है, तब आपको अपनी शक्ति, अपने साहस और अपने मनोबल को ललकारकर जगाना होगा।

हिंदी के प्रसार क्षेत्रों का बहुत छोटा सा उदाहरण देना यहाँ प्रासंगिक होगा। आप अपनी आँखों से देख रहे हैं कि इन दिनों हिंदी के लोकप्रिय कवि साल भर में कम-से-कम पाँच-पाँच या छह-छह माह विदेशों में कविता पाठ करके अपना सारस्वत-धन कमा रहे हैं। उन्हें फुरसत नहीं है। रामकथा और भागवत कथाएँ करने वाले कथागायक सारे संसार में एक या दो दिन नहीं पूरे सप्ताह तक अपने प्रवचन देते देखे जा रहे हैं। हमारे संत, साधु और संन्यासी तथा प्रचारक जिस तरह विश्व के देशों की धरती पर हिंदी का उपयोग कर रहे हैं, उस पर आज सारा संसार आश्चर्य करता हुआ अवाक् है। यह वह समय है जब हम हिंदी की पाचन शक्ति पर आघात नहीं करें। उसके लोच पर व्याकरण का आग्रह सत्याग्रह तक नहीं ले जाएँ। वह पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य क्षेत्र सभी अपनी संगिनी भाषाओं से शब्द लेकर स्वयं को समृद्ध करने का उपक्रम कर रही है। हिंदी के अखबारों का प्रसार और व्यापार, विशेषकर अखबारों का विज्ञापन व्यवसाय हिंदी को रोचक और सोचक संपदा दे रहा है। माना कि इससे हिंदी की शुद्धता और शास्त्रीयता के हिमायती प्रायः आवेशित हो जाते हैं, किंतु राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिवेश और परिवारों में गैर-हिंदी लोग हिंदी में अपने प्रयोग कर रहे हैं तो उन्हें हतोत्साहित मत कीजिए। वे आपके प्रोत्साहन के अधिकारी हैं। रामकथा, कृष्णकथा और गांधी की जीवनगाथा हमारे वे सेतु हैं, जिन पर चलकर हिंदी की विश्व-यात्रा यहाँ से वहाँ तक चल रही है। यात्री अपनी यात्राओं को सरस बनाने के लिए कभी गाते हैं तो कभी गुनगुनाते हैं। ध्यान से सुनिए इन गुनगुनाहटों और गीतों के राग हिंदी हैं, क्योंकि इनका अनुराग हिंदी है। सचमुच हम एक 'राग हिंदी' युग के श्रोता ही नहीं प्रत्यक्षदर्शी भी हैं। यह हमारा सौभाग्य है।

अपनी यात्राओं और संगोष्ठियों तथा सभाओं में कई बार लोग मुझसे पूछते हैं कि हिंदी की मूल शक्ति क्या है ? मैं अपनी शैली में उत्तर देता हूँ कि हिंदी की मूल शक्ति है उसका धैर्य। वस्तुतः हिंदी धैर्य की भाषा है। हिंदी उत्तेजना और हिंसा की भाषा नहीं है। अनंतकाल तक अपने विकास की प्रतीक्षा का धैर्य हिंदी के पास है। संसार की किसी भी भाषा से उसका झगड़ा नहीं है। अंग्रेजी की प्रभुता से उसका झगड़ा है, पर अंग्रेजी की प्रायोगिक उपस्थिति से झगड़ा नहीं है। 'ट्रेन लेट है' यदि देवनागरी में लिखा है तो हिंदी इसे पचा लेगी, पर 'ट्रेन इज लेट' को अंग्रेजी में लाएँगे तो हिंदी इसे अस्वीकार कर देगी। हिंदी की मूल शक्ति का कवच है इसकी देवनागरी लिपि और 'जैसा बोलो वैसा लिख लो' वाली सुविधा। दूसरी किसी भी भाषा के पास न यह संपदा है, न यह सुविधा, और संपर्क-सेतु वाली संरक्षा तो है ही नहीं। प्रश्न या प्रसंग तुलना का नहीं है। चाहे आप किसी से पूछ लो! हिंदी में सोचिए, हिंदी में बोलिए और हिंदी में लिखिए। अपनी माँ के दूध का कर्ज चुकाना यहीं से शुरू होगा। हिंदी कोई नारा नहीं है। हिंदी एक आजीवन चलनेवाला कार्यक्रम है। यह भाषा के साथ भविष्य भी है।

□

धापूधाम, 169 डॉ. पुखराज वर्मा मार्ग
नीमच-458441 (म.प्र.)

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी

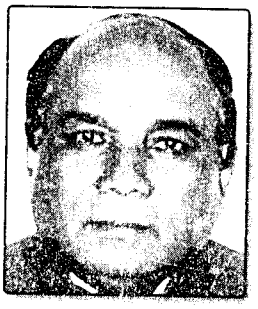
पृष्ठभूमि, प्रस्ताव और पहल

नारायण कुमार

न्यूयॉर्क में 13 से 15 जुलाई, 2007 तक आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का बोध-वाक्य था 'विश्व मंच पर हिंदी', जिसे चरितार्थ करने के लिए इस सम्मेलन का उद्घाटन संयुक्त राष्ट्रसंघ मुख्यालय के सभागार में किया गया था। उद्घाटन-सत्र में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून की उपस्थिति तथा हिंदी में उनका लघु वक्तव्य इस बात का सुखद संकेत दे रहा था कि इस विश्व संगठन के लिए हिंदी भी अपना विशेष महत्त्व रखती है। संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने सम्मेलन के प्रतिनिधियों को न सिर्फ 'नमस्ते' कहकर हिंदी में संबोधित किया बल्कि उनका हाल-चाल भी हिंदी में ही पूछा। श्री बान मून का यह वक्तव्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि हिंदी दुनिया भर के लोगों को पास लाने का और संसार के विभिन्न संस्कृतियों के बीच सेतु का निर्माण कर रही है।

हम जानते हैं कि विश्व-शांति के लिए कार्यरत संयुक्त राष्ट्रसंघ का उद्देश्य है—संसार भर के लोगों के बीच सद्भावना और मैत्री कायम करना। अत: जो भाषा विश्व भर के लोगों को पास लाने तथा विभिन्न संस्कृतियों के बीच समन्वय करने का काम कर रही है, उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा का सम्मान नहीं देना संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषित उद्देश्य के विरुद्ध है। हिंदी विश्व-शांति, सद्भाव और समन्वय की भाषा है, क्योंकि यह भाषा अपने उद्भव और विकास के क्रम में हमेशा अनाचार, अत्याचार, गुलामी और औपनिवेशिक दासता का विरोध करती रही है। हिंदी को विश्व-मंच पर गुरुत्तर दायित्व की संभावना का संकेत अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी ने 2 मार्च, 1930 को गोरखपुर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के उन्नीसवें अधिवेशन में दिया था। इस सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"मुझे तो वह दिन दूर नहीं दिखाई देता, जब हिंदी साहित्य अपने सौष्ठव के कारण जगत साहित्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त करेगा और हिंदी भारतवर्ष जैसे विशाल देश की राष्ट्रभाषा की हैसियत से न केवल एशिया महाद्वीप के राष्ट्रों की पंचायत में, बल्कि संसार भर के देशों की पंचायत में एक साधारण भाषा के समान न केवल बोली भर जाएगी, अपितु अपने बल से संसार की बड़ी-बड़ी समसयाओं पर भरपूर प्रभाव भी डालेगी।"

स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी के इस सपने को साकार किया राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने, जब भारत की आजादी से चार महीने पहले अप्रैल, 1947 में दिल्ली में आयोजित 'एशियन कॉन्फ्रेंस' में एशिया के विभिन्न देशों को हिंदी में संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा—"आज जब मैं स्वदेशी भाषा में आपसे बोलता हूँ, तब मेरे जी (मन) में यह कहने की तनिक भी इच्छा नहीं होती कि मैं आप लोगों से माफी माँगता हूँ।



- श्री नारायण कुमार एक लंबे अरसे से राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा हिंदी के रचनात्मक लेखन से जुड़े रहे हैं। इन्होंने देश-विदेश में हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। श्री कुमार अपनी छात्रावस्था में ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार और लोहिया के 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। इन्होंने बिहार विश्वविद्यालय में अपनी सेवा के दौरान उच्च शिक्षा में हिंदी के प्रयोग तथा हिंदी माध्यम से शिक्षण के लिए आंदोलन किया तथा उसमें सफलता प्राप्त की।
- श्री कुमार ने विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अत्यधिक समर्पण एवं निष्ठा के साथ काम किया है। कैरेबियन क्षेत्र के सूरीनाम, गुयाना तथा त्रिनिदाद में हिंदी प्रचार-प्रसार में इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन में श्री कुमार ने सक्रिय भूमिका निभाई है। यही कारण है कि सेवानिवृत्ति के बाद भी इन्हें सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का परामर्शदाता तथा आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन की स्थायी समिति एवं सम्मान समिति का सदस्य मनोनीत कर भारत सरकार इनके अनुभव का लाभ उठा चुकी है। अंतरराष्ट्रीय हिंदी न्यास, न्यूयॉर्क (अमेरिका) से प्रकाशित त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'हिंदी जगत्' के परामर्शदाता (संपादक) के रूप में अपने देश-विदेश में हिंदी लेखन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया है।
- श्री कुमार को देश विदेश के अनेक हिंदी सम्मानों एवं पुरस्कारों से भी अलंकृत किया जा चुका है; जिनमें मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् स्वर्ण जयंती सम्मान, गुयाना हिंदी प्रचार सभा द्वारा हिंदी वाचस्पति की उपाधि, दिल्ली हिंदी अकादमी का पत्रकारिता सम्मान, हिंदी रूपांबरा का राजभाषा सम्मान तथा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया का 'संपादन सम्मान' उल्लेखनीय हैं।
- श्री कुमार प्रवासी हिंदी लेखन के विविध आयाम तथा विदेशों में रहनेवाले भारतवासियों की विभिन्न समस्याओं पर निरंतर शोधकार्य कर रहे हैं तथा इन विषयों पर अनेक पुस्तकों का संपादन भी किया है। ये गुयाना विश्वविद्यालय, दक्षिण अमेरिका के हिंदी विभाग में अतिथि प्राध्यापक भी रह चुके हैं।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

ऐसा कहकर मैं आपका अपमान नहीं करना चाहता। आप हमारी राष्ट्रभाषा नहीं समझ सकते, परंतु प्रयत्न कीजिए। हमारी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी है।'' इसके 30 वर्ष बाद 4 अक्तूबर, 1977 को भारत के विदेश मंत्री के रूप में श्री अटल विहारी वाजपेयी ने तथा सन् 1988 में तत्कालीन विदेश मंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में भाषण देकर भारत तथा भारत की राजभाषा हिंदी का सम्मान बढ़ाया।

इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि 1946में स्थापित यूनेस्को के दूसरे अधिवेशन (1947) में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने भाग लिया था। इस अधिवेशन में हिंदी को यूनेस्को की भाषा बनाने पर आम सहमति हुई थी। सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने यूनेस्को के एक अधिवेशन में यह प्रस्ताव भी रखा था कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं में शामिल किया जाए। यूनेस्को के क्षेत्रीय शिक्षा सलाहकार श्री असर डिलायॅन ने 1975 में नागपुर में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में यूनेस्को के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेकर हिंदी के वैश्विक महत्त्व तथा यूनेस्को में हिंदी की स्थिति के बारे में बताया कि हिंदी 1947 से ही यूनेस्को में शासकीय काम-काज की भाषा है। यूनेस्को के निर्णयों के अनुवाद हिंदी में भी किए जाते हैं और विशेष प्रतिनिधि के आग्रह पर प्रलेखों और भाषणों आदि के अनुवाद भी सभी शासकीय भाषाओं में उपलब्ध कराए जाते हैं। यूनेस्को की प्रमुख पत्रिका 'यूनेस्को कूरियर' को हिंदी में भी प्रकाशित किया जाता है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि भविष्य में विश्व-भाषा के रूप में कला एवं संस्कृति के आदान-प्रदान की दृष्टि से हिंदी भाषा का विकास होगा।

महासभा तथा इसकी समितियों, उपसमितियों की कार्रवाई का कार्यवृत्त कार्य-संचालन की सभी भाषाओं में तैयार किया जाता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रकाशन, संकल्प एवं अन्य महत्त्वपूर्ण दस्तावेज कार्य-संचालन की सभी भाषाओं में जारी होते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका इंग्लैंड (यू.के.) फ्रांस का इस संगठन पर विशेष प्रभुत्व रहा। अतः अंग्रेजी, फ्रेंच तथा बाद में स्पेनिश भाषाओं को कार्य-संचालन की भाषा के रूप में विशेषाधिकर प्राप्त था। लेकिन इस कोटि में रूसी, चीनी और अरबी भाषाओं के शामिल होने के बाद अब आधिकारिक

तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. कर्ण सिंह ने प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में सम्मेलन में उपस्थित अतिथियों एवं प्रतिनिधियों के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा था—''हिंदी जो भारत में जनमी, पली और पनपी, मात्र भारतीय भाषा नहीं, अंतरराष्ट्रीय भाषा भी है। इस तथ्य की पुष्टि आज यहाँ हो रही है। करोड़ों व्यक्तियों की यह भाषा विश्व-भाषा के रूप में सामने आए, इसके लिए मैं माँग करूँगा कि जिस प्रकार यूनेस्को ने अपने यहाँ हिंदी को स्थान दिया है, उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ में, जहाँ छह अन्य विश्व-भाषा को स्थान मिला है, उसी प्रकार हिंदी को भी अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थान मिले।'' उनके इस वक्तव्य को ध्यान में रखकर प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में विधिवत् यह प्रस्ताव पारित हुआ है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाया जाए। प्रथम से आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन तक इस प्रस्ताव को क्रियान्वित करने की माँग एवं अनुशंसा की गई है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के बाद अब संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना तथा उसकी आधिकारिक भाषाओं पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ यह भी जानना जरूरी है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में आधिकारिक भाषा बनने की क्या प्रक्रिया है तथा हिंदी किस प्रकार इसे संगठन की आधिकारिक भाषा बन सकेगी।

दो महायुद्धों की विभीषिका से आतंकित और संसार में स्थायी शांति के लिए चिंतित विश्व-समुदाय ने बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में यह महसूस किया कि सन् 1919 में स्थापित लीग ऑफ नेशंस संसार में शांति और सौहार्द कायम रखने में असफल रहा है। अतः संसार के कुछ प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्रों ने एक ऐसे संगठन की स्थापना के लिए प्रयास प्रारंभ किया, जो विश्व के विभिन्न देशों के

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

बीच के विवादों को सुलझाने तथा पारस्परिक सौहार्द और सद्भाव बढ़ाने के लिए कार्य कर सके। लगभग दो-तीन वर्षों के गहन विचार-विमर्श के बाद 24 अक्तूबर, 1945 को संयुक्त राज्य अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को शहर में संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई, जिसकी सदस्यता उस समय 51 देशों ने स्वीकार की थी। इससे पूर्व 26 जून, 1945 को सैनफ्रांसिस्को में ही इन सदस्य देशों ने संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र को सर्वसम्मति से स्वीकृति प्रदान की थी, जिसे 'यू.एन. चार्टर' के नाम से जाना जाता है। 26 जून, 1945 को हस्ताक्षरित संयुक्त राष्ट्र चार्टर में ही सिद्धांतत: अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी भाषाओं को इस संगठन की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया था तथा इन पाँच भाषाओं में हस्ताक्षरित चार्टर के पाठ समान रूप से प्रमाणिक एवं प्राधिकृत घोषित किए गए थे। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और चीनी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्यों की राजभाषाएँ हैं, जिन्हें 'वीटो' इस्तेमाल करने का अधिकार भी प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रथम अधिवेशन में सुरक्षा परिषद् के पाँच सदस्य देशों की भाषाओं के अतिरिक्त स्पेनिश भाषा को भी इस आधार पर संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया कि अमेरिकी महाद्वीप के अधिकांश देशों की भाषा स्पेनिश है, जो इस समय संयुक्त राष्ट्र के 20 सदस्य देशों की राजभाषा है और जिसका प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापक स्तर पर किया जाता है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के पाँच सदस्य देशों की भाषाओं के अतिरिक्त स्पेनिश भाषा सहित पाँच भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ बन गईं। इन आधिकारिक भाषाओं में से सिर्फ अंग्रेजी तथा फ्रेंच को ही संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न संगठनों के लिए कार्य-संचालन की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। परंतु इस भाषाई प्रावधान के तीन वर्ष बाद ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्पेनिश को भी संयुक्त राष्ट्र के कार्य-संचालन की भाषा के रूप में स्वीकार किया जबकि रूसी और चीनी भाषाएँ एक लंबे अरसे तक संयुक्त राष्ट्र के कार्य-संचालन की भाषा नहीं बन सकीं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के लगभग 23 वर्ष बाद 21 दिसंबर, 1968 को संकल्प संख्या 2479 द्वारा रूसी भाषा को भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य-संचालन की भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जबकि संयुक्त राष्ट्र के 28वें अधिवेशन में संकल्प संख्या 3179 द्वारा चीनी भाषा को 18 दिसंबर, 1973 को कार्य-संचालन की भाषा के रूप में स्वीकार किया गया। रूसी (सोवियत संघ) तथा चीनी को कार्य-संचालन की भाषा बनने के लिए सदस्य देशों से समर्थन प्राप्त करने के लिए काफी प्रयास करना पड़ा और अंतत: उन्हें सफलता मिली 1971 में। संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन गणराज्य के स्थान पर चीन लोक गणराज्य को स्थान मिलने के 2 वर्ष बाद संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसंबर, 1973 को यह निर्णय लिया कि (क) चीनी भाषा को महासभा की विभिन्न समितियों एवं उप-समितियों की कार्य-संचालन की भाषा में शामिल किया जाए, (ख) अरबी भाषा को महासभा तथा इसकी मुख्य समितियों की आधिकारिक एवं कार्य-संचालन की भाषाओं में शामिल किया जाए। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अरबी संयुक्त राष्ट्रसंघ के 26 देशों की राजभाषा है। इसके बाद 17 दिसंबर, 1980 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में यह निर्णय भी लिया गया कि एक जनवरी, 1982 से महासभा के सभी संबद्ध संगठनों में भी अरबी भाषा को आधिकारिक एवं कार्य-संचालन की भाषा में अनुवाद प्रस्तुत कर सदस्य देश का प्रतिनिधि महासभा तथा समितियों में किसी भी भाषा में व्यख्यान दे सकता है। महासभा तथा इसकी समितियों, उपसमितियों की कार्रवाई का कार्यवृत्त कार्य-संचालन की सभी भाषाओं में तैयार किया जाता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रकाशन, संकल्प एवं अन्य महत्त्वपूर्ण दस्तावेज कार्य-संचालन की सभी भाषाओं में जारी होते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका इंग्लैंड (यू.के.) फ्रांस का इस संगठन पर विशेष प्रभुत्व रहा। अत: अंग्रेजी, फ्रेंच तथा बाद में स्पेनिश भाषाओं को कार्य-संचालन की भाषा के रूप में विशेषाधिकर प्राप्त था। लेकिन इस कोटि में रूसी, चीनी और अरबी भाषाओं के शामिल होने के बाद अब आधिकारिक और कार्य-संचालन की भाषाओं के बीच का अंतर व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया है। अत: हमें विश्वास है कि भविष्य में यदि किसी भाषा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में महासभा स्वीकार करेगी तो उसे निश्चय ही कार्य-संचालन की भाषा भी बनाएगी। अब हिंदी सहित विश्व की कुछ प्रमुख भाषाओं को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक एवं कार्य-संचालन की भाषा बनाना इसलिए आवश्यक

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

है कि इसकी सदस्य संख्या 51 से बढ़कर 192 हो गई है तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बांद पराधीनता से मुक्त भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी को यह न्यायोचित अधिकार मिलना उतना ही तर्कसंगत है जितना कि भारत को सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता।

संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दिलाने का सवाल विगत 4 दशकों से विश्व के हिंदी-प्रेमियों के बीच चर्चा का विषय बना रहा है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर 2007 में न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के संकल्प पारित हुए हैं। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार और विचारक श्री कमलेश्वर की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता दिलाने के सवाल पर भारत सहित विश्व के अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया। व्यापक एवं गहन विचार-विमर्श के बाद सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि यह सम्मेलन इस बात पर खेद प्रकट करता है कि विश्व में बोली जानेवाली दूसरी सबसे बड़ी भाषा हिंदी, जिसका प्रयोग लगभग 180 देशों में 80 करोड़ लोगों के लिए किया जाता है, अभी तक संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा नहीं बन सकी। इस सम्मेलन का यह निश्चित मत है कि हिंदी के संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बन जाने के उपरांत विश्व की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अपनी भाषा के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों तथा क्रियाकलापों से अवगत होगा। इस प्रस्ताव का अनुमोदन मॉरीशस के संस्कृति मंत्री श्री मोती रामदास सहित संसार के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने किया। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के घोषणा-पत्र में भी सरकार से यह आग्रह किया गया कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों से समर्थन प्राप्त कर हिंदी को शीघ्रातिशीघ्र संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रयास करें।

10 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी के अंतरराष्ट्रीय महत्त्व को रेखांकित करते हुए भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि हिंदी विश्व की महान् भाषाओं में एक है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो इसे दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। गंगा-यमुना के निकटवर्ती प्रदेशों से विकसित होकर इस भाषा का प्रयोग भारत के सुदूरवर्ती भागों तक प्रचलित है। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है जहाँ हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गए, और विदेशों के विश्वविद्यालयों में भी, जहाँ विद्वान् लोग हिंदी का अध्ययन-अध्यापन करते हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में ही मॉरीशस के सरकारी प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री दयानंद बसंत राय ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता के लिए प्रस्ताव रखा था, जिसका समर्थन सोवियत संघ (रूस) के प्रतिनिधिमंडल के नेता डॉ. ई.पी. चेलिशोव सहित संसार के सभी देशों से आए प्रतिनिधियों ने किया था। इस प्रस्ताव पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने कहा था कि मॉरीशस संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को उसका उचित स्थान दिलाने में सदैव आगे रहेगा। डॉ. रामगुलाम ने हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा था—"हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ है।"

विश्व हिंदी सम्मेलनों के अतिरिक्त भारत तथा विदेशों में आयोजित हिंदी के प्राय: सभी सभा-सम्मेलनों में इस बात पर विचार-विमर्श होते रहे हैं कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की राजभाषा को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उचित स्थान मिले। भारत सरकार की केंद्रीय हिंदी समिति में सर्वप्रथम 17 अगस्त, 1968 की बैठक में बाबू गंगाशरन सिंह ने यह विचार व्यक्त किया था कि राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं में हिंदी को भी स्थान मिले, क्योंकि हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में सम्मिलित न किया जाना, संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र का उपहास है। इसके बाद से केंद्रीय हिंदी समिति की अनेक बैठकों में इस प्रश्न को उठाया गया है। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन के बाद भारत सरकार ने वर्ष 2003 में विदेश मंत्री की अध्यक्षता में 11 सदस्यों की एक समिति बनाई है, जो इस विषय पर समग्र रूप से विचार करेगी तथा इस दिशा में काररवाई के लिए व्यावहारिक सुझाव भी देगी, ताकि हिंदी संयुक्त राष्ट्र में

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान प्राप्त कर सके। लेकिन इसका कोई ठोस परिणाम नहीं आया है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यविधि नियमावली के आठवें भाग के नियम 51 से नियम 57 तक इसकी आधिकारिक भाषाओं के संबंध में प्रावधान किया गया है। इन नियमों में महासभा तथा इसकी विभिन्न समितियों, उप-समितियों के लिए आधिकारिक तथा कार्य-संचालन की भाषाओं के बारे में व्यवस्था की गई है। अत: हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए इसकी कार्यविधि नियमावली के नियम 51 में संशोधन करना होगा, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र के कुल 192 सदस्य देशों में से आधे से अधिक देशों के समर्थन की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि अरबी भाषा को आसानी से संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश इसलिए मिल गया कि अरब देशों ने प्रारंभिक तीन वर्षों के खर्च का जिम्मा उठा लिया था। संभवत: भारत को इसके लिए संसार का कोई अन्य देश आर्थिक सहायता नहीं देगा। अत: हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भारत का प्रारंभिक तीन वर्षों का खर्च लगभग 19.5 या 20 मिलियन अमेरिकी डॉलर का अनुमान लगाया गया था। परंतु कुछ वर्ष पूर्व किए गए आकलन के अनुसार इस मद पर वार्षिक 13 मिलियन अमेरिकी डालर खर्च का अनुमान लगाया गया था। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में अनुवादक और दुभाषिए आदि की नियुक्ति पर नियमित रूप से तो खर्च होगा ही।

यदि भारत के संदर्भ में आर्थिक पक्ष पर विचार करें तो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता मिलने पर प्रतिवर्ष अनुमानत: 13 से 15 मिलियन अमेरिका डॉलर खर्चा आएगा। इसके अतिरिक्त भारत सरकार को न्यूयॉर्क स्थित अपने स्थायी मिशन में अनुवादकों और दुभाषिए की नियुक्ति करनी होगी। अभी तो यदि भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य हिंदी में बोलना चाहें तो उनके हिंदी भाषण का अंग्रेजी अनुवाद भेजकर पैसिव ट्रांसलेशन पद्धति का सहारा लेकर काम चलाया जाता था, लेकिन आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी की मान्यता प्राप्त होते ही भारत सरकार को

सूरीनाम में 6 से 9 जून, 2003 के आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने यह घोषणा की कि भारत सरकार अपनी राष्ट्रभाषा और राजभाषा को संयुक्त राष्ट्र में स्थान दिलाने के लिए 100 करोड़ रुपए खर्च करने को तैयार है। उन्होंने सम्मेलन में यह भी आश्वासन दिया कि शीघ्र ही हिंदी संयुक्त राष्ट्र की सातवीं मान्यता प्राप्त भाषा बन जाएगी। उन्होंने सम्मेलन के समापन समारोह में कहा कि प्रधानमंत्री इस प्रस्ताव को लेकर संकल्पबद्ध हैं और इस संबंध में हिंदी-प्रेमियों के मन में फैली निराशा को दूर करने के लिए सरकार द्वारा सघन प्रयास किया जाएगा।

आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन-सत्र में 13 जुलाई, 2007 को भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का वीडियो संदेश जारी किया, जिसमें उन्होंने इस बात पर विशेष रूप से बल दिया था कि सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में एक यह भी था हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की एक आधिकारिक भाषा बनाई जाए। हम उस दिशा में भी कार्य कर रहे हैं। इस सम्मेलन में भी पारित प्रस्तावों पर तेजी से कारवाई की जाएगी।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भारत सरकार की पहल और वचनबद्धता स्वागतयोग्य है। लेकिन इस संदर्भ में हमें महात्मा गांधी के कथन और उनके आचरण से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। महात्मा गांधी को हिंदी बोलने में कहीं भी और कभी भी कोई संकोच नहीं होता था। वे चंपारण के नीलहा आंदोलन से लेकर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर होनेवाले अत्याचार तथा अनाचार से संबोधित संग्राम में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। आज जब हम संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का अभियान प्रारंभ कर रहे हैं तो यह भी आवश्यक है कि भारतीय संसद, भारत की विधानसभाओं, न्यायालयों और कार्यालयों में भी हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग हो।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा का स्थान दिलाने में भारत के प्रमुख एवं राष्ट्रीय राजनीतिक दलों में भी कोई मतभेद नहीं है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि 4 अक्तूबर, 1988 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में जब तत्कालीन विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव ने हिंदी में अपना व्याख्यान दिया था तो श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था—''आज मैं बहुत खुश हूँ। विदेश मंत्री नरसिंह राव आज संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में हिंदी में बोले। हिंदी में भाषण देकर श्री नरसिंह राव ने न केवल हिंदी का आधिकारिक उपयोग करने के बारे में राजभाषा अधिनियम के निर्देश का पालन किया है, बल्कि अपनी भाषा में अपने को व्यक्त करने की अदम्य आकांक्षा को भी वाणी दी है।'' श्री वाजपेयी ने यह विचार भी व्यक्त किया कि जहाँ तक हिंदी का संयुक्त राष्ट्र में एक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का प्रश्न है, यह कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना कि ऊपर से दिखाई देता है। श्री नरसिंह राव के हिंदी भाषण से वह द्वार फिर से खुल गया, जो पिछले 10 साल से बंद था। अब आप हिंदी को पूरी तरह प्रतिष्ठित करने के अपने प्रयत्नों में तेजी लाएँ। परिस्थिति अनुकूल हैं, इसका लाभ उठाकर आगे बढ़ना चाहिए।

भारत के हिंदी-प्रेमियों को इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए। सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग को पूर्णरूप से सुनिश्चित किया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए उचित होगा कि हमारे राजनेता अपने शासकीय कार्यों में हिंदी का प्रयोग करें तथा विदेशों में भी अपने व्याख्यान भारत की राभाषा हिंदी या अन्य भारतीय भाषा में दें। किसी विदेशी भाषा में भारतीय राजनेताओं का व्याख्यान भारत की राष्ट्रीय अस्मिता पर प्रहार है।

यदि हम अपने देश के कामकाज में देश की राजभाषा का प्रयोग करेंगे तो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों से हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए समर्थन प्राप्त करने का हमें नैतिक बल मिलेगा, अन्यथा संसार के अनेक देश हमसे यह सवाल पूछेंगे कि जब भारत में ही हिंदी का प्रयोग नहीं होता तो संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में क्या उपयोगिता होगी ? जैसाकि हम जानते हैं, पिछले अनेक वर्षों से जापान, जर्मनी और इजरायल जैसे अनेक देश अपने-अपने देशों की भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन देशों ने संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में अनुवाद-एकक भी स्थापित कर रखे हैं, जहाँ से अनेक प्रतिनिधियों को संयुक्त राष्ट्र के सभी दस्तावेजों की प्रतियाँ संबंधित देशों की भाषाओं में भी प्राप्त होती हैं। ये देश संयुक्त राष्ट्र महासभा तथा इसकी विभिन्न समितियों में अपने विचार अपनी भाषा में व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र स्थित भारत के स्थायी मिशन को भी तुरंत करनी चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता दिलाने के लिए आधे से अधिक सदस्य देशों के समर्थन की भी आवश्यकता है, जिसे जुटाने में राजनयिक पहल और राजनैतिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। यह असंभव नहीं, लेकिन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस बीच संघ की महासभा, इसके विभिन्न संगठनों और समितियों/उपसमितियों में सिर्फ हिंदी में ही अपने विचार प्रकट करें तथा न्यूयॉर्क स्थित भारत के स्थायी मिशन में सुदीर्घ अनुभवी और सुयोग्य अनुवादकों/ दुभाषियों की तैनाती की जाए, ताकि हमारे प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों को हिंदी में भाषण देने में कोई असुविधा न हो और उन्हें सभी दस्तावेज हिंदी भाषा में उपलब्ध कराए जा सकें। मुझे विश्वास है कि यदि इस नीति पर सरकार अमल करेगी तो संसार के सामने हम अपने देश की राजभाषा के महत्त्व को साबित कर सकेंगे, जो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए प्रभावी और व्यावहारिक कदम सिद्ध होगा।

जैसाकि मैंने इस लेख में पहले ही उल्लेख किया है, संयुक्त राष्ट्र में हिंदी पर विचार करते समय हमें सर्वप्रथम स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी ध्यान में आते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर अधिवेशन में यह घोषणा की थी—''एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।'' एशिया कांग्रेस-1975 में गांधीजी ने हिंदी में अपना व्याख्यान देकर अंतरराष्ट्रीय मंच पर हिंदी को प्रतिष्ठित किया। इसी तरह प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में उद्घाटन सत्र में 10 जनवरी, 1975 को काका साहब कालेलकर ने यह उद्बोधन किया था—''मैं अंतर्मन से

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

निश्चय ही लगता है कि संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठन में यदि चवालीस करोड़ लोगों की यह आवाज पहुँचेगी तो यह विश्व शांति की ओर उठेगा प्रशासन भाषा व्यवस्था की ओर, शोषण रहित समाज की ओर तथा समस्त विश्व के बीच एक पारिवारिक स्नेह-संबंध की ओर आगे बढ़ेगी, इसमें कोई शक नहीं।" काका साहब के अंतर्मन की इस कामना को संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशनों में हिंदी में भाषण देकर श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री एस.एन. मिश्र तथा श्री पी.वी. नरसिंह राव ने आंशिक रूप में पूरा किया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा तथा इनके अन्य संगठनों में यदि कोई सदस्य देश ऐसी भाषा का इस्तेमाल करता है, जो उसकी कार्य-संचालन की भाषा नहीं है तो उस भाषा का अक्षरश अनुवाद कार्य-संचालन की किसी भाषा में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की शब्दावली में सिमल्टेनियस ट्रांसलेशन कहा जाता है, जिसके आधार पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के दुभाषिए उन भाषणों का अन्य आधिकारिक भाषाओं में अनुवाद प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् दुभाषिए के लिए वक्ता या उसका भाषण नहीं बल्कि उसके भाषण का संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा में प्रस्तुत अनुवाद ही स्रोत सामग्री होती है। चूँकि भारत में आमतौर पर सभी भाषण मूल रूप से अंग्रेजी में ही तैयार किए जाते हैं, जिसका हिंदी अनुवाद संयुक्त राष्ट्र महासभा या अन्य संगठनों में हमारे प्रतिनिधि पढ़ते हैं। अत: इनमें न तो कोई समस्या आड़े आती है न, अनुवाद पर कोई अतिरिक्त धन व्यय करना होता है।

संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा (जिसमें कार्य संचालन की भाषा भी शामिल है) के रूप में हिंदी की मान्यता के सवाल पर हमारा दृष्टिकोण भावनात्मक अधिक और तथ्यपरक कम है। हम यह तर्क देते रहे हैं कि चूँकि भारत के सबसे बड़े लोकतंत्र की भाषा है तथा बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से चीनी भाषा के बाद हिंदी का स्थान है, अत: इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ में आधिकारिक भाषा का स्थान मिलना चाहिए। इस तर्क की पुष्टि में अरबी भाषा का उदाहरण भी दिया जाता है, जिसे वर्ष 1973 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाया गया था। लेकिन हम भूल जाते हैं कि अरबी संयुक्त राष्ट्र के 26 सदस्य देशों की राजभाषा है और ये देश पहले से ही महासभा एवं अन्य संगठनों में अरबी भाषा का प्रयोग करते थे। अरबी की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति के 3 वर्ष तक का इस मद पर पूरा व्यय इन देशों ने वहन किया। भारत की ओर से हम यह दावा तो करते हैं कि नेपाल, भूटान, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना आदि देश हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में हमें सहयोग या समर्थन देंगे, लेकिन इन देशों के प्रतिनिधियों के लिए हिंदी के प्रयोग की अपरिहार्यता नहीं है। यहाँ तक कि भारत के प्रतिनिधि भी संयुक्त राष्ट्रसंघ में अंग्रेजी भाषा का ही इस्तेमाल करते हैं। चूँकि भारतीय संसद् तथा भारत सरकार के कामकाज की वास्तविक भाषा अंग्रेजी है, तो किसी के भी मन में यह सवाल उठ सकता है कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने का क्या औचित्य है।

अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी की मान्यता के लिए विश्व जनमत से पहले भारत में जनमत तैयार करना होगा। इस दिशा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा तथा इसके पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष स्व. मधुकर राव चौधरी एक लंबे अरसे से संघर्षशील रहे हैं। उन्होंने जीवन-पर्यंत हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संघर्ष किया। अपने स्वर्गवास से पूर्व वे इस प्रश्न पर राजघाट पर आमरण अनशन करने के लिए प्रतिबद्ध थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर, उनसे मिलकर तथा केंद्रीय समिति की बैठकों में अनेक बार इस सवाल उठाया था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अलावा विश्व हिंदी न्यास, न्यूयॉर्क और विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस ने भी अपने उद्देश्यों में संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की मान्यता के सवाल को शामिल किया है। अब यह आवश्यक हो गया है कि हिंदी के सवाल को भारत की जनता के बीच उठाया जाए तथा भारत सरकार को इस दिशा में सक्रियतापूर्वक सकारात्मक कार्यवाही करने के लिए विवश किया जाए।

इस राजनीति पहल के बाद भारत सरकार द्वारा राजनयिक पहल अपेक्षित होगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्य नियमावली में संशोधन को संयुक्त राष्ट्र के आधे से अधिक सदस्य देशों का समर्थन प्राप्त करना होगा। इसके लिए यह उचित होगा हमारे विदेश स्थित दूतावास अपने-अपने देशों की सरकार से समर्थन प्राप्त करें तथा जब कभी विदेशों के राष्ट्राध्यक्ष/राजाध्यक्ष अथवा उनके वरिष्ठ मंत्री भारत आएँ

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

या भारत के मंत्री विदेश जाएँ तो विदेश की सरकारों से समर्थन देने का अनुरोध करें। दिल्ली स्थित विदेशी दूतावासों से भी इस संबंध में सहायता ली जा सकती है। विदेश मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी एक सुगठित एवं तर्कसंगत तथ्यपत्र तैयार कर इसके लिए संसार के देशों के विदेश मंत्रियों से मिलकर समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। इस कार्य में प्रवासी भारतीयों से भी महत्त्वपूर्ण सहायता मिल सकती है।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता दिलाने में राजनीतिक और राजनयिक पहल के अतिरिक्त आर्थिक पक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ भयंकर आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है। इसका आर्थिक स्रोत सदस्य देशों से प्राप्त अंशदान होता है। इस समय 192 में से 100 देश ही नियमित रूप से पूर्ण अंशदान दे रहे हैं तथा सदस्य देशों के पास अनुमानत: 2.5 बिलियन डॉलर की राशि बकाया है। ऐसी स्थिति में यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ में किसी भी नई भाषा को आधिकारिक भाषा का स्थान दिया जाता है तो संयुक्त राष्ट्र के बजट में वृद्धि होगी। यही कारण है कि जर्मनी, जापान, इजरायल आदि देशों की भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र में आधिकारिक भाषाओं का स्थान प्राप्त नहीं है, जबकि ये समृद्ध देश प्रारंभिक व्यय वहन करने के लिए तैयार हैं।

यदि भारत के संदर्भ में आर्थिक पक्ष पर विचार करें तो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता मिलने पर प्रतिवर्ष अनुमानत: 13 से 15 मिलियन अमेरिका डॉलर खर्चा आएगा। इसके अतिरिक्त भारत सरकार को न्यूयॉर्क स्थित अपने स्थायी मिशन में अनुवादकों और दुभाषिए की नियुक्ति करनी होगी। अभी तो यदि भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य हिंदी में बोलना चाहें तो उनके हिंदी भाषण का अंग्रेजी अनुवाद भेजकर पैसिव ट्रांसलेशन पद्धति का सहारा लेकर काम चलाया जाता था, लेकिन आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी की मान्यता प्राप्त होते ही भारत सरकार को सुदीर्घ अनुभवी एवं व्यावसायिक रूप से दक्ष अनुवादकों-दुभाषियों की नियुक्ति करनी होगी। अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में दुभाषिए का कार्य करने के लिए इंटरनेशनल एसोशिएसन ऑफ इंटरप्रेटर्स की सदस्यता की आवश्यकता होती है। जो संयुक्त राष्ट्रसंघ में 6महीने काम करते हैं, जिनके लिए उन्हें 600 डॉलर प्रतिदिन के अलावा इससे उच्च दर पर ऑवर टाइम भत्ता भी मिलता है।

इस खर्च के अलावा संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा इसके समिति कक्षों तथा इससे संबद्ध सभी संगठनों में हिंदी दुभाषिए के लिए बूथ बनाने होंगे और सभा कक्ष में हर सीट पर एक अतिरिक्त चैनल की व्यवस्था करनी होगी, जिससे इसके भवनों की आधिकारिक संरचना में भी व्यापक नवीनीकरण करना होगा। अरबी को आधिकारिक भाषा बनाने के समय यह समस्या सामने नहीं आई, क्योंकि इन भवनों में पहले से ही 6दुभाषियों के बूथ उपलब्ध थे; जिसमें छठे बूथ का इस्तेमाल करने का लाभ अरबी भाषा को मिला। इसके इलावा संयुक्त राष्ट्र के कई संगठनों में पहले से ही अरबी भाषा को मान्यता प्राप्त थी। संयुक्त राष्ट्र के सभी प्रकाशन-प्रसारण हिंदी में जारी करने पर भी अतिरिक्त खर्च आएगा।

यद्यपि उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का काम कठिन लगता है, लेकिन यह दुष्कर या असंभव नहीं है। सूरीनाम में जून, 2003 में संपन्न सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में तत्कालीन विदेश मंत्री ने भारत सरकार द्वारा 100 करोड़ रुपए के प्रावधान की घोषणा की थी। विदेश मंत्री की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति को सक्रिय बनाकर इस दिशा में एक नई शुरुआत कर भारत तथा विश्व के करोड़ों लोगों की इच्छा और आकांक्षा की पूर्ति करें। इस दिशा में एक विनम्र शुरुआत यह हो सकती है कि संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारतीय प्रतिनधिमंडल के नेता अनिवार्य रूप से हिंदी में भाषण दें तथा उनके प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों का चयन इस प्रकार किया जाए कि सदस्यों को हिंदी में बोलने का अवसर प्रदान किया जाए। इन सभी भाषणों का अंग्रेजी अथवा संयुक्त राष्ट्र की किसी अन्य आधिकारिक भाषा में अनुवाद संयुक्त राष्ट्र सचिवालय को उपलब्ध कराना आवश्यक होगा।

संयुक्त राष्ट्र स्थित भारत के स्थायी मिशन में एक उच्च स्तरीय अनुवादक/दुभाषिया एकक स्थापित किया जाए, जिसमें अंतरराष्ट्रीय स्तर के अनुवादकों की सेवा उपलब्ध रहे, जो संयुक्त राष्ट्र के सभी भाषणों, कार्यवृत्तों और दस्तावेजों आदि का भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों को तत्काल अनुवाद प्रस्तुत कर सकें। इस बीच भारतीय संसद्-विधान सभाओं में भारतीय भाषाओं को ही प्रयोग सुनिश्चित

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

करना आवश्यक होगा, ताकि विश्व जनमत प्रवासी भारतीय समाज तथा संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर हिंदी संयुक्त राष्ट्र कर आधिकारिक भाषा बन सके।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए तत्काल और त्वरित प्रयास करने की आवश्यकता है, क्योंकि इस समय इस विश्व संगठन में व्यापक सुधार लाने की माँग जोर पकड़ रही है। छह-सात दशक पहले गठित सुरक्षा के स्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाने पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श हो रहा है तथा भारत सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता प्राप्त करने का प्रबल दावेदार है। इसी के साथ संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं की संख्या में वृद्धि भी आवश्यक है ताकि विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र की राजभाषा और संसार में चीनी भाषा के बाद संसार की सबसे बड़ी दूसरी भाषा को इस विश्व संगठन में अपना न्यायोचित स्थान मिले।

यह प्रसन्नता की बात है कि भारत अगले दो वर्षों के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का अस्थायी सदस्य बन गया है। यह एक ऐतिहासिक विजय है, क्योंकि 192 में से 187 देशों ने इसके लिए भारत का समर्थन किया। इस चुनाव से विश्व मंच पर भारत की राजनयिक एवं राजनीतिक प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि के संकेत और सबूत मिलते हैं। इस द्विवार्षिक चुनाव के ब्रिक (BRIC) देश यानी ब्राजील, रूस, भारत और चीन सुरक्षा परिषद् के सदस्य बन गए हैं। ग्रुप-चार (जी-4) में से तीन देश भी अर्थात् भारत, जर्मनी और ब्राजील भी सुरक्षा परिषद् के सदस्य हैं तथा इबसा का साउथ अफ्रीका भी सुरक्षा परिषद् का सदस्य है। इन तीनों संगठनों के सहयोग से भारत को सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता के साथ-साथ हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ का आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संयुक्त रणनीति तैयार करनी चाहिए। भारत को अधिकांश गुट निरपेक्ष देशों का भी निश्चित रूप से समर्थन मिलेगा।

इनके अतिरिक्त संसार भर में रहनेवाले वृहद भारतवंशी समुदाय अपने-अपने देशों की सरकार पर भी इस बात के लिए प्रभाव डाल सकते हैं क्योंकि संसार के अधिकांश देशों में भारतवंशी समुदाय अत्यधिक सशक्त एवं प्रभावशाली आर्थिक और राजनीतिक शक्ति बन गए हैं, जिनके महत्त्व को उन देशों की सरकारें समझती हैं।

अत: यह अत्यंत उपयुक्त समय है जब विश्व के मानचित्र पर आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान बन रहा है। भारत गणराज्य इस देश की राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा एवं राजभाषा को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने के अपने मुहिम को तेज करे। अभी तक सरकार ने महज संसद् और सम्मेलनों में सकारात्मक वक्तव्य देकर इस संबंध में अपना इरादा प्रकट किया है। इस संपल्प को मूर्त रूप देने के लिए आवश्यक है कि भारत सरकार अपने मंत्रिमंडल में इस संबंध में प्रस्ताव पारित कर संसद् में इन मद पर होनेवाले खर्च के लिए वित्तीय प्रावधान करे। वार्त्ता के द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ के आधिकारिक सदस्य देशों का समर्थन सुनिश्चित करे। इसके साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र स्थित भारत के स्थायी मिशन में ऐसे अनुवादक एवं दुभाषिए नियुक्त किए जाएँ, जो संयुक्त राष्ट्र की वर्तमान आधिकारिक भाषाओं एवं हिंदी के बीच विश्वस्तर का अनुवाद एवं अनुवाचन (इंटरप्रिटेशन) करने में सक्षम हों। इन सबसे अधिक जरूरी यह है कि हमारे प्रतिनिधि अंग्रेजी के मोह को त्यागकर विश्व मंच पर अपना वक्तव्य भारत की राजभाषा हिंदी में देकर अपने देश का सम्मान बढ़ाएँ।

हिंदी बिना किसी सरकारी प्रयत्न के प्रवासी भारतीयों की संपर्क भाषा बन गई है तथा यू.के., अमेरिका ने इसे समझा तथा स्वीकारा है। अत: इस अनुकूल माहौल में हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने का हमारा प्रयास सफल होगा—विश्व के हिंदी प्रेमियों की यह आशा है और आकांक्षा भी।

□

A-154, Sector-46
Noida-201303 (U.P.)
India
Email : npkumar1944@yahoo.co.in

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

40 हिंदी की विदेशी शैलियाँ

● विमलेश कांति वर्मा

दुनिया की अधिकांश भाषाएँ विदेश में शासक-भाषा के रूप में प्रचारित हुईं और विदेशी शासन से मुक्त होने पर वह उस देश की दूसरी प्रधान भाषाएँ बन गईं। अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, जर्मन, स्पेनिश, अरबी आदि सभी भाषाएँ विदेश में ऐसे ही विकसित हुई हैं। भारत में अंग्रेजी के विकास और प्रचार का भी यही इतिहास है, किंतु हिंदी विदेश में स्नेह और सौहार्द की भाषा के रूप में विकसित हुई है। वह तो संतों, फकीरों और अध्यात्मवाले देश की भाषा के रूप में आकर्षण का केंद्र बनी।



- इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर शिक्षा के उपरांत, पद्मभूषण डॉ. रामकुमार वर्मा के निर्देशन में पी-एच.डी.।
- प्रतिष्ठित भाषा वैज्ञानिक।
- पिछले 45 वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य अध्यापन।
- विदेशों में हिंदी प्रचार-प्रसार से भी लंबे समय से जुड़े हुए हैं।
- टोरंटो विश्वविद्यालय, कनाडा तथा सोफिया विश्वविद्यालय, बल्गारिया में हिंदी का अध्यापन किया है।
- फीजी के भारतीय हाई कमीशन में वरिष्ठ राजनयिक के रूप में, प्रथम सचिव हिंदी के पद पर रहकर हिंदी की सेवा भी की है।
- इन दिनों प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य पर अनुसंधान।
- राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राज्यों तथा संस्थाओं के अतिरिक्त बल्गारिया एवं फीजी की सरकार द्वारा सम्मानित।

विश्व में भारत और चीन ऐसे दो देश हैं, जहाँ के निवासी विविध कारणों से, विभिन्न समयों में, विभिन्न परिस्थितियों में विदेश गए और फिर वहीं रम गए, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहने से उन देशों के महानगरों में उनकी एक बस्ती हो गई। वे वहीं रहते, सुख-दुःख आपस में बाँटते और उस देश के मूल निवासियों के बीच कार्य करते, किंतु अपने खान-पान, अपने जीवन मूल्य, अपनी भाषा और संस्कार की बराबर रक्षा करते और विदेश में भी एक छोटा स्वदेश बनाकर रहते। वहाँ यदि आप जाएँ तो आपको लगेगा ही नहीं कि आप विदेश में हैं। स्वदेश से अधिक आपको वहाँ अपना देश विदेश में दिखेगा। अमेरिका में न्यूजर्सी, लंदन में मिडिलसेक्स, सिंगापुर में लिटिल इंडिया तथा कुआलांपुर में मसजिद इंडिया ऐसे ही मोहल्ले हैं, जहाँ भारतीयों ने अपनी अलग पहचान बना रखी है। यदि आप फीजी, सूरीनाम, मॉरीशस, त्रिनिदाद जाएँ तो वहाँ यह देखकर और अधिक आश्चर्य होगा कि स्वदेश में तो हम भारतीय अंग्रेजी को प्रतिष्ठा की भाषा मानकर दूसरे को प्रभावित करने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हैं, चाहे हमें अंग्रेजी बोलने में कठिनाई होती हो। इसी प्रकार विदेश में अनेक देश ऐसे भी हैं, जहाँ विविध भाषा-भाषी भारतीय हिंदी बोलकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। इन भारतीयों ने उस देश में, जहाँ कभी वे शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत ब्रिटिश एजेंटों द्वारा बहला-फुसलाकर ले जाए गए थे और जहाँ उन्होंने अनेकों कष्ट सहे, उसी देश में उन्होंने ऐसा माहौल बनाया कि भारतीय वहाँ हिंदी को अपनी भारतीय अस्मिता की पहचान मानते हैं और घर पर तो वे अपनी हिंदी बोलते ही हैं, सामुदायिक सभाओं में मानक हिंदी या परिनिष्ठित हिंदी बोलकर यह बताना चाहते हैं कि उन्होंने अपने पूर्वजों की भाषा और संस्कृति को कितना सँजोकर रखा है। फीजी, सूरीनाम, मॉरीशस, त्रिनिदाद तथा दक्षिण अफ्रीका ऐसे ही देश हैं जहाँ भारतीय स्वभाषा, स्वसंस्कृति के प्रति गर्व अनुभव करते हैं। फीजी के कवि काशी राम कुमुद कहते हैं—

"शर्त में जिसने जीवन का उत्सर्ग किया
हम उन्हीं के श्रीचरणों में शीश झुकाते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच
हिंदी बिरवा पनपाते हैं।"

—काशी राम कुमुद : हिंदी बिरवा

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

मॉरीशस के वरिष्ठ कवि मुनीश्वरलाल चिंतामणि 'मेरी हिंदी भाषा' शीर्षक कविता में घोषणा करते हैं कि हिंदी ने हम भारतीयों की पहचान विदेश में बनाए रखी है। ऐसी हिंदी यदि गई तो हमारी पहचान समझिए चली गई। हिंदी के प्रति मॉरीशस के कवि मुनीश्वरलाल चिंतामणि और सूरीनामी कवि धीरज कंधई की निष्ठा की गहराई देखिए—

''उस आदमी से जाकर कहो कि
मेरी हिंदी भाषा
एक ऐसी खूबसूरत चीज है
जिसने मेरी संस्कृति को
अब भी बचाए रखा है।
मेरी हिंदी भाषा
एक ऐसी खूबसूरत चीज है
जिसने मेरी पहचान को
अब भी बनाए रखा है।
उस आदमी से जाकर कहो, कि
मेरी हिंदी भाषा की महानता का
वह अभिनंदन करे।
मेरे पूर्वजों की त्याग-तपस्या का
बार-बार स्मरण करे,
वह जान ले कि
उन पूर्वजों के प्रति मेरी श्रद्धा अपार है।
उनकी भाषा की रीढ़ को
टूटने नहीं दूँगा मैं।
हिंदी जो गई तो मैं समझूँगा,
संस्कृति भी गई,
हिंदी जो गई तो मैं समझूँगा,
अपनी पहचान भी गई।''

—मुनीश्वरलाल चिंतामणि : मेरी हिंदी

''हिंदी ज्ञान
मेरे लिए अमृत रस पान,
जितनी बार उसे पीता हूँ
लगता है,
इतनी बार जीता हूँ।''

—धीरज कंधई : हिंदी ज्ञान

सभी प्रवासी भारतीय विदेश में अपनी भाषा की रक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए सचेष्ट हैं, यही कारण है कि सर्वत्र विदेश में जहाँ-जहाँ भारतीय प्रवासी या आप्रवासी रूप में गए हैं, वे हिंदी बोलने का प्रयत्न करते हैं और अपनी भाषा और संस्कृति पर उन्हें गर्व है। अब वे अपनी अगली पीढ़ी को भी हिंदी सिखाना चाहते हैं; क्योंकि वही हिंदी उनको विदेश में जोड़नेवाली सबसे बड़ी ताकत है।

हिंदी ने भारतीयों के साथ कई देशों की यात्रा की। उनके सुख-दु:ख में, संघर्ष और सुविधापूर्ण जीवन में उनके साथ बराबर रही, किंतु हर देश में वह नए रंग-रूप में उभरी। उसने हर देश की भाषिक समृद्धि को अपनाकर अपने को और समृद्ध किया। अपने को दुरूह होने से बचाया, इसलिए सब जगह उसका स्वागत हुआ, वह उस देश की हो गई। वहाँ के मूल निवासियों ने भी अपनी भाषा के साथ हिंदी को भी अपनाया, क्योंकि अब तो वह उनकी थी। हिंदी ने जैसा देश, वैसा अपना वेश बनाया। सबको अपनी ओर आकर्षित किया और अपना बना लिया। उसकी साज-सज्जा तो बदली किंतु उसने अपने भाषिक संस्कार को सुरक्षित रखा। वह प्रेम, सद्भावना व सम्मान की भाषा बनी रही। वह किसी देश पर थोपी नहीं गई, किंतु लोगों ने उसे प्रेम से अपनाया। फीजी जैसे देश में, जो भारत से हजारों मील दूर है,

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

वहाँ वह संसद की मान्यता प्राप्त भाषा बनी। अंग्रेजी के प्रोफेसर तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने भी अंग्रेजी के मोह को छोड़कर हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखनी प्रारंभ कीं। चूँकि यह हिंदी उनकी अपनी थी, सहज थी, सारा देश उसे समझता था, उस हिंदी पर उनका अच्छा अधिकार था, इसलिए इस अपनी हिंदी में साहित्य-सृजन कर उन्होंने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की। और भारत ने भी औपचारिक रूप से उनकी हिंदी में लिखित कृति को पुरस्कृत कर इस नई शैली की हिंदी को मान्यता प्रदान की। फीजी में इस नव विकसित हिंदी की शैली को फीजी के भारतवंशियों ने फीजी बात या 'फीजी हिंदी' की संज्ञा दी। आज फीजी में कई हिंदी लेखकों की 'फीजी हिंदी' में साहित्यिक रचनाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। प्रो. सुब्रमणी, प्रो. रेमंड पिल्लई, प्रो. ब्रिजविलास लाल, श्री महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद' तथा बाबूराम शर्मा ने 'फीजी हिंदी' को साहित्यिक गौरव प्रदान किया है।

भाषा-नमूना : फीजी बात

''ईसटा' के छुट्टी में हम लोगन गवा झुरमुट सुकुल के घर लामी। सूवा बड़ा गरम रहा। बिचार करा गय की समुंदर के किनारे पियाई करा जाय तो मजा पकरी। बीयर, विस्की, जिन-बिन लय के छुटा हम लोगन। एक बड़का हंडा भर के चखना भी रहा।

सर-सर-सर-सर बहे समुंदर के ठंडा हवा। आम के नीचे बड़ा आनंद रहा। चटाई बिछाय के हम लोगन सात जने बइठा। हम के लगा रहा पियास महराज, हम ग्यारा बोतल ठंडा बीयर मार दिया। एक हाथ में उठाई गिलास अउर दुसरका में चखना, दुनो हाथ चला दनादन आधा घंटा। इसके बाद आय गय नींद के झटका, बस हम चटाई के एक किनारे मार दिया घर्राटा। हमके खाली तारा दिखाय, अउर कुछ नहीं।

हम लोगन के गेंग में दुइ लउंडे रहित देहात के, 'चिलबिल सिंह' अउर हड़पनाथ। हड़पनाथ हमरे हथवा में से उतार लिहिस पाइलेटवाला घड़ी। जब हम गय रहा असमान में पुच्छल तारा देखे तब घड़िया खरीदे रहा एक हजार डोला में। हम सूत रहा तब सखा उतार लिहिस घड़िया, वइसे कहाँ उतार पावत। कुंभकरनी नींद में हमके कुछ पते न चला।''

—महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद' (छद्म नाम तिरलोक तिवारी) : शांतिदूत 14.10.86 पृ. 4, सूवा।

(ख)

''फरंगिया के राजुआ माँ छूटा मोरा देसुआ हो,

गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया।

भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो,

कलकत्ता पार जाओ पाँच साल रे बिदेसिया।

डीपुआ माँ लाए पकरायो कागदुआ हो,

अँगूठआ लगाए दीना हार रे बिदेसिया।

पाल के जहाजुआ माँ रोय धोय बैठी हो,

जीअरा डराय घाट क्यों नहिं आए हो,

बीते दिन कई भई मास रे बिदेसिया।

आई घाट देखा जब फीजी आके टापुआ हो,

भया मन हमरा उदास रे बिदेसिया।

कुदारी कुरवाल दीना हाथुआ माँ हमरे हो,

घाम माँ पसीनुआ बहाए रे बिदेसिया।

स्वेनुआ माँ तास जब देवे कुलंबरा हो,

मार-मार हुकुम चलाये रे बिदेसिया।

काली कोठरिया माँ बीते नाहि रतिया हो,

किस के बताई हम पीर रे बिदेसिया।

दिन-रात बीती हमरी दुःख में उमरिया हो,

सूखा सब नैनुआ के नीर रे बिदेसिया॥''

—लोकगीत

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

उपर्युक्त दोनों रचनाएँ 'फीजी हिंदी', जिसे फीजी के लोग 'फीजी बात' कहते हैं, में लिखी गई हैं। फीजी में हिंदी के दो रूप देखने को मिलेंगे। घर पर तथा अनौपचारिक अवसरों पर एक भारतीय जिस हिंदी का व्यवहार करता है, उस हिंदी का विकास उसके पूर्वजों द्वारा फीजी में हुआ। यह हिंदी का सहज बोलचाल का रूप है। औपचारिक अवसरों पर जिस हिंदी का प्रयोग एक भारतीय करना चाहता है, वह हिंदी का परिनिष्ठित रूप है तथा उसको वह 'भारत की हिंदी' कहता है। 'फीजी बात' न तो पूर्णत: अवधी है और न ही भोजपुरी। वह हिंदी की फीजी में विकसित एक नई भाषिक शैली है, जिसकी संरचना तो सामान्यत: अवधी की है, भोजपुरी का उस पर प्रभाव है तथा अंग्रेजी और काईबीती के तत्सम और तद्भव दोनों के शब्दों का सहज समावेश है। 'फीजी हिंदी' पर कई विदेशी विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं, जिसमें रोडने मोग का ग्रंथ 'फीजी हिंदी' एक महत्त्वपूर्ण परिचयात्मक ग्रंथ है।

सूरीनाम में भारतीयों का पदार्पण सन् 1873 में हुआ। सूरीनाम पहुँचे भारतीय गिरमिटियों ने हिंदी की जिस नई शैली का विकास किया, उसे सूरीनाम में बसे प्रवासी भारतीय सरनामी, सरनामी हिंदी, सरनामी हिंदुस्तानी कहते हैं। सरनामी हिंदी भी अवधी, भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है। सरनामी में अनेक डच शब्दों का भी समावेश दिखता है। आज सूरीनाम में बसे भारतीय ही नहीं, हॉलैंड में बसे अनेक भारतीय भी 'सरनामी हिंदी' में अपनी साहित्यिक कृतियाँ लिखकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। सूरीनाम के प्रतिष्ठित लेखक डॉ. जीत नारायण तो सरनामी में ही अपनी कृतियाँ लिखना चाहते हैं।

भाषा-नमूना : सरनामी हिंदी

(क)

''टुकुर-टुकुर ताके
इधर से उधर
काहे फिर ना
कोई आ जाइ
काहे कोई और
जनावर ना आ जाइ
हम्मे खा जाइ।
हवा से पकड़ के
बंद कर लेइस
एक खुलल कमरा में
सामने है दाना-पानी
आँखी टपके हैं
फिन गाना गावे
के चाही
रोने के सिपाई
और का बाकी रह गइल
और गँवा
रहल है
जबरजस्त
ज्ञान है हमार
रंग और दंग
के होवे हैं ?
के बोलत रहा
आजाद जैसे पंछी।''

—आशा राजकुमार (चाँदनी) : टुकुर टुकुर ताके

(ख)

''हम कैसे भुलाई
हम हैं हिंदुस्तानी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अयन हरी-भरी देस

के छोड़ के काहे हम

जाए परदेस

खाइ काहे खात

कोई और के निमक

जब अपने घर में

है दूध भात

हम कैसे भुलाई

हम हैं हिंदुस्तानी।''

—आशा राजकुमार (चाँदनी); हिंदुस्तानी

सूरीनाम में भारतीयों का पदार्पण सन् 1873 में हुआ। सूरीनाम पहुँचे भारतीय गिरमिटियों ने हिंदी की जिस नई शैली का विकास किया, उसे सूरीनाम में बसे प्रवासी भारतीय सरनामी, सरनामी हिंदी, सरनामी हिंदुस्तानी कहते हैं। सरनामी हिंदी भी अवधी, भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है। सरनामी में अनेक डच शब्दों का भी समावेश दिखता है। आज सूरीनाम में बसे भारतीय ही नहीं, हॉलैंड में बसे अनेक भारतीय भी 'सरनामी हिंदी' में अपनी साहित्यिक कृतियाँ लिखकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

(ग)

''पुरनिया लोग पहिले अपन पोतिन अउर नाती नतकुर के रात के समय उ सबके सूते से पहिले किस्सा-कहानी सुनावत करल रहिले। ओभन में से एगोजउन अब्बे तलक याद बा हियाँ बतावल जा है। खेतवन में जब पुरखन कंत्राक-पाँच बरस तलक मजूरी, काटत रहिले तउ सब अपन समय कभी-कभी हैसी मजाक में बितावत रहिले। कब्भी-कब्भी जब ऊसबे के अपने मुलुक याद आवत रहा त कुछ-न-कुछ मन में गढ़ के हैसी मजाक करके अपन चिंता के दूर कर देवत रहे।''

—सूर्य प्रसाद बीरे : बिना ततई के बेरवा गढ़ा से निकार

दक्षिण अफ्रीका में बसे हुए भारतीय मूल के लोगों के बीच बोली जानेवाली हिंदी की विशिष्ट भाषिक शैली को 'नैताली' नाम से संबोधित किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका चार प्रांतों में बँटा हुआ है—नताल, केप, ऑरेंज फ्री स्टेट तथा ट्रांसवाल। दक्षिण अफ्रीका के महानगर डरबन में भारतीय मूल के निवासी सबसे अधिक हैं। यहाँ पर बोली जानेवाली हिंदी, जोकि भोजपुरी हिंदी का एक विशिष्ट रूप है, भारतीयों के मध्य बोली जाती है।

आज दक्षिण अफ्रीका में नैताली बोलनेवाले भारतीय मूल के लोग अधिक नहीं हैं। यही कारण है कि नैताली में साहित्य-लेखन बहुत कम हो रहा है। वहाँ के लोकगीतों में नैताली का रूप आज देखने को मिलता है। लोकगीतों का एक विशिष्ट रूप, जिसे 'चटनी' नाम से संबोधित किया जाता है, आजकल प्रतिष्ठित भारतीय समाज में बहुत लोकप्रिय हो चुका है। विवाह के अवसरों पर आज इनकी माँग बहुत बढ़ गई है, क्योंकि पश्चिमी डिस्को की शैली में ढले ये नैताली लोकगीत आधुनिक फैशन के प्रतीक बन गए हैं। इन चटनी लोकगीतों में भारतीय समाज के सांस्कृतिक तथा भाषिक मूल की ओर भारतीयों को फिर से आकर्षित किया है। यह नैताली हिंदी ही है, जो भारतीयों को उनके मूल भारत से तथा उनके कर्मक्षेत्र दक्षिण अफ्रीका से जोड़े हुए है।

भाषा-नमूना : नैताली

(क)

''भगत : अरे डेम फूल ! वो सुन घंटी बजी। चल काम पर चलें। तोहार घर कासी में न हो भगतिन ?

भगतिन : हाँ भगत! ओही कासी दिहलन फाँसी। ओही कासी में रहत रहलीं। फिर हुआँ से कलकत्ता चल

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

गयल रह लीं और उहँई से हियाँ अईली हैं। आज काल में हमका गदेला होवै वाला है। अब बताओ हम कइसे काम करी।

भगत : चुप रह, चुप। देख साहब आवत हौवन। चल हियाँ, चल देई अपने काम पर।

भगतिन : हम कइसे काम पर जाई। मौरे बुते काम न होइ। देखो साहब आवत हौवत, उनकीन के पाँव पड़कर आपन दुख कहब। (साहब आ गया) साहब। हम गरभ से हई, जल्दी गदेला होनेवाला बा। हम काम नाही कर सकत हई।

साहब : यू रास्कल, टुम काम छोड़ डेना चाहटा है। हम टुमारा बोटी-बोटी काट डालेगा।

भगतिन : नाहीं साहेब, हम काम छोड़ के कहाँ जाइब? गदेला होय जाई ते फिर हम काम करब। दुई चार दिनां का हमका छुटी देव।

साहब : उल्लू का पट्ठा डैम, सूवर कुली। बहुत बाट करता है। जल्दी काम पर जाओ, नहीं टो अबी हम टुमको ठीक कर देगा।

भगतिन : हाय, विधाता, हम का कही, साहब नाहीं मानता हौवन। भला साहब तौहरी बीबी के पेट में बच्चा रहित तब का तू वोहू से काम लई सकतौ।

साहब : रोग, चुप रह, हम तुमसे पोलिटिक्स नहीं करटा। एक डफा में बोलो, काम करेगा कि नहीं।

भगतिन : हम करब साहब, लेकिन ।''

रूसी भाषाविदों का विचार है कि उजबेकिस्तान तथा तजाकिस्तान में बोली जानेवाली भाषा 'पार्या' भी हिंदी की ही एक भाषिक शैली है। 'पार्या' भाषा के लिए अफगानी, जवान ई अफगानी, लफज ई अफगानी, इंकू, लफज-ई-इंकु, सुरहानी, चंगर, चश्क, गरक आदि नामों का भी प्रयोग होता है। इस भाषा के बोलनेवाले अपने को अफगान शाहखोल तथा पार्या भी कहते हैं।

पार्या भाषा-भाषियों की संख्या आज कितनी है, इसके लिए प्रामाणिक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। पार्या भाषा-भाषियों की संख्या विद्वानों ने अनुमानत: 6000 बताई है। मार्गदोविच ने अपने एक प्रकाशन में उनकी संख्या जरफशाँ में 65 तथा दुशंबे में 300 बताई है। पार्या भाषी अपना मूलस्थान अफगानिस्तान में लगमान बताते हैं। पार्या की न अपनी कोई लिपि है, न ही लिखित साहित्य; किंतु इसका लोक साहित्य संपन्न है। लोकगीत तथा लोककथाएँ दोनों ही पार्या में मिलती हैं। रूसी विद्वान ओरांस्की ने पार्या लोक-साहित्य पर पर्याप्त कार्य किया है।

भाषा-नमूना : पार्या

''छो नि छो एक चोपन छो। ओ एक बेटा तरा छो। उसको नॉ त गुगन रको। गुनन दिन ब दिन बोरो होता गो। ओ एक कोरो तरा छो। गुनन शिकार मां गियो। तेलपक गमा रोब को पोस्त लियो। एकिनि पांशां को अमलदार लंगो कि अनमिंड कुन शिन कि देख मरो पांशा नांदांन इ, गुनन दॉनॉ छे। पांशां को कॉर आयो। गुनन मरे कुल। अजा गुनन गियो। पांशा न कियो उस अदर में अदमखुर छे। गुनन गियो अदर मं। अदमखुर गुनन देखे अयो। गुनन न उकरयुक न लेकि अदमखुर को सर मं बगयो अदमखुर त लायो। पॉशॉ न ति पत गुनत न दिनो। गुनन न तिन दिन उ तिन रत बिया करो। इसि नल मुरद उ मखसदु सो मं रसो।''

(था या न था, एक चरवाहा था। उसका एक बेटा था। उसका नाम गुनन रखा था। गुनन दिन-ब-दिन बड़ा होता गया। उसके पास एक घोड़ा था। गुनन शिकार पर गया। टोपी के लिए लोमड़ी का चमड़ा लाया। एक दिन बादशाह के एक अमलदार गुजर रहे थे। लोगों से बोले—देखो, मेरे बादशाह नादान हैं, गुनन होशियार है। बादशाह के घर गए। गुनन, मेरे पास आ जाओ। गुनन गया। बादशाह ने कहा उस पहाड़ी (की गुफा) में आदमखोर है। गुनन पहाड़ी (की गुफा) में गया। आदमखोर गुनन को देखकर आया। गुनन ने एक विशेष प्रकार की फाँसनेवाली रस्सी लेकर आदमखोर के सर पर फेंकी और आदमखोर को (उसमें फँसाकर) लाया। बादशाह ने अपनी लड़की गुनन को दुल्हन के रूप में दी। गुनन ने तीन दिन और

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

तीन रात तक भोज किया। इस तरह उसने अपनी मुराद व अपने मकसद को पा लिया।)

हिंदी आज विश्व की एक प्रमुख भाषा है। इस भाषा के बोलनेवालों की संख्या विश्व में दूसरी सबसे बड़ी भाषा-भाषियों की संख्या है। हिंदी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की राजभाषा है। वह केवल भारत में ही नहीं, फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बसे प्रवासी भारतीयों द्वारा मातृभाषा के रूप में बोली जाती है। यही कारण है कि विश्व के सभी प्रभुतासंपन्न देश हिंदी के अंतरराष्ट्रीय महत्त्व को आज समझते हैं तथा आधुनिक भारत के मर्म को समझने के लिए हिंदी का ज्ञान आवश्यक मानने लगे हैं। विदेश के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में आज हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है। हिंदी की साहित्यिक रचनाओं का व्यापक स्तर पर विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो रहा है। प्रवासी भारतीय हिंदी की सुरक्षा तथा सम्मान के लिए सजग हैं तथा हिंदी को भारतीय अस्मिता का प्रतीक मानते हैं। हिंदी की विदेशी शैलियों का विकास विदेश में हिंदी की सुदृढ़ नींव और उसकी स्थायी व चिरकालिक सत्ता का द्योतक भी है। हिंदी की विदेशों में विकसित बहुभाषिक शैलियाँ हिंदी को विश्व स्तर पर वैश्विक भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करेंगी। □

73-Vaishali, Pitampura
Delhi-110088
INDIA

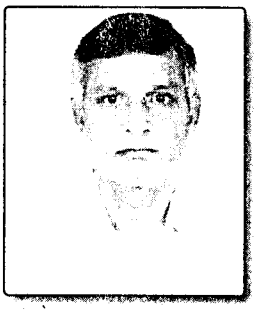
विद्या की कोई भी संस्था वास्तविक अर्थ में भारतीय नहीं कही जा सकती, जब तक उसमें 'हिंदी' के अध्ययन-अध्यापन का प्रबंध नहीं हो।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

A-PDF Merger DEMO Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

21 हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी

● प्रो. रवि श्रीवास्तव



- भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एम.ए.
- अगस्त 1979 में हिंदी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में प्राध्यापक पद पर नियुक्त। महर्षि दयानंद विश्व-विद्यालय, अजमेर से 'नागार्जुन की हिंदी कविता : परिप्रेक्ष्य, संवेदना एवं कला' विषय पर पी-एच.डी.
- प्रकाशित कृतियाँ : 'नागर्जुन की हिंदी कविता : संवेदना और कला', 'शब्द, संप्रेषण और संस्कृति', 'समाज और आलोचना', 'उत्तरआधुनिकता : विनम्र और यथार्थ', 'परंपरा, इतिहास बोध और साहित्य' (पुरस्कृत), 'संस्कृति के सवाल और दलित' एवं प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में नियमित लेखन
- राजस्थान साहित्य अकादमी, राजस्थान सरकार द्वारा आलोचना के लिए देवराज उपाध्याय पुरस्कार से सम्मानित
- संप्रति हिंदी-विभाग, राजस्थान विश्व-विद्यालय, जयपुर में प्रोफेसर।

लगभग एक शताब्दी पहले जब दिल्ली और उसके आस-पास की जुबान का स्तरीकरण हुआ, तब से पहले हिंदी और उर्दू नाम की अलग-अलग बोलियाँ नहीं थीं। दिल्ली के आस-पास ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, मारवाड़ी बोलियों के अलग-अलग क्षेत्र थे। फारसी मुग़लकाल में दिल्ली की राजभाषा थी और करीब पिछले छह-सात सौ साल राजभाषा बनी रहने के कारण इसने इस क्षेत्र की बोली पर खासा प्रभाव डाला था। विशेष रूप से शहर और बाजार तथा उससे जुड़े हुए लोगों की बोली एक खास रूप अपना चुकी थी और इसने समय-समय पर कई नाम भी बदले। उस समय की उर्दू-हिंदी के मिले-जुले रूप को कभी 'हिंदवी' कहा गया, कभी 'रेख्ता' और कभी 'उर्दू'। मीर, गालिब, सौदा वगैरह के यहाँ ये तीनों ही नाम जब-तब मिल जाते हैं—

''क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सरूरे कल्ब।
आया नहीं है लफ्ज ये हिंदी जबाँ के बीच॥''

—(मीर)

'रेख्ता' लफ्ज सबसे पहले सादी के यहाँ मिलता है। ये दकन के शायर थे। इसके बाद वाली कायम वगैरह के यहाँ भी यह नाम मिलता है। अंग्रेजी के आने के बाद इसे 'हिंदुस्तानी' कहा गया। फिलहाल हम नाम के ब्यौरों में न जाकर बस यह देखने की कोशिश करेंगे कि खड़ी बोली के रूप में स्तरीकृत होने से पहले ऐसे कौन से कारण थे, जिन्होंने इसे हिंदी खड़ी बोली और उर्दू खड़ी बोली के तौर पर बाँट दिया।

दिल्ली में औरंगजेब के समय जब फारसी राजभाषा थी, तब गोलकुंडा, बीजापुर और गुलबर्गा आदि दकन के दरबारों में उर्दू राजभाषा बन गई और शेरो-शायरी उर्दू में होने लगी। दिल्ली के आस-पास साहित्यिक भाषा ब्रज थी। दकनी में या दकन की उर्दू में फारसी प्रभाव कम-से-कम था और उसमें शायरी खूब होने लगी थी। वली, कुली, कुतुबशाह, शेख सादी आदि कवियों की शायरी जब दिल्ली पहुँची और औरंगजेब ने दकन की रियासतों को फतह किया, तब उसका बड़ा असर दिल्ली के आस-पास के इलाके में, खासकर साहित्य में दिखाई पड़ा। उसी जमाने में दकनी उर्दू, फारसी और ब्रज के प्रभाव में आई। मीर, सौदा आदि में जो ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है, वह इसी कारण है। खासकर पंजाबी से ताल्लुक होने के कारण उर्दू में थोड़ा खड़ी बोली का मिजाज पैदा होने लगा। उस समय के ब्रज और उदू के अदबी इजहार में इतनी ज्यादा समानता देखकर ही शायद लोगों ने उर्दू को ब्रज की पैदाइश समझा। बहरहाल, उस समय की परंपरागत जनभाषा, जो कि पछाँह में बोली जाती थी, उर्दू और ब्रज—ये तीनों ही भाषा रूप उस समय भी मौजूद थे। तीनों पर ही फारसी-अरबी का असर था और एक का दूसरे पर भी असर था। उर्दू का ढाँचा जनभाषा का ही था, लेकिन लिपि फारसी थी। इस स्थिति में, क्योंकि भाषा में मूलत: कोई फर्क न होते हुए सिर्फ रूप का फर्क संस्कृत और उर्दू को सीधा फारसी से जोड़ देते हैं। वे हिंदी-उर्दू की खड़ी बोली के ऐतिहासिक

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विकास की उपेक्षा करते हैं। मुसलमानों की भाषा का आधार भी सामान्य जीवन में बोली जानेवाली आम बोली थी। फारसी राजभाषा थी, फिर भी वह हिंदू और मुसलिम दोनों के लिए अजनबी थी और राजभाषा होने के कारण दोनों ही उसे सीखते थे, पर उनका साहित्यिक-सांस्कृतिक जीवन अपनी भाषा में अभिव्यक्त होता रहा। अत: हिंदू-मुसलिम खड़ी-बोली राजभाषा फारसी के समानांतर रूप में नहीं, बल्कि दोनों की द्वंद्वात्मकता में विकसित हुई। रामविलासजी का कहना सत्य लगता है कि "उर्दू के विकास के संबंध में दो बुनियादी बातें याद रखनी चाहिए। एक तो यह कि बाहर से जो मुसलमान यहाँ आए, वे बहुत जल्दी यहाँ की जातियों (नेशनलिटी) का हिस्सा बन गए। वे अपने को तुर्क, पठान और मुगल कहते थे, लेकिन यह पुरानी जातीयता की यादगार भर थी। जातीयता का मुख्य चिह्न भाषा उनसे बहुत जल्दी छूट जाती थी। कश्मीर, बंगाल, पंजाब, सिंध, गुजरात, हिंदुस्तान— सभी प्रदेशों में उन्होंने वहाँ की भाषा अपनाई। दूसरी बुनियादी बात यह है कि यहाँ लगभग छह सौ वर्ष तक राजभाषा फारसी रही। भारत के उन प्रदेशों को अपनी भाषाएँ पल्लवित करने का ज्यादा अवसर मिला जो, दिल्ली से दूर थे, जहाँ तक हिंदी क्षेत्र का संबंध है, यहाँ राजभाषा फारसी का शासन बना रहा। इसे मेल-जोल का चिह्न नहीं कहा जा सकता। इसे स्पष्ट रूप से सामंती व्यवस्था के अंतर्गत सांस्कृतिक उत्पीड़न का चिह्न मानना चाहिए।" यहाँ आनेवाले मुसलमान विभिन्न जाति, भाषा और संस्कृति से जुड़े थे; लेकिन फारसी के आधिपत्य के कारण तुर्की, पश्तो आदि भाषाएँ न तो अपनी अस्मिता बना पाईं और न उन्हें अपने प्रदेशों में राजभाषा का आदर ही मिला। अत: फारसी को राजभाषा बनाना एक तरह का सांस्कृतिक उत्पीड़न ही कहा जाएगा। लेकिन यह भी सच है कि हिंदी-उर्दू का अलगाव मुश्किल से दो सौ वर्षों का है; हालाँकि फारसी छह सौ साल तक राजभाषा रही। "इसका अर्थ यह हुआ कि जो युग सामंतवाद के पतन और अंग्रेजी राज्य की स्थापना का युग है, उसी में यह अलगाव बढ़ा और मजबूत हुआ।"

18वीं शताब्दी की उर्दू में 'मतरूक' का सिद्धांत अपनाया गया और प्रचलित हिंदी उर्दू के शब्दों को एक-दूसरे के अदब, आचार-व्यवहार से सायास बाहर निकाला जाने लगा। ऐसा स्वाभाविक ही था, क्योंकि फारसी राजभाषा थी, जिसके संरक्षक मुसलिम बादशाह थे। अत: बाद की उर्दू शायरी में (दिल्ली लखनऊ वाली) वह ताजगी नहीं है, जो दकिनी पद्य में थी। धीरे-धीरे यह प्रभाव (दकनी एवं ब्रज का) कम होता गया और उसका स्थान फारसी ने ले लिया। 'मतरूक' के सिद्धांत के कारण ही नजीर अकबराबादी जैसे शायरों की रचनाएँ ऊँचे दर्जे की नहीं समझी गईं, क्योंकि उन्होंने अपनी शायरी में हिंदी के चलते मुहावरों का प्रयोग किया था। हालाँकि उर्दू के कुछ बड़े शायरों ने सरल उर्दू में रचनाएँ कीं, पर यह अलगाव हुआ फारसी मिश्रित कठिन उर्दू के कारण। "यह अलगाव था जायसी और कबीर के शब्दभंडार से, बंदा नवाज और वजही के शब्द-भंडार की परंपरा से। इसका कारण था मतरूक का सिद्धांत, भाषा में हिंदीपन के बदले फारसीपन का बोलबाला।"

मुख्य भाषा एक बड़ी धारा के समान होती है और अन्य भाषाएँ उसकी छोटी धाराएँ होती हैं। मुख्य भाषा इन्हीं जनबोलियों से प्राणतत्त्व ग्रहण करती हुई विकसित एवं समृद्ध होती है। अत: किसी भाषा का विकास जातीय भाषाओं के सहयोग से ही होता है। इस प्रक्रिया में अनेक स्थानीय या प्रादेशिक बोलियाँ मुख्य भाषा में घुल-मिल जाती हैं और एक सामान्य भाषा का निर्माण करती हैं। हालाँकि उनका अस्तित्व बना रहता है, वे मर नहीं जातीं। भाषा के विकास के संदर्भ में स्तालिन की मान्यता थी—"जातीय संस्कृति को अपना विकास एवं प्रसार करने देना चाहिए, और उनके तमाम विकास योग्य

अंग्रेजों के आने और 'हिंदुस्तानी' के राजभाषा बनाए जाने के बाद आगरा, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ आदि के आस-पास की बोली का एक Homogeneous रूप उभरने लगा था और नागरी व उर्दू दोनों स्क्रिप्ट काम में लाई जाने लगी थीं। इसके बाद फोर्ट विलियम कॉलेज का जमाना आया। फोर्ट विलियम कॉलेज ब्रिटिश हुकूमत के लिए एक पढ़ा-लिखा तबका तैयार करने के इरादे से खोला गया था। वहाँ

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

एक ओर जहाँ जुबानों को प्रतिमानित (Standardise) करने की जरूरत महसूस की जा रही थी, वहीं यह शासकों के लिए विभेद पैदा करने का एक सुनहरा मौका भी था। 'हिंदुस्तानी' भाषा के 'स्तरीकरण', 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के नाम पर जहाँ उर्दू को फारसी रूप की ओर मोड़ दिया गया वहीं दूसरी ओर 'शुद्धीकरण' के नाम पर एक-एक उर्दू-फारसी के शब्द को बीन-बीनकर हिंदी से बाहर निकाला जाने लगा, और कभी भी इस्तेमाल न किए जानेवाली भारी-भरकम संस्कृत शब्द लाए जाने लगे। इस बारे में पद्मसिंह शर्मा ने 'तारीख नसर उर्दू' के लेखक, उर्दू के लेक्चरर जनाब मौलाना 'अहसन' का हवाला दिया है—"साथ ही इसके यह खयाल भी लाजिम न करना चाहिए कि हिंदुस्तान में सिर्फ मुसलमान ही आबाद नहीं हैं, बल्कि उनसे बहुत पहले आरिया आबाद हो चुके हैं। अगर मुसलमान अपने साथ अरबी, फारसी और तुर्की के अलफाज लाए हैं तो हमसाया अकवाम के पास भी संस्कृत और दूसरी प्राकृतें मौजूद हैं। उर्दू के जामा जेब जिस्म पर भारी-भारी लफ्जों का बोझ डालना उसकी असली और फितरी सूरत को बिगाड़ देना है मुसलमानों की इस हरकत ने हिंदुओं को भी निचला बैठने नहीं दिया और अब वे भी अपने हलके-फुलके बयान को संस्कृत के भारी-भरकम शब्दों से मिलाकर कठ्ठल करते जाते हैं।"

मौलाना अहसन की इस बात से जाहिर होता है कि हिंदी और उर्दू के रूप में दो अलग-अलग रूप इतने अलग कर दिए गए हैं कि उन्हें दो तहजीबों और दो मज़हबों से जोड़कर देखा जाने लगा। यह रवैया ढहते साम्राज्यवाद को सहारा देनेवाला था। विश्व के रंगमंच पर उदित होनेवाली जनवादी शक्तियों ने उपनिवेशवाद को गहरा झटका दिया था। अमेरिकी साम्राज्यवाद से फिलिपन की आजादी सन् '19-20 और '41-45 के दो घोर रूसी जनवादी संग्रामों तथा इनकी प्रेरणा से चलनेवाले अन्य मुक्ति-आंदोलन ने विश्व साम्राज्यवाद के चौखटों में दरार डाल दी थी। निश्चय ही उस समय तक जनवादी शक्तियाँ बढ़ी थीं, लेकिन इसके साथ भी यह नहीं भूलना चाहिए कि जनतंत्र विरोधी शक्तियाँ भी त्रस्त होकर अपने आखिरी हमले की तैयारी में जुटी हुई थीं। भारत में, विशेषकर साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में इन्हीं पतनोन्मुख शक्तियों का नारा 'हिंदी, हिंदू, उर्दू, हिंदुस्तानी' का है। साम्राज्यवादी शासकों ने यहाँ की भाषा को जनभाषा के आधार से अलग कर उसकी रक्षा करने का भार देशी रजवाड़ों पर डाला। इनमें से कुछ हिंदी के हिमायती थे तो कुछ उर्दू के और कुछ सीधे संस्कृत के। साम्राज्यवादी शासकों की यह नीति यहाँ की जनवादी क्रांति को कमजोर बनानेवाली थी। भाषा के क्षेत्र में यह साम्राज्यवाद की विरासत है। पिछले सौ बरसों में यह बँटवारा और ज्यादा पुख्ता हो गया। राजा शिव प्रसाद और लक्ष्मणसिंह की दो पंरपराएँ असमानांतर लकीरों की तरह आगे बढ़ती और चौड़ी होती गईं। अब देखना यह है कि आखिर समस्या क्या है? अगर कोई है तो उसका समाधान क्या है?

जिस मुल्क में अस्सी फीसदी लोग यह न जानते हों कि वे कौन सी भाषा बोल रहे हैं, वहाँ भाषा अगर कोई समस्या हो सकती है तो सिर्फ उन लोगों के बीच, जो लिखते-पढ़ते हैं। एक तो इस मुल्क में लिखी जानेवाली जुबान और बोली जानेवाली जुबान में श्रम-विभाजन के हेरा-फेरी (inaptness) के कारण एक खाई है ही, तिस पर यह तथाकथित हिंदी या उर्दू भाषी इलाके में तो यह फर्क और भी बढ़-चढ़कर है।

हिंदी और उर्दू को एक ही माननेवाले दोनों लोगों में बहुत कम इस समस्या पर वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं। कुछ लोग इसका हल भाषाई तौर पर लिपियों को एक करके करना चाहते हैं तो कुछ लोग और तरीके से। हिंदी और उर्दू का सवाल सिर्फ भाषाई सवाल नहीं है और इसका जवाब इसके अंदर से ही निचोड़ने की कोशिश करना गैर-वाजिब है। कुछ विद्वान् दोनों लिपियों का अलग-अलग होना ही दोनों के अंतर का कारण मानते हैं और उन्हें मशीनी तौर पर एक कर देना चाहते हैं। लिपि कभी कोई समस्या नहीं होती, यदि भाषा अपने अंदरूनी कथ्य में घुल-मिल गई होती है। लिपि से जुबान का पूरा मिजाज जुड़ा होता है, पूरी कल्चर जुड़ी होती है।

वस्तुत: भाषा का विकास भी जनतांत्रिक आधार पर होता है। जनता के जीवन पर जब नए असर पड़ते हैं और उनके उत्पादन के तरीकों एवं सामाजिक संगठन के रूप में गंभीर परिवर्तन होते हैं तो भाषा में भी परिवर्तन होता है—क्रमश: और धीरे-धीरे। नई धारणाएँ प्रकट करने की जरूरत होती है, जिनसे लोग पुरानी व्यवस्था में

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अपरिचित थे। नए शब्द, नए मुहावरे और भाव-प्रकाशन के नए तरीके बनने शुरू होते हैं। अत: भाषा को शास्त्रीयता की ओर मोड़ने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी को संस्कृतगर्भित बनाने एवं उर्दू को अरबी-फरासी से मंडित करने से भाषा जनसामान्य की सांस्कृतिक एकता एवं विकास का माध्यम नहीं बन जाती। इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनों ही जनपदों की बोलियों में सुरक्षित शब्द-भंडार की मूल सामग्री अपनावें। ऐसा करने पर ही हिंदुस्तान के बहुसंख्यक भाग—किसान, मजदूरों, मध्यवर्ग को खींचने की शक्ति उसमें आ पाएगी, क्योंकि भाषा के क्षेत्र में अस्पृश्यता नहीं चलती। वहाँ जनता के अपने प्रयोग एवं रुचि कसौटी हुआ करते हैं। जो शब्द उसकी अपनी जातीयता के अधिक निकट होते हैं, उन्हें वह अपनाती है और बहुधा अपने रंग में रँग लेती है।

अत: आवश्यकता इस बात की नहीं है कि हिंदी+उर्दू='हिंदुस्तानी' का फॉर्मूला गढ़ा जाए, बल्कि उसे व्यावहारिक रूप से बोलचाल के अधिक करीब लाया जाए। रामविलासजी हिंदी-उर्दू अलगाव का कारण उनका जनपदीय बोलियों से अलगाव मानते हैं, ''जनपदीय बोलियों से हिंदी-उर्दू जितनी दूर हटती है उतना ही उन दोनों के बीच फासला बढ़ता है, प्राचीन भाषाओं पर उनकी निर्भरता बढ़ती है।'' रामविलासजी ने भारतेंदु-युग के लेखकों की प्रशंसा की है, क्योंकि उनकी साहित्यिक भाषा का आधार भी सामान्य जीवन में व्यवहृत होने वाली भाषा है। भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृषण भट्ट, राधाचरण गोसवामी, सदानंद मिश्र जैसे लेखक इस प्रयोग के रहनुमा थे। रामविलासजी ने भारतेंदु-युग के लेखकों की उदार भाषा-नीति की चर्चा करते हुए हिंदी में व्यवहृत होने वाली उर्दू-शब्दों की एक लंबी कड़ी प्रस्तुत की है।

अब एक समस्या है, पारिभाषिक शब्दावली की। यदि जनता के प्रयोग ही भाषा की कसौटी है तो पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण भी इसी आधार पर किया जाना चाहिए। अब प्रश्न न तो भाषा के आर्य-अनार्य का है, न छुआ-छूत का प्रश्न संप्रेषणीयता का है। विदेशों से आए हुए यंत्रों के नाम को भी उसी रूप में अपनाया जाना चाहिए, यदि वे जन-जीवन में सुबोध और प्रचलित हों। मशीनों के कल-पुर्जों के लिए मजदूर बातचीत के क्रम में जो शब्द प्रयुक्त करेंगे, वह भी पारिभाषिक शब्दावली गढ़ने का एक आधार होगा।

लेकिन एक प्रश्न उठता है कि समाजवादी देश में एक सामान्य भाषा का रूप क्या हो? इसके लिए समाजवादी यह चाहते हैं कि अनेक जातियों की संस्कृति आगे चलकर एक हो, आगे चलकर अनेक भाषाएँ मिलकर एक हों। फलत: वे क्षेत्रीय भाषाओं को भी संरक्षण देना चाहते हैं। मुख्य भाषा एक बड़ी धारा के समान होती है और अन्य भाषाएँ उसकी छोटी धाराएँ होती हैं। मुख्य भाषा इन्हीं जनबोलियों से प्राणतत्त्व ग्रहण करती हुई विकसित एवं समृद्ध होती है। अत: किसी भाषा का विकास जातीय भाषाओं के सहयोग से ही होता है। इस प्रक्रिया में अनेक स्थानीय या प्रादेशिक बोलियाँ मुख्य भाषा में घुल-मिल जाती हैं और एक सामान्य भाषा का निर्माण करती हैं। हालाँकि उनका अस्तित्व बना रहता है, वे मर नहीं जातीं। भाषा के विकास के संदर्भ में स्तालिन की मान्यता थी—''जातीय संस्कृति को अपना विकास एवं प्रसार करने देना चाहिए, और उनके तमाम विकास योग्य तत्त्वों को फलने-फूलने देना, चाहिए जिससे कि वे आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा हो सकें, जिनमें एक सामान्य संस्कृति बन सके, जिसकी एक सामान्य भाषा हो।'' स्तालिन ने जनसंख्या के आधार पर रूसी भाषा को तमाम प्रजातंत्रों की 'सामान्य भाषा' मान लेने का विरोध किया था और किसी भी भाषा को इस तरह के विशेषाधिकार देने की शर्त का वर्गचरित्र उद्घाटित करते हुए इसे 'अंध रूसी राष्ट्रवाद' कहा था, जो अनिवार्यत: 'जातियों की स्वाधीनता एवं समानता के सिद्धांत से टकराता था।' स्तालिन ने कल्पना की थी कि जब समाजवादी व्यवस्था पूरी दुनिया में आ जाएगी और समाजवाद एक रोजमर्रा की आम बात हो जाएगी, तब विभिन्न जातियों की भाषाएँ जाहिर तौर से एक-दूसरे से मिलेंगी। लेकिन उनके मेल-जोल से बनने वाली भाषा न रूसी होगी, न जर्मन, बल्कि इनसे अलग एक नई भाषा होगी। हालाँकि स्तालिन से पहले एक भारतीय विद्वान् श्री श्यामाचरण गांगुली ने परोक्ष रूप से सन् 1911 के नवंबर 'मार्डन रिव्यू' में 'बंगभंग' के बंगाली अस्मिता के प्रश्न को ऊँचे धरातल पर लेकर भारतीय प्रश्न बना देने की जो बात कही थी, वह इसके (उपर्युक्त मतों के) समानांतर रखी जा सकती

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

है। हिंदी-उर्दू में भाषा को जातीय भाषाओं के संसर्ग में लाने का और जनपदीय मुहावरों से जीवन-शक्ति ग्रहण करने की वकालत 'फैलन' नामक विद्वान् ने की थी। उनका एक उद्धरण प्रासंगिक होगा--

"In the living dialects are the feeders of language, manifestly the paramount dialect of national speech must gain in copiousness, flexibility and expression, in proportion as it is enriched by contributions from many kindred dialects and the various idioms which spring up continually in every class and occupation."

फैलन का उक्त मत विवेकसंगत प्रतीत होता है। पिछले सौ बरसों में हिंदी-उर्दू अगर एक-दूसरे के लिए ज्यादा अजनबी बन गई हैं तो उसका बड़ा कारण यह है कि इन जुबानों को धर्म से जोड़ देने की कोशिशें की गई हैं। जब तक एक-दूसरे की परंपरा से कोई परिचय नहीं होगा तब तक किसी भी प्रकार की एकता की अपेक्षा रखने का कोई अवकाश भी नहीं है।

दूसरा कारण यह भी है कि इस इलाके में मशीनीकरण न होने और बेहद पिछड़ापन होने के कारण यहाँ की कोई एकरूप संस्कृति (Home geneous culture) नहीं पनप पाई है। बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु--सभी की एक विशेष पहचान है, लेकिन उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार की कोई ऐसी संयुक्त परंपरा या संस्कृति नहीं बन सकी है और जब तक यह नहीं होता, तब तक भाषाई स्तर पर ज्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि ढाँचा तो दोनों बोलियों का एक ही है। शब्दों के लेन-देन के लिए जरूरी है कि दोनों संस्कृतियों के बीच बड़े पैमाने पर विचार-विनिमय हो। तब एक ही तरह का शब्द-भंडार दोनों के लिए होगा।

इन दोनों चीजों को पूरा करना एक लंबे प्रयास की अपेक्षा रखता है। एक-दूसरे के साहित्य से परिचित होने के लिए प्रेमचंद का एक सुझाव था कि मैट्रिक तक कम-से-कम दोनों लिपियाँ हर छात्र को सीखनी चाहिए। इससे एक प्रकार की रोक दोनों ओर से हटेगी।

वर्तमान काल में दुष्यंत कुमार ने उर्दू की गजल की शैली में कविताएँ लिखीं (दरख्तों के साये में धूप लगते हैं) रचनात्मक साहित्य में प्रेमचंद ने उर्दू के बहुप्रचलित शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग कर हिंदी-उर्दू के तनाव को बहुत कुछ ढीला किया। इस संबंध में, आलोचना में रामविलासजी की भाषा को आदर्श माना जा सकता है। हिंदी-उर्दू को साथ ले चलने का एक प्रयास हमारे 'हमारे विश्वविद्यालयों' में भी किया जा रहा है। संभव है, इस प्रयोग के सफल होने पर भारत के सभी विश्वविद्यालयों में यह रवैया अख्तियार किया जाए।

□

प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राजस्थान)

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी।
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी॥

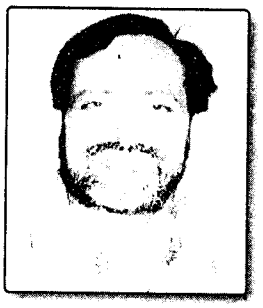
—मैथिलीशरण गुप्त

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

22 भारतीय समाज में बहुभाषिकता और हिंदी

● प्रो. सदानंद शाही

भारतवर्ष में बहुभाषिकता ऐतिहासिक तथ्य है। यह बहुभाषिकता एक ओर अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की मौजूदगी में प्रकट होती है तो प्रादेशिक स्तर पर भाषाओं के क्षेत्र में आनेवाली बोलियों के रूप में। भारत में हजार या उससे अधिक मातृभाषाएँ बोली जाती हैं, पर यह बहुभाषिकता अपनी प्रकृति में पारस्परिकता को समेटे रही है। अखिल भारतीय सतर पर सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के संवहन में भाषा-भेद कभी अवरोध नहीं साबित हुआ। एक भाषा से दूसरी भाषा में आवाजाही बनी रही। सुदूर दक्षिण में उत्पन्न हुआ भक्ति-आंदोलन विभिन्न भाषाओं के बीच मौजूद अदृश्य सेतुओं से होता हुआ हिंदी तक पहुँचा। मराठी में बजनेवाली नामदेव की खंजड़ी की आवाज कबीर, रैदास और दादू के रूप में हिंदी में सुनी गई। मीराबाई के घुँघरू की आवाज राजस्थानी, गुजराती में ही नहीं, समूचे हिंदी प्रदेश में सुनी गई। चंडीदास की आवाज बंगाल तक सीमित नहीं थी और न विद्यापति की आवाज मिथिला तक। भाषा की सीमाओं के पार हमारी सांस्कृतिक एकता का प्रचार होता रहा है। हिंदी और भोजपुरी के गोरख ने जब आसंक्ति में डूबे अपने गुरु मत्स्येंद्रनाथ को जगाया तो समूचे भारत ने वह आवाज सुनी—बंगाल से लेकर उड़ीसा तक, नेपाल की तराई से सूदुर दक्षिण तक।



- जन्म : 21 जुलाई, 1946
- हिंदी में एम.ए. (प्रथम श्रेणी), विश्वभारती।
- शांतिनिकेतन से पी-एच.डी.
- तुलनात्मक साहित्य एवं ललित कला अधिकाय में भी उपलब्धियाँ प्राप्त
- भागलपुर, शांतिनिकेतन एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में शोध-संबंधी परियोजनाओं तथा अध्यापन से जुड़े
- दो दशकों तक साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के उपसचिव पद पर कार्य करते हुए हिंदी समेत कई भारतीय भाषाओं के प्रकाशनों तथा कार्यक्रमों का नियमन एवं संचालन
- लगभग तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित
- 60 से अधिक शोध लेख एवं 240 आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में प्रकाशित
- बंगला, अंग्रेजी एवं गुजराती से कई कृतियों का अनुवाद
- समकालजीन रोमानियाई कविता विशिष्ट संकलन
- रोमन कल्चरल इंस्टीट्यूट, रोमानिया द्वारा वर्ष 2007 में विजिटिंग केलोशिप प्रदान
- भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर
- कला समीक्षा में गहरी रुचि
- मॉस्को, लंदन, बल्गारिया, मॉरीशस एवं नेपाल की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं में भारत का प्रतिनिधित्व
- भारत भाषा परिषद्, कोलकाता से सेतुबंध पुरस्कार, अंतरराष्ट्रीय इंडो-रशियन लिटरेरी सम्मान, दिनकर पुरस्कार तथा काकासाहब कालेलकर अलंकरण से सम्मानित।

भाषाओं के बीच इस आवाजाही ने सभी भाषाओं को परस्पर समृद्ध किया। अकेले हिंदी के संत-भक्तिकाव्य का इस दृष्टि से अध्ययन आँख खोल देनेवाला है। आश्चर्य की बात यह है कि जिस समय यातायात के साधन नहीं थे, उस समय विभिन्न भाषाओं के बीच संवाद जारी था। यातायात के साधन आए। संचार के माध्यम विकसित हुए। इस आवाजाही में जो बढ़ोतरी होनी चाहिए थी, वह नहीं हुई। राष्ट्रभाषा होने के नाते हिंदी की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह भाषाओं के इस आवाजाही के क्रम को आगे बढ़ाए। कभी रवींद्रनाथ टैगोर ने आगाह किया था—"आप लोग इस बात से संतुष्ट न बने रहें कि हमारी भाषा हिंदी के बोलनेवाले इतने ज्यादा हैं, हिंदीवालों को यह लाभ (संख्या-आधिक्य) आकस्मिक ही है। उत्तम तो यही होगा कि आप लोग उच्चकोटि के साहित्य की सृष्टि करके अन्य भाषा-भाषियों को अपनी ओर आकृष्ट करें।" जाहिर है ऐसा तभी संभव है, जब हम भाषाई प्रतिद्वंद्विता से बाहर निकलकर भाषाई पारिवारिकता का भाव विकसित करें। एक बार टैगोर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव कर रहे थे। एक बंगाली युवक ने उनसे पूछा कि जब आप हिंदी का समर्थन करते हैं तो क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि इससे आपकी अपनी भाषा की क्षति होती है? तब टैगोर ने दो-टूक शब्दों में कहा था—'नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता'। उन्होंने एक दृष्टांत देकर यह बात समझाई थी कि जैसे देश-प्रेम और परिवार-प्रेम के बीच

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कोई विरोध नहीं है, उसी तरह हिंदी के प्रचार-प्रसार और बँगला भाषा के विकास के बीच भी मैं कोई नहीं विरोध देखता। यह बात टैगोर जैसा विश्व-कवि ही कह सकता था, क्योंकि उन्हें भारतीय समाज की उस बनावट का पूरा आभास था, जो पारिवारिक मूल्यों का निर्वाह सामाजिक मूल्यों से टकराए बिना करती रही है। यह बनावट बहुभाषिकता के व्यवहार में भी व्यक्त होती रही है। जरूरत है इस पारस्परिकता को बरतने की।

हिंदी साहित्य पर ही नजर डालें तो उसकी स्वरधारा पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, बँगला, मराठी तथा उर्दू के बीच आवाजाही करती दिखाई देती है। उदाहरण के तौर पर बँगला और हिंदी के संबंध को लें। बँगला और हिंदी में आवाजाही के प्रमाण तब से मिलते हैं, जब से ये दोनों भाषाएँ अस्तित्व में आई हैं। बौद्ध सिद्धों के चर्यागीतों का संपादन महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री ने किया। 'चर्यागीत कोश' का परिचय देते हुए पंडित हरप्रसाद शास्त्री इसे हजार वर्ष पुरानी भाषा बँगला बताते हैं। इधर राहुल सांकृत्यायन हैं, जो चर्यागीतों को हिंदी की आरंभिक कविता मानते हैं। हिंदी और बँगला की यह साझेदारी बहुत पुरानी है। रवींद्रनाथ पर हिंदी का प्रभाव और हिंदी पर रवींद्रनाथ का प्रभाव देखें तो बँगला और हिंदी के बीच आवाजाही का पता चलता है। रवींद्रनाथ पर भक्त कवियों, खासतौर से निर्गुण संतों का विशेष प्रभाव है। रवींद्रनाथ ने इसे खुले मन से स्वीकार किया है। सूरदास पर उनकी कविता 'सूरदासेर प्रार्थना' है ही। कबीरदास पर 'अपमान-वर' और रैदास पर 'प्रेमेर सोना' शीर्षक कविताएँ रवींद्रनाथ की हैं। रवींद्रनाथ ने राममोहन राय को 'भारत पथिक' कहा और उनका अग्रज कबीर को बताया है—

"''भारतवर्ष में जो राममोहन के अग्रपथिक थे, उनमें अन्यतम थे कबीर, जिन्होंने अपने को 'भारत पथिक' कहा है। भारत को उन्होंने महापथ के रूप में देखा था।'' रवींद्रनाथ ने कबीर, राममोहन के पथ में एक नैरंतर्य देखा और स्वयं उस पथ के राही हो लिये। लगभग कबीर की शैली में रवींद्रनाथ भी गुहार लगाते हैं—

''एसो हे आर्य, एसो अनार्य, हिंदु मुसलमान—

एसो-एसो आज तुमि इंगराज, एसो-एसो खृष्टान

एसो ब्राह्मन, शुचि करि मन धरो हात सबाकार

मार अभिषेक एसो-एसो त्वरा

मंगल घट हयनि ये भरा,

सबार-परसे पवित्र-करा तीर्थ नीरे—

आजि भरते महामानवेर सागर तीरे''

सच पूछिए तो रवींद्र आधुनिक भारतीय साहित्य के राजदूत थे—वैश्विक स्तर पर भी और अखिल भारतीय स्तर पर भी। समूचे भारत का जो श्रेष्ठ था, उसे उन्होंने लिया। जिससे जितना लिया, उसे पूरी उदारता से लौटा भी दिया।

मिश्र-बंधुओं ने हिंदी नवरत्नों की सूची बनाई तो उसमें कबीर का नाम ही नहीं था। मगर टैगोर ने कबीर के महत्त्व को पहचाना और हमें उसकी पहचान कराई। टैगोर के अनुवाद के बाद सारी दुनिया में कबीर की पहचान बन जाने के बाद मिश्र-बंधुओं को लगा कि यह तो गड़बड़ हो गई! उन्होंने 'हिंदी नवरत्न' का जब नया संस्करण प्रकाशित किया तो किसी तरह सातवें स्थान पर कबीर को रखा। श्यामसुंदर दास और हरिऔध ने कबीर की वाणी प्रकाशित की। पर रामचंद्र शुक्ल की धीर-गंभीर मुद्रा के आगे कबीर वहीं रहे, सातवें नंबर पर। शांति निकेतन में, रवींद्रनाथ से साहित्य-दृष्टि लेकर हजारी प्रसाद द्विवेदी आए और उन्होंने हिंदी में कबीर साहित्यिक-विमर्श के केंद्र में प्रतिष्ठित किया। यह रवींद्रनाथ की देन है। कबीर को, प्रेमचंद्र को महत्त्व दिलानेवाली साहित्य-दृष्टि के बीज कहीं-न-कहीं शांति निकेतन से ही आए थे। कबीर के बारे में रवींद्रनाथ ने कहा है—''कबीर के जीवन और उनकी रचनाओं में यह साफ देखा जा सकता है कि उन्होंने भारत की समस्त बाह्य आवर्जना का अतिक्रमण करते हुए अंत:करण की श्रेष्ठ सामग्री को ही सत्य समझकर उपलब्ध किया था। लोकाचार, शास्त्र-विधि और अभ्यास के रुद्धद्वार पर आघात करके उन्होंने भारत को जगाने का प्रयास किया।'' हजारी प्रसाद द्विवेदी के कबीर-विमर्श में रवींद्र की यह अंतर्दृष्टि शुरू से अंत तक दिखाई देती है।

और भी बहुत सी बातें हैं जो बँगला से हिंदी में आईं। उपन्यास

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

नाम की साहित्य विधा हमारे यहाँ बँगला के रास्ते आई। पहले बँगला उपन्यासों के अनुवाद आए, फिर हिंदी में उपन्यास लिखे जाने लगे। समूची छायावादी कविता का क्या करिएगा! उसकी स्वच्छंदता,कल्पनाशीलता, रहस्यवादिता और भावप्रवणता के पीछे कहीं-न-कहीं बँगला कविता, खासकर रवींद्रनाथ की कविता मौजूद है। सच पूछिए तो यह मौजूदगी, यह अंतरावलंबन, यह अन्योन्याश्रय भाव हिंदी ही नहीं, समूचे भारतीय साहित्य का चरित्र-लक्षण है। 'कल्पलता' में हजारी प्रसाद द्विवेदी ठीक ही कहते हैं—

''हमारी भाषा का पुराना साहित्य प्रांतीय सीमाओं में बँधा है। आपको यदि हिंदी साहित्य का अध्ययन करना है तो उसके पड़ोसी साहित्यों—बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, नेपाली आदि के पुराने साहित्य, लिखित और अलिखित को जाने बिना घाटे में रहेंगे। यही बात बँगला, ओड़िशा, मराठी आदि के पुराने साहित्य के बारे में भी ठीक है। हमारे देश का सांस्कृतिक इतिहास इस मजबूती के साथ अदृश्य काल विधाता के हाथों सी दिया गया है कि उसे प्रांतीय सीमाओं में बाँधकर सोचा ही नहीं जा सकता। उनका एक टाँका काशी में मिल गया, तो दूसरा बंगाल में, तीसरा उड़ीसा में, चौथा महाराष्ट्र में मिलेगा और पाँचवाँ मालाबार या सीलोन में मिल जाए तो आश्चर्य की कोई बात नहीं हैं।''

''हमारी भाषा का पुराना साहित्य प्रांतीय सीमाओं में बँधा है। आपको यदि हिंदी साहित्य का अध्ययन करना है तो उसके पड़ोसी साहित्यों—बँगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, नेपाली आदि के पुराने साहित्य, लिखित और अलिखित को जाने बिना घाटे में रहेंगे। यही बात बँगला, ओड़िशा, मराठी आदि के पुराने साहित्य के बारे में भी ठीक है। हमारे देश का सांस्कृतिक इतिहास इस मजबूती के साथ अदृश्य काल विधाता के हाथों सी दिया गया है कि उसे प्रांतीय सीमाओं में बाँधकर सोचा ही नहीं जा सकता। उनका एक टाँका काशी में मिल गया, तो दूसरा बंगाल में, तीसरा उड़ीसा में, चौथा महाराष्ट्र में मिलेगा''

भारत के विशाल भाषाई क्षेत्र में जैसे हिंदीतर भाषाओं के साथ हिंदी के संबंध की समस्या महत्त्वपूर्ण है, उसी प्रकार स्वयं हिंदी प्रदेश के भीतर हिंदी और उर्दू के बीच संबंध की समस्या चुनौतीपूर्ण है। पहले उर्दू नाम नहीं था, हिंदी या हिंदवी कही जाती थी। खड़ी बोली के ढाँचे को हिंदी या हिंदवी के रचनाकारों ने इतना माँजा कि वह एक समर्थ गद्य भाषा में विकसित हो गई। ये हिंदी या हिंदवी के रचनाकार हैं, जिन्हें आज हम बड़ी आसानी से उर्दू के खाते में डाल देते हैं। फिराक गोरखपुरी कहते हैं—''उर्दू के साहित्यकारों ने और हिंदी प्रांत के भद्र समाज ने खड़ी बोली या पच्छाहीं हिंदी बोलनेवालों में यह आत्मविश्वास पैदा कर दिया कि राष्ट्रभाषा का आंदोलन कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया! नहीं तो क्या अजब है बँगला या मराठी आदि उन्नत भाषाएँ मैदान में आ जातीं! मगर हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी हो सकती है, उर्दू नहीं। यह राष्ट्रभाषा उर्दू को मिटाकर नहीं, बल्कि हिंदी में उर्दू के गुण लाकर बनाई जा सकती है।''

हुआ यह कि पहले हिंदी और उर्दू को अलगाया गया और फिर उसे आपसी प्रतिद्वंद्विता में डाल दिया गया। जाहिर है, प्रतिद्वंद्विता के मूल में भाषाई या साहित्यिक वजहें नहीं, बल्कि राजनीतिक और सांप्रदायिक वजहें रही हैं। इस प्रतिद्वंद्विता में दोनों ही भाषाएँ समान रूप से पराजित हुई हैं। गालिब का एक शेर याद आता है—

न गुल-ए-नगमा हूँ, न पर्द-साज
मैं हूँ अपने शिकस्त की आवाज

यह बात दोनों भाषाओं पर समान रूप से लागू होती है। हिंदी गद्य का विकास उर्दू के रास्ते होकर आया है। और सब बातें छोड़ भी दी जाएँ, तो सीधे-सीधे प्रेमचंद का उर्दू से हिंदी में आगमन एक युगांतर है। देखते-देखते हमारा गद्य इतना प्रौढ़, इतना टकसाली हो गया, हमारा गद्य साहित्य इतना विकसित हो गया कि उसे लेकर हम विश्व-साहित्य के मंच पर गर्व के साथ खड़े हो सकते हैं। ऊपरी तौर पर प्रभाव दिखाने के लिए और भी बहुत सी बातें गिनाई जा सकती हैं। मसलन, हिंदी गजल का विकास। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र उर्दू में

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

गजलें कहा करते थे। निराला ने हिंदी में गजलें कहीं। दुष्यंत कुमार आए और अब हिंदी गजल की एक पूरी पीढ़ी मौजूद है।

शब्द-संपदा के स्तर पर भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। उर्दू जब नहीं थी, तब भी हमारे यहाँ अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग होता था। तुलसीदास के राम यों ही 'गरीब नेवाज' नहीं हुए। तो असल बात ये है कि उर्दू-हिंदी का जन्म साथ-साथ हुआ है। दोनों का भविष्य साथ-साथ होने में है। उर्दू का जन्म ठेठ हिंदुस्तान में हुआ है, इसीलिए उर्दू का भविष्य भी और कहीं नहीं, हिंदुस्तान में ही है। मीर और गालिब हिंदुस्तान के कवि हैं और जितने उर्दू के हैं, उतने ही हिंदी के। अकारण नहीं कि कई बार इन कवियों में कबीर की अनुगूँजें सुनाई देती हैं। मीर कहते हैं—

मीर के दीन-ओ-मजहब को, अब पूछते क्या हो उनने तो
कश्क: खेंचा, दौर बैठा, कब का तर्क इसलाम किया।

गालिब जब कह रहे होते हैं—

रंगों में दौड़ते-फिरने के, हम नहीं काइल
जब आँख ही से न टपका, तो फिर लहू क्या है?

तो बरबस कबीर की ये पंक्तियाँ याद आती हैं—

सांई आँसू साजना सोइ लोक विडाहिं।
जो लोइन लोहू चुवै जानौ हेतु हियाहिं॥

उर्दू और हिंदी दोनों भाषाएँ और उनका साहित्य भारत की मिट्टी की उपज है। इनके बीच आवाजाही दोनों के लिए हितकर है। इनके बीच की बेगानगी कृत्रिम है। इस बेगानगी ने दोनों का समान रूप से अनभल किया है। इसका अनुभव करते हुए हिंदी के वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह कहते हैं—

''यह दीवार
आखिर यह दीवार
कब टूटेगी?
इतने बरस हुए
गजलों से भरे इस उपमहाद्वीप में
मुझे एक भूले मिसरे का अब भी इंतजार है''

उस भूले मिसरे को केदारनाथ सिंह गद्य में इस प्रकार याद करते हैं—'मेरे जैसा व्यक्ति तो साहित्यिक खड़ी बोली की कल्पना ही नहीं कर सकता मीर और गालिब के बिना।' जरूरत इस भूले हुए मिसरे को याद करने की है।

□

हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005



DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

23 विस्थापना का दर्द और 'मानस' का मरहम

● डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण

'स्वर्ण' के मोह ने किसको नहीं भटकाया? चाहे यह 'स्वर्ण-युग' की मरीचिका हो या फिर 'स्वर्ण नगरी' (एल डोराडो) का मायाजाल! दोनों ने ही भटकाया है, भरमाया है। यदि सीता 'स्वर्ण-मृग' के मोह में न घिरतीं तो उनका हरण भी न होता। न उन्हें पति-बिछोह का दारुण दुःख उठाना पड़ता और न 'अग्नि-परीक्षा' देने का करुण अपमान ही सहना पड़ता।

रामकथा का यह मिथक हमारे प्रवासी भारतीयों के जीवन पर सटीक उतरता है। यदि आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व हमारे ये भोले-भाले, कर्मठ, खेतीहर मजदूर अंग्रेज उपनिवेशवादियों द्वारा छोड़े गए 'मारीच' रूपी 'रिक्रूटरों' (आरकाटियों) द्वारा दिखाए गए 'स्वर्णनगरी' या 'सोने का टापू' या फिर उनके धार्मिक विश्वासों का सहारा लेकर 'गंगा-सागर की मुफ्त यात्रा' के लुभावने सपनों के मायाजाल में न फँसते तो उन्हें भी सीता-हरण जैसी विस्थापन की त्रासदी का दर्द न झेलना पड़ता। एक स्वर्णिम भविष्य की लालसा ने उन्हें 'काले पानी' का यात्री बनाकर चिर वनवास में धकेल दिया। आशा और स्वप्न के रोमांच से भरे जब ये भारतीय कलकत्ता के घाट से जहाजों पर चढ़े होंगे, तब उन्होंने यह सोचा भी न होगा कि काले सागर की यात्रा उन्हें कहाँ ले जा पटकेगी! उन्हें क्या मालूम था कि सात समंदर पार की उस यात्रा के बाद भारत माँ की गोद में लौटना एक सपना बनकर रह जाएगा।



- वर्तमान परिदृश्य में हिंदी को अंतरराष्ट्रीय आयाम देनेवाले भारतीय विद्वान्
- दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच.डी तक की उपाधियाँ
- प्रतिष्ठित हिंदू कॉलेज में लगभग 3 दशकों तक अध्यापन कार्य
- भारतीय भौगोलिक सीमाओं से परे हिंदी अध्यापन का व्यापक अनुभव
- अमेरिका, कनाडा, सूरीनाम, फीजी, मॉरीशस, सिंगापुर, इटली आदि देशों में हिंदी का प्रचार
- मॉरीशस स्थित महात्मा गांधी संस्थान में 'जवाहर लाल नेहरू चेयर ऑफ इंडियन स्टडीज'
- वैश्विक हिंदी ज्ञान को प्रचारित करने हेतु 'हिंदी जगत्' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन
- हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए 'विदेश हिंदी प्रसार सम्मान', 'फादर कामिल बुल्के सम्मान', 'ट्रिनीडाड हिंदी भूषण सम्मान' और 'हिंदी निधि सम्मान'
- संप्रति : जापान स्थित 'टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' में प्रोफेसर।

मैं यहाँ बात कर रहा हूँ उन लाखों भारतीयों के विस्थापन की त्रासदी की, जिसकी शुरुआत 'दास प्रथा' के समाप्त हो जाने के एकदम बाद सन् 1835 से आरंभ हो गई थी। यह ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की एक अत्यंत सोची-समझी चाल थी, जिसके दूरगामी परिणाम निकले। अनेक विद्वानों ने इसे 'दास प्रथा' का ही नया संस्करण बताते हुए इसे 'दूसरी गुलामी की शुरुआत' भी कहा है। 'इंडियन इंडेनचर लेबर सिस्टम' या 'शर्तबंदी प्रथा' के नाम से जानी जानेवाली इस व्यवस्था में भारतीय मजदूरों और किसानों को पाँच वर्ष के 'शर्तनामे' (एग्रीमेंट) पर भारत से हजारों मील दूर कुली बनाकर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए भेज दिया जाता था। कहने को तो यह एक प्रकार का सहमति-पत्र था, जिस पर सभी मजदूरों को अपने हस्ताक्षर करने या अँगूठा लगाना होता था, पर उन अभागे, अंग्रेजी भाषा न जाननेवालों को यह नहीं मालूम होता था कि उस शर्तनामे की शर्तें क्या हैं और उन्हें कहाँ भेजा जा रहा है!

और इस तरह भारत से हजारों मील दूर हिंद महासागर में स्थित मॉरीशस, दक्षिण अमेरिका के कैरीबियन सागर में स्थित गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद और दक्षिणी प्रशांत के फीजी द्वीप पर सन् 1835 से सन् 1921 के बीच लाखों भारतीय मजदूरों को शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत विस्थापित कर दिया गया। इनमें से बहुत कम लोग ही वापस भारत लौट सके थे। बाकी बचे लोगों के लिए पाँच वर्ष का यह

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विस्थापन अनंतकाल का वनवास बन गया।

ये लोग 'एग्रीमेंट' शब्द का उच्चारण भी नहीं कर पाते थे, इसलिए 'एग्रीमेंट' शब्द इनके लिए 'गिरमिट' बन गया और इसी कारण ये सब लोग 'गिरमिटिया' कहलाने लगे। अपने इस 'गिरमिट' काल में ये मजदूर गोरे प्लांटरों और उनके द्वारा नियुक्त किए गए 'सरदारों' के अत्याचार सहने के लिए विवश थे। बात-बेबात उन्हें अपमानित किया जाता था और चाबुकों, लातों से मारा जाता था। चाबुकों की मार से इनकी पीठों से पसीने के साथ खून की धार बहने लगती थी, जिसे मॉरीशस के प्रसिद्ध कथाकार अभिमन्यु अनत ने 'लाल पसीना' कहा है। इस मार-पीट के अतिरिक्त इनकी पत्नियों, बेटी-बहुओं को बेइज्जत करना आम बात थी। इनके प्रति किए जा रहे अन्यायों की सुनवाई कहीं नहीं होती थी। सारे कायदे-कानून इन गिरमिटियों के गोरे मालिकों के पक्ष में ही होते थे।

ऐसे दारुण समय में उनके रिसते घावों पर मरहम लगाने का काम तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने किया था। उनके सारे कष्टों और मानसिक पीड़ा को दूर करनेवाली एक ही संजीवनी उनके पास थी और वह थी उनकी 'रामायन', जिसे फीजी के प्रवासी भारतीय 'रामायन-महारानी' कहते हैं। गौर कीजिए गोरों की महारानी विक्टोरिया के मुकाबले इन गिरमिटियों ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की प्रतीक 'रामायन' को महारानी का पद प्रदान किया। रामायण का यह मानवीकरण उनके विरोध की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी है कि आपकी महारानी विक्टोरिया होंगी, पर हमारी महारानी तो हमारी 'रामायन' है।

इक्कीसवीं शताब्दी में आज अनेक लोग इन भारतवंशी प्रवासियों के विस्थापन के दर्द को समझ पाने में असमर्थ रहते हैं, लेकिन जिन लोगों ने मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम या फीजी जैसे देशों की यात्राएँ की हैं, उनके बारे में पढ़ा है या फिर किसी तरह वे इन प्रवासी भारतीयों के संपर्क में आए हैं तो उन्हें इनके विस्थापन की त्रासदी और उससे जुड़े दर्द को समझते देर नहीं लगेगी।

वस्तुत: विस्थापन की प्रक्रिया एक सार्वकालिक और सार्वदेशिक प्रक्रिया है। अनंत काल से मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थापित और विस्थापित होता रहा है। जहाँ यह विस्थापन स्वेच्छा का कारण होता है, वहाँ यह त्रासदी नहीं कहा जा सकता है, लेकिन जब जाने-अनजाने और जोर-जबरदस्ती विस्थापित होना पड़ता है तो यह विस्थापन एक त्रासदी बन जाता है।

यदि विस्थापन के कारणों की खोज की जाए तो सामान्यत: इसके मूल में निम्न कारण देखे जा सकते हैं—यानी प्राकृतिक आपदाएँ (यथा—बाढ़, भूकंप, ज्वालामुखी का फटना, जंगलों की आग आदि), राजनैतिक परिस्थितियाँ (यथा—युद्ध की विभीषिका, हिटलर जैसी जातीय घृणा का विस्फोट, किसी देश का बँटवारा—जैसे पाकिस्तान का निर्माण, जैसी परिस्थितियों में सुरक्षा की तलाश) या फिर एक सुंदर भविष्य की कामना से प्रेरित होकर व्यापार या नौकरी के लिए अपनी जड़ों से दूर जाकर घर बसाने जैसे कारणों को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

आज 'विश्व-ग्राम' बने संसार में विस्थापन की यह प्रक्रिया सर्वत्र घटित हो रही है। पर इसके कारण और परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। सामान्यत: मनुष्यमात्र की आकांक्षा अपने जल, जंगल और जमीन से जुड़े रहने की होती है, लेकिन परिस्थितिवश उसे अपनी जड़ों से दूर जाना पड़ता है। दूर जाने पर भी उसकी चेष्टा अपनी जड़ों की ओर लौटने की होती है। यदि परिस्थितियों के वशीभूत वह लौट नहीं पाता है तो भी वह अपनी जातीय स्मृतियों के सहारे अपने अतीत और अपनी जड़ों से प्रेरणा और ऊर्जा पाने का प्रयास करता रहता है।

यदि विस्थापन के कारणों की खोज की जाए तो सामान्यत: इसके मूल में निम्न कारण देखे जा सकते हैं—यानी प्राकृतिक आपदाएँ (यथा—बाढ़, भूकंप, ज्वालामुखी का फटना, जंगलों की आग आदि), राजनैतिक परिस्थितियाँ (यथा—युद्ध की विभीषिका, हिटलर जैसी जातीय घृणा का विस्फोट, किसी देश का बँटवारा—जैसे पाकिस्तान का निर्माण, जैसी परिस्थितियों में सुरक्षा की तलाश) या फिर एक सुंदर भविष्य की कामना से प्रेरित होकर

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

व्यापार या नौकरी के लिए अपनी जड़ों से दूर जाकर घर बसाने जैसे कारणों को प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इनमें अंतिम कारण ही आज के विस्थापन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है।

कारण चाहे कोई भी हो, विस्थापित व्यक्ति या समूह अपने-अपने जातीय अनुभवों, मिथकों, सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़े मूल्यबोध और अपनी मातृभाषा को अपने साथ नए स्थानों पर ले जाते हैं और फिर उनके सहारे अपने लिए नए नीड़ का निर्माण और जीवन-पद्धति का विकास करते हैं। जातीय-स्मृतियाँ और मिथक उसकी चेतना के साथ 'नाभि-नाल' की तरह जुड़े रहते हैं। इसी के सहारे वह अपने सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण करता है। यदि उसका यह नाभि-नाल संबंध टूट जाता है तो वह एक प्रकार के सांस्कृतिक-निर्वात में त्रिशंकु होकर जीने के लिए विवश हो जाता है। दास प्रथा के अंतर्गत विस्थापित अफ्रीका समाजों में इस निर्वात को भली-भाँति देखा जा सकता है।

आज के सिकुड़ते हुए विश्व में विस्थापन की प्रक्रिया अभूतपूर्व रूप से तेज हो गई है। वैश्विक स्तर पर भारतीयों का जैसा विस्थापन आज घटित हो रहा है और जब 170-175 वर्ष पूर्व 'गिरमिट-प्रथा' के अंतर्गत हुआ था, उसमें गुणात्मक अंतर है। आज भारत की सीमाओं से बाहर जानेवालों को मालूम है कि वे कहाँ जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं और वहाँ जाकर क्या करना है। दूरसंचार के साधनों, टेलीविजन, सिनेमा, इंटरनेट, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अधिकांश लोग अपनी नई परिस्थितियों की पूर्व-सूचना पा लेते हैं, लेकिन 170-175 वर्ष पूर्व यह सब संभव नहीं था। मालवाले जहाजों पर बैठकर महीनों तक चलने वाली भयावह समुद्र-यात्रा के बाद किसी अनजाने द्वीप पर उतरना और विजातीय लोगों के साथ परायी भूमि पर बसने की विवशता का अनुभव वैसा नहीं था, जैसाकि आज की अत्याधुनिक सुविधाओं के बीच होनेवाले विस्थापन का होता है।

'गिरमिट प्रथा' से जुड़े विस्थापन के अनुभव को समझने के लिए हम एक बार फिर दास प्रथा की समाप्ति के बाद की स्थितियों की ओर लौटते हैं। दास प्रथा की समाप्ति के कारण ब्रिटिश उपनिवेशों में चीनी के व्यापार से जुड़े प्लांटरों के खेतों में काम करनेवाले मजदूरों का अकाल पड़ गया तो अनायास ही इन गोरे प्लांटरों का ध्यान भारत की ओर गया, जो ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का सबसे बड़ा और कमाऊ उपनिवेश था। और कुछ ही समय बाद 'शर्तबंदी-प्रथा' के अंतर्गत धोखे से लोगों को भारतभूमि से दूर परायी भूमि पर विस्थापित कर दिया गया। इनमें से अधिकांश मजदूरों को यह कल्पना भी नहीं थी कि उन्हें कहाँ भेजा जा रहा है! संभव है कि यदि उन्हें पता होता कि वे किस नरक में जा रहे हैं तो शायद इनमें से अनेक लोग कलकत्ता के घाट से ही वापस लौट गए होते।

पर मेरा मानना है कि तब भी बहुत से लोग इसे स्वीकार करते, क्योंकि वे तत्कालीन भारत के गाँवों के शोषण-तंत्र, बाढ़, सूखा और अकाल परिस्थितियों से आक्रांत थे और अपने भाग्य को आजमाने के लिए कहीं भी जाने के लिए अभिशप्त थे। वे सब लोग मेहनतकश थे, साहसी थे, और ऐसे में अब 'आरकाटियों' ने उनके सामने सुनहरे भविष्य के सपने दिखाए, तो वे परायी भूमि पर जाकर कुछ कर दिखाने की उत्कट इच्छा से भर गए होंगे। मात्र आरकाटियों के बहकाने भर से कुछ ही सालों में लाखों लोग इस तरह विस्थपित नहीं हो सकते थे। वस्तुत: एक आर्थिक सुरक्षा की भावना उन्हें प्रेरित कर रही थी।

इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी हमें ध्यान में रखना होगा। तत्कालीन भारत जातिप्रथा के अभिशाप से ग्रसित था। ऊँच-नीच और छुआछूत का दंश झेलनेवालों की विशाल संख्या शहरों और गाँवों में फैली हुई थी। वे निरंतर शोषण के शिकार थे। ऐसी परिस्थिति में अपने अभिशप्त जीवन को सँवारने की लालसा ने भी उन्हें विस्थापित होने के लिए प्रेरित किया होगा। इन सभी देशों में उपलब्ध दस्तावेजों और आँकड़ों के अनुसार अधिकांश विस्थापित गिरमिटियों का संबंध निम्नवर्गीय समाज से था, इसलिए अपने 'प्रत्यक्ष तर्क' के मुकाबले आरकाटियों द्वारा चित्रित 'स्वर्ग' उन्हें निश्चय ही अधिक आकर्षक लगा होगा।

एक तरह से वे लोग गलत भी नहीं थे। जहाज पर चढ़ने के बाद महीनों की समुद्री-यात्रा ने इनके सारे जातिगत संबंधों को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त कर दिया और ये सभी गिरमिटिए अपने जाति-संबोधनों से परे 'जहाजी भाई' की नई संज्ञा पा गए। अपनी-अपनी एस्टेटों में काम करते-करते ये लोग आपस में 'जहाजी भाई'

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

के नाते एक-दूसरे से जुड़े रहे। एक नए तरह का भाईचारा विकसित हुआ, जिसमें ऊँच-नीच और छुआछूत की कोई जगह नहीं थी। विस्थापन की इस प्रक्रिया में यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक योगदान है।

लेकिन विस्थापन की त्रासदी का असली पक्ष तो इन द्वीप-देशों में पहुँचने के बाद 'कुली लेनों' के नारकीय जीवन और गन्ने के खेतों में काम करने की अमानुषिक परिस्थितियों से जुड़ा है। इन भारतीयों के आने से पहले इन्हीं लेनों में अफ्रीकी दास लोग रहते थे और खेतों में काम कराते हुए उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। इस प्रकार, इन खेतों के मालिक, जो बड़े-बड़े प्लांटर्स थे, पूरी तरह निरंकुश, क्रूर और आतंक का पर्याय बन चुके थे। जब भारतीय कुलियों का आगमन हुआ तो उन पर शुरू से ही दबदबा बनाकर रखने के लिए उन्होंने साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाते हुए दबाव शुरू कर दिया। इन्ही कुलियों में से कुछ को चुनकर वे सरदार बना देते थे, जो अपने ही देश-भाइयों पर कड़ाई करते नहीं हिचकते थे। इनकी त्रासदी का एक पक्ष दास प्रथा से मुक्त हुए दासों के व्यवहार से भी जुड़ा है। गिरमिटियों को इन दासों की उपेक्षा, विरोध और हिंसा को भी सहना पड़ा था, क्योंकि इन भारतीय कुलियों के आगमन से इन दासों की कीमत प्लांटर्स के लिए एकदम कम हो गई। ये अफ्रीकी दास भारतीयों के मुकाबले कम मेहनती भी थे। ऐसी स्थिति में मुक्त हुए दासों को ये कुली काम छीननेवाले प्रतिस्पर्धी मालूम पड़े। फलत: प्रवासी गिरमिटियों का जीवन गहरे तनावों एवं संघर्षों से भरा हुआ था।

जब चारों ओर छाए गहरे अँधेरे में राह नहीं सूझ रही हो तो मन निराशा के कोहरे में डूबने लगता है, छटपटाने लगता है। इन परिस्थितियों से निकलने के लिए सहारे की जरूरत होने लगती है। कोई हलकी सी प्रकाश की किरण भी मिल जाए तो डूबती नैया किनारे लग सके। तब ऐसे गहन अंधकार से इन गिरमिटियों को उबारने का काम किया था इनकी मातृभाषा हिंदी के ज्ञान ने और तुलसीदास के 'रामचरितमानस' ने। विस्थापन के दर्द पर 'मानस' ने मरहम का काम किया।

जब सारे दिन के हाड़तोड़ काम के बाद ये लोग अपनी-अपनी कुली-लेनों में लौटते थे, तो शाम का भोजन बना और खाने के बाद सभी लोग 'रामायण' के गायन में डूब जाते थे। ढोलक-मंजीरे जैसे साजों के सहारे तब उनका सारे दिन का अवसाद और पीड़ा तिरोभूत हो जाती थी। एक दार्शनिक की तरह इनका मन सोचने लगता था, जब भगवान् राम जैसे महान् व्यक्ति को भी वनवास का दु:ख उठाना पड़ा था तो हम जैसे सामान्य मनुष्यों की बिसात ही क्या? ये दु:ख भी हमारे 'करम का लेख' हैं। हमारी नियति हैं। विधाता का लिखा कौन टाल सकता है? और वे सब अनायास कह उठते थे—'होहहिं वही जेहि राम रचि राखा'। जब हमारे भाग्य में ये दुर्दिन लिखे हैं तो फिर चिंता किस बात की?

वस्तुत: इन सभी द्वीप-देशों में बसे प्रवासी भारतीयों के लिए 'रामचरित मानस' एक पोथी भर नहीं थी। इन सभी के लिए राम का वनवास, सीता का हरण, राक्षसों और रावण के अत्याचार पोथी में लिखी कहानी भर नहीं थे। ये सब उनका अपना प्रत्यक्ष अनुभव भी था। फलत: रामायण से उनका साधारणीकरण अत्यंत सहज और सार्थक स्थिति थी। ये सब लोग अपनी-अपनी 'अयोध्या' पीछे छोड़ आए थे। सभी को इन जंगलों में अपनी-अपनी पंचवटी खोजनी पड़ी थी और अपनी-अपनी पर्णकुटी का निर्माण करना पड़ा था। मित्र और राक्षसों से भी निरंतर सामना होता रहता था। गन्ने की कोठियों के मालिक रावण जैसे और उनके कारिंदे राक्षसों के समान ही थे। इनकी अपनी सीताएँ भी सुरक्षित नहीं थीं और उनका खेतों के मालिक रूपी रावणों के द्वारा हरण होता ही रहता था। इस तरह रामायण का पूरा सादृश्य-विधान इनका रोज का प्रत्यक्ष अनुभव था।

ऐसे कठिन समय में इन कुलियों की कुली-लेनों में टिमटिमाते दीये की लौ के बीच रामायण की चौपाइयाँ इनमें आशा का संचार करती थीं। इन्हें लगता था कि श्रीराम की तरह ही एक दिन इनके कष्टों के दिन बीत जाएँगे और ये लोग भी अपनी-अपनी 'अयोध्या' की ओर लौट सकेंगे। इन देशों में प्रचलित लोकगीतों में इस आशावाद के दर्शन अनेक रूपों में होते हैं। फीजी में प्रचलित 'प्रवासी आल्हा' की इन पंक्तियों को देखिए—

''राम बनइहैं तो बन जइहैं, बिगड़ी बनत-बनत बन जाहि।

चौदह बरिस रहे बनवासी, लौटे पुनि अयोध्या माँहि।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

ऐसे दिन हमारे फिर जइहैं, बँधुवन के दिन जइहैं बीत।

पुनः मिलन हमरौ होइ जइहैं, जइहैं रात भयंकर बीत।''

(*अनजान क्षितिज की ओर*, पृ. 8-9)

चौदह बरस के वनवास के बाद जब श्रीराम अयोध्या जाकर परिवार से मिल सके तो हमारा वनवास भी बीत जाएगा, हमारा भी अपने परिजनों से मिलन होगा। ये बँधुआ मजदूर का जीवन भी बीत जाएगा—यह आशा उनको टूटने से निरंतर बचाती रही। इसलिए वे सब मिलाकर कह उठते थे—'जाहि विधि राखै राम, ताहि विधि रहिए।'

मॉरीशस के प्रसिद्ध कथाकार श्री अभिमन्यु अनत का उपन्यास 'लाल पसीना' गिरमिट भारतीयों की त्रासद जीवनगाथा को प्रस्तुत करनेवाला एक महाकाव्यात्मक उपन्यास (Epic Novel) है। प्रवासी-लेखक की वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठतम कृति है। इस उपन्यास में अनत ने प्रवासी भारतीयों के जीवन से जुड़े अनेक लोकगीतों को भी समाहित किया है। इन गिरमिटिए भारतीयों की पीड़ा को आँखों के सामने उपस्थित करनेवाली कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

''सुनी के नाम हम मारीच के दीपवा हो
पहुँचे अरी हम पाने को सोनवा
बदले में मिलेला भाई बाँसों की मार हो
छिल-छिल गयली सब मजदूरन की पीठवा
कोल्हू के बैल बने इखबन पीसन को
छोड़ा था देस अपन कुली बनन को''

(*लाल पसीना, पृ. 227*)

सोना पाने की लालसा से पहुँचे थे 'मारीच द्वीप' और गन्ने का रस निकालने वाले कोल्हू के बैल बना दिए गए। क्या इसी जीवन को पाने के लिए अपना देश छोड़ा? इसी तरह रामायण के मारीच-प्रसंग से जुड़ी एक और मार्मिक कल्पना एक लोकगीत में मिलती है। ऐसी पौराणिक मान्यता है कि राम का बाण खाकर स्वर्णमृग बना मारीच सात समंदर पार जाकर गिरा था। जहाँ वह जाकर गिरा, वही द्वीप उसके नाम पर मॉरीशस कहलाया। अब इस मारीच-द्वीप में हम लोग कुली बनकर आए हैं और अनेक प्रकार के कष्ट झेल रहे हैं। इन कष्टों के मिलने के कारण के रूप में वे एक अत्यंत मार्मिक कल्पना करते हैं कि भगवान् राम के बाण की चोट खानेवाले ये मारीच ही हमें दुस्सह कष्ट देकर राम के बाण की चोट का बदला हमसे ले रहा है।

फीजी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती अमरजीत कँवल भी रामायण की कथा का संदर्भ लेकर गिरमिटियों की त्रासदी का बड़ा ही मार्मिक चित्र उकेरती हैं—

''हाय-हाय' दिन जाए, 'रोय-रोय' रैन जाए
काली कोहरिया माँ सोए गिरमिटिया
'रावण' जो कोई आए के 'सीता' को हर लीना
देख न 'लखन' कोऊ, बेहाल 'हे राम' रोए गिरमिटिया
'स्वर्ग' दिखाए, तुम बैठायो जहाजुआ माँ
कुदाल संग खाक खाए नारी आरकाटिया
चूर-चूर मट्टी करै, चूर-चूर हड्डी होए
कर्म कमाए, दुःख दर्द उठाए के
भारत के मिटे देखो लाल गिरमिटिया।''

भारत के ये गिरमिटिया लाल, जिनका जीवन कभी अंतहीन काली रात की तरह था, आज विश्व के हर कोने में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। वे अनेक देशों की राजनीति में हिस्सा भर ही नहीं ले रहे वरन् कई राष्ट्रों की बागडोर भी उनके हाथों में है। अनेक छोटे-छोटे भारत विश्व भर में फैले हुए हैं और उनमें होली-दीवाली, रामायण-यज्ञ, रामलीला, महाशिवरात्रि, रामनवमी, जन्माष्टमी, रक्षाबंधन जैसे त्योहार धूमधाम से मनाए जाते हैं। बड़े-बड़े जुलूस

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

निकलते हैं। मंदिरों में पूजा-अर्चना के विधान चलते रहते हैं। मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गंगा दशहरा जैसे अनुष्ठान होते रहते हैं। हिंदी फिल्मों के गीत, गजलें और पारंपरिक भारतीय नृत्यों के कार्यक्रम आयोजित होते हैं। अनेक देशों में हिंदी संपर्कभाषा के रूप में मौजूद है, और जहाँ नहीं हैं, वहाँ हिंदी सीखने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जैसे-जैसे भारत की आर्थिक प्रगति का रथ आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे विश्व भर में भारतीय संस्कृति और हिंदी का महत्त्व और वर्चस्व भी बढ़ेगा। भारतवंशियों की वैश्विक उपस्थिति के कारण आज भारतीय संस्कृति, दर्शन और हिंदी भाषा का सूर्य सभी दिशाओं में अपनी रजत किरणें बिखेर रहा है।

इस परिदृश्य को देखते हुए 170-175 वर्ष पहले गिरमिटियों के रूप में भारतीयों के विस्थापन की त्रासदी एक दु:स्वप्न सी लगती है। कल्पना कीजिए, यदि तब इन्हें तुलसी-रामायण का सहारा न मिलता, यदि इनके पास भोजपुरी-अवधी मिश्रित हिंदी का माधुर्य और अपनापन न होता, तो क्या वे आज की स्थिति में पहुँच पाते? क्या 'मानस' रूपी मरहम के बिना इनके मन के घाव भर पाते? क्या उपनिवेशवादियों की लंका में इनकी 'अस्मिता' बच पाती?

□

B-203, 2-16-1, Kichijoji,
Higashi-cho, Musashino-shi Tokyo
180-0002 JAPAN

हिंदी को आप हिंदी कहें या हिंदुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें।

—महात्मा गांधी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

24 मॉरीशस का भारतीय-आप्रवासी स्वर

अभिमन्यु अनत

मॉरीशस के भारतीय आप्रवासियों की महागाथा विश्व भर की आप्रवासी यात्रा-कथा से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। 175 साल पहले भारत के विभिन्न प्रांतों से मजदूरों को छलावे में जिस तरह कई देशों में ले जाया गया, ठीक उन्हीं मिलती-जुलती हालतों में वे अपनी जमीन से उखड़कर मॉरीशस की परायी जमीन पर पहुँचे थे।

इस भारी हुजूम में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत के भी लोग थे, जो रोटी-रोजी की तलाश में अपनी जन्मभूमि से बिछड़े थे। इतिहास का कितना करारा व्यंग्य था यह कि जब विश्व भर में दास-प्रथा को मिटाया जा रहा था तो उपनिवेश शक्तियाँ एक नए ढंग की दासता की शुरुआत कर रही थीं। भारतीय मजदूरों को मॉरीशस में जिन स्थितियों में जीना पड़ा, वे किसी यातना-शिविर से कम दर्दनाक नहीं थीं। उस संघर्ष और यातना पर बेशुमार पन्ने लिखे गए हैं, फिर भी संघर्ष की वह महागाथा आज भी अधूरी है।

दासों से भी बदतर जीवन जीते हुए मॉरीशस की बंजर मिट्टी को इन भारतीय मजदूरों ने जहाँ अपने आँसू और पसीने से सींचा, वहीं अपने खून से भी। तभी तो उस देश की कथात्रयी को 'लाल पसीना' नाम दिया गया। फ्रांस में भी इस पुस्तक को 'खून का पसीना' शीर्षक दिया गया।

वह शोषण, अत्याचार, यातनाएँ, अपमान और बेबसी की जिंदगी थी। लेकिन समय के साथ शोषण की क्रूर बाँहें मजदूरों के संकल्प, उनकी सहनशक्ति तथा मेहनत के प्रति, उनकी आस्था के सामने थककर ही रहीं।



- जन्म : 9 अगस्त, 1937
- मॉरीशस के हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका अप्रतिम योगदान
- विश्व हिंदी समाज के चिर-परिचित हस्ताक्षर
- 'लाल पसीना' के लेखक
- विगत 40-45 वर्षों से अपने देश में हिंदी साहित्य के केंद्र में रहे।
- देश-विदेश की लगभग 80 पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित
- लगभग 60 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं
- सम्मान :
- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
- हिंदी अकादमी, दिल्ली
- राजीव गांधी स्मृति परिषद्, नई दिल्ली
- के.के. बिड़ला फाउंडेशन, नई दिल्ली
- केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
- 'डॉ. जार्ज ग्रियर्सन पुरस्कार'
- इलाहाबाद साहित्य संस्थान द्वारा 'साहित्य महोपाध्याय'
- साहित्य भूषण सम्मान
- कुंभ साहित्य सम्मान
- अनेक विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत
- आपकी रचनाओं पर 50 से अधिक डी.लिट्, एम.ए. तथा पी-एच.डी. के शोध कार्य संपन्न।

आज इतने वर्षों बाद मॉरीशस अगर फल-फूलकर धरती का स्वर्ग माना जाता है तो पुरखों के उन बलिदानों और यातनाओं को झेलने की महाशक्ति के कारण ही। आज अपनी आजादी के बाद मॉरीशस में भारतीय आत्माओं की छाप यहाँ के चप्पे-चप्पे पर देखने को मिलती है। चाहे वे गन्ने के हरे-भरे खेत ही क्यों न हों, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के साथ-साथ वहाँ के सामाजिक स्वरूप तथा सांस्कृतिक भव्यता, ये सभी बार-बार हमें पूर्वजों की याद ही तो दिलाते हैं।

भारतीय दर्शन, धर्म तथा संस्कृति से प्राप्त उन स्वर्णकणों से ही मॉरीशस आज इतना विकासशील है। यहाँ आज अमन और भाईचारे के साथ विभिन्न संस्कृतियों के लोग खुशहाली में जी रहे हैं तो वह इसलिए कि यहाँ के बहुसंख्यकों ने यहाँ सूर, मीरा और तुलसी के सुरों में निर्मल तरंगों की गंगा बहाई है।

आज आधुनिक मॉरीशस में भारतीय संस्कृति व परंपरा पूर्णतया जीवित हैं, क्योंकि उन्हें संजोया और सँवारा है वहाँ के आम आदमियों ने। यही कारण है कि वहाँ संस्कृति एवं परंपरा एकसूत्र में पिरोई हुई सी मिलती है।

आधुनिकता की सारी उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए भी मॉरीशस के गाँव और शहरों ने भारतीय परंपरा से जुड़कर भारतीय

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

जीवन-मूल्यों के प्रति अपनी आस्था को बनाए रखा है। रामायण के सत्संग चाहे झाल-ढोलक के साथ हों, चाहे गीत-भजनों के साथ या पाठ और विवेचन के रूप में, वे आज भी उसी श्रद्धा और अनुराग के साथ होते हैं, जिस निष्ठा के साथ दयनीय दिनों में शुरू हुए थे।

- अंतर केवल इतना है कि मॉरीशस में भारतीयों के आगमन के समय वे यातना-शिवरों जैसी बस्तियों में होते थे, आज वे भव्य पंडालों, शानदार घरों में रेडियो-टेलीविजन और कंप्यूटर के जरिए हो रहे हैं। वहाँ भारतीय विषयों पर केवल गाँवों और गलियों के नाम ही नहीं रखे गए हैं, बल्कि सिनेमाघरों, दुकानों और बसों तथा लॉरियों के नाम भी नालंदा, सूर्यवंशी, बनारस, सम्राट अशोक तथा अजंता आदि रखे गए हैं।

- भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों में यहाँ डाक टिकट भी समय-समय पर निकलते रहे हैं। मॉरीशस वह देश है, जहाँ प्रगति और आधुनिकता को, पारंपरिक मूल्यों को नकारकर नहीं स्वीकारा गया, बल्कि उन्हें एक-दूसरे का पूरक मानकर, एक-दूसरे की अस्मिता मानकर स्वीकारा गया है। भारतीय संस्कृति, भाषा और धर्म के उस विस्तार की चर्चा करें तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन परिस्थितियों की ओर एक बार ध्यान दें, जिनके बीच से होकर सफेद सोने (शक्कर) के देश में भारतीय संस्कृति आंतरिक शक्ति के रूप में फैली हुई है।

- वहाँ प्रगति के नाम पर संस्कृति की नीलामी नहीं हुई तथा औरों के मुखौटों को अपने चेहरों पर लगाकर अति आधुनिक होने के फख्र से अभी वह देश मुक्त है। सभी आधुनिक सुविधाओं और ताम-झाम के बीच भी आनंद और आत्मशांति की तृप्ति वहाँ अब भी तीज-त्योहारों और सांस्कृतिक उत्सवों से ही प्राप्त की जाती है।

- मॉरीशस में और भी कई देशों के लोग पहुँचते रहे, पर चट्टानों की भूमि और तूफानों के उस देश से हताश होकर लौटते रहे। वहाँ भारतीयों ने अपने आत्मविश्वास के बल पर चट्टानों की छातियों को चीरकर उनमें गन्ने उगाए और हिमालय की सहनशीलता के साथ हर तूफान का सामना किया।

- भारतीयों को वहाँ यह प्रलोभन देकर ले जाया गया था कि उस देश में पत्थरों को उलटने से सोना मिलता है। उन्हें पत्थर उलटकर सोना तो नहीं मिला, पर उनके माथे से वही पसीने की बूँदें खेतों में मोती के रूप में उगती रहीं। उन्हें जहाँ रोटी के लिए पसीने के साथ खून भी बहाना पड़ा, वहाँ उन्होंने पथरीली और बंजर जमीन को हरा-भरा बनाया तथा संस्कृति, धर्म और भाषा के लिए असह्य दंड भी झेले, फिर भी अभियान जारी रहा।

दूसरी ओर फ्रांसीसियों को जहाँ उन मजदूरों के पसीने की बूँदों को निचोड़कर अपनी तिजोरियाँ भरनी थीं, वहीं उन्हें उन बेबस भारतीयों पर अपनी भाषा, संस्कृति और अपना धर्म भी थोपना था, ताकि वे कुली कहलानेवाले अपनी जड़ और पहचान से कट जाएँ और हमेशा के लिए उनके दास बनकर रह जाएँ। अपने इस मंतव्य की पूर्ति के लिए फ्रांसीसी पूँजीपतियों ने ऐसा क्या कुछ नहीं किया! पर खैर, यह तो अलग विषय बन जाता है।

इतिहास वैसे भी झूठ बोलता है और मॉरीशस में तो वह गूँगा भी बना रहा। इतिहास का गूँगा होना उसके झूठ बोलने से अधिक खतरनाक होता है। झूठ तो बस तब बोला जाता है जब इतिहास लिखवाए जाते हैं। उसमें अध्याय व पन्ने आर्थिक व राजनीतिक सत्ता के बल पर लिखवाए जाते हैं। इतिहास का गूँगा होना मॉरीशस में इतिहास की हत्या सा लगता है।

जमींदारी ताकत के सभी प्रलोभनों, पाबंदियों और प्रतिबंधों के बावजूद वे मजदूर कोड़ों और बाँसों की बौछारों को सहकर भी चोरी-चोरी अपनी भाषा, संस्कृति और धर्म से जुड़े रहे। उन्हें अपनी भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता इसलिए नहीं थी कि कहीं वे गोरे मालिकों के विरुद्ध कोई षड्यंत्र न कर बैठें! उन्हें रामायण पढ़ने या लोकगीत गाने से भी इसलिए रोका जाता कि कहीं उनके बीच से विद्रोह जन्म न ले ले!

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भारी निगरानी के बीच उन्होंने कोयले के टुकड़ों से लिखकर अपने बच्चों को अक्षर-ज्ञान और शब्द-ज्ञान करवाया। आँगनों में हनुमानजी के छोटे-छोटे चौंतरे बनाकर तथा गाँवों में कालीमाई की स्थापना करके अपने लोगों को विधर्मी होने से रोका।

उन मजदूरों का सबसे बड़ा संकल्प और साहस तब सामने आया, जब उन्होंने कानूनन गुलामी के समाप्त होने के बाद भी दासत्व झेलते हुए गाँव-गाँव में 'बैठकाओं' की नींव डाली। 1901 में मॉरीशस में गांधीजी के आगमन से उनका हौसला और भी बढ़ा। उन्हें इतनी चेतना तो अवश्य थी कि बैठकाएँ उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए संजीवनी बूटी का कार्य करेंगी। लेकिन तब वे यह नहीं जानते थे कि कोई डेढ़ सौ साल बाद इन्हीं बैठकाओं से नेताजी सुभाषचंद्र बोस, महात्मा गांधी और नेहरूजी की चर्चा भी वे कर पाएँगे और अपने द्वीप की स्वतंत्रता की प्रेरणा भी पा सकेंगे।

समस्त गाँवों और शहरों की बैठकाओं से पहली बार मॉरीशस की आजादी का आवाहन हुआ। पंडित विष्णुदयाल ने संस्कृति को और भी बुलंदी देने के लिए जन-आंदोलन शुरू किया और डॉ. शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में मॉरीशस को ऐसी प्रतिकूल स्थिति में आजादी मिली, जब फ्रेंच भाषा के सभी पात्र उसके विरुद्ध थे।

मॉरीशस के राष्ट्रपति शिवसागर रामगुलाम ने आजादी के लिए उसी ऐतिहासिक तारीख को चुना था, जिस दिन गांधीजी ने डांडी-यात्रा शुरू की थी।

भारतीय मूल के लोगों में अपनी संस्कृति की प्रेरणा से क्षमा, सहनशीलता और भाईचारे की भावना रही है, तभी आज सभी जाति और धर्म के लोग एक राष्ट्र और एक संस्कृति के रूप में जी रहे हैं।

हिंदी को अंतरराष्ट्रीय रूप प्रदान करने में विश्व के असंख्य विद्वानों, संस्थानों और रचनाकारों का योगदान रहा है। लेकिन इस अंतरराष्ट्रीय प्रक्रिया में मॉरीशस की जो भूमिका रही है, वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। केवल इसलिए नहीं कि इस छोटे से द्वीप में विश्व हिंदी सम्मेलन दो-दो बार हुए, बल्कि इसलिए भी कि भारत से बाहर अगर किसी देश के राष्ट्रपिता चाचा रामगुलाम और राष्ट्रपति सर अनिरुद्ध जगनाथ बड़े फक्र के साथ हिंदी बोलते हैं। मॉरीशस की हिंदी अपनी माटी की सौंधी गंध को आत्मसात् करके ही अपना एक निजी स्थान बना सकी है और हिंदी के शब्द-सरोवर में अपने हिस्से की चंद बूँदें जोड़ पाई है।

आज इतने वर्षों बाद मॉरीशस अगर फल-फूलकर धरती का स्वर्ग माना जाता है तो पुरखों के उन बलिदानों और यातनाओं को झेलने की महाशक्ति के कारण ही। आज अपनी आजादी के बाद मॉरीशस में भारतीय आत्माओं की छाप यहाँ के चप्पे-चप्पे पर देखने को मिलती है। चाहे वे गन्ने के हरे-भरे खेत ही क्यों न हों, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के साथ-साथ वहाँ के सामाजिक स्वरूप तथा सांस्कृतिक भव्यता, ये सभी बार-बार हमें पूर्वजों की याद ही तो दिलाती हैं।

आज मॉरीशस में हिंदी, उर्दू, तमिल, तेलुगु तथा मराठी आरंभिक कक्षाओं से विश्वविद्यालय स्तर तक निशुल्क पढ़ाई जाती है। जिस अभियान को पूर्वजों ने बैठकाओं और मदरसों से शुरू किया था, आज उसका संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार यहाँ की उच्च सांस्कृतिक और शिक्षण संस्थाएँ कर रही हैं। विश्व में मॉरीशस एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ का हिंदी साहित्य इतनी बुलंदी पर पहुँच सका है कि विश्व के कई देशों में मूल रूप और अनूदित होकर आज मॉरीशस हिंदी साहित्य का प्रतिनिधित्व कर पाने में सफल रहा है। हिंदी की अंतर्राष्ट्रीयता में इससे बड़ी भूमिका और हो ही क्या सकती है ?

□

SAMVADITA
TRIOLET
MAURITIUS

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

25 प्रवासी हिंदी कहानियों में वृद्धावस्था

विजय शर्मा

कहानियाँ संबंधों को लेकर रची जाती हैं। संबंध विहीन कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती है। ये संबंध मानवीय हो सकते हैं, मानवेतर भी हो सकते हैं। 'कहानी का परिदृश्य' में अर्चना वर्मा लिखती हैं—"संबंध किसी-न-किसी स्तर पर व्यवस्था की उपज होते हैं और स्वयं एक व्यवस्था रचते हैं। वे चाहे प्रेम, दांपत्य अथवा अन्य पारिवारिक संबंध हों या कारोबारी या सामाजिक-व्यावसायिक व्यवस्थाओं में पदानुक्रम के चिह्न, आदमी की जिंदगी का सारा नाटक उन्हीं की धरती पर घटित होता है।"



- जन्म : 2 नवंबर, 1952
- हिंदी में एम.ए.
- रीडर, लोयोला कॉलेज ऑफ एजुकेशन, जमशेदपुर
- 31 साल का शैक्षणिक अनुभव
- इग्नू में बी.एड. तथा एम.ए. की काउंसलर, इग्नू सेंटर की असिस्टेंट सेंटर इंचार्ज
- भारत देश के विभिन्न हिस्सों में सेमीनार, वर्कशॉप का संचालन तथा राष्ट्रीय सेमीनार में पेपर पठन
- 'सहयोग' बहुभाषीय साहित्यिक संस्था की पूर्व अध्यक्ष
- किशोर विज्ञान कथा 'लौह शिकारी' तथा 'अपनी धरती, अपना आकाश : नोबेल के मंच से' दो पुस्तकें प्रकाशित
- नोबेल साहित्यकारों एवं फिल्म समीक्षाओं पर प्रकाशन हेतु दो पुस्तकें प्रकाशकों के पास
- हंस, नया ज्ञानोदय, कथादेश, समकालीन भारतीय साहित्य, प्रगतिशील वसुधा, वर्तमान साहित्य, परिकथा, अकार, कथाक्रम, इरावती, वागर्थ, पाखी, लमही आदि विभिन्न पत्रिकाओं में लेख, पुस्तक समीक्षा, फिल्म समीक्षा, कहानी, अनुवाद प्रकाशित
- आकाशवाणी में पुस्तक समीक्षा
- राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक गोष्ठियों में शिरकत।

वृद्धावस्था जीवन का एक अंग है। इसकी एक अवस्था है, एक अनुभव है। बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था में कई समानताएँ हैं। दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति दूसरों पर आश्रित रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिद करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लेकिन दोनों में बहुत असमानताएँ भी हैं। बचपन में वह दूसरों पर निर्भर करता है। सामान्यत: दूसरे भी उसकी देखभाल करते हैं, उसकी आवश्यकताएँ भी दूसरे पूरी करते हैं। अकसर यह काम लोग (माता-पिता या अन्य परिजन) प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। हालाँकि अपवाद भी मिल सकते हैं। मगर एक वृद्ध की देखभाल करते हुए लोग कतराते हैं। हाँ, इसके भी अपवाद हैं। बच्चे जज नहीं करते हैं। वृद्ध सदा दूसरों को जज करते हैं, अपने अनुभव से तौलते हैं। बचपन व्यक्तित्व का निर्माण काल है। इसलिए बालकाल नमनीय होता है। जवानी आने के पूर्व ही उसका व्यक्तित्व निर्मित हो चुका होता है। वृद्धावस्था में अकसर व्यक्तित्व अनमनीय होता है। उसका लचीलापन समाप्त हो चुकता है। बुढ़ापे में जीवन और समाज के प्रति नजरिया बदलने के उदाहरण भी मिलते हैं। इस उम्र में व्यक्ति की भूमिका बदल चुकी होती है। अब वह आय का स्रोत नहीं होता है। इसके साथ ही उसके प्रति दूसरों का नजरिया भी बदल जाता है। एक समय का घर का मुखिया अब हाशिए पर जा चुका होता है। किसी के पास उनके लिए वक्त नहीं होता है, जबकि उनके पास अब वक्त-ही-वक्त होता है।

कहानियों में वृद्धावस्था की बात करते ही प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' तथा भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' सबसे पहले याद आती हैं। ये कहानियाँ हिंदी साहित्य की धरोहर हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य में भी वृद्धावस्था पर कई अच्छी कहानियाँ मिलती हैं। सुषमा बेदी (गुनहगार, विषकन्या), अचला शर्मा (चौथी ऋतु), तेजेंद्र शर्मा (पासपोर्ट का रंग, पापा की सजा, मुझे मार डाल बेटा), दिव्या माथुर (ठुल्ला किलब), भूदेव शर्मा (प्रवासी की माँ), उषा वर्मा (कारावास), शैल अग्रवाल (घर का ठूँठ), महेंद्र दवेसर 'दीपक' (भँवर की चोट, कब्र का दीया, दीवारें), इंदिरा मित्तल (देहरी), उषा प्रियंवदा (वापसी, शून्य) आदि वृद्धावस्था के संघर्ष, संताप,

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

प्रतिरोध, आत्मसम्मान, मतभेद, गरिमा, नजरिया, पीढ़ियों के टकराव आदि का चित्रण करती कहानियाँ हैं। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी को नई कहानी की अग्रिम पंक्ति में रखा जाता है। 1980 के बाद अपनी मरजी से विदेश गई पीढ़ी के लेखकों ने भी इस कथानक पर सुंदर कहानियाँ दी हैं। देशकाल बदलने से इन कहानियों का मिजाज 'बूढ़ी काकी' या 'चीफ की दावत' से भिन्न है। यहाँ विश्लेषित प्रवासी हिंदी कहानियाँ किसी दृष्टि से कम महत्त्व की नहीं हैं।

सुषम बेदी की 'गुनहगार' की रत्ना को उसकी बेटी-दामाद, बहन-बहनोई, बेटी-बहू सब सलाह देते हैं कि वह बुढ़ापे में अकेली कहाँ रहेगी, इसलिए अपने लिए साथी खोज ले। एक समय की कामकाजी महिला रत्ना पति की मृत्यु के बाद अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाती है और उस पर अपनी सारी आशाएँ व योजनाएँ केंद्रित कर देती है। नतीजा बहू के आने के बाद बेटे की योजनाओं में वह कहीं नहीं है। एक लंबे समय तक परिवार की मुखिया की भूमिका निबाहनेवाली रत्ना अब कमाऊ नहीं है। उसकी अगली पीढ़ी के मूल्यों में परिवर्तन आ चुका है। वे विगत को अलविदा कह चुके हैं। उसकी बहू अमेरिका की ही लड़की है, अत: उसका जीवन के प्रति अलग नजरिया है। मगर उसकी अपनी बेटी और बहन भी अमेरिका के समाज की मान्यताओं की वकालत करती हैं। बेटी सलाह देती है, ''ममी, आपको बुढ़ापे में अपना कोई साथी ढूँढ़ लेना चाहिए। यहाँ सब ऐसे ही करते हैं। मेरी सहेली की माँ तो अस्सी की होनेवाली हैं और वे छियासी साल के अपने एक पड़ोसी के साथ जुड़ गई हैं। दोनों मजे से रहते हैं। एक-दूसरे का साथ भी रहता है, एक-दूसरे की देखभाल भी करते हैं। वरना मम्मी, पोते-पोतियों के पास कहाँ वक्त है।''

सुषम बेदी की 'गुनहगार' की रत्ना को उसकी बेटी-दामाद, बहन-बहनोई, बेटी-बहू सब सलाह देते हैं कि वह बुढ़ापे में अकेली कहाँ रहेगी, इसलिए अपने लिए साथी खोज ले। एक समय की कामकाजी महिला रत्ना पति की मृत्यु के बाद अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाती है और उस पर अपनी सारी आशाएँ व योजनाएँ केंद्रित कर देती है। नतीजा बहू के आने के बाद बेटे की योजनाओं में वह कहीं नहीं है। एक लंबे समय तक परिवार की मुखिया की भूमिका निबाहनेवाली रत्ना अब कमाऊ नहीं है। उसकी अगली पीढ़ी के मूल्यों में परिवर्तन आ चुका है। वे विगत को अलविदा कह चुके हैं।

छोटी बहन और बहनोई अमेरिका के रीति-रिवाज की दुहाई देते हुए सुझाव देते हैं—''बहनजी, आपको अपनी जिंदगी अपने ढंग से, अपने बूते पर जीनी चाहिए। आपको भी कोई बॉयफ्रेंड बना लेना चाहिए, यहाँ तो बूढ़े-बूढ़े शादी करते हैं। यहाँ इसे बुराई नहीं माना जाता। उलटे लोग खुश ही होते हैं कि आपने बुढ़ापे में भी जिंदगी को रसमय बना लिया।''

खिलवाड़ में आकर बहन-बहनोई के कहने पर वह अपने विवाह के लिए विज्ञापन दे देती है। जब पत्र और फोटो आने लगते हैं तो वह परेशान हो जाती है। उसके मन में इतने दिनों की दबी इच्छाएँ सिर उठाने लगती हैं। इनमें आर्थिक सुरक्षा, बुढ़ापे में किसी सहारे की पूर्ति की कामना, रिश्तेदारों और अपनों की बेरुखी का बदला लेने की भावना के साथ-साथ यौन संतुष्टि की कल्पना भी सिर उठाती है। और इसी यौन भावना के मन में आते ही उसे अपराध-बोध होता है। उसे लगता है कि जो पति उसे इतना प्रेम और विश्वास करता था, उसी के साथ वह विश्वासघात करने जा रही है। उसे भारत में रह रहे रिश्तेदारों के अपमान और उनके द्वारा रत्ना पर लगाए जानेवाले लांछनों की चिंता भी होती है। उनकी इज्जत की फिक्र होने लगती है। उसे लगता है कि उसके ऐसा करने पर उन लोगों की बड़ी थू-थू होगी—''ओह कितनी शर्म आएगी उन्हें! चाचे-ताये के आगे सबकी नाक कट जाएगी। वे कहेंगे—देखो, दूसरा आदमी कर लिया।'' वह उन्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहती है। वह इतनी संवेदनशील है, अपने भारतीय परिवेश में इतनी रची-बसी है कि अपनी मृत माँ की भावनाओं की सोच भी उसे जकड़ लेती है—''कैसा जमाना आ गया है। रत्ना की माँ आज जिंदा होती तो क्या

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कहती! विधवा बेटी दूसरी शादी कर रही है और वह भी साठ साल की उमर में!''

एक ओर नए जीवन से मिलने वाली उत्तेजना की मन में ललक है, दूसरी ओर उसके भारतीय संस्कार उसे जकड़े हुए हैं। बहुत बरस विदेश में रहने के बावजूद उसका मन विदेश के रंग में पूरी तरह से नहीं रंग पाया है। वह बहुत ऊहापोह में फँसी है। मृत पति के बाद दूसरी शादी जैसा घृणित कार्य नहीं कर सकती है। दु:ख-निराशा में अपने मृत पति को ही संबोधित करती है। उसे अपना भागीदार बनाती है और क्षोभ में भरकर, विवशता के साथ कहती है, ''देखो, सब देखो, मेरा हाल, देखते क्यों नहीं? किस्मत ने मुझे इस हद तक ला दिया।''

खुद को दिया हुआ कोई तर्क उसके काम नहीं आता है। अंत में टटोलकर पाती है कि उसकी यौन लालसा ही उसे इस उम्र में एक और विवाह के लिए उकसा रही है। इस बात से उसे बहुत अपराध-बोध होता है और वह फफक-फफककर रोने लगती है। विवाह-प्रस्ताव के लिए आए सारे पत्र और फोटों को चिंदा-चिंदा कर डालती है। संवेदना के नष्ट होने और संबंधों के प्रैक्टिकल होने की यह कहानी बहुत संवेदनशीलता के साथ रची गई है। रत्ना में एक ओर जिजीविषा है तो दूसरी ओर प्रवास में अकेली जिंदगी का आखिरी दौर काटने की त्रासदी भी।

लंदन में रह रही कहानीकार अचला शर्मा की 'चौथी ऋतु' गुनहगार के मिजाज की कहानी है। प्रवासी हिंदी लेखक द्वारा रची जाकर भी यह प्रवासियों की कहानी नहीं है। हाँ, प्रवासी द्वारा अनुभूत, प्रवासी द्वारा संप्रेषित कहानी है। इसका परिवेश पूर्णरूपेण विदेशी है। सारे पात्र विदेशी हैं, उनकी संवेदनाएँ, सभ्यता-संस्कृति, व्यवहार, मूल्य सब भारत से भिन्न हैं। वृद्धावस्था यहाँ है, मगर उसे देखने का नजरिया भिन्न है।

कहानी शारीरिक रूप से अशक्त होती हुई एक वृद्धा से प्रारंभ होती है। लिंडा लंदन की तीस साल की सबसे बड़ी बर्फबारी की बात कर रही है। क्रिसमस का समय है। उसके फायरप्लेस कार्ड्स सजे हुए हैं। वह याद कर रही है कि लंदन में तीस साल में इतनी बर्फ कभी नहीं पड़ी। इसके साथ वह अपनी उम्र का अंदाजा दे देती है। तीस साल पहले वह केवल चालीस साल की थी, मतलब अब वह सत्तर साल की वृद्धा है। उसके पति को गुजरे दस साल हो चुके हैं। वृद्धा के समक्ष अतीत-स्मरण चाहे-अनचाहे बार-बार चला आता है। पति से उसे शिकायत है कि जब संग-साथ की सबसे ज्यादा जरूरत थी, वह उसे अकेला छोड़कर चला गया। वह पति की तसवीर को उलाहने भरी दृष्टि से निहारती है। इससे यह भी पता चलता है कि उसने सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत किया है। रत्ना और लिंडा दोनों अपने-अपने मृत पति को उलाहना देती हैं। दोनों को मलाल है कि उनके पति उन्हें बेसहारा छोड़ गए हैं। जब बुढ़ापे में साथी की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, वे अकेली हैं।

उसकी एक बेटी और नाती-नातिन हैं। वे उसके पास नहीं रहते हैं। साल में एकाध बार हफ्ता-दस दिन के लिए आते हैं, घर में रौनक करके चले जाते हैं। उनके गुलजार करके चले जाने के बाद घर और ज्यादा सूना हो जाता है। पिछले दस वर्षों से लिंडा नितांत अकेली रह रही है। बेटी की सलाह पर उसने एक किराएदार रखा था। यह चित्रकार लड़की मेरीयन भी अकेली रहती थी। वह युवा थी। उसका अकेलापन ओढ़ा हुआ था। लिंडा की उम्र की तरह यह एक मजबूरी न थी। बुढ़ापे में चुनने की आजादी समाप्त होने लगती है, क्योंकि सामने एक बंद गली होती है। लिंडा की किराएदारिन यह लड़की एक दिन बिना कोई सूचना दिए घर छोड़कर चली जाती है। लिंडा फिर एक बार निपट अकेली है।

लिंडा ने इस बार क्रिसमस पर अपने कुछ पड़ोसियों को अपने यहाँ आमंत्रित किया है। पड़ोसी, जो उसी की तरह अकेले और वृद्ध हैं। उसने उनके लिए बहुत शौक से टर्की और क्रिसमस पुडिंग बनाई है, फ्रिज में वाइन ठंडी की है। वह अपने घुटनों के दर्द के बावजूद उनका इंतजार कर रही है। उसके मन में उन्हें बुलाते समय संशय भी था कि वे लोग आएँगे भी या नहीं! एक दिन पहले बाजार में मिलने पर पीटर ने खुशी जताई थी और आने की स्वीकृति दी थी। इसका मतलब एक मेहमान का आना तो पक्का था। पीटर समय से आ भी जाते हैं। उनके घर की हीटिंग मशीन खराब हो गई है, अत: आग तापने के लिए पुराने फर्नीचर जलाकर किसी तरह काम चला रहे हैं। आते ही वे मृत्यु की बात प्रारंभ कर देते हैं, ''उस दिन टेलीविजन पर

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

एक प्रोग्राम देख रहा था। मिसेज स्मिथ, आपने भी देखा था? सुना कि सर्दियों में बूढ़े लोगों की मृत्यु-दर बढ़ जाती है और क्रिसमस के दौरान आत्महत्याओं की संख्या बढ़ती है।''

बुढ़ापे में यह स्वाभाविक भी है। मृत्यु अवश्यंभावी है। किसी भी क्षण आ सकती है। बचपन, जवानी और बुढ़ापा उसके लिए कोई मायने नहीं रखती है, फिर भी बुढ़ापे में इसका खटका सदा रहता है। इस अवस्था में मृत्यु आपको दिन-रात घेरे रहती है। मगर लिंडा आज मृत्यु की बात करने के मूड में नहीं है। वह तो सेलीब्रेट करना चाहती है। वह जिंदगी की बात करना चाहती है। अत: वह पीटर का ध्यान दूसरी ओर मोड़ देती है। पीटर के बेटा-बहू इस बार क्रिसमस पर नहीं आ रहे हैं। इसका अनुमान पहले उन्हें नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने लिए ओवरकोट न लेकर बच्चों के लिए उपहार खरीदे। जब यह भी मालूम न था कि इस बार लंदन में इतनी जबरदस्त सर्दी पड़ेगी। अब उपहार यूँ ही घर में पड़े हैं और वे भी सर्दी में सिकुड़ रहे हैं।

वे अपने विचारों में खो जाते हैं, मगर आज लिंडा किसी को अकेले अपने विचारों में गुम नहीं होने देगी। वह उन्हें ब्रांडी का गिलास पकड़ाती है और आगे की बातचीत के लिए उकसाती है। पीटर घूमने के शौकीन हैं, यह जानकर लिंडा अपने पति जॉर्ज के विषय में बताती है कि उन्हें भी घूमने का बेहद शौक था, इसी क्रम में वह स्वयं मृत्यु की बात कर बैठती है। वातावरण एक बार फिर उदास हो जाता है। इसी बीच सड़क से पुलिस की गाड़ी का सायरन सुनाई देता है। यह सायरन उन लोगों को याद दिला देता है कि शायद कहीं कोई दुर्घटना हुई है या फिर कोई एकाकी व्यक्ति गुजर गया है। वे लोग पि : मृत्यु की बात करने लगते हैं। इस बार पीटर थोड़ा निर्लिप्त रहते हैं।

थोड़ी देर में रोजमेरी आ जाती है। उसकी उम्र बहुत ज्यादा है। उसका सिर निरंतर हिलने लगा है, पीठ झुककर दोहरी हो गई है। उसके पीछे लॉरेंस भी आ जाते हैं। लॉरेंस जरा गुमसुम तबीयत के आदमी हैं, जल्दी किसी से खुलते नहीं हैं, किसी से बातचीत नहीं करते हैं। वे लोग पड़ोसी हैं, मगर कभी उनका परिचय नहीं हुआ है। लॉरेंस भी काफी बूढ़े हैं और उन्हें सिगार पीने की आदत है। रोजमेरी जब खाँसने लगती है, तब उन्हें भान होता है कि वे कमरे में अकेले नहीं हैं और सामाजिकता का कुछ तकाजा होता है। अकेलेपन के आदी लॉरेंस को पहली बार दूसरों की चिंता होती है और वे पूछते हैं, ''आपको धुएँ से परेशानी तो नहीं हो रही है?''

ये लोग बुढ़ापे और अकेलेपन के नाम पर शैंपेन खोलते हैं। जाम उठाते हैं। इसी बीच मौत एक बार फिर उनके बीच पसर जाती है। लॉरेंस बताते हैं, ''आपको मालूम है, कल तेरह नंबर वाली मिसेज वुड की मौत हो गई?'' लोग मौत से डरे हुए हैं। रोजमेरी को चिंता है कि कहीं उनकी लाश भी घर में दो दिन तक सड़ती न रह जाए और किसी को पता न चले! सब लोग अपने-अपने विचारों, मौत के विचारों में खो जाते हैं। एक बार फिर लिंडा उन्हें उबारती है, जिंदगी की ओर लौटा लाती है, वह कहती है, ''भाई, आज क्रिसमस है। हम लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे नहीं हुए हैं।'' वे लोग एक बार फिर मौत से जिंदगी की ओर लौटते हैं।

फिर लिंडा उन लोगों को खाना लग जाने की सूचना देकर मृत्यु से वर्तमान में खींच लाती है। सब खाने बैठते हैं। खाने की मेज क्रिसमस के लिए सजी हुई है, जिसकी एक-एक चीज लिंडा ने प्रेम से बनाई है। वे चीजें जो कभी उसे उसकी बेटी की याद दिला देती हैं, कभी पति की। लिंडा, जिसने पति की मृत्यु के बाद संगीत सुनना छोड़ दिया था, वह आज 'फोर सीजन' रिकॉर्ड बजाती है। लिंडा सोचती है कि चौथी ऋतु तो मृत्यु है, पर तत्काल मन को झटकाकर खुद से कहती है, ''यह चौथी ऋतु तो मृत्यु का प्रतीक है। जीवन का शीत है। उसके बाद वसंत तो नहीं लौटता। पर नहीं, शायद लौटता है—नन्ही कोंपलों के रूप में किसी नवजात शिशु की गुलाबी मुट्ठियों के रूप में।'' अचला शर्मा यहाँ पुनर्जन्म की भारतीय अवधारणा को लिंडा की सोच में प्रतिपादित करती हैं, खासकर क्रिसमस, जीसेस क्राइस्ट के जन्मोत्सव पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

धीरे-धीरे वे खुलने लगते हैं। रोजमेरी भी कहती है कि उसे कभी विश्वास न था कि कोई कभी उसे आमंत्रित करेगा। वे एक-दूसरे से अपने मन की बातें साझा करते हैं तो औपचारिकता अपनेपन की मिठास में बदलने लगती है। और इतना ही नहीं, वे एक साथ घूमने जाने की योजना भी बनाते हैं। लिंडा पुराने पड़ गए अपने परदे बदलने की बात सोचती । उन सब में संग-साथ को लेकर एक बार

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

फिर उमंग उठती है। वे भविष्य में एक-दूसरे की चिंता करेंगे। अब वे अकेले नहीं हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, संग-साथ उसे मजबूती प्रदान करता है। जीने का उद्देश्य देता है। वृद्धावस्था में भी लोगों को उमंग से भर देता है।

'गुनहगार' की तरह ही यह एक कमरे में घटित होती है। राजेंद्र यादव का मानना है कि प्रवासी हिंदी लेखन नॉस्टेल्जिया की गिरफ्त में है। मगर 'चौथी ऋतु' इस मिथक को तोड़ती है कि प्रवासी हिंदी कहानियाँ केवल गृहातुरता (नॉस्टेल्जिया) की कहानियाँ होती हैं। यह प्रवासी द्वारा लिखी गई है, मगर कहानीकार जिस देश, जिस परिवेश में रह रहा है, वहाँ की सभ्यता-संस्कृति पर उसकी सजग दृष्टि है। यह मानवीय संवेदना को प्रस्तुत करती है। रचनाकार एक संवेदनशील प्राणी होता है। उसके लिए देश-काल से ज्यादा मानवीय अनुभूतियाँ मायने रखती हैं। 2010 के नोबेल पुरस्कार विजेता पेरू के साहित्यकार मारियो वर्गास लोसा कहते हैं कि जिस स्थान में वे रह रहे हैं, वह उनके लेखन के लिए उर्वरक होता है।

खुद को दिया हुआ कोई तर्क उसके काम नहीं आता है। अंत में टटोलकर पाती है कि उसकी यौन लालसा ही उसे इस उम्र में एक और विवाह के लिए उकसा रही है। इस बात से उसे बहुत अपराध-बोध होता है और वह फफक-फफककर रोने लगती है। विवाह-प्रस्ताव के लिए आए सारे पत्र और फोटों को चिंदा-चिंदा कर डालती है। संवेदना के नष्ट होने और संबंधों के प्रैक्टिकल होने की यह कहानी बहुत संवेदनशीलता के साथ रची गई है। रत्ना में एक ओर जिजीविषा है तो दूसरी ओर प्रवास में अकेली जिंदगी का आखिरी दौर काटने की त्रासदी भी।

'चौथी ऋतु' और 'ठुल्ला किलब' में मूलभूत अंतर होते हुए भी कुछ समानताएँ हैं। दोनों कहानियाँ विदेश की पृष्ठभूमि पर हैं, बूढ़ों के एक समूह के इर्द-गिर्द रची गई हैं। दोनों कहानियों को संवाद आगे बढ़ाते हैं। दिव्या माथुर की कहानी के पात्र भारतीय हैं और ज्यादातर कहानी घर के बाहर पार्क में चलती है, जहाँ वे सब सैर के लिए आए हुए हैं। 'गुनहगार' की रत्ना अपना ही रेहा-रेशा उधेड़ती है, जबकि जानकी और पुष्पा दूसरों की बखिया उधेड़ने में जुटी हैं। 'गुनहगार' की भाँति यहाँ एकांत और एकालाप नहीं है। यह 'चौथी ऋतु', 'पासपोर्ट का रंग', 'गुनहगार' कहानियों से बिलकुल अलग मिजाज की कहानी है। इस कहानी में ऐसे पात्र हैं जो उम्रदराज हैं और अपने बेटे-बहू अथवा बेटी-दामाद के पास रह रहे हैं या कुछ दिनों के लिए विदेश में रहने आए हैं। ये लोग न तो यहाँ के बाशिंदे हैं और न ही अपनी मरजी से आए हैं। इनके पास यहाँ आने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। पूरी कहानी का वार्तालाप पढ़कर कहीं से नहीं लगता है कि आप दिल्ली में नहीं हैं, जब तक कि अंत नहीं आ जाता है और हाइड पार्क का नाम नहीं आता है। लगता है, आप दिल्ली में और वहाँ भी खासतौर से चाँदनी चौक में हैं। यह इस कहानी की भाषा का कमाल है। संवाद यह भी दिखाते हैं कि स्थान बदल जाने से मानसिकता नहीं बदल जाती है, जीवन के प्रति नजरिया नहीं बदल जाता है। समाज को देखने का तरीका नहीं बदल जाता है। पूर्वग्रह बने रहते हैं।

'ठुल्ला किलब' में सासें हैं, जो बहू के राज में अपने मनपसंद खाने को तरस रही हैं। बहू को अरहर की दाल में जीरे का सही छौंक लगाना नहीं आता है, एक अन्य सास को बहू के छौंक से परेशानी है। मतलब यह कि ये मिलते ही बहू की आलोचना का पिटारा खोल लेती हैं। करने के लिए इनके पास एक ही काम है कि एक-दूसरे को 'बहू-पुराण' सुनाना। उम्र ने खाने की ललक बढ़ा दी है, जबकि उम्र के साथ आई बीमारियों ने खाने पर पाबंदी लगा रखी है। इसका दोष भी बहू के सिर। किसी को शूगर है तो किसी को रक्तचाप! मगर इनकी सबसे बड़ी बीमारी दूसरों के फटे में पाँव डालने की है। किसकी किससे आशनाई चल रही है, कौन किससे शादी कर रहा है, कौन पार्टियों में ससुर के साथ बिना ढंग के कपड़े पहने जा रही है—ये ही इनके मनपसंद विषय हैं। मगर इनकी जिंदादिली देखने लायक है। ये एक-दूसरे से खूब हँसी-मजाक करती हैं। चुहल करती हैं। एक-दूसरे का पैर खींचती हैं। एक-दूसरे को बुढ़ापे में शादी करने की सलाह भी देती चलती हैं।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

बेटे का सुबह-सुबह बेड टी बनाकर बेडरूम में ले जाना इन्हें खलता है। क्योंकि इनके पति जब जीवित थे, उन्होंने यह कभी नहीं किया। ये भूल जाती हैं कि ये अपनी बहुओं की भाँति जॉब करने घर के बाहर नहीं जाती थीं। देर रात ऑफिस से थककर घर नहीं लौटती थीं। इनके पति ने कभी इन्हें एक घूँट पानी नहीं दिया था, इसका इन्हें मलाल है। अगर कभी देते तो भी यह इन्हें अच्छा न लगता। ये स्वयं को पुरुष की दृष्टि से ही तौलती हैं। कोई पति अपनी पत्नी को चाय देता है तो इस पर ये खुश नहीं हो सकती हैं। ये बूढ़ी स्त्रियाँ इसलिए भी दु:खी हैं कि इनके बेटे बहू के पास ही रहते हैं, उनके पास इनके लिए समय नहीं है और पोते-पोतियों के पास भी इनके लिए समय नहीं है। वे बच्चे को अपनी भाषा सिखाना चाहती हैं तो बेटे- बहू को लगता है कि बच्चे कन्फ्यूज हो जाएँगे। यहाँ दिव्या माथुर बड़े मार्के की बात कहती हैं, ''मैं तोसे कऊँ पुस्पा, पोता-पोती को भी म्हारे लिए टैम नई। एक दिन हमने कई कि बिटवा, अपनी भासा तो नेक सीक लो, तो बऊ ने कई कि जिया कनैफूज न करो बच्चन को।''

''हाय राम जिया, मरी अपनी भासा सीकने से कोई कनैफूज होता है का?''

''वई तो, गुजराती, पंजाबी और उर्दू वाले नई होते। हिंदी वालों के बच्चे कन्फ्यूज क्यूँ होवे हैं, ये समझ नई आवै है हमें तो पुस्पा।''

इन्हें लगता है कि केवल घर की चौकसी करने के लिए इन्हें यहाँ बुलाया गया है। इनका दु:ख है कि देश में परिवार में शादी-ब्याह होने पर भी ये भागीदारी नहीं कर पाती हैं। जब भी वे किसी पारिवारिक आयोजन में भारत जाने की बात करती हैं, पैसों का रोना रोया जाता है। जबकि बेटा-बहू देश-विदेश की यात्रा करते रहते हैं। देश में छूट गए परिजनों से इनका लगाव स्वाभाविक है। हँसी, व्यंग्य, वेदना है कहानी के पूर्वार्द्ध में, पर परनिंदा का स्वर बहुत प्रबल है। अज्ञेय को एक बार सियारामशरण गुप्त ने कहा भी था—''सच बताएँ, परनिंदा के बराबर सुख दुनिया में दूसरा नहीं है।'' और उसके बाद वह खिलखिलाकर हँसने लगे थे।

वे किसी रिश्तेदार डॉक्टर को देखते ही उससे खड़े-खड़े इलाज करवाना अपना हक मानती हैं। जबकि विदेश में भारतीय भी बहुत प्रोफेशनल होता है। वे उन्हें क्लिनिक में आने को कहता है। आज की भारतीय पीढ़ी भी ऐसा ही कहेगी। समय बदल चुका है। जो समय के साथ नहीं चल पाते हैं, उन्हें बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ता है। भावनात्मक रूप से बहुत कष्ट सहना पड़ता है। प्रोफेशनल होने का मतलब है—भावुकता से दूर रहना, भावनाओं को भी पैसे से तौलना। कहना मुश्किल है—कौन सही है, कौन गलत है!

यह कहानी एक कलाइडोस्कोप है। चटपटी बातचीत एक विषय से दूसरे विषय पर सरकती जाती है। एक के बाद दूसरी आकृति उभरती जाती है। भाषा की रवानगी देखते बनती है। क्लब पार्टी की बात हो रही है कि किसी की सास के चल बसने की बात निकल पड़ती है, बस फिर क्या है, वे लोग शुरू हो जाती हैं, ''हाय राम जिया, तुमै नई मालूम। मैनू की सास तो नई रई। परके साल गुजर गई। तभई तो ससुर बिलैत बुला लिये, जो है सो है।''

''मैं तोसे कऊं पुस्पा, कित्ती बड़ी बात है कि सुहागिन मरी म्हारी तुम्हारी तरह''

मुझे अपनी दादी की याद हो आई, जो बरामदे में बैठकर सड़क से गुजरने वाली हर चीज, हर आदमी के विषय पर कुछ-न-कुछ बोलती जाती थीं। चाहे वह कार हो, स्कूटर हो, रिक्शा हो या आदमी, कुत्ता, बिल्ली। बातों का कोई क्रम न होता, पर वे लड़ी पिरोती जातीं। जो भी आँख के सामने से गुजरता, उस पर अपनी ओर से कुछ जोड़ती जातीं। यहाँ भी दो वृद्धाएँ बात कर रही हैं। किसी की सास के मरने से हुए रँड़ए की बात से उन्हें चुहल सूझती है—''जो है सो है जिया, अबै चानस है तुमारा, नई!'' तभी उनकी दृष्टि चुंबन लेते जोड़े पर पड़ जाती है। तुरंत बातों का रुख युवा पीढ़ी और विदेश में रह रहे लोगों की नुक्ताचीनी पर मुड़ जाता है। थोड़ी देर में मिनी स्कर्ट की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। कितनी बेशरम है यह पीढ़ी! ससुर के साथ पार्टी में जाती है! और वह भी बिना ढंग के कपड़ों के!''जो है सो है, कम-से-कम पालटी में तो ढंग से कपड़े पैन के आना चाहिए, वो भी ससुर के साथ।'' बेपरदगी के साथ वे विधुर ससुर भी लपेटे में आ जाते हैं। उन पर आरोप है कि पत्नी के मरने पर एक साल सोग न मना सके और मजे करने लगे हैं।

संयोग की बात है कि वे विधुर इन लोगों के पास पहुँचते हैं और इनमें से एक, जानकी की पहचान अपनी बचपन की सहपाठिन के

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

रूप में करते हैं। जब वे निकट आ रहे थे तो इन लोगों को चिंता होने लगती है कि आज इन्होंने ढंग के कपड़े नहीं पहने हैं, बाल ठीक से नहीं सँवारे हैं—''हय राम पुस्पा, हमने तो आज धोती बी ढंग से नई पैनी, देखियो चुटिया बी बनाने का टैम नई मिला।'' मतलब यह कि इस उमर में भी पुरुष की दृष्टि में अच्छी दिखने की लालसा है, जो अपने आप में अच्छी बात है, मगर इससे इनके दुमुँहे व्यवहार का पता चलता है, जिसका इन्हें खुद भी ज्ञान नहीं है। अपने लिए एक नियम और दूसरों के लिए दूसरे नियम!

वृद्ध, जो इनके पास आते हैं, वे खासे आकर्षक हैं। सत्तर के हैं, मगर लगते नहीं हैं। पत्नी के मरने के बाद राघव बेटा-बहू के आग्रह पर यहाँ आए हैं। कुछ दिन रहेंगे। यहाँ से कहानी नया मोड़ लेती है। वे जानकी के साथ पढ़े थे. यह सुनते ही जानकी की सहेली पुस्पा मौसी उनके कान में कहती है, ''जो है सो है, मामला जमै सा दीखै है, जिया '' इसी बीच इन लोगों को मीना की माँ का फोन याद आता है, जिसने अपनी बेटी के बारे में बताया था कि वह एक मुसलमान लड़के के साथ रह रही है। राघव की सोच अलग है। वे इन लोगों को बताते हैं कि अब भारत में भी लिव-इन रिलेशनशिप का चलन हो गया है। सुनकर जानकी और पुस्पा को ताज्जुब होता है, ''ए मैं तोसे कऊँ, कबी सोचा था कि हमारी जात में बी ऐसा होगा! इत्ती सी गोद खिलाई कम्मखत, ऐसे गुल खिलाएगी छोकड़ी!'' उन्हें अपने जमाने की याद हो आती है। राघव बदलाव के पक्ष में है और वे पुष्पा को भी उसमें समेट लेते हैं। जब ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चों की बात आती है तो इसी जानकी को पुष्पा की बातें राघव की उपस्थिति के कारण पुरातनपंथी लगने लगती हैं, ''मैं तोसे कऊँ पुस्पा, तू बी का पचड़ा ले के बैठ गई!''

राघव दिल्ली के ग्लोबलाइजेशन के विषय में बताते हैं, जो अब लंदन जैसी ही हो गई है। वहाँ भी किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है। वे कहते हैं कि रिटायर्ड लोगों की हालत सब जगह एक जैसी है। यहीं से दिव्या माथुर कहानी को नया मोड़ देते हुए कहानी में इन वृद्धों का क्लब बनवा देती हैं। यहाँ पीढ़ियों की टकराहट और विचारों का भेद स्पष्ट रूप से नजर आता है। बहू को सास का यूँ उत्साहित होना नहीं रुचता है। वह अपने पति से कहती है, ''अभी राघवजी से मिले आधा घंटा भी नहीं हुआ है और देखो, कैसी फार्वर्ड दिख रही हैं।'' क्लब के स्थान और नियम को लेकर बहस चलती है। कई लोग मिलकर हल निकालें तो समस्या सुलझ जाती। ये वृद्ध भी स्वयं अपनी समस्या का समाधान खोज लेते हैं। हाँ, इस 'ठुल्ला किलब' के कार्यक्रम भजन-कीर्तन में ही अपनी तृप्ति पाते हैं।

गोपालदासजी का दु:ख लिंडा, जानकी, पुस्पा या रत्ना से बिलकुल अलग है। गोपालदासजी बेटे-बहू के पास लंदन में रहे हैं। वे बूढ़े हैं मगर अशक्त नहीं हैं और अकेले भी नहीं हैं। बेटे-बहू, पोता-पोती के साथ हैं। उन्हें परिवार में या परिवार से कोई तकलीफ नहीं है। इस उम्र में उनकी समस्या दूसरी है। 'पासपोर्ट का रंग' तेजेंद्र शर्मा की एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो एक साथ दो देशों, भारत तथा इंग्लैंड में रह रहा है। उनसे अपना देश भारत नहीं छूटता है। इतना ही नहीं, मजबूरी में उन्हें उस देश की नागरिकता लेनी पड़ी है। नागरिकता लेते समय उन्हें उस साम्राज्य की वफादारी की कसम खानी पड़ी है, जिस साम्राज्य को कभी गोली खाकर उन्होंने अपने देश से भगाया था। एक समय उन्होंने इसी साम्राज्य को भारत से निकाल बाहर करने की शपथ ली थी। गोली खाई थी। यही बात उनके अंतर को कचोटती है। उनका मन उन्हें धिक्कारता है, क्योंकि वे स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े थे। वह भारत लौट जाना चाहते हैं। दो मानसिकता में बँटे व्यक्ति हैं। रात-दिन स्वदेश लौटने के सपने देखते हैं। प्रधानमंत्री की दोहरी नागरिकता की घोषणा उन्हें उत्साहित कर देती है। मगर राजनीतिक घोषणाएँ लोगों की इच्छाओं से कार्यान्वित नहीं होती हैं। विस्थापन वे पहले भी झेल चुके थे। लाहौर से दिल्ली आ बसे थे। मजबूरी थी। दंगे हो रहे थे। अब फिर एक बार उन्हें मजबूरी में ही देश छोड़ना पड़ा। वे फरीदाबाद की अपनी कोठी में लौट जाना चाहते हैं। उनके बेटे की सोच भिन्न है। उसे लगता है कि अब इन बातों को याद करने का क्या फायदा! इंद्रेश कहता है, ''पापा, आप भी कमाल करते हैं। अब भला इस वक्त आप पार्टीशन की बात लेकर बैठ जाएँगे तो लाइफ आगे कैसे बढ़ेगी? किया होगा अंग्रेजों ने जुल्म कभी हमारे देशवासियों पर! लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि हम अपने जीवन रोककर बस उसी पल को बार-बार जिए जाएँ!''

उन्हें प्रवासी देश में कैद और लाचारी लगती है। इस मजबूरी से

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

छुटकारे की किरण उन्हें नजर आती है। दोहरी नागरिकता का चुग्गा उन्हें लुभाता है। वे दूतावास का चक्कर लगाते हैं। कब फॉर्म आए और वे दोहरी नागरिकता लेकर अपरे मन के संताप को थोड़ा कम करें! मगर उन्हें कोई नहीं बता पाता है कि फॉर्म कब आएँगे। वे इतने उत्साहित और व्याकुल हो जाते हैं कि लोग उन्हें पागल करार देने लगते हैं। वे दोहरी नागरिकता पाने का स्वप्न लिये हुए इस दुनिया से कूच कर जाते हैं। इंतजार नहीं कर पाते हैं और दोनों देशों के पासपोर्ट अपने हाथों में लिये मर जाते हैं। ''बेटे-बहू ने देखा कि वे एकटक छत की ओर देख रहे थे। उनके हाथ में लाल रंग का ब्रिटिश पासपोर्ट था और दाएँ हाथ में नीले रंग का भारतीय पासपोर्ट। उन्होंने ऐसे देश की नागरिकता ले ली थी, जहाँ के लिए इन दोनों पासपोर्टों की आवश्यकता नहीं थी।'' यह कहकर कहानीकार व्यवस्था पर व्यंग्य करता है।

स्वयं तेजेंद्र का कहना है कि 'पासपोर्ट का रंग' कहानी के बाऊजी का पूरा चरित्र मैंने अपने बाऊजी पर आधारित किया है, जबकि मेरे बाऊजी मेरे ब्रिटेन प्रवास करने से बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। प्रसिद्ध कहानीकार और आलोचक अजय नावरिया कहते हैं, ''पासपोर्ट का रंग' कहानी आधुनिक परिदृश्य में वस्तुत: इसी मनोविकार से जूझने की कहानी है। वर्तमान समय में भावुकता के लिए कम-से-कम दया और ज्यादा-से-ज्यादा खीज है।''' पासपोर्ट का रंग' वृद्धावस्था में विदेश जानेवाली पिछली पीढ़ी की गृहातुरता की पराकाष्ठा की कहानी है। अपने देश जाने की गहन आकांक्षा, वहाँ की नागरिकता लेने की जिद में जान दे देने की कहानी है।

'गुनहगार', 'चौथी ऋतु', 'ठुल्ला किलब' तथा 'पासपोर्ट का रंग' प्रवासी कहानीकारों द्वारा वृद्धावस्था के कथानक पर लिखी गई कहानियाँ हैं। इनकी भाषा, शिल्प और वातावरण भिन्न-भिन्न हैं। वृद्धावस्था की विभिन्न मन:स्थितियों को दरशानेवाली ये प्रवासी कहानियाँ साहित्य में कितना कुछ जोड़ रही हैं और हिंदी साहित्य को समृद्ध बना रही हैं।

□

C2/4 Gangotri Complex
151 New Baradwari,
Jamshedpur-831001

मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदी में पूछो, मैं तुम्हें उसमें बातें बता सकूँगा।

—अमीर खुसरो

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

26 हिंदी का प्रचार-प्रसार ही एकमात्र धर्म

● जितेंद्र कुमार मित्तल

भारतीय भाषाशास्त्र के विश्वप्रसिद्ध विद्वान् स्व. डॉ. जगदीशचंद्र जैन का नाम लेते ही मस्तिष्क में एक ऐसे कर्मठ व्यक्ति का चित्र उभर आता है, जिसने अपना समस्त जीवन निष्काम भाव से माँ भारती की सेवा में न्योछावर कर दिया, और जो सदैव भारतीय संस्कृति तथा हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार को ही अपना एकमात्र धर्म मानता रहा। दुनिया भर के विद्वान् डॉ. जैन को हिंदी के एक कुशल प्राध्यापक और प्राकृत भाषा के एक आधिकारिक विद्वान् के रूप में जानते हैं, लेकिन वास्तव में वे एक दार्शनिक तथा सृजनकार थे और सदैव अपने जीवन का उद्देश्य मानवमात्र के विकास को ही मानते रहे। अपने संघर्षपूर्ण तथा अभावों से भरे जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव के दौरान उन्होंने जो अनुभव तथा ज्ञान संचित किया, उसने उन्हें मानवीय सीमाओं को लाँघकर सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा दी और इस दृष्टि से उनका जीवन किसी महानायक से कम दिलचस्प नहीं रहा। उनके जीवन की कहानी किसी महाकाव्य जैसी लगती है। बहुत संभव है कि इस कहानी में आपको महाकाव्य जैसी भव्यता नजर न आए, लेकिन उसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं।



- जन्म : 26 नवंबर, 1939
- शिक्षा : एम.ए. समाजशास्त्र
- लगभग अर्द्ध शताब्दी से हिंदी की सेवा में
- भाषा, कला, संस्कृति, व्यापार, राजनीति, यात्रा आदि विषयों में समान रुचि। परंतु इन सभी में हिंदी के प्रति प्रेम के कारण आपने इस भाषा के प्रचार कार्य को सदैव अपनी प्राथमिकता बनाए रखा
- धर्मयुग, कहानी, ज्ञानोदय, मनोहर कहानियाँ, सरिता, गृहशोभा, सत्यकथा, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, मनोरमा, दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, दैनिक भास्कर, अमर उजाला आदि में लेख प्रकाशित
- स्वयं धर्मयुग और नवभारत टाइम्स में पत्रकारिता तथा संपादन कार्य में जुड़े
- फिल्म, टी.वी. धारावाहिक एवं डॉक्युमेंटरी निर्माण में भी सक्रिय।

डॉ. जैन के शिष्यों, साहित्यिक मित्रों तथा शोधकर्ताओं की एक लंबी सूची है, जो उनके जीवन का किसी-न-किसी विधा से अवश्य प्रभावित हुए हैं। चाहे 1952 में चीन के पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी का विधिवत शिक्षण प्रारंभ करने की बात हो, या फिर जर्मनी के कील विश्वविद्यायलय में प्राकृत भाषा केप्राचीन साहित्य संबंधित शोधकार्य के साथ-साथ वहाँ के विद्वानों को हिंदी का पाठ पढ़ाने जैसा कोई कार्य, उन्होंने किसी भी काम को छोटा नहीं माना, और शायद इसीलिए जब वे कुछ समय ब्राजील के साव पावलो नामक नगर में रहे, तो उनसे भारतीय दर्शन तथा हिंदी पढ़नेवालों की एक लंबी जमात बन गई।

इस महानायक के जीवन की शुरुआत बहुत साधारण थी। उनका जन्म 1909 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बसेड़ा नामक एक छोटे से गाँव में एक मध्यमवर्गीय वैश्य परिवार में हुआ था। यह गाँव मुजफ्फरनगर से लगभग 12 मील की दूरी पर स्थित है। उनके पिता काँजीमल जैन यूनानी दवाइयों की एक छोटी सी दुकान चलाते थे। व्यापार के साथ-साथ उनकी दिलचस्पी संगीत में भी थी और वे सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे। शायद संगीत का शौक बालक जगदीश को अपने पिता से विरासत में ही मिला होगा। परिवार में उनके दो बड़े भाई तथा एक बड़ी बहन भी थी, लेकिन उनके एक भाई तथा बहन का छोटी उम्र में ही देहांत हो गया था। जगदीश अभी ढाई साल के ही थे कि प्लेग की महामारी में उनके पिता चल बसे और परिवार के भरण-पोषण का भार उनकी माँ के ऊपर आ पड़ा। जिस सीधी-सादी महिला ने कभी घर के बाहर कदम भी नहीं रखा था, उसे इस विकट परिस्थिति में अपने दो बेटों को पढ़ा-लिखाकर किसी लायक बनाने के लिए कमर कसकर जिंदगी की इस जंग में कूदना पड़ा। इन्हीं दिनों उनके बड़े भाई गुलशन राय की एक आँख चेचक

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

की भेंट चढ़ गई। गुलशन राय शुरू से ही अपने पिता के दवाइयों के कारोबार में दिलचस्पी लेने लगे थे और धीरे-धीरे उन्होंने परिवार की सारी जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले थी। उन्होंने अपने छोटे भाई जगदीश की पढ़ाई का सिलसिला शुरू किया और वे उन्हें गाँव की प्राथमिक शाला में पढ़ने भेजने लगे।

गाँव की इस छोटी सी पाठशाला में बालक जगदीश ने पंडित मंगतराम से हिंदी के प्रारंभिक पाठ पढ़ने शुरू किए। उस समय उन पंडितजी ने इस बात की सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि यह नन्हा बालक आगे जाकर देश का इतना बड़ा भाषाविद् बनेगा कि विदेशी छात्र भी उससे शिक्षा प्राप्त करने में गर्व का अनुभव करेंगे। उनके गुरु को भी उनके पिता की ही तरह सितारवादन का शौक तो था ही, साथ ही वे शतरंज भी बहुत अच्छी खेलते थे। नौ साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते जगदीश ने स्कूल की पढ़ाई पूरी कर ली तो उनके बड़े भाई ने परिवार की गरीबी की हालत को देखते हुए उन्हें किसी ऐसे काम में प्रशिक्षित करने की सोची, जिससे वे अच्छा पैसा कमा सकें। उस समय वैश्य परिवार के लड़के या तो अपनी खुद की दुकान चलाते थे या फिर वे दूसरे दुकानदारों के यहाँ मुनीम की नौकरी करते थे। गुलशन राय ने अपने छोटे भाई को मुनीम बनाने की सोची। उन दिनों मुनीम हिसाब-किताब रखने के लिए एक विशेष भाषा 'मुंडी' का इस्तेमाल करते थे, अत: जगदीश को 'मुंडी' सीखने के लिए पास के ही एक कस्बे देवबंद भेज दिया गया। देवबंद में मुंडी पढ़ानेवाला शिक्षक बच्चों की बहुत पिटाई करता था, अत: जगदीश को वहाँ से वापस बुला लिया गया। तभी गुलशनरायजी को पता चला कि मेरठ जिले के हस्तिनापुर नामक स्थान पर 'ऋशभ ब्रह्मचर्याश्रम' नामक एक संस्था बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा देती है। उन्होंने अपनी माँ के विरोध के बावजूद जगदीश को उच्च अध्ययन के लिए वहाँ भेज दिया।

इस आश्रम में पहुँचकर डॉ. जैन के जीवन का वह महत्त्वपूर्ण दौर शुरू हुआ, जिसने उन्हें अंतत: एक इंडोलॉजिस्ट (भारतीय भाषाशास्त्र का विद्वान्) के रूप में ख्याति अर्जित करने योग्य बनाया। यह एक जैन गुरुकुल था और यहाँ पहुँचकर उनकी पहचान जगदीश चंद्र से बदलकर 'ब्रह्मचारी मृगेंद्र' हो गई। यह उनके लिए एकदम ही अलग अनुभव था। आश्रम के सभी विद्यार्थी सीधा-सादा तथा अनुशासित जीवन बिताते थे और अपना सारा समय अध्ययन में ही व्यतीय करते थे। उन्हें ब्रह्म- मुहूर्त में बहुत जल्दी उठना पड़ता था। दैनिक कर्म से निवृत्त होने के बाद वे प्रार्थना करते थे और अपना पाठ याद करते थे। एक सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी अजमेर के अर्जुनलाल सेठी के एक निकट सहयोगी महात्मा भगवानदीन इस आश्रम के संचालक थे। बाद में महात्मा भगवानदीन को अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण यह आश्रम छोड़ना पड़ा। अपने जीवन के इस काल में जगदीशचंद्र को जैन धर्म के मूलभूत सिद्धांतों का गहन अध्ययन करने का अवसर मिला और यहाँ से अर्जित अपने ज्ञान के आधार पर ही बाद में उन्होंने जैन समाज में व्याप्त रूढ़ियों की डटकर आलोचना भी की। उनके इन्हीं विचारों के कारण जैन समाज बाद में उन्हें एक क्रांतिकारी विचारक मानने लगा था। आश्रम के अनुशासित जीवन ने उन्हें भविष्य के कठिन जीवन का सामना करने योग्य बनाया।

सन् 1936 में डॉ. जैन ने मल्लिसेन की 'स्यादवाद मंजरी' का संपादन किया, जिसमें जैन दृष्टिकोण से भारतीय दर्शनशास्त्र की 6 व्यवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया था। इसे पाठकों के सामने सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने न केवल इस महान् ग्रंथ का हिंदी अनुवाद किया, वरन् अपनी टीकाएँ तथा व्याख्याएँ भी उसमें शामिल कीं। उसी वर्ष उन्होंने संस्कृत की एक दुर्लभ पांडुलिपि 'जंबुस्वामी-चरित्र' का हिंदी अनुवाद भी अपनी स्वयं की व्याख्याओं के साथ प्रकाशित करवाया। इसके अगले साल ही उन्होंने 'श्रीमद् राजाचंद्र' (रायचंद्र भाई द्वारा अपने भक्तों को लिखे गए पत्र) का प्रकाशन किया।

उक्त ब्रह्मचर्याश्रम में कुछ समय व्यतीत करने के बाद वे मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले के मुरैना नामक स्थान पर एक अन्य जैन आश्रम में पढ़ने चले गए। यह आश्रम पंडित गोपालदास द्वारा स्थापित

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

किया गया था। इसके बाद सन् 1923 में 14 वर्ष की आयु में वे 'स्यादवाद जैन महाविद्यालय' में अध्ययन करने के लिए वाराणसी चले गए। यह विद्यालय गंगा के किनारे भदैनीघाट पर स्थित था। यहाँ उन्होंने संस्कृत, जैन धर्म, व्याकरण, साहित्य तथा न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। वाराणसी अथवा काशी उस समय शिक्षा का बहुत बड़ा केंद्र माना जाता था और तब वहाँ ऐसी अनेक संस्कृत पाठशालाएँ थीं, जिनमें नि:शुल्क शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं, इन संस्थानों के अपने छात्रावास होते थे, जिनमें रहने तथा भोजन की व्यवस्था भी नि:शुल्क होती थी। ये संस्थाएँ सदाव्रत चलाती थीं, जिसमें सैकड़ों लोग प्रतिदिन नि:शुल्क भोजन करते थे। यहाँ डॉ. जैन को ज्ञान के अथाह महासागर में गहरी डुबकी लगाने का ऐसा अवसर प्राप्त हुआ, जिसने उनके भावी जीवन की दिशा निर्धारित कर दी।

वाराणसी में जहाँ एक ओर उन्होंने संस्कृत भाषा तथा साहित्य का ज्ञान अर्जित किया, वहीं दूसरी ओर उन्हें भारतीय संस्कृति की महान् विरासत से भी साक्षात्कार हुआ। यहीं उन्होंने जैन धर्मशास्त्र की परीक्षा तो उत्तीर्ण की ही, साथ ही आयुर्वेद का भी अध्ययन किया। लेकिन आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़े होने के लिए इतना ही काफी नहीं था, इसके लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान भी बहुत जरूरी था। अंग्रेजी की कक्षा में प्रवेश लेने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे, ऐसे में कुछ दिनों तक उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के एक वरिष्ठ छात्र से कुछ दिनों तक अंग्रेजी सीखने की कोशिश की। बाद में अपने कुछ सहपाठियों के साथ मिलकर उन्होंने किसी तरह सन् 1926 में पंजाब से मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। बड़े भाई गुलशन राय तमाम आर्थिक तंगियों के बावजूद अपने छोटे भाई को अच्छी शिक्षा दिलाकर उन्हें जीवन में एक सफल इनसान बनाना चाहते थे। उस समय इंजीनियरों तथा ओवरसियरों की अच्छी माँग थी, अत: जगदीशचंद्र ने अपने भाई के आग्रह पर वाराणसी में विज्ञान की पढ़ाई शुरू कर दी, ताकि आगे जाकर वे ओवरसियर बन सकें। उन्हें अपनी इस पढ़ाई के लिए एक छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी, लेकिन विज्ञान की कोई पृष्ठभूमि न होने के कारण वे एकदम से इंटर की पढ़ाई में अपना मन नहीं लगा सके और न ही रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज में उन्हें प्रवेश मिल सका। किसी तरह इंटर में तो वे पास हो गए; लेकिन उसके बाद विज्ञान को उन्होंने हमेशा के लिए अलविदा कह दिया और 1930 में उन्होंने बी.ए. की डिग्री हासिल की। बी.ए. के बाद उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. करने के इरादे से विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। उनका कॉलेज का जीवन बहुत कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरा। उस समय न तो उनके पास कॉलेज की फीस भरने के लिए पैसे होते थे और न ही प्रतिदिन का खर्च चलाने तथा अपना पेट भरने का कोई स्थायी बंदोबस्त ही था। इसी आर्थिक तंगी के दौर से गुजरते समय उनके दिमाग में क्रांतिकारी विचारों ने जन्म लिया। गंगा तट पर बैठकर वे अकसर समाज के गरीब तथा शोषित वर्ग के उत्थान के लिए मन-ही-मन योजनाएँ बनाया करते थे, और शायद इसी दौरान वे मार्क्सवाद की ओर भी आकर्षित हुए। तब तक उन्हें यह अहसास भी हो गया था कि जब तक देश अंग्रेजो की पराधीनता से मुक्त नहीं होता, तब तक हमारा वास्तविक विकास नहीं हो सकता। शायद इसीलिए जब सन् 1930 में महात्मा गांधी ने अपना सत्याग्रह-आंदोलन शुरू किया तो वे सबकुछ छोड़कर उस आंदोलन में शामिल हो गए। वे वाराणसी छोड़कर अपने गाँव लौट आए और ग्रामवासियों को अंग्रेजों के खिलाफ संगठित करने के काम में जुट गए। तभी उनकी गिरफ्तारी का वारंट जारी हो गया, जिससे बचने के लिए वे अजमेर चले गए। वहाँ एक स्कूल में उन्होंने पढ़ाना शुरू कर दिया। उस समय गांधी टोपी लगाया करते थे। स्कूल के हेडमास्टर ने उनसे गांधी टोपी न लगाने का आग्रह किया; लेकिन उन्होंने टोपी त्यागने के बजाय स्कूल की नौकरी को लात मारना ज्यादा बेहतर समझा।

कालांतर में गांधीजी ने अपना सत्याग्रह-आंदोलन वापस ले लिया और अंग्रेजों से बातचीत का रास्ता अपनाया। तब डॉ. जैन भी अपनी एम.ए. की पढ़ाई पूरी करने के लिए बनारस लौट आए। वहाँ दर्शनशास्त्र में उन्होंने अपनी एम.ए. की डिग्री हासिल की। इससे पूर्व सन् 1929 में बसोड़े के ही एक संपन्न वैश्य परिवार की सुपुत्री कमलश्री से उनका विवाह कर दिया गया था। जब डॉ. जैन बनारस में अपनी पढ़ाई पूरी कर रहे थे तो उनकी पत्नी को अपने जेठ तथा सास की सेवा के लिए गाँव में ही रहना पड़ा। एम.ए. के बाद उन्हें गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन स्थित विश्वभारती विश्वविद्यालय में शोधकर्ता के रूप में कार्य करने के लिए एक छात्रवृत्ति मिल गई।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

यह विश्वभारती का सर्वाधिक गौरवपूर्ण काल था। उस समय शांतिनिकेतन के कोने-कोने में गुरुदेव की छाप नजर आती थी और वहाँ दुनिया भर के विद्वानों तथा शिक्षाविदों का मेला-सा लगा रहता था। यहाँ डॉ. जैन का मानसिक तथा बौद्धिक पुनर्जन्म हुआ। अपने शोधकार्य में तो वे पूरी तरह से निमग्न रहते ही थे, साथ ही शांतिनिकेतन की अपनी विशिष्ट परंपरा तथा संस्कृति को भी उन्होंने पूरी तरह आत्मसात् कर लिया। यहाँ उन्होंने बंगाली बोलना तो सीख ही लिया था, साथ ही वे रवींद्र संगीत में भी पारंगत हो गए थे। बाद में साक्षात्कार में डॉ. जैन ने रवींद्रनाथ टैगोर के साथ अपने व्यक्तिगत संबंधों को अपने जीवन की सबसे बड़ी धरोहर बताया था। गुरुदेव के अलावा वहाँ वे विधुशेखर शास्त्री, क्षितिमोहन सेन, नंदलाल बोस, गुरुदयाल बोस, हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसी अन्य अनेक महान् हस्तियों के संपर्क में भी आए और उन सभी का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। इस सबके फलस्वरूप उनके चिंतन तथा व्यक्तित्व में एक सकारात्मक परिवर्तन आया। शांतिनिकेतन में उनकी पत्नी कमलश्री भी उनके साथ ही रहती थीं, जो बाद में परिवार के परिचितों तथा रिश्तेदारों में 'बा' के नाम से जानी जाने लगीं। 'बा' ने भी शांतिनिकेतन में अपने प्रवास के दौरान बंगाली भाषा तथा दस्तकारी सीख ली थी। यहाँ रहने से उनके जीवन में भी एक सकारात्मक परिवर्तन आया।

सन् 1934 में शोध कार्य पूरा हो जाने के बाद वे एक बार फिर नौकरी की तलाश में निकल पड़े। तभी एक अंग्रेजी अखबार में मुंबई के स्थानकवासी जैन सम्मेलन के व्यवस्थापक पद की नौकरी का विज्ञापन निकला। यह नौकरी उन्हें आसानी से मिल गई। उन्हें संस्था के दफ्तर के कामकाज के साथ-साथ एक गुजराती साप्ताहिक पत्र 'जैन प्रकाश' के संपादक का कार्यभार भी सौंप दिया गया। यह काम डॉ. जैन को अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं लगा, अतः उन्होंने यह नौकरी छोड़ कर सेंट मेरी के यूरोपियन हाई स्कूल में [illegible] की नौकरी कर ली। वहाँ वे अंग्रेजी के बच्चों को हिंदी पढ़ाने लगे। इस स्कूल में पढ़ाने के दौरान उन्हें हिंदी की अच्छी पाठ्य-पुस्तकों का अभाव महसूस हुआ। इस कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने स्कूलों के लिए अनेक पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं, जो बाद में महाराष्ट्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा हाई स्कूलों के बच्चों के पाठ्यक्रम में शामिल कर ली गईं। अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में संस्कृत भाषा का अध्ययन तथा शास्त्रों का ज्ञान, जीवन के प्रति एक व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा कठिन परिश्रम से प्राप्त सामाजिक-राजनीतिक चेतना, इस सभी ने उनके व्यक्तित्व को ढालने तथा उनकी सृजनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् 1936 में डॉ. जैन ने मल्लिसेन की 'स्यादवाद मंजरी' का संपादन किया, जिसमें जैन दृष्टिकोण से भारतीय दर्शनशास्त्र की 6 व्यवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया था। इसे पाठकों के सामने सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने न केवल इस महान् ग्रंथ का हिंदी अनुवाद किया, वरन् अपनी टीकाएँ तथा व्याख्याएँ भी उसमें शामिल कीं। उसी वर्ष उन्होंने संस्कृत की एक दुर्लभ पांडुलिपि 'जंबुस्वामी-चरित्र' का हिंदी अनुवाद भी अपनी स्वयं की व्याख्याओं के साथ प्रकाशित करवाया। इसके अगले साल ही उन्होंने 'श्रीमद् राजाचंद्र' (रायचंद्र भाई द्वारा अपने भक्तों को लिखे गए पत्र) का प्रकाशन किया, जिसका उन्होंने गुजराती से हिंदी में अनुवाद किया था। अनुवाद के साथ-साथ उन्होंने इसमें अपनी विस्तृत प्रस्तावना तथा व्याख्या भी शामिल की थी। इन प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन के साथ ही वे विद्वान् के रूप में स्थापित हो चुके थे। इसी दौरान वे मुंबई के रामनारायण रुइया कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त कर दिए गए। संस्कृत के साथ-साथ उन्होंने अर्धमागधी तथा हिंदी का अध्ययन भी किया। तब तक वे अपने शोधपूर्ण कार्यों के लिए इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि मुंबई विश्वविद्यालय ने उन्हें पी-एच.डी. छात्रों का मार्गदर्शक नियुक्त कर दिया; हालाँकि उस समय तक उन्होंने स्वयं पी-एच.डी. की डिग्री हासिल नहीं की थी।

वे अपने जीवन में एक प्रतिष्ठित प्राध्यापक के रूप में स्थापित हो चुके थे, इसके बावजूद वे देश में हो रहे राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों के प्रति सजग बने रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और भारत की जनता तथा नेता अंग्रेज सरकार की नीतियों के खिलाफ हो गए थे। देश में आजादी का अंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था। इसके साथ ही अंग्रेजों का दमनचक्र भी तीव्र होता जा रहा था। गांधीजी ने 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा देकर देश के नौजवानों को स्वतंत्रता-संग्राम में कूदने की प्रेरणा दी थी। इस तनावपूर्ण समय में

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

प्रोफेसर जैन भी आजादी के संग्राम में कूद पड़े। इसके परिणामस्वरूप सितंबर, 1942 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बरली जेल में रखा गया। जेल में वे बंगाल के एक सुप्रसिद्ध वामपंथी तथा क्रांतिकारी भूपेंद्र चक्रवर्ती के संपर्क में आए, जिसने उनके राजनीतिक विचारों पर मार्क्सवाद की अमिट छाप छोड़ दी। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होते-होते जगदीशचंद्र को जेल से रिहा कर दिया गया और वे फिर से रुइया कॉलेज में हिंदी पढ़ाने लगे।

राजनीति के इस तूफ़ानी दौर में भी उनके शोध कार्यों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा था। सन् 1946 में उनकी पुस्तक 'महावीर वर्द्धमान' प्रकाशित हुई, जिसका बाद में अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। इसी साल उनकी दूसरी पुस्तक 'दो हजार साल पुरानी कहानियाँ' प्रकाशित हुई। सन् 1945 में उन्हें उनके शोधग्रंथ 'लाइफ इन एनशिएंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन जैन कैनंस' पर पी-एच.डी. की उपाधि दी गई। बाद में 1947 में इस शोधग्रंथ का प्रकाशन भी हुआ, जिसे सभी विद्वानों ने भारतीय सामाजिक इतिहास के अध्ययन की दिशा में उनके एक महत्त्वपूर्ण योगदान के रूप में स्वीकार किया।

30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी की हत्या से उन्हें गहरा सदमा पहुँचा। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि जो लोग गांधीजी की हत्या के षड्यंत्र में शामिल थे, उनमें से एक मदनलाल नामक युवक भी था, जो डॉ. जैन के संपर्क में आया था। मदनलाल की डॉ. जैन ने अनेक प्रकार से सहायता की थी और उसी से उन्हें बापू की हत्या के षड्यंत्र का पता चला था। डॉ. जैन को जैसे ही इस साजिश का आभास मिला, वे भागे-भागे बंबई राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री बी.जी. खेर तथा राज्य के तत्कालीन गृहमंत्री मोरारजी देसाई के पास जा पहुँचे, लेकिन उन दोनों ने ही डॉ. जैन की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। आखिरकार 30 जनवरी, 1948 को गांधीजी की हत्या कर दी गई और डॉ. जैन को जिंदगी भर इस बात का अफसोस रहा कि वे अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद गांधीजी को नहीं बचा पाए। बाद में जब गोडसे पर गांधीजी की हत्या का मुकदमा चला तो डॉ. जैन को मुख्य सरकारी गवाह बनाया गया। उन्होंने इस पूरे दु:खद हादसे पर 'आई कुड नॉट सेव बापू' शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी।

सन् 1948 से 1952 तक उन्होंने रुइया कॉलेज में काम किया और इस दौरान उनकी तीन हिंदी पुस्तकें—'प्राचीन भारत की कहानियाँ' (पाली भाषा से अनूदित-1948), 'संप्रदायवाद (1950) तथा 'भारत के प्राचीन तीर्थ' (1952) प्रकाशित हुईं। सभी लोग हिंदी के अध्ययन-अध्यापन तथा प्रचार-प्रसार में उनके योगदान को स्वीकार करने लगे थे। इसी दौरान चीन की कम्यूनिस्ट सरकार स्वतंत्र भारत से अपने रिश्तों को और प्रगाढ़ बनाने में प्रयत्नशील थी और नेहरूजी के 'हिंदी-चीन भाई-भाई' के नारे ने इन दोनों देशों के रिश्तों में एक नई गर्मजोशी का संचार कर दिया था। भारत-चीन संबंधों के इतिहास में इसे 'स्वर्णिम युग' माना जा सकता है। चीन सरकार ने उन्हीं दिनों पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग खोलने की पेशकाश की और इस महत्त्वपूर्ण काम के लिए डॉ. जगदीशचंद्र जैन को चुना गया। लगभग सवा साल की कड़ी मेहनत तथा लगन से वे पीकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग को एक ठोस आधार प्रदान करने में सफल रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ आज तक हिंदी के साथ-साथ संस्कृत, पाली और उर्दू का पठन-पाठन सुचारू रूप से चलता आ रहा है। इतना ही नहीं, अपने कार्यक्रम के दौरान उन्होंने चीनी मूल के हिंदी-प्रेमियों की जो जमात तैयार की, वे आज भी पूरी निष्ठा के साथ अपने काम में लगे हुए हैं, और उनमें से कुछ तो अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव में पहुँचकर सेवानिवृत्त भी हो चुके थे।

अपने चीन-प्रवास के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को डॉ. जैन ने अपनी पुस्तक 'अमिड्स्ट द चाइनीज पीपुल' में लिपिबद्ध किया है। इसका प्रकाशन 1955 में हुआ था। 1956 में उनकी 'भारतीय तत्त्वचिंतन' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ, जिसमें उन्होंने भारतीय दार्शनिक विचारों का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया था। सन् 1957 में उन्हें मुजफ्फरपुर (बिहार) स्थित वैशाली इंस्टीट्यूट में प्राकृत तथा जैनोलॉजी का प्रोफेसर नियुक्त किया गया, लेकिन बिहार सरकार ने उनके वामपंथी विचारों के कारण उनकी नियुक्ति पर रोक लगा दी। बाद में पंडित नेहरू के हस्तक्षेप के बाद अंतत: 1958 में उन्हें इस पद पर काम करने की अनुमति मिल गई। वहाँ कुछ साल काम करने के बाद वे फिर से अपने पुराने रुइया कॉलेज में ही लौट आए, जहाँ से वे 1968 में हिंदी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुए। इस दौरान भी उनके अनेक साहित्यिक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ, जिनमें से लघु

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

निबंधों का संग्रह 'देखा-परखा' (1958) और तीन खंडोंवाली 'हमारी कहानियाँ' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'हमारी कहानियाँ' में जातक, हितोपदेश तथा पंचतंत्र की कहानियों का संग्रह किया गया था और इसके तीन खंड क्रमश: 1957, 1958 तथा 1967 में प्रकाशित हुए थे। 1961 में उनके द्वारा संपादित तथा अनूदित प्राकृत गाथाओं का संग्रह 'प्राकृत पुष्करिणी' प्रकाशित हुआ। इसके बाद 1962 में 'विश्व साहित्य के ज्योतिपुंज' प्रकाशित हुई तथा 1965 में उनके शोधग्रंथ का हिंदी अनुवाद 'जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके अगले ही साल उनका एक अन्य शोधपूर्ण ग्रंथ 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' प्रकाशित हुआ।

उनकी पुस्तक 'सोवियत रूस पिता के पत्रों में' पर उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनका 1969 में प्रकाशित 'पाश्चात्य समीक्षा दर्शन' नामक ग्रंथ आज भी पाश्चात्य साहित्यिक समीक्षा का एक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। 1970 में उन्होंने अहमदाबाद के एल.डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलॉजी में अनेक व्याख्यान दिए थे, बाद में ये 'प्राकृत जैन कथा साहित्य' शीर्षक से पुस्तकाकार में प्रकाशित भी हुए। 1970 में प्रोफेसर जैन को जर्मनी के कील विश्वविद्यालय में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया, जहाँ उन्होंने 1970 से 1974 तक महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गए जैन ग्रंथ 'वासुदेवहिंडी' पर शोध कार्य किया। अपने इस शोधकार्य के दौरान वे लुडविग आल्सड्रसैफ, डी. श्लिंगलौफ तथा के. ब्रहन जैसे जर्मन विद्वानों के न केवल संपर्क में आए, वरन् उन्होंने इन विद्वानों को हिंदी पढ़ाने का कार्य भी किया।

कील विश्वविद्यालय में किए गए उनके शोधकार्य पर आधारित ग्रंथ—'द वासुदेव हिंदी एन ऑथेंटिक जैन वर्जन ऑफ बृहत्कथा' सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। उनके इस प्रवास के दौरान उन्हें यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों ने व्याख्यान देने के लिए भी आमंत्रित किया। इसी दौरान उन्होंने पेरिस में आयोजित 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएंटिलिस्ट' में भी भाग लिया।

सन् 1980 में डॉ. जैन साव पावलो (ब्राजील) भी गए, जहाँ उन्होंने भारतीय दर्शन पर अनेक व्याख्यान दिए। इसके साथ ही कुछ विद्वानों ने उनसे हिंदी सिखाने का भी आग्रह किया, जिसे वे समयाभाव के बावजूद टाल नहीं पाए। ब्राजील से वे अमेरिका गए, जहाँ उन्होंने अनेक अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इंडोलॉजी पर व्याख्यान दिए। सन् 1982 में वे भारत लौट आए तथा एक बार फिर से लेखन तथा व्याख्यानों की शृंखलाओं में व्यस्त हो गए। सन् 1981 में उनकी पुस्तक 'प्राकृत नरेटिव लिटरेचर' का प्रकाश हुआ। 1985 में उनके 'प्राकृत साहित्य के इतिहास' का संशोधित संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसे उत्तर प्रदेश की सरकार ने 'ज्ञानभारती पुरस्कार' से सम्मानित। सन् 1994 में 85 वर्ष की आयु में हृदय गति रुक जाने से उनका निधन हो गया। लेकिन अंतिम समय तक वे अपने लेखन में ही लगे रहे। 28 जनवरी, 1998 को एक डाक टिकट जारी करके भारत सरकार ने उन्हें सम्मानित किया। पिछले साल भारत माता के इस कर्मठ सपूत की जन्म शताब्दी पूरे देश में मनाई गई थी।

JITENDRA KUMAR MITTAL
3/79 NEW M.I.G. COLONY
BANDRA EAST
MUMBAI-400051 (INDIA)
Email : fabindia@hotmail.com

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

21 कंप्यूटर और हिंदी

लीना मेहेंदळे

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में हिंदी का उच्चतम स्थान था। पर आज वह जैसे लुप्त हो गया है। संगणक (कंप्यूटर) पर हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के निरंतर पिछड़ते रहने पर स्थिति और भी कठिन होगी। इसे समय रहते कैसे सुधारा जाए, इसके लिए सभी की सम्मिलित सोच व प्रयास आवश्यक हैं। आधुनिक जगत में संगणकों ने एक अभूतपूर्व क्रांति पैदा की है। ज्ञान, विज्ञान और प्रगति के हर शिखर के लिए प्रयुक्त हर सीढ़ी में संगणक-तंत्र अत्यावश्यक है। भाषाई विकास भी इसके बिना असंभव है—यह बोध भी कई चिंतकों में आ गया है, तो देखते हैं इसके कुछेक पहलू।



- **जन्म** : 31 जनवरी, 1950, धरणगाँव (महाराष्ट्र)
- **शिक्षा** : एम.एस-सी. (भौतिकी), पटना विश्वविद्यालय,
  एम.एस-सी. 'प्रोजेक्ट प्लानिंग', ब्रेडफोर्ड विश्वविद्यालय, एल-एल.बी., मुंबई विश्वविद्यलय
- मगध महिला कॉलेज, पटना में एक वर्ष फिजिक्स प्रवक्ता
- सन् 1974 में भारतीय प्रशासनिक सेवा, महाराष्ट्र में कार्यरत
- महाराष्ट्र प्रशासन में अपर मुख्य सचिव सामान्य प्रशासन के पद से सेवा निवृत्त
- संप्रति, केंद्रिय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल, बंगलुरु की सदस्या
- कुशल प्रशासक और सजग पाठक होने के साथ-साथ हिंदी एवं मराठी की एक सिद्धहस्त लेखिका
- मराठी-हिंदी लेखन का सिलसिला भी बीस वर्षों से अधिक समय से जारी
- हिंदी में लगभग 15 और मराठी में 10 पुस्तकें प्रकाशित
- लीनाजी की कई रचनाएँ उनके ब्लॉग http://www.leenameh.blogspot.com पर पढ़ी जा सकती हैं

भाग-1 : तंत्र-विश्लेषण

पाँच मिनटों में संगणक पर हिंदी सीखें

हमारे नब्बे प्रतिशत संगणक उपभोक्ता नहीं जानते कि संगणक पर हिंदी (पूरी बात कहूँ तो हरेक भारतीय भाषा) सीखने के लिए एक युक्ति है, जिसमें केवल आधा घंटा पर्याप्त है। वह भी अंग्रेजी टंकण-ज्ञान पर निर्भरता के बिना।

जब संगणक का प्रचलन काफी बढ़ गया तो कई बुद्धिजीवियों ने काम चलाऊ अक्षर ज्ञान की श्रेणी का अंग्रेजी टंकणलेखन सीख लिया और कइयों ने इसे अपने वश के बाहर बताकर मुँह मोड़ लिया। हिंदी टंकणलेखन कर पाने की बात तो किसी अजूबे जैसी थी। उन सबकी जानकारी के लिए पहले देखें कि यह युक्ति क्या है। इस युक्ति का नाम है इंस्क्रिप्ट की-लेआउट अर्थात् संगणक के कुंजीपटल पर चलने वाला एक विशिष्ट वर्णक्रम।

इस लेआउट में वर्णों का क्रम वैसे ही चलता है जैसा हमने कक्षा एक में पढ़ा होता है—अर्थात् क ख ग घ च छ ज झ या अ आ ई ऊ। अत: कुंजियाँ खोजने की दिक्कत नहीं है, जो अंग्रेजी सीखने में है या हिंदी टाइपराइटर मशीनों में हुआ करती थी। साथ ही इसमें तमाम व्यंजन दाएँ और स्वर की मात्राएँ बाएँ हाथ से लगाने का चलन है, जिससे अपने आप एक लय सी बँध जाती है। आपको लगता है मानो आप तबला बजा रहे हैं और थोड़ी ही प्रैक्टिस में टंकण-कार्य में अच्छी गति आ जाती है। क्षिप्रता से सीख पाने का यह भी एक कारण है।

(संभव हो तो यहाँ रुककर पहले यह वीडियो देखें:)

http://www.youtube.com/watch?gl=GB&hl=en-GB&v 0YspgTEilxI&feature=user

अब चिंता छोड़ें कि आपके कुंजीपटल पर हिंदी स्टिकर तो लगे नहीं हैं—बस निश्चिंत होकर देखें यह युक्ति।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

पहले दो मिनट में सीखें बीस अक्षर

सामान्य कुंजीपटल के अंग्रेजी अक्षर K-I की जोड़ी देखें, जो एक-दूसरे के पास-पास ऊपर-नीचे हैं। यही कख और गघ हैं। अगली दो कुंजियाँ L-O हैं, जो तथ, दध के लिए हैं, अगली चछ, जझ की और उससे अगली टठ डढ़ की। क के बाईं ओर पहले रह, ड़ और उसके बाएँ H-Y पर पफ, बभ हैं। कुंजियों की ये जगहें समझकर आत्मसात् करने को दो मिनट पर्याप्त हैं।

कठिन (भारी) अक्षर के लिए (अर्थात् खघ, थध, छझ, ठढ, फभ) शिफ्ट के साथ कुंजी दबानी होगी।

अगले दो मिनट में सीखें और बीस अक्षर

बाईं ओर की पाँच कुंजी-जोड़ियाँ दस स्वरों के लिए हैं। इन्हें भी पहली कक्षा में रटा था—अआइईउ ऊएऐओऔअंअः।

इनका क्रम ओऔ, एऐ, अआ, इई, उऊ रखा गया है। शिफ्टकुंजी के साथ लिखने पर स्वतः स्वर लिखा जाता है, परंतु किसी व्यंजन की मात्रा लगाने के लिए शिफ्ट कुंजी नहीं लगेगी।

इस प्रकार दस मात्राएँ तथा उन्हें लगाने का तरीका समझने के लिए अगले दो मिनट पर्याप्त हैं।

इन कुंजियों को समझकर यदि हम प्रैक्टिस करें—

काकी, चाची, दादी, ताई, ताऊ, बाबा, पाप, काका, चाचा, टाटा—तो इस कुंजी रचना की सरलता तत्काल मोह लेती है।

बचे अक्षरों को एक बार ढूँढ़कर समझा जा सकता है। शिफ्ट के साथ 5, 6, 7, 8 व + अंकों की कुंजियों से ज्ञ त्र क्ष श्र तथा ऋ लिखते हैं। सबसे निचली पंक्ति में तीसरी कुंजी से आरंभ कर म (शिफ्ट के साथ ण), न,व,ल (शिफ्ट के साथ मराठी, कन्नड आदि भाषाओं का ळ),स (शिफ्ट के साथ श), ष तथा अंतिम कुंजी पर य (शिफ्ट के साथ बंगाली का दूसरा य) हैं। ड से अगली कुंजी पर ञ है। जरा से अभ्यास से ये याद हो जाते हैं।

अनुस्वार के लिए अक्षर लिखने के बाद अंग्रेजी की कुंजी (शिफ्ट के साथ लगाने पर चंद्रबिंदु) लगाएँ।

हमारे नब्बे प्रतिशत संगणक उपभोक्ता नहीं जानते कि संगणक पर हिंदी (पूरी बात कहूँ तो हरेक भारतीय भाषा) सीखने के लिए एक युक्ति है, जिसमें केवल आधा घंटा पर्याप्त है। वह भी अंग्रेजी टंकण-ज्ञान पर निर्भरता के बिना।

जब संगणक का प्रचलन काफी बढ़ गया तो कई बुद्धिजीवियों ने काम चलाऊ अक्षर ज्ञान की श्रेणी का अंग्रेजी टंकलेखन सीख लिया और कइयों ने इसे अपने वश के बाहर बताकर मुँह मोड़ लिया। हिंदी टंकलेखन कर पाने की बात तो किसी अजूबे जैसी थी। उन सबकी जानकारी के लिए पहले देखें कि यह युक्ति क्या है।

संयुक्त अक्षर

संस्कृत के नियमानुसार व्यंजन में अ लगाकर उसे पूरा किया जाता है। जबकी यहाँ केवल अक्षर की कुंजी से ही पूर्ण व्यंजन लिखा जाता है, ताकि अ की मात्रा बार-बार न लगानी पड़े। अतः इस कुंजीपटल में अ की कुंजी का उपयोग हलंत के लिए करते हैं।

इस प्रकार क्रम लिखने के लिए क हलंत र म, परंतु कर्म लिखने के लिए क र हलंत म, लिखा जाएगा। कृपा के लिए क में ऋ की मात्रा (बिना शिफ्ट के) और विसर्ग चिह्न के लिए शिफ्ट के साथ -(डैश) की कुंजी लगती है।

बाज़ार के कैसे-कैसे खेल

संगणक पर यह सब पढ़ने में जितना समय लगता है, उससे आधे समय में ही यह सीख कर आप खुश हो सकते थे, बशर्ते कि इसे बनानेवाली भारत सरकार इसे लागू करने में आलस न करती। लेकिन हमारे सौभाग्य से उससे रास्ता निकाला गया, बस आपको अपने windowXp के माध्यम से पहली बार ऐसी सुविधा लगानी पडेगी जो

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

हो सकता है कि आपके संगणक में बाय डिफॉल्ट न लगी हो। इसे लगाने या, जाँचने का तरीका यों है—

Go to

Start->setting->control panel->Regional and Language->click

एक खिड़की खुलेगी, जिसके ड्रॉप-डाउन मेन्यू पर लिखा होगा-ENG दिखने लगेगा और क्लिक करने पर हिंदी का ऑप्शन भी मिलेगा।

अब वर्ड या इंटरनेट खोलकर हिंदी का ऑप्शन ले आइए और हिंदी लिखना आरंभ करें।

Regional and Language के मेन्यू में हिंदी न मिले तो उसे सीडी से लोड करना पड़ेगा। इसी तरीके से दूसरी भारतीय भाषाओं को भी संगणक पर सामने लाया जा सकता है। यदि आप लीनक्स व ओपन ऑफिस का प्रयोग करते हैं तब भी Regional and Language के मेन्यू से हिंदी को सामने लाया जा सकता है।

भाग-2 : समाजशास्त्रीय विश्लेषण

एक सांस्कृतिक संकट

आप पूछ सकते हैं कि क्या संगणक पर हिंदी लिखने का मात्र यही तरीका है। वाकई और भी तरीके हैं, लेकिन मैंने इसे सबसे सरल पाया है। दूसरे तरीके में कुंजीपटल पर ठीक उसी प्रकार का वर्णक्रम सजाया गया है, जैसा टाइपराइटरों में रखा गया था और इसे 'टाइपराइटर तरीका' कहते है। 1985 में जब बड़े पैमाने पर संगणक के लिए हिंदी सॉफ्टवेअर बनने लगे तब यही तरीका अपनाया गया। अत: पहले से ही टाइपराइटरी सीखकर टाइपिस्ट की नौकरी करनेवाले लाखों-करोड़ों क्लर्कों के लिए टाइपराइटर को हटाकर संगणक पर काम करना तत्काल सुलभ हो गया। लेकिन इसे सीखने के लिए किसी टाइपिंग ट्रेनिंग संस्था में कम-से-कम छ महीने की ट्रेनिंग आवश्यक है। साधारण व्यक्ति बड़ा मनोधैर्य जुटाकर किसी तरह अंग्रेजी का उल्टा-पुल्टा कुंजीपटल तो धीरे-धीरे सीख लेता है, लेकिन हिंदी टाइपराइटरों वाला कुंजीपटल उससे भी गहन है 'जिसे नए सिरे से टाइपिंग सीखनी' हो वह इतना अधिक समय लगाकर उसे क्यों सीखे। नए व्यक्ति के लिए इनस्क्रिप्ट का तरीका ही सबसे अच्छा है। एक जमाना ऐसा था जब टाइपराइटर और इनस्क्रिप्ट, दोनों तरीकों से लिखा गया आलेख महाजाल पर नहीं टिकता था, लेकिन भला हो यूनिकोड और गूगलवालों का कि अब इनस्क्रिप्ट तरीके से लिखने पर वह आलेख महाजाल पर टिक जाता है। यह भी एक कारण है कि हमें जल्द-से-जल्द टाइपिंग ट्रेनिंग संस्थावाला तरीका छोड़कर उन संस्थाओं में इनस्क्रिप्ट तरीके से सिखाना पड़ेगा। लेकिन अभी तक उन संस्थाओं में यह प्रगतिशील सोच नहीं पहुँची है।

संगणक पर हिंदी लिखने का तीसरा तरीका भी है, जो किसी जादूगर के ट्रैप जैसा है—लुभावना, आकर्षक, कम कठिन, और भारतीय भाषाई-संस्कृति की जड़ काटनेवाला। यह है युनिकोड और गूगल प्रणीत रोमन-फोनेटिक तरीका, जिसमें आप किसी शब्द को अंग्रेजी स्पेलिंग के साथ लिखेंगे तो संगणक के परदे पर वह देवनागरी में उभरेगा और उसका प्रिंट भी देवनागरी में ही होगा। यह तरीका भी इसलिए सरल लगता है, क्योंकि इसका अंग्रेजी कुंजीपटल हमेशा हमारे सामने होता है और एक बार अंग्रेजी सीख लेने के बाद हम धीरे-धीरे यह कबूल कर लेते हैं कि चलो, हिंदी की सुविधा अंग्रेजी के माध्यम से लेने में कोई हर्ज नहीं है।

लेकिन जरा झाँककर देखने से ही इसका खतरा देखा जा सकता है। आज हम 'भाषा' शब्द लिखने के लिए यह नहीं सोचते कि इसे लिखने के लिए भ में आ लगाकर फिर ष में आ लिखा जाना है। हम सोचते हैं कि हमें पहले bha लिखकर फिर sha लिखना है। अर्थात् हमारी सोच अंग्रेजीयत की ओर झुकती चली जाती है। दस वर्षों के बाद यह कहा जा सकता है कि तुम्हें शब्द पढ़ने के लिए देवनागरी में लिखना क्या जरूरी है, तुम तो bhasha लिखा होने पर भी इसे पढ़ ही लोगे।

एक सामाजिक संकट

लेकिन मैं दस वर्ष बाद के नहीं बल्कि आज के ही एक बड़े संकट की चर्चा यहाँ उठा रही हूँ। भारत के आँकड़े बताते हैं कि हमारे

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

अस्सी प्रतिशत से अधिक बच्चे आठवीं से ऊपर पढ़ाई नहीं करते और उनके लिए अंग्रेजी पढ़ना-लिखना कठिन होता है। चाहे हम उनसे कहें कि रोमन फोनेटिक विधि से हिंदी टाइपिंग सीखों या कहें कि अंग्रेजी न जानने के कारण तुम्हें संगणक की दुनिया में प्रवेश नहीं है—दोनों बातें एक ही हैं।

परंतु यदि हम उन्हें अंग्रेजी का आग्रह किए बिना इनस्क्रिप्ट के तरीके से पढ़ाएँ तो वे पंद्रह दिनों में अच्छी स्पीड से टाइपिंग करने लगते हैं, इस प्रकार स्कूल ड्रॉप आउट की बेरोजगारी मिटाने का एक सशक्त माध्यम भी हमारे हाथों में है, जो रोमन फोनेटिक के तरीके में संभव नहीं है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकती हूँ कि मेरे घर में काम के सिलसिले में आनेवाले कम शिक्षित लोग, जैसे काम करनेवाली महरी, उसके बच्चे, अखबार डालनेवाला, धोबी, ड्राइवर, इत्यादि को मैं अपने ही कंप्यूटर पर इनस्क्रिप्ट पद्धति से टाइपिंग करना सिखाती हूँ, फिर उनसे टाइपिंग का काम करवाकर अलग से उसका मेहनताना देती हूँ। एक बार एक घर में कुछ फर्नीचर का काम निकला। पाँच-छह लोग बीस-पच्चीस दिन काम करते रहे। उनमें एक बेगारी भी था, जिसे बहुत काम नहीं था। उसे मैंने यह तरीका सिखाया और उसने मेरे करीब तीस पन्ने टाइप कर दिए। मैंने मेहनताना दिया तो बोला, मुझे एक चीज और चाहिए—सारे पन्नों का एक प्रिंट आउट—मैं उन्हें अपने घर में दीवारों पर सजाकर रखूँगा कि यह मैंने किया है। मुझे लगा कि दुनिया के किसी मेहनताने से अधिक उसके लिए गर्व और अभिमान की बात थी कि अब उसे कंप्यूटर की दुनिया में प्रवेश मिल गया है।

मैंने ऐसे कितने बच्चे देखे हैं कि संगणक देखकर उनकी आँखों में एक चमक आ जाती है कि उन्हें भी यह सीखना है। फिर उनसे कहा जाता है कि तुम अंग्रेजी जाननेवाले नहीं हो, इसलिए संगणक की दुनिया में तुम्हारे लिए जगह नहीं है। जब मैं उनसे कह पाती हूँ कि केवल हिंदी के ज्ञान पर ही तुम संगणक सीख सकते हो, तो उन आँखों की चमक फिर से लौट आती है। लेकिन मैं अकेली कितने बच्चों तक पहुँच सकती हूँ। यदि इर्नास्क्रिप्ट के तरीके की पढ़ाई हमारी पाँचवीं-छठी कक्षा में शामिल की जाए तो संगणक के कारण पैदा होने वाली इस ज्ञान की खाई को हम पाट सकते हैं।

यह समस्या केवल हिंदी की नहीं बल्कि हर भारतीय भाषा की है, और हरेक का उत्तर यही है, क्योंकि ऊपर जो कुंजीपटल का चित्र मैंने दिखाया है वही मल्याळी, गुजराती से लेकर बंगाली, ओड़िया अर्थात् हर भारतीय भाषा के लिए प्रयुक्त होता है। यही समस्या और यही उत्तर नेपाल, श्रीलंका, तिब्बत, थाईलैंड आदि उन सभी देशों के लिए भी है जहाँ की वर्णमाला संस्कृत से उत्पन्न है और जहाँ बच्चे अभी भी पहली कक्षा में अआइईऊ व कखगघचछजझ पढ़ते हैं। अपने और उन देशों के स्कूल-ड्राप-आउट्स को न्याय दिलाना है तो बिना अंग्रेजी जाने इनस्क्रिप्ट कुंजीपटल के माध्यम से संगणक का रास्ता उनके लिए प्रशस्त करना होगा।

भाग-3 : फिर एक बार तंत्र-विश्लेषण

क्या हिंदी के आलेख महाजाल पर टिकते हैं

आज भी कई जानकार सबसे बड़ा प्रश्न उठाएँगे कि क्या हिंदी में लिखे गए आलेख महाजाल (इंटरनेट) पर टिक जाएँगे। 1985 से आरंभ कर कइयों ने हिंदी सॉफ्टवेअर बनाए। शब्दरत्न, अक्षर, श्री जैसे कई नाम गिनाए जा सकते हैं। अपार लगन, वैज्ञानिक श्रेष्ठता और संसाधनों की बहुलता के संबल पर यह काम हुआ और निश्चय ही वह बधाई के पात्र थे। इनमें से इनस्क्रिप्ट सॉफ्टवेयर को सरकारी कंपनी सी-डेक ने बनाया था। इस उपलब्धि के बावजूद संगणक-लेखन में प्रमाणीकरण एवं समन्वय दोनों के अभाव में, साथ ही सरकार के भी बाजार में उतर जाने के कारण हर नई उपलब्धि को टॉप बिजनेस सीक्रेट रखा गया। यही कारण था कि हमारे हिंदी सॉफ्टवेयर प्रमाणित नहीं थे और इसी कारण महाजाल पर भी नहीं टिकते थे। लीप ऑफिस (जिसमें इनस्क्रिप्ट के कुंजीपटल है) जैसा श्रेष्ठ और सरल सॉफ्टवेयर सरकारी होते हुए भी इसके अत्यधिक दाम पंद्रह हजार रुपए के कारण इसे खरीदना मुश्किल था। इसी से भारतीय भाषाएँ संगणक पर पिछड़ने लगीं। जिसने वह जमाना देखा है, वह आज भी आश्वस्त नहीं है कि इनस्क्रिप्ट से लिखा आलेख संगणक पर टिकेगा। जहाँ सरकारी इनस्क्रिप्ट सॉफ्टवेयर का प्रश्न है, वह आज भी अप्रमाणित और महाजाल पर न टिकनेवाला है। प्राय: सभी

सरकारी कार्यालयों में वही लगा है, अत: वहाँ से उसे चलानेवालों को भी गूगल, यूनिकोड और माइक्रोसॉफ्ट की पहल का पता नहीं है।

इस अधूरेपन को विस्तार से समझना

पहले हम समझें कि लेखन-प्रकिया के तीन मील के पत्थर अर्थात् कागज-कलम, टाईप-राइटर और संगणक में क्या अंतर हैं। जब हम कलम से कागज पर लिखते हैं, तो मन में जैसे ही एक शब्द उभरता है, उसी समय अपनी सीखी हुई वर्णमाला के अनुरूप, मन के पटल पर उसका एक दृश्य-स्वरूप भी उभरता है और वही दृश्य-स्वरूप हाथ से कागज पर लिखा जाता है। इस प्रकार कागज-कलम पर लिखने के लिए एक ही प्रमाणीकरण आवश्यक है कि किसी शब्द का दृश्य-स्वरूप कैसे दिखे। अर्थात् लेखन के विकास के इतिहास में हजारों वर्ष पूर्व दृश्य-स्वरूप का एवं वर्णक्रम का प्रमाणीकरण हुआ। जब प्रिंटिंग तकनीक का विकास हुआ तब वर्णविन्यास अर्थात् फॉण्टसेटों का प्रमाणीकरण हुआ, यथा अंग्रेजी के एरियल, टाइम्स न्यू रोमन, कूरियर इत्यादि फॉण्ट, जिनसे दृश्य-लेखन की सुंदरता एवं विविधता बढ़ती है और फॉण्टफटीग नहीं पैदा होता।

इसे हम यों समझें कि संगणक की प्रोसेसर चिप उसके लिए एक मस्तिष्क का काम करती है, जो कि मानवी मस्तिष्क से हजारों गुना अविकसित है, पर है तो मस्तिष्क ही। अब संगणक के काम को समझना सरल है। उसकी संग्रह-व्यवस्था में एक भारी मर्यादा है, क्योंकि उसका मस्तिष्क अविकसित है। वह हमारी तरह शून्य से नौ तक की दस इकाइयाँ नहीं समझता—केवल दो इकाइयाँ समझता है—शून्य एवं एक। तो उसे मानवी भाषा समझाने के लिए प्रत्येक अक्षर के लिए आठ-आठ इकाइयों की शृंखला बनाते हैं। ऐसी 256 पेटर्न या अक्षर शृंखला बन सकती हैं और संगणक अपने अपार

जब टाइपराइटरों का आविष्कार हुआ तो दो बातों को अलग-अलग पहचानना सीखा—कि दृश्य-स्वरूप क्या होगा और निर्देश-तंत्र क्या होगा अर्थात् किस अक्षर के लिए किस कुंजी को दबाना है। यों निर्देश-तंत्र का अर्थात् कुंजीपटल का प्रमाणीकरण हुआ। इस निर्देश-तंत्र में रोमन वर्णमाला के परिचित क्रम से भिन्न क्रम रखना पड़ा ताकि कुंजी की कड़ियाँ एक-दूसरे में ना फँसें। इस प्रकार मशीन की सीमा के कारण नया वर्णक्रम बनाने की आवश्यकता आन पड़ी। हिंदी टाईपराइटरों में भी कुंजीपटल का क्रम वर्णमाला से भिन्न रखना पड़ा और उसका भी प्रमाणीकरण अनिवार्य हुआ।

कई वर्षों बाद जब संगणक आया तो उसमें निर्देश-तंत्र और दृश्य-स्वरूप के बीच में एक और कड़ी जुड़ गई, जो संग्रह-व्यवस्था की कड़ी है।

इसे हम यों समझें कि संगणक की प्रोसेसर चिप उसके लिए एक मस्तिष्क का काम करती है, जो कि मानवी मस्तिष्क से हजारों गुना अविकसित है, पर है तो मस्तिष्क ही। अब संगणक के काम को समझना सरल है। उसकी संग्रह-व्यवस्था में एक भारी मर्यादा है, क्योंकि उसका मस्तिष्क अविकसित है। वह हमारी तरह शून्य से नौ तक की दस इकाइयाँ नहीं समझता—केवल दो इकाइयाँ समझता है—शून्य एवं एक। तो उसे मानवी भाषा समझाने के लिए प्रत्येक अक्षर के लिए आठ-आठ इकाइयों की शृंखला बनाते हैं। ऐसी 256 पेटर्न या अक्षर-शृंखला बन सकती हैं और संगणक अपने अपार क्षमता वाले स्मृति-संग्राहक यानी हार्ड-डिस्क में उन्हें आठ-आठ इकाइयों की शृंखला के रूप में ही संगृहीत कर लेता है। अत: इन शृंखलाओं का भी प्रमाणीकरण आवश्यक है।

इस बात को समझने में थोड़ी देर लगी। संगणक के प्रारंभ में अंग्रेजी वर्णाक्षरों पर कार्यरत कई कंपनियों ने अपनी-अपनी संग्रह-व्यवस्था के लिए अलग-अलग गोपनीय तंत्र बनाए। लेकिन जब यह समझ में आया कि इस कारण लेखन-तंत्र की एक वाक्यता एवं आदान-प्रदान को खतरा है तो सब ने अपने संग्रह-तंत्रों को भुलाकर

अंग्रेजी के लिए एक स्टैंडर्ड अपनाया, जिसका नाम पडा ASCII।

जब भारतीय लिपियों के लिए संगणक पर सॉफ्टवेयर बनने लगे तो एक ओर प्राइवेट कंपनियाँ अलग-अलग प्रकार से सुंदर फॉण्ट, निर्देश-तंत्र बनाने लगीं तो दूसरी ओर भारत सरकार ने इनके प्रमाणीकरण के लिए कदम उठाने चाहे। 1991 में ISCII नाम से एक प्रमाणक (मानक-स्टैंडर्ड) बन भी गया, जिसे बनाने में सरकारी संगणक-कंपनी सी-डैक का योगदान रहा। इसके मानक में कई अच्छाइयाँ थीं, क्योंकि यह इनस्क्रिप्ट आधारित था।

एक तो इसमें सभी भारतीय भाषाओं को एक सूत्र में पिरोया गया था। भाषा मलयाली हो या बंगाली—एक अक्षर का संग्रह-तंत्र एक ही हो और निर्देश-तंत्र भी एक ही हो, ऐसी व्यवस्था रखी गई। दूसरी अच्छाई यह थी कि निर्देश-तंत्र अर्थात कुंजीपटल के लिए इंस्क्रिप्ट नाम से एक क्रम लागू किया जो वर्णाक्षरों के क्रमानुसार था, ताकि स्कूल की पहली कक्षा में पढ़ाए गए वर्णक्रम से काम हो सके। तीसरी अच्छाई यह थी कि एक लिपि में कुछ भी लिखो तो उसे मात्र एक इशारे से अन्य लिपि में लिप्यंतरित किया जा सकता था। ये तीनों अच्छाइयाँ अलीबाबा के खुल जा सिमसिम की तरह थीं क्योंकि इसी एकात्मता के कारण आनेवाले काल में इस बात की संभावना बन सकती थी कि एक भाषा में महाजाल पर डाली गई सामग्री की जानकारी दूसरी भाषा में सर्च करने पर भी मिल जाए। यहाँ यह याद दिला दूँ कि यद्यपि सामान्यजन के काम लायक महाजाल-सुविधा 1995 में आई, फिर भी सीमित रूप में यह पहले भी उपलब्ध थी और इसकी संभावनाओं को हमारे मानक-शास्त्रज्ञ जानते थे। इसी कारण उन्होंने एकात्म सर्च संविधा का विचार कर मानक बनाया था।

लेकिन इस एक अच्छे काम के बाद हमारी नीति पिछड़ गई, क्योंकि हम यह प्रमाणक लागू करने में पिछड़ गए। जब कोई सॉफ्टवेयर स्टैंडर्ड के हिसाब से बनता है, तब वह अगले आविष्कार व सॉफ्टवेयरों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है—फिर अलग-अलग प्रतिभा वाले लोग उससे और भी अगला काम करते हैं तथा भाषा-विकास में बड़ी सहायता मिलती है। इसके बजाय सरकारी कंपनी सी-डैक सहित सब ने अपनी उपलब्धि से आर्थिक कमाई की नीति अपनाई। 1990-95 में जब अंग्रेजी गद्य-लेखन का सॉफ्टवेयर 500 रुपए में दिया जाता, वहीं भाषाई सॉफ्टवेयर की कीमत 15000 रुपए होती थी (आज भी है) इस प्रकार बाजार के गणित ने भाषा-विकास को पीछे धकेल दिया। राजभाषा की हमारी सारी दुहाइयाँ नाकाम रहीं।

भारतीय वर्णमाला की ध्वन्यात्मक विशेषता

विश्व में भाषाएँ और लिपियाँ कई हैं, लेकिन वर्णमालाएँ केवल चार हैं—

(1) ब्राह्मी—जिससे देवनागरी (संस्कृत), अन्य सारी भारतीय लिपियाँ, साथ ही सिंहली, थाई, तिब्बती, इंडोनेशियन और मलेशियन लिपियाँ बनीं।

(2) चीनी—जिससे चीनी, जापानी एवं कोरियाई लिपियाँ बनीं।

(3) फारसी—जिससे फारसी, अरबी एवं उर्दू लिपियाँ बनी।

(4) ग्रीक, लैटिन, रोमन व सिरिलीक—जिनमें आपस में थोडा सा अंतर है और जिनसे तमाम पश्चिमी एवं पूर्वी यूरोपीय लिपियाँ बनीं।

प्रत्येक वर्णमाला में अक्षरों का वर्णक्रम सुनिश्चित है। भारत की सभी भाषाओं का वर्णक्रम एक ही है, जिसका ढाँचा ध्वन्यात्मक है अर्थात् कखगघङ एक वर्णसमूह है, जिसके हर अक्षर का उगम एक ही है। इसी प्रकार चछजझञ, टठडढण, तथदधन, पफबभम, और शसषह एक खास उगम वाले वर्ण समूह हैं। इस विशेषता को टिकाए रखकर तथा उसका लाभ बठाते हुए हमने इंस्क्रिप्ट आधारित संगणकीय लिपि-प्रमाणक बनाए हैं। लेकिन जब हम उन्हें अनिवार्य घोषित कर पाएँगे तभी हमारी सांस्कृतिक एकात्मता की अंतर्निहित शक्ति एवं वैज्ञानिकता के कारण हम लंबी छलाँग लगा सकेंगे अन्यथा इसको नजरअंदाज कर हम अपनी एकात्मिक सांस्कृतिक धरोहर को एक झटके से गँवा भी सकते हैं। आज हम दूसरे खतरे के बगल में खड़े हैं जिसके प्रति हमें शीघ्रता से चेतना होगा।

विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली बीस भाषाओं की गिनती में पाँच भारतीय भाषाएँ हैं—हिंदी, बंगाली, मराठी, तेलुगु और

तमिल। यदि भारत की सारी भाषाओं की गिनती करें और ब्राह्मी वर्णमाला से उपजी भाषाओं की भी गिनती करें तो वह विश्व की सर्वाधिक लोकसंख्या होगी। इसीलिए इनकी ध्वन्यात्मक एकात्मता को टिकाना आवश्यक है। इस विषय पर दो दिशाओं में प्रयत्न हुए, जो आजतक अधूरे हैं, अत: इसे समझना होगा।

यह मानना पड़ेगा कि भाषाई सॉफ्टवेयरों का विकास कोई सरल काम नहीं था और भाषाई सॉफ्टवेयर बनानेवालों के कारण ही देश में संगणक-साक्षरता ऐसी बढ़ी कि यूरोप-अमरीका का काम आउटसोर्स होकर देश में आने लगा और IT industry ने अपना सुदृढ स्थान बना लिया। यह ऐसा मामला था कि जैसे कोई हमेशा जीरो अंक पानेवाला बच्चा पंद्रह अंक ले आए। खुशियाँ मनने लगीं और हम भूल गए कि काम की जो अच्छी शुरुआत हुई है उससे तो हमारी सौ अंक लाने की क्षमता बनती थी।

स्टैंडर्ड लागू न करने के तीन दूरगामी विपरीत परिणाम हुए। पहला—दो संगणकों के बीच आदान-प्रदान नहीं रहा। एक के काम से दूसरे कई लाभान्वित होते रहें तो शीघ्रता से तरक्की होती है। वह मौका चूक गया। दूसरा—भाषाप्रेम चाहे लाख हो, फिर भी इतना महँगा सॉफ्टवेयर खरीदना सबके लिए संभव न था, खासकर जब उसका काम दूसरे संगणक पर चल ही न सके। तीसरा—जब 1995 में ईमेल व्यवहार जनसामान्य के स्तर पर आ गया तो पता चला कि गोपनीय सोर्सकोड के कारण भारतीय भाषा की कोई फाइल चित्ररूप में ढाले बगैर महाजाल पर (इंटरनेट पर) नहीं डाली जा सकती।

थोड़े शब्दों में पहले खतरे को हम यों समझें कि यद्यपि सीडैक ने एक अच्छा सॉफ्टवेयर विकसित किया, फिर भी उसे प्रमाण के अनुरूप नहीं रखा और सोर्सकोड ओपन करने की बजाय गोपनीय रखा, बाजार की स्पर्धा में कूद पड़े, अतएव उनके पास भाषाई एकात्मता सँजोनेवाला सॉफ्टवेयर होते हुए भी न वह महाजाल-व्यवहार के लिए उपयुक्त रहा और न अन्य भारतीयों की प्रतिभा को बढ़ावा देने के लिए उसका कोई उपयोग हो पाया।

1995 के बाद आज तक स्थिति में कोई अंतर नहीं। इसी कारण यह भ्रम भी खूब फैला और बरकरार रहा कि संगणक पर काम करने के लिए अंग्रेजी अनिवार्य है। अस्मिता की दुहाई वाले प्रांत में सरकार ने कॉलेजों में मराठी के विरुद्ध IT का ऑप्शन मुहैया कराया, अंग्रेजी की अनिवार्यता पहली कक्षा से ही लागू हो गई और मराठी का नुकसान आरंभ हुआ, जो अब भी चल रहा है, और अब जब सरकार के ज्ञान आयोग ने यही नीति देश भर में लागू कराने की सिफारिश की है तो हिंदी का नुकसान भी अवश्यंभावी है। इसका प्रमाण मिलता है 1998 के एक कार्यक्रम से।

यदि सभी कंपनियों के सॉफ्टवेयर में संग्रह-तंत्र का करेक्टर-कोड एक ही प्रमाणक के अनुसार रखा जाता तो सामान्य व्यक्ति को लाभ होता। साथ ही माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियों पर दबाब बनाया जा सकता था कि वे इसी प्रमाणक को अपनी ऑपरेटिंग सिस्टम का हिस्सा बनाएँ। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। तमाम भाषाओं की एकता और प्रगति बढ़ाने की क्षमता वाला लीप-ऑफिस सॉफ्टवेयर जिसका वर्णक्रम इंस्क्रिप्ट था—उसका सोर्सकोड मानक के मुताबिक खुला (ओपन) करने के बजाय उसे मोनोपोली वाला, गोपनीय और अतीव महँगा रखा। फिर 1998 में रोमन फोनेटिक पर चलने वाले सॉफ्टवेयर की लाखों सीडी मुफ्त बाँटीं जिसका फलसफा था कि आप अंग्रेजी में लिखो और अपनी भाषा में देखो। अर्थात् मुझे अपना नाम लीना लिखने के लिए उसका अंग्रेजी हिज्जे जानना होगा और अंग्रेजी टाइपिंग भी सीखनी होगी। फिर मैं लिखूँगी Leena और संगणक पटल पर लीना देखकर धन्य हो जाऊँगी। अब भारत सरकार के साथ कई साहित्यिक दिग्गज भी कहने लगे कि जब आप अंग्रेजी के माध्यम से लिख सकते हैं तो अपनी लिपि का दुराग्रह क्यों? साथ ही लीप ऑफिस में जो तत्काल लिप्यंतरण की सुविधा थी वह गायब हो गई। पहले मेरे कई असमिया मित्रों ने ऐसा किया है कि मैं कोई संस्कृत श्लोक और उसका विवेचन हिंदी में लिखूँ तो उसका असमी लिप्यंतरण विद्यार्थियों को देंगे जिससे वे संस्कृत भी सीखेंगे और हिंदी भी। मैंने स्वयं भी इसी पद्धति से सारी लिपियाँ सीखीं और कइयों को हिंदी व मराठी सिखाई। अब वह एकात्मता और अपनापन बढ़ानेवाला दौर समाप्त हो जाएगा। यह मैं एक बड़ा खतरा मानती हूँ।

थोड़े शब्दों में पहले खतरे को हम यों समझें कि यद्यपि सीडैक ने एक सॉफ्टवेयर विकसित किया, फिर भी उसे प्रमाणक के अनुरूप नहीं रखा और सोर्सकोड ओपन करने की बजाय गोपनीय रखा, बाजार की स्पर्धा में कूद पड़े, अतएव उनके पास भाषाई एकात्मता

सँजाने वाला सॉफ्टवेयर होते हुए भी न वह महाजाल-व्यवहार के लिए उपयुक्त रहा और न अन्य भारतीयों के लिए उसका कोई उपयोग हो पाया।

अब समझने चलते हैं दूसरे खतरे को

संगणक की प्रोसेसर चिपों में अधिक क्षमता निर्माण हुई तो उन पर आठ इकाइयों वाली अक्षरशृंखला की जगह सोलह इकाइयों वाली अक्षरशृंखला बनाना संभव हुआ। इससे बड़ी वर्णमालाओं को सम्मिलित करने के लिए कई गुना अधिक जगह बन गई। चीनी और फारसी लिपियों के अच्छे मानक बने और उनकी भाषाएँ धड़ल्ले से संगणक व महाजाल पर स्थान बनाने लगीं। भारतीय भाषाओं की एकात्मता को और भी मजबूत करने की संभावना बढ़ गई।

इसी दौरान एक नई ऑपरेटिंग सिस्टम लीनक्स सर्वमान्य होने लगी जिसका फलसफा यह था कि संगणक से संबंधित सभी बुनियादी और सरल सॉफ्टवेयर सबके लिए अनिर्बंध उपलब्ध कराओ, ताकि सबका सम्मिलित लाभ हो सके। इसी कड़ी में उन्होंने अंग्रेजी के लिए ASCII की जगह एक नया मानक यूनिकोड स्टैंडर्ड अपनाया और भाषाओं के कुंजीपटल के लिए इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल भी। इसी कारण इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल के महाजाल पर टिकने की संभावना हो गई और उसे सर्च इंजिन द्वारा खोजने की भी। ओपन ऑफिस तंत्र में इसे डाला गया और गूगल ने उसका प्रचार भी शुरू किया। माइक्रोसॉफ्ट के भारतीय बाजार पर खतरा मँडराने लगा तो उन्होंने भी सीडैक की मदद ली और हिंदी के लिए एक यूनिकोड प्रमाणित फॉण्ट मंगल बनवाया, जो इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल पर आधारित है। यही रहस्य है कि सी-डेक का अपना इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल तो महाजाल पर नहीं टिकता, लेकिन माइक्रोसॉफ्ट या ओपन ऑफिस का इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल टिक जाता है। इस प्रकार लीनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम की पहल, यूनिकोड में मान्यता और गूगल द्वारा इसके प्रचार के कारण इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल जैसी सरल, सुलभ प्रणाली में हम अंग्रेजीयत की बैसाखी के बगैर भी काम कर सकते हैं।

यहाँ तक तो यूनिकोड कंसॉर्शियम धन्यवाद का पात्र है। लेकिन जब जागतिक यूनिकोड मानक बन रहा था और जिसमें कुछ भारतीय भी थे, कुछ राजभाषा विभाग और सी-डैक के अफसर भी थे, वहाँ चूक हो गई। जो मानक उन्होंने स्वीकार किया, वह जागतिक होने के कारण महाजाल और सर्च इंजिन की सुविधा तो आ गई और इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल अपनाने के कारण टाइपिंग में सरलता भी आ गई, पर इनके साथ दो परंतुक भी बीच में आ गए। पहला यह कि गूगल और भारत सरकार ने रोमन फोनेटिक कुंजीपटल को इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल से अधिक बढ़ावा देना आरंभ किया। दूसरी गंभीर चूक यह हो रही है (इसे अब भी सुधारा जा सकता है) कि सोलह इकाइयों वाली शृंखला के कारण वैश्विक बँटवारे में भारतीय भाषाओं के लिए जो कई गुना अधिक जगह मिल रही थी, उसका उपयोग भाषाई एकात्मता बढ़ाने के लिए करने की बजाय उन्होंने उस जगह का बँटवारा कर दिया और कहा कि लो अब किसी भारतीय भाषा को दूसरी के साथ तालमेल बनाए रखने की कोई जरूरत नहीं, प्रत्येक का अपना-अपना अलग अस्तित्व होगा। इसका परिणाम एक वाक्य में यों है कि अब संगणक के लिए मलयाली क और बंगाली क भिन्न हैं। अब शबरी या श्रीराम पर मलयाली लिपि में लिखी गई लोककथा भी महाजाल पर होगी और बंगाली में लिखी लोककथा भी होगी, लेकिन बंगाली में सर्च कमांड देने पर संगणक मलयाली लोककथा को नहीं खोज सकेगा। इस तरह हमारी सांस्कृतिक विरासत की एकात्मता धीरे-धीरे समाप्त होती चली जाएगी।

मैं यह आरोप नहीं लगा रही कि इन बातों के पीछे कोई सोची-समझी चाल है। लेकिन मेरा यह मानना है कि हमारे अंदर एक किस्म की लापरवाही है और अदूरदर्शिता भी। जब जागतिक यूनिकोड कंसॉर्शियम ने चीनी-जापानी-कोरियाई लिपियों की एकात्मता बरकरार रखने के प्रयास नहीं किए तो उन देशों ने अपने तमाम राजकीय मतभेद और स्पर्धा भुलाकर आपसी समझौते से एक मानक बनाया और यूनिकोड कंसॉर्शियम को खबरदार किया कि तुम्हें यही मानक अपनाना होगा, जो हमने अपने लिए चुना है। यही तेवर और ललक यदि भारतीयों ने नहीं दिखाई है तो इसका एक ही अर्थ है कि हम कभी अपनी एकात्मता के प्रति सजग और अभिमानी थे ही नहीं, और आज उसे बिखेरने में सहायक बने रहेंगे। क्या अब भी हम सजग नहीं होंगे?

□

521/40, HSR Layout
CPWD Quarters,
Banglore, India
PIN 560105

28 वैश्विक हिंदी की चौतरफा बयार

● राकेश पांडेय

भारत विश्वशक्ति बनने की दहलीज पर खड़ा है। अमेरिका के राष्ट्रपति श्री बराक ओबामा कहते हैं कि भारत विश्वशक्ति है। आज विश्व में भारत की ज्यों-ज्यों प्रभुता बढ़ रही है, हिंदी भी विश्व में अपने महत्त्व को रेखांकित कर रही है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के साथ विभिन्न बोलियों एवं भाषाओं को अपने में समेटे हुए है। इन तमाम भाषाओं में से हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया और आज हिंदी पूरे विश्व में अपनी लोकप्रियता को प्राप्त हो रही है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि हिंदी को समृद्ध करने में देश के विद्वानों के साथ-साथ अनेक विदेशी एवं प्रवासी भारतीयों की अहम भूमिका रही है। विदेशी विद्वानों का हिंदी के प्रति अनुराग का एक लंबा इतिहास है, जैसे कि ब्रिटेन के जॉन गिल क्राइस्ट, थामस ड्रूएर ब्रूटेन, फ्रेडरिक पिंकाट, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, जॉन फर्गुसन, डॉ. मैकग्रैगर, फ्रांस के गार्सा द तासीं, अमेरिका के सैमुएल हेनरी केलाग, प्रो. एनस्ट वेंडर, सारा कोहिम, इटली से एल.पी. तेस्सीतॉरी, जर्मनी से डॉ. ईनेस फोर्नेल, पोलैंड से प्रो. ब्रिस्की, रूस से डॉ. चेर्निशोव, वारान्निकोव, जापान से डॉ. तोमियो मिजोकामि आदि। इसी प्रकार दूसरी ओर वे भारतवंशी लोग हैं, जो गिरमिटिया मजदूर के रूप में 150 वर्ष पूर्व मॉरीशस, फीजी, त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम पहुँचे थे। ये लोग बहुत विद्वान तो नहीं थे, लेकिन अपने साथ रामायण, हनुमान चालीसा की पोथियाँ व आल्हा आदि ले गए थे और अपनी पीढ़ियों के पास विरासत के रूप में संरक्षित भी करते रहे। जिसके परिणामस्वरूप आज इन देशों में हिंदी व भारतीय लोक भाषाएँ तुलनात्मक रूप से जो लोग आजादी के बाद धन कमाने की चेष्टा से विदेशों में बसे हैं, उनसे अधिक समृद्ध हैं। इन विद्वानों में फीजी के राष्ट्रकवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानंद शर्मा, मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रिजेंद्र भगत मधुकर, सोमदत्त बखौरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, अजामिल माताबदल, रामदेव धुरंधर, धनराज शंभु आदि प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इन गिरमिटिया मजदूरों के रूप में विभिन्न देशों में हिंदी तो पहुँची, हिंदी का विस्तार भी हुआ, लेकिन हिंदी को लेकर शोध कार्य अनेक विदेशी विद्वान अंग्रेजी हुकूमत की शुरुआत के समय से ही कर चुके थे।



श्री राकेश पांडेय हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने तथा प्रवासी हिंदी लेखन को समृद्ध करने के लिए सतत कार्यरत हैं तथा 'प्रवासी संसार' पत्रिका के संपादक हैं। आपने प्रवासी हिंदी लेखन पर अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में व्याख्यान दिया है। श्री पांडेय ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अमेरिका, ब्रिटेन, हॉलैंड, फ्रांस, जापान, सूरीनाम, फिजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, श्रीलंका, भूटान, यू.ए.ई. सहित अनेक देशों की यात्रा की है और भारत सरकार की अनेक उच्चस्तरीय समितियों के सदस्य रहे हैं, जिनमें विदेश मंत्रालय द्वारा विशेष रूप से गठित 'विश्व हिंदी सम्मेलन अनुवर्ती कार्यवाही समिति' भी है। इनका संबंध अनेक साहित्यिक संस्थाओं से व दक्षिण भारत में हिंदी के आयोजनों से भी है। इनकी पुस्तकों में 'मॉरीशस : भारतीय संस्कृति का अप्रतिम तीर्थ' प्रमुख है। आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि के कार्यक्रमों में भाग लिया। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन, सूरीनाम तथा आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन, अमेरिका के आयोजन में भी सहभागिता की। एक सामाजिक कार्यकर्ता भी साहित्य को समाज से जोड़ने में जिन नए लेखकों ने उल्लेखनीय कार्य किए हैं, उनमें श्री राकेश पांडेय का नाम प्रमुख है।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी ने ज्यों-ज्यों अपना तंत्र स्थापित किया, उसके सामने भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ आने लगीं, क्योंकि भारत में अनेक भाषाएँ व बोलियाँ प्रचलित थीं। उस समय मुगल शासन होने के कारण फारसी व अरबी ही राज-काज की भाषा थी, जिसे न तो कंपनी के अधिकारी समझते थे और न ही आम जनता। ऐसी स्थिति में जॉन गिल क्राइस्ट ने देसी भाषाओं का समन्वय कर एक ऐसी भाषा का निर्माण किया, जिसे हिंदुस्तानी भाषा का नाम

दिया गया। जॉन गिल क्राइस्ट ने हिंदुस्तानी शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये गाजीपुर में अफीम की खेती के साथ जुड़े कर्मचारियों के बीच में रहकर शब्दों का ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने 'डिक्शनरी ऑफ इंगलिश एंड हिंदुस्तानी' की रचना की। इस कोश में तत्कालीन प्रचलित अरबी एवं फारसी भाषा के अनेक शब्दों को स्थान दिया गया। इसके साथ ही उन्होंने सन् 1796में इस हिंदुस्तानी भाषा के व्याकरण पर भी एक पुस्तक प्रकाशित की। गिल क्राइस्ट का यह ग्रंथ तत्कालीन अंग्रेजों को हिंदी सिखाने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ और गिल क्राइस्ट की पहल पर भारतीय साहित्य के अनूदित कार्य भी संपन्न हुए। जॉन गिल क्राइस्ट की भाँति ही गार्सा द तासीं की विश्व में हिंदी के महत्त्व को रेखांकित करने में अहम भूमिका है। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि फ्रांस के विद्वान् गार्सा द तासीं कभी भी भारत नहीं आए, लेकिन उन्होंने भारतीय संस्कृति व भाषाओं पर उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके द्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा का निर्माण सदैव याद किया जाता है। उनकी फ्रेंच भाषा में लिखी गई पुस्तक 'हिंदुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य की प्रथम कड़ी मानी जाती है, जिसमें उन्होंने तुलसी, कबीर, जायसी, सूरदास सहित हिंदी और उर्दू के लगभग सात सौ से अधिक रचनाकारों का उल्लेख किया है।

भारत के भाषायी सर्वेक्षण के अनुसार जॉन ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द मॉडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' की रचना के समय गार्सा द तासीं द्वारा लिखित विवरणों का भी सहयोग लिया था। भारत से सात समुंदर पार बैठकर हिंदी के साहित्य के विषय में शोध करना एक सहज कार्य नहीं है। वह भी उस समय जब आवागमन और संचार की सुविधाएँ आज की भाँति नहीं थीं। इसी प्रकार फ्रेडरिक पिंकाट का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उन्हें हिंदी कविता से लगाव था। वह ब्रज भाषा में भी लिखते थे।

भारत के भाषायी सर्वेक्षण के अनुसार जॉन ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द मॉडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' की रचना के समय गार्सा द तासीं द्वारा लिखित विवरणों का भी सहयोग लिया था। भारत से सात समुंदर पार बैठकर हिंदी के साहित्य के विषय में शोध करना एक सहज कार्य नहीं है। वह भी उस समय जब आवागमन और संचार की सुविधाएँ आज की भाँति नहीं थीं। इसी प्रकार फ्रेडरिक पिंकाट का उल्लेख करना भी आवश्यक है। उन्हें हिंदी कविता से लगाव था। वह ब्रज भाषा में भी लिखते थे। उन्होंने अपने समय के चर्चित साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्रीधर पाठक के साथ भी अपने संबंध स्थापित किए और हिंदी के लिए वे औरों से विवाद भी ठान लेते थे। उन्होंने हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन किया। उनके अनेक ग्रंथों के लेखन के साथ उनके 'हिंदी मैन्युअल' का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इसी कड़ी में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन एक चर्चित नाम है। वे भारत में एक अंग्रेज अधिकारी के रूप में आए और उन्होंने हिंदी साहित्य पर अनेक शोधकार्य किए, जिसके लिए तत्कालीन अंग्रेजी हुकूमत ने उन्हें 'फादर ऑफ लैंग्वेज ऑफ अवर टाइम' की उपाधि से भी सम्मानित किया। अपने प्रशासनिक दायित्वों के साथ-साथ उन्होंने भारत की विभिन्न बोलियों पर भी कार्य किया। इसी प्रकार विदेशी विद्वानों की एक लंबी श्रृंखला है। सभी की हिंदी को विश्व में स्थापित करने के लिए एक अहम भूमिका रही है। यह परंपरा जापान की प्रो. ताशियो तनाका, तोमियो मिजोकामि और रूस के वारान्निकोव, डॉ. ल्युदमिला एवं पोलैंड के प्रो. ब्रिस्की द्वारा आज भी आरंभ है, जिनके शोध कार्यों के आधार पर नित नए आयाम सामने आ रहे हैं। सभी के योगदानों को एक संक्षिप्त लेख में सम्मिलित करना संभव नहीं है। अभी हाल में जापान में टोक्यो यूनिवर्सिटी में प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण के प्रयासों से लगातार हिंदी के कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं और ओसाका यूनिवर्सिटी में प्रो. हरेंदर चौधरी भी इसी कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

इसी प्रकार विश्व में हिंदी को स्थापित करने के लिए

भारतवंशियों की भी अहम भूमिका है। ये गिरमिटिया मजदूर जिन-जिन देशों में ले जाए गए, वहाँ पर भी एक भाषायी संकट था। ये लोग अधिसंख्य रूप से भोजपुरी, अवधी भाषी थे। वहाँ पर उनको सामाजिक समस्याएँ, सांस्कृतिक संकट और खेतों के मालिकों से संवादहीनता आदि से जूझना पड़ रहा था। ऐसे में वहाँ पर भारत के विभिन्न भागों से लाए हुए मजदूरों की संबंध भाषा अवधी व भोजपुरी स्थापित हुई। जिसके कारण वहाँ पर अन्य भाषाएँ भी भोजपुरी व अवधी शैली में मिश्रित होने लगीं। इससे एक नई भाषा व हिंदी का निर्माण हुआ, जो कि भारत की हिंदी से भिन्न थी। जैसे कि सूरीनाम के लोग सरनामी हिंदी कहते हैं, फीजी के लोग फीजीबात कहते हैं, दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को नैताली कहते हैं। मॉरीशस चूँकि भारत के निकट था, इसलिए वहाँ पर भोजपुरी और खड़ी बोली का अंतर आज तक विद्यमान है। इन भारतवंशी बाहुल्य देशों के कारण हिंदी का विश्व में गुणात्मक रूप से विस्तार हुआ, जिसके कारण तमाम देशों में आज हिंदी जीवित है। उनमें से कुछ विद्वानों का उल्लेख करना आवश्यक है, जैसे कि सूरीनाम के मुंशी रहमान खान, जो कि धर्म से मुसलिम होते हुए सूरीनाम में रामायण पढ़ाया करते थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। प्राप्त जानकारी के अनुसार वे रामलीला के इतने शौकीन थे कि कानपुर में जब वह रामलीला देखकर लौट रहे थे तो कुछ अरकटिया (गिरमिटिया मजदूरों के दलाल) उन्हें फुसलाकर कलकत्ता ले गए और वहाँ से सूरीनाम। उन्होंने अपनी स्मरण शक्ति के बल पर अनेक दोहे, चौपाइयों को लिपिबद्ध किया और सूरीनाम में रह रहे हिंदुओं को सुनाया व सिखाया। फीजी में अयोध्या प्रसाद, कुँवर सिंह, जोगेंद्र सिंह कंवल, विवेकानंद शर्मा, डॉ. सुब्रमणी आदि हिंदी साहित्य के उल्लेखनीय नाम हैं। डॉ. सुब्रमणी का 'डउका पुरान' इस बात का प्रमाण है कि वहाँ की हिंदी में किस प्रकार अवधी का प्रमुखता से प्रभाव है। इसी प्रकार मॉरीशस के ब्रिजेंद्र भगत मधुकर, सोमदत्त बखौरी, मुनीश्वर चिंतामणि सहित अनेक साहित्यकारों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने हिंदी को एक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। आज मॉरीशस के अभिमन्यु अनत इस बात के उदाहरण हैं कि उनके देश के लोग यह आरोप लगाते हैं कि वे मॉरीशस के लेखक न होकर भारत के लेखक हैं। श्री अभिमन्यु अनत हिंदी के अतिरिक्त फ्रेंच में भी पहुँच चुके हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'लाल पसीना' के फ्रेंच अनुवाद से उनको जितना धन प्राप्त हुआ, उतना उनकी भारत में प्रकाशित लगभग 70 पुस्तकों को मिलाकर भी नहीं मिला। लेकिन फिर भी कहते हैं कि मैं हिंदी में लिखूँगा, क्योंकि हिंदी मेरी धमनियों की भाषा है। इसी प्रकार मॉरीशस से रामदेव धुरंधर, अजामिल माताबदल, बीरसेन जागासिंह, इंद्रदेव भोला, हेमराज सुंदर, राज हीरामन, सूरजप्रसाद मंगर, धनराज शंभु, धर्मवीर घूरा, राजेंद्र अरुण, राजरानी गोबिन, जयदत्ता जीउत, खेर जगह सिंह, महेश रामजीयावन, मोहनलाल मोहित सहित अनेकों नाम हैं जो कि हिंदी साहित्य को मॉरीशस में निरंतर समृद्ध कर रहे हैं।

भारतवंशियों के हिंदी-प्रेम के विषय में एक बात उल्लेखनीय है कि ये लोग हिंदी को धर्म के साथ भी जोड़कर देखते हैं। जैसे कि दूसरे और चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन के समय मॉरीशस से प्रकाशित स्मारिकाओं में प्राप्त संदेशों व लेखों में इस बात का सार्वजनिक रूप से वर्णन है। भारतवंशियों की पीढ़ियाँ आज भी भारत के संदर्भ में उसी काल में जीती हैं, जब उनके पूर्वज यहाँ से बंधक मजदूरों के रूप में ले जाए गए थे। इसका स्पष्ट उदाहरण मैंने प्रवासी भारतीय दिवस के आयोजनों में देखा है, जब पत्रकारों ने कुछ एन.आर.आई. बच्चों से पूछा कि आप भारत में कहाँ घूमना पसंद करेंगे तो उन्होंने अपने परिचितों, रिश्तेदारों और डिस्कोथेक व पार्टियों में जाने की बात कही। ठीक इसके विपरीत, जब पत्रकारों ने भारतवंशी मूल के युवा बच्चों से यही प्रश्न किया तो उन्होंने हरिद्वार, बनारस सहित अनेक धार्मिक स्थानों का वर्णन किया। इस मानसिकता का प्रभाव भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य पर भी स्पष्ट झलकता है। जो कहानी मॉरीशस में रची जाती है, उसकी पृष्ठभूमि लंदन से बिलकुल विपरीत होती है। लेकिन ये सभी लोग हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। अनिवासी भारतीयों का संदर्भ आने पर हिंदी के उन साहित्यकारों का उल्लेख करना आवश्यक है, जो लोग स्वतंत्रता प्राप्ति बाद विदेशों में जाकर बसे और उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी में लिखने का प्रयास किया तथा उनमें से कई लोग अच्छा लिख रहे हैं। जैसे कि उल्लेखनीय नाम त्रिनिदाद में प्रो. हरिशंकर आदेश, कनाडा से श्याम त्रिपाठी, हॉलैंड से मोहन कांत गौतम, पुष्पिता, लंदन में

डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव, उषाराजे सक्सेना, तेजेंद्र शर्मा, डॉ. पद्मेश गुप्त, प्राण शर्मा, गौतम सचदेव, कादंबरी मेहरा, दिव्या माथुर आदि अनेकों नाम हैं, जो विदेशों में हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। तेजेंद्र शर्मा लंदन में हिंदी के विस्फोट की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि 1990 से लेकर अब तक 100 से अधिक पुस्तकें हिंदी में छप चुकी हैं। इसी प्रकार अमेरिका में पी. जयरामन, भूदेव शर्मा, डॉ. राम चौधरी, सुषम बेदी, अंजना संधीर, सुधा ओम धींगरा सहित अनेकों साहित्यकार हिंदी को अपनी निरंतर सेवा प्रदान कर रहे हैं और सभी की रचनाएँ नियमित रूप से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हम तक पहुँचती रहती हैं। इसी प्रकार इटली से श्याम मनोहर पांडेय, जर्मनी से इंदु प्रकाश पांडेय, रूस से अनिल जन विजय, डेनमार्क से अर्चना पैंयुली, आबूधाबी से कृष्ण बिहारी आदि अनेक चर्चित नाम हैं, जो निरंतर भारतीय हिंदी साहित्य की पताका विदेशों में फहराते रहते हैं।

'मुन्नी ने बड़ा नाम किया है'

हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय रूप में स्थापित करने में बॉलीवुड का महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिसके अनेक उदाहरण हैं। अभी हाल में मुझे चीन यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ पर एक क्लब में चीनी व अंग्रेजी गाने बज रहे थे और डांसर अपना नृत्य प्रस्तुत कर रही थी। हम कुछ देर रुकने के बाद चलने को हुए, तभी वहाँ पर यह गाना 'मुन्नी बदनाम हुई' बजने लगा और ढेर सारे दूर-दूर बैठे भारतीय व अन्य देशों के लोग नाचने लगे तथा जो वातावरण अभी तक परदेसी लग रहा था वह एकदम देसी हो गया और बैरों से लेकर मेहमानों तक ने हिंदी में बात करना शुरू कर दिया। चीन जैसे देश में जहाँ अंग्रेजी भी न समझी जाती हो, वहाँ मुन्नी नाम कर रही है। चीन के ग्वानजाऊ के बीजिंग लू बाजार में चीनी दुकानों पर खड़ी बालाएँ आप से हिंदी में बात करती और अपना सामान बेचती मिल जाएँगी। साथ ही उन्होंने आपकी सुविधानुसार अपने नाम भी गीता, सीमा, सीता आदि रख लिए हैं। हमें बॉलीवुड को धन्यवाद देना चाहिए कि उसके माध्यम से हमारी भाषाओं, हमारी बोलियों के शब्द विदेशों में ग्राह्य होते जा रहे हैं।

हिंदी के संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यह भारतीय राजनय का अंग भी है। इसी कारण विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य विदेश मंत्रालय के अंतर्गत दिया गया है। विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए विदेश मंत्रालय का अंग भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार कैंब्रिज में हिंदी 150 वर्षों से चल रही है और पूर्वी यूरोप के कई देशों में लगभग 200 से अधिक वर्षों से हिंदी अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। उदाहरणस्वरूप हंगरी के ओतवोश लोरांद विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग की स्थापना सन् 1873 में हुई थी। जहाँ पर लगभग पिछले 50 वर्षों से हिंदी पठन-पाठन का कार्य चल रहा है और आज विश्व के लगभग 600 से अधिक स्थानों पर हिंदी शिक्षण का कार्य हो रहा है। श्रीलंका स्थित दूतावास के सहयोग से चलाई जा रही हिंदी की कक्षाओं में 250 से अधिक छात्र सदैव प्रवेश लेते हैं। भारत सरकार द्वारा आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मेलन भी राजनय का अंग बन चुके हैं।

यह भी एक विवाद का विषय है कि विश्व में हिंदी बोलने वाले कितने लोग हैं? विश्व में संख्या की दृष्टि से हिंदी भाषा-भाषियों को तीसरे स्थान पर रखा जाता है। कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के भाषायी एन्साइक्लोपीडिया सन् 1988 के अनुसार हिंदी एवं बिहारी भाषी 26.5 करोड़ हैं। इसी प्रकार भारतीय जनगणना सन् 1981 के आधार पर हिंदी भाषी लोगों की संख्या लगभग 26 करोड़ से अधिक है। इस शोध के बाद भारत के डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल का शोध यह प्रमाणित करता है कि आज हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा है। मैंने उनसे सभी दूतावासों के दस्तावेज माँगे और देखे। उनका यह शोध अनेक स्थानों पर प्रकाशित भी हो चुका है, जिसके अनुसार 67 राष्ट्रों में हिंदी जानने वालों की संख्या 1,022 मिलियन है, जबकि चीनी भाषा जानने वालों की संख्या लगभग 900 मिलियन और चीनी जानने वाले मात्र 13 राष्ट्र ही हैं। डॉ. नौटियाल ने इस शोध कार्य में 25 वर्ष व्यतीत किए हैं। अनेक लोगों ने उनके इस शोध की आलोचना भी की है और यह सिद्ध किया है कि उनका शोध गलत है। किंतु मेरा मानना यह है कि विश्व के सभी देश अपनी भाषा को गौरवान्वित करने के लिए आँकड़ों की बुनावट अवश्य करते हैं। जैसे

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

कि फ्रांस गोवा के कारण भारत को भी फ्रेंच भाषी देशों की संख्या में गिनता है। मेरा तर्क यह है कि यदि हम हिंदी के लोग केंकड़े की भाँति एक-दूसरे का पैर खींचना त्याग दें तो हिंदी में इस प्रकार के शोध कार्यों को और भी बल प्राप्त होगा। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विश्व में आज जहाँ भी हिंदी है, वह उसकी लोक भाषाओं के बल पर ही जीवित है। भोजपुरी, अवधी, मैथिली, ब्रज आदि कोई भी भाषा हो, विश्व में खड़ी बोली का स्वरूप इन्हीं भाषाओं के आधार पर बनता है। विश्व में हिंदी का स्वरूप यही लोक एवं भारतीय भाषाएँ ही निर्धारित कर रही हैं। हमें हिंदी के साथ-साथ इन भाषाओं को संवर्धित करना होगा तभी हिंदी भी बच पाएगी, अन्यथा त्रिनिदाद एवं गयाना की भाँति वहाँ की युवा पीढ़ी ज्यों-ज्यों भोजपुरी से दूर हुई, वैसे ही हिंदी भी दुर्दशा को प्राप्त हो गई। हमें अपनी युवा पीढ़ी और आने वाली पीढ़ियों में हिंदी एवं लोक भाषाओं के प्रति जागृति लानी होगी, तभी विश्व में हिंदी की पताका फहराएगी। भारत सरकार को चाहिए कि विश्व में रचे जा रहे प्रवासी हिंदी साहित्य के विद्वानों को उनकी कृतियों के प्रकाशन में सहयोग दे एवं प्रति वर्ष उन्हें आमंत्रित कर सम्मानित भी करे, तभी हिंद से बाहर हिंदी गौरवान्वित होगी और हिंदी की यह चौतरफा बयार पूरे विश्व को स्वाभिमान के पुष्पों से सुगंधित करेगी।

□

संपादक : प्रवासी संसार
5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031
ई-मेल : pravasisansar@gmail.com

स्वदेशाभिमान की एक शाखा यह भी है कि हम अपनी भाषा का मान रखें, उसे ठीक तरह से बोलना सीखें और उसमें विदेशी भाषा के शब्दों का उपयोग यथासंभव कम करें।

—महात्मा गांधी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

29 उपनिवेशवाद की समाप्ति

● डॉ. चरणदास महंत

राष्ट्र संघ के 63 वर्षों के इतिहास में कुल चार भाषण हिंदी में हुए हैं, ऐसी सूचनाएँ हमें प्राप्त हुई हैं। ईश्वर करे यह संख्या और अधिक हो। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी सबसे पहले राष्ट्र संघ में हिंदी में बोले थे, उनके पश्चात् पूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्री पी.वी. नरसिंहराव हिंदी में बोले। राव साहब के बाद श्री राजनाथ सिंह ने हिंदी में भाषण दिया और इनके पश्चात् सन् 2010 के अक्तूबर में छत्तीसगढ़ के कोरबा लोकसभा क्षेत्र के सांसद डॉ. चरणदास महंत पूरे 17 मिनट तक हिंदी में बोले। जो नाम मैंने ऊपर बताए हैं, उनमें महंतजी सबसे अधिक युवा सांसद हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि यह सब उस समय हो रहा है जबकि हम राष्ट्रसंघ में हिंदी को अधिकृत भाषा बनाने का अभियान छेड़े हुए हैं। इससे हमारे अभियान को शक्ति मिलती है। मैं इन सभी को बधाई देते हुए अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ। मेरा विश्वास है कि यह परंपरा आगे बढ़ेगी और राष्ट्रसंघ में हिंदी का प्रयोग निरंतर होता रहेगा।

*—**बालकवि बैरागी**, पूर्व सांसद एवं*
सदस्य शासी परिषद, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

मैं इस अवसर पर महासभा के पैसठवें सत्र की विशेष राजनीतिक और विऔप-निवेशीकरण समिति का अध्यक्ष चुने जाने पर आपको बधाई देता हूँ तथा ब्यूरो के अन्य निर्वाचित सदस्यों को भी शुभकामनाएँ देता हूँ। भूतपूर्व अध्यक्ष, कतर के स्थायी प्रतिनिधि, अंबेस्डर नासिर अब्दुलअजीज अल-नासेर ने 64वें सत्र के दौरान, जिस प्रकार समिति के कार्यों का संचालन किया, उसके लिए मैं उन्हें भी बधाई देता हूँ।



● तीन बार लोकसभा सांसद रहे हैं। वर्तमान में संसद् सदस्यों के वेतन तथा भत्तों संबंधी संयुक्त समिति के अध्यक्ष हैं। पूर्व में छत्तीसगढ़ तथा तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार में मंत्री रहे।

संयुक्त राष्ट्र और विऔपनिवेशीकरण पर 24वीं विशेष समिति के संस्थापक सदस्य के रूप में विऔपनिवेशीकरण पर चर्चा करना भारत के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र महासभा के इस 65वें अधिवेशन के दौरान मैं आपको अपने शिष्टमंडल के पूर्ण सहयोग और समर्थन का आश्वासन देता हूँ।

हम आज भी उपनिवेशवाद के अवशेषों में अपने को जकड़ा हुआ महसूस कर रहे हैं, जो कि हमारे अतीत की व्यवस्था थी। यह व्यवस्था संगठन के मूल सिद्धांतों के विपरीत थी और 65 वर्ष के बाद भी इस व्यवस्था से बाहर नहीं आ पाना हमारी असफलता को दर्शाता है। उपनिवेशवाद न केवल कालदोषी, अप्रचलित और पुरातन व्यवस्था है, अपितु यह लोकतंत्र, स्वतंत्रता, मानवीय गरिमा और अधिकारों के मूल तत्त्वों के भी विपरीत है।

14 दिसंबर, 1960 को महासभा ने 'उपनिवेशी देशों और उनके लोगों को स्वाधीनता प्रदान करने संबंधी घोषणा' पर संकल्प 1514 अंगीकार किया था, जिसके तहत 'उपनिवेशवाद को उसके सभी स्वरूपों में समाप्त करने' के उद्देश्य से एक संस्थागत ढाँचा तैयार किया गया था। इस वर्ष हम इस संकल्प की 50वीं वर्षगाँठ मनाएँगे। इसी वर्ष दिसंबर में

* संयुक्त राष्ट्र महासभा के 65वें अधिवेशन में दिया वक्तव्य

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

उपनिवेशवाद के उन्मूलन संबंधी द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय दशक (2000-2010) पूरा हो रहा है। इन ऐतिहासिक घटनाक्रमों को ध्यान में रखते हुए इस संबंध में की गई प्रगति का मूल्यांकन करना और शेष लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मौजूदा तौर-तरीकों की समीक्षा करना जरूरी है।

1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से विऔपनिवेशीकरण इसकी सबसे स्पष्ट उपलब्धियों में से एक है। आज बीस लाख मिलियन से भी कम लोग शेष 16 गैर-स्वशासी भू-क्षेत्रों में औपनिवेशी शासन तंत्र के अधीन हैं, जबकि 1945 में यह संख्या साढ़े सात करोड़ थी। यह तथ्य इस महान् निकाय के प्रयासों का प्रमाण है। तथापि, अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष है। यह यात्रा तब तक पूर्ण नहीं होगी, जब तक हम मील के सभी पत्थरों को पार न कर लें।

आज जब हम इस संकल्प की 50वीं वर्षगाँठ मना रहे हैं, तो हमें विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए अधिकतम प्रयास करने होंगे और इस निमित्त अपनी वचनबद्धता की पुन:पुष्टि करनी होगी। एक ओर हमें इस कार्य को तात्कालिकता की भावना और सक्रियता का दृष्टिकोण अपनाकर करना होगा और दूसरी ओर इस संबंध में अति संवेदनशीलता एवं सावधानी बरतनी होगी। इन शेष 16 भू-क्षेत्रों में से प्रत्येक की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करना और प्रत्येक क्षेत्र के विकास की अवस्थाओं को ध्यान में रखना विऔपनिवेशीकरण के संबंध में निर्णय लेने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य होंगे। यह गौर करना निश्चय ही प्रसन्नता की बात है कि उनमें से अधिकांश ने कार्यात्मक संस्थाएँ तैयार करनी शुरू कर दी हैं, जिनका संचालन वे स्वयं कर सकेंगे। उपनिवेशवाद को समाप्त करने के लिए हम विऔपनिवेशीकरण संबंधी विशेष समिति (24 की समिति) की शक्तियों का सकारात्मक एवं सार्थक उपयोग करने की दिशा में किए गए प्रयासों का स्वागत करते हैं। शक्तियों के उपयोग हेतु समिति के साथ सहयोग और लोचशीलता की भावना में कार्य करने की आवश्यकता है।

मेरा शिष्टमंडल विऔपनिवेशीकरण पर विशेष समिति द्वारा किए गए प्रयासों को देखकर प्रसन्न है जो इन भू-क्षेत्रों में रहनेवाले लोगों को उपलब्ध न्यायसंगत राजनैतिक विकल्पों पर सूचना के प्रसार के संबंध में किए गए हैं। इस वर्ष मई में नौमिया, न्यू-कैलेंडोनिया में विऔपनिवेशीकरण पर 24वीं विशेष समिति द्वारा आयोजित प्रशांत क्षेत्रिय संगोष्ठी सही दिशा में किया गया प्रयास है। ऐसी संगोष्ठियों से इन भू-क्षेत्रों में शीघ्रता से उपनिवेशवाद को समाप्त करने के लिए लोगों को समर्थन और सहायता प्रदान करने में विश्व की राय जुटाने में सहायता मिलती है।

भारत विऔपनिवेशीकरण पर विशेष समिति द्वारा रिपोर्ट (ए/65/23) तैयार करने और उसकी सिफारिशों के लिए किए गए प्रयासों की सराहना करता है। भारत विऔपनिवेशीकरण से संबद्ध शेष मुद्दों को देखते हुए उपनिवेशवाद के उन्मूलन के लिए तृतीय अंतर्राष्ट्रीय दशक शुरू करने की सिफारिश का भी स्वागत करता है।

अंत में मैं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के वक्तव्य का उल्लेख करने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ, जो समसामयिक संदर्भ में और भी समीचीन है। उन्होंने कहा था, ''जैसे कोई व्यक्ति अपने अलावा किसी दूसरे के शरीर में रहकर खुश नहीं रह सकता, उसी तरह राष्ट्र भी दूसरे राष्ट्रों के अधीन नहीं रह सकते, चाहे उस पर शासन करनेवाला राष्ट्र कितना भी उदार और महान क्यों न हो।''

भारत सदैव से लोकतंत्र, मानवाधिकार, गरिमा और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की अवधारणाओं पर दृढ़ विश्वास रखनेवाला देश रहा है, जो सभ्य समाज की विशेषता होती है। हम विऔपनिवेशीकरण के प्रयासों के प्रति अपनी वचनबद्धता व्यक्त करते हैं ताकि शेष 16 गैर-स्वशासी भू-क्षेत्र भी उपनिवेशवाद से मुक्त हो सकें।

□

3, महादेव रोड,
नई दिल्ली-110001

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

30

विश्व हिंदी सम्मेलनों के मंतव्य

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन



(10-14 जनवरी, 1975 नागपुर भारत)

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए।
2. वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो।
3. विश्व हिंदी सम्मेलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ठोस योजना बनाई जाए।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन



(28-30 अगस्त, 1976 मोका, मॉरीशस)

1. मॉरीशस में एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए जो सारे विश्व में हिंदी की गतिविधियों का समन्वय कर सके।
2. एक अंतर्राष्ट्रीय हिंदी पत्रिका का प्रकाशन किया जाए जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे और विज्ञान तथा अध्यात्म की महान् शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।
3. हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में एक आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान मिले। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाए।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन



(28-30 अक्तूबर, 1983 नई दिल्ली, भारत)

1. अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार की संभावनाओं का पता लगाकर इसके लिए गहन प्रयास किए जाएँ।
2. हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप को विकसित करने के लिए विश्व हिंदी विद्यापीठ स्थापित करने की योजना को मूर्त रूप दिया जाए।
3. विगत दो सम्मेलनों में पारित संकल्पों की संपुष्टि करते हुए यह निर्णय लिया गया कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास और उन्नयन के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक स्थायी समिति का गठन किया जाए। इस समिति में देश-विदेश के लगभग 25 व्यक्ति सदस्य हों।

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन



(2-4 दिसंबर, 1993 मोका, मॉरीशस)

1. विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में स्थापित किया जाए।
2. भारत में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित किया जाए।
3. विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ खोले जाएँ।
4. भारत सरकार विदेशों से प्रकाशित हिंदी के दैनिक समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें प्रकाशित करने में सक्रिय सहायता करे।
5. हिंदी को विश्व मंच पर उचित स्थान दिलाने में शासन और जन समुदाय विशेष प्रयत्न करे।
6. विश्व के समस्त हिंदी प्रेमी अपने निजी एवं सार्वजनिक कार्यों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करें और यह संकल्प लें कि वे कम-से-कम अपने हस्ताक्षरों, निमंत्रण-पत्रों, निजी पत्रों और नामपट्टों में हिंदी का प्रयोग करेंगे।
7. सम्मेलन के सभी प्रतिनिधि अपने-अपने देशों की सरकारों से संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए समर्थन प्राप्त करने का सार्थक प्रयास करें।

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन



(4-8 अप्रैल, 1996 पोर्ट ऑफ स्पेन, त्रिनिदाद एंड टोबेगो)

1. विश्वव्यापी भारतवंशी समाज हिंदी को अपनी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करेगा।
2. मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना के लिए भारत में एक अंतर-सरकारी समिति बनाई जाए।
3. सभी देशों, विशेषकर जिन देशों में आप्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में हैं, उनकी सरकारें अपने-अपने देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करें। उन देशों की सरकारों से आग्रह किया जाए कि वे हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के लिए राजनीतिक योगदान और समर्थन दें।

छठा विश्व हिंदी सम्मेलन



(14-18 सितंबर, 1999 लंदन)

1. विश्व भर में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन, शोध, प्रचार-प्रसार और हिंदी सृजन में समन्वय के लिए महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय केंद्र सक्रिय भूमिका निभाए।
2. विदेशों में हिंदी शिक्षण, पाठ्यक्रमों के निर्धारण, पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण, अध्यापकों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था भी विश्वविद्यालय करे और सुदूर शिक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाए।
3. मॉरीशस सरकार अन्य हिंदी-प्रेमी सरकारों से परामर्श कर शीघ्र विश्व हिंदी सचिवालय स्थापित करे।
4. हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में मान्यता दी जाए।
5. हिंदी की सूचना तकनीक के विकास, मानकीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी लेखन, प्रसारण एव संचार की अद्यतन तकनीक के विकास के लिए भारत सरकार एक केंद्रीय एजेंसी स्थापित करे।
6. नई पीढ़ी में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए आवश्यक पहल की जाए।
7. भारत सरकार विदेश स्थित अपने दूतावासों को निर्देश दे कि वे भारतवंशियों की सहायता से विद्यालयों में एक भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था करवाएँ।

सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन



(5-9 जून, 2003 पारामारिबो, सूरीनाम)

1. संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाया जाए।
2. विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ की स्थापना हो।
3. भारतीय मूल के लोगों के बीच हिंदी के प्रयोग के प्रभावी उपाय किए जाएँ।
4. हिंदी के प्रचार हेतु वेबसाइट की स्थापना और सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग हो।
5. हिंदी विद्वानों की विश्व-निर्देशिका का प्रकाशन हो।
6. विश्व हिंदी दिवस का आयोजन हो।
7. कैरेबियन हिंदी परिषद् की स्थापना हो।
8. दक्षिण भारत के विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग की स्थापना हो।
9. हिंदी पाठ्यक्रम में विदेशी हिंदी लेखकों की रचनाओं को शामिल किया जाए।
10. सूरीनाम में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की जाए।

आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन



(13-15 जुलाई, 2007 न्यूयॉर्क)

1. विदेशों में हिंदी शिक्षण और देवनागरी लिपि को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से दूसरी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

लिए एक मानक पाठ्यक्रम बनाया जाए तथा हिंदी के शिक्षकों को मान्यता प्रदान करने की व्यवस्था की जाए।

2. विश्व हिंदी सचिवालय के कामकाज को सक्रिय करने एवं उद्देश्यपरक बनाने के लिए सचिवालय को भारत तथा मॉरीशस सरकार सभी प्रकार की प्रशासनिक एवं आर्थिक सहायता प्रदान करें और दिल्ली सहित विश्व के चार-पाँच अन्य देशों में इस सचिवालय के क्षेत्रीय कार्यालय खोलने पर विचार किया जाए। सम्मेलन सचिवालय से यह आह्वान करता है कि हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए विश्व मंच पर हिंदी वेबसाइट बनाई जाए।

3. हिंदी में ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी विषयों पर सरल एवं उपयोगी हिंदी पुस्तकों के सृजन को प्रोत्साहित किया जाए। हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के प्रभावी उपाय किए जाएँ। एक सर्वमान्य व सर्वत्र उपलब्ध यूनिकोड को विकसित व सर्वसुलभ बनाया जाए।

4. विदेशों में जिन विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है उनका एक डेटाबेस बनाया जाए और हिंदी अध्यापकों की एक सूची भी तैयार की जाए।

5. यह सम्मेलन विश्व के सभी हिंदी प्रेमियों और विशेष रूप से प्रवासी भारतीयों तथा विदेशों में कार्यरत भारतीय राष्ट्रिकों से भी अनुरोध करता है कि वे विदेशों में हिंदी भाषा, साहित्य के प्रचार-प्रसार में योगदान करें।

6. वर्धा स्थित महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में विदेशी हिंदी विद्वानों के अनुसंधान के लिए शोधवृत्ति की व्यवस्था की जाए।

7. केंद्रीय हिंदी संस्थान भी विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार व पाठ्यक्रमों के निर्माण में अपना सक्रिय सहयोग दे।

8. विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठ की स्थापना पर विचार-विमर्श किया जाए।

9. हिंदी को साहित्य के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और वाणिज्य की भाषा बनाया जाए।

10. भारत द्वारा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर आयोजित की जानेवाली संगोष्ठियों व सम्मेलनों में हिंदी को प्रोत्साहित किए जाए।

□

हिंदी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरंण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की 'भारती' के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark





प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन

ऐतिहासिक भाषण





DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

31 उद्घाटन-भाषण

● श्रीमती इंदिरा गांधी
प्रधानमंत्री, भारत



प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम,

विशिष्ट अतिथिगण!

हिंदी विश्व की महान् भाषाओं में से है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो इसे दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। गंगा-यमुना के निकटवर्ती प्रदेशों में विकसित होकर, इस भाषा का प्रयोग भारत के सुदूर कोनों तक प्रचलित है। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है, जहाँ हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गए और विदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में, जहाँ विद्वान् लोग हिंदी का अध्ययन करते हैं। हमारे प्रमुख अतिथि मॉरीशस के प्रधानमंत्री हिंदी की विश्व-व्यापकता के एक जीवंत उदाहरण हैं। पूर्वी और पश्चिमी यूरोप, अमेरिका तथा अटलांटिक और प्रशांत प्रायद्वीपों से हिंदी-विद्वान् यहाँ आए हैं। उन सभी कोविद और हिंदी-प्रेमियों का मैं स्वागत करती हूँ।

इस सम्मेलन के आयोजन के लिए मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को बधाई देती हूँ, विशेषकर महामंत्री को, जिन्होंने लगन से इसे आगे बढ़ाया है। अन्य भाषाओं के लेखकों और साहित्यकारों को उन्होंने बुलाया है, इसकी मुझे प्रसन्नता है। हमारा सब भाषाओं में आपसी लेन-देन है, साथ ही प्रत्येक भाषा की अपनी एक महान् विरासत और अपना उज्ज्वल भविष्य है।

भारत जैसे संयुक्त परिवार का अच्छा उदाहरण मिलना कठिन है। हमारी प्रत्येक मातृभाषा इस परिवार की पुत्री के समान है। ये सभी भाषाएँ भारत की सांस्कृतिक संपत्ति की समान उत्तराधिकारी हैं। ये भाषाएँ भारत की राष्ट्रभाषाएँ हैं और इनमें से हिंदी भारत की राष्ट्रीय संपर्क की भाषा है, क्योंकि इस भाषा का परिवार सबसे बड़ा है।

संसार की सीमाएँ सिमटती जा रही हैं। इस तकनीकी युग में लोगों का देश-विदेश में आवागमन बहुत बढ़ गया है। कोई भी व्यक्ति केवल एक भाषा से काम नहीं चला सकता। कुछ देशों में अनिवार्य रूप से तीन भाषाएँ सिखाई जाती हैं। हमारे विशाल देश में भी, यह आवश्यक है व कठिन भी नहीं है।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि प्रत्येक भारतीय स्वभावत: दुभाषी है। वे अंतर-प्रांतीय समझ-बूझ और संपर्क बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने ठीक ही कहा था कि यह तभी संभव है जब ज्यादा लोग हिंदी अथवा हिंदुस्तानी सीखें और बोलें। इसी कारण हमारे स्वतंत्रता-संग्राम में हिंदी का एक खास स्थान रहा है। बिना किसी विशेष सरकारी आश्रय के कई अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हिंदी समझी जाती रही है। वाणिज्य-व्यापार की वृद्धि तथा सिनेमा के प्रचलन से भी इस भाषा के विस्तार को प्रोत्साहन मिला है।

हिंदी आज भारत की संपर्क भाषा है। लेकिन यह पद पाने पर हिंदी के विरुद्ध कुछ अनावश्यक प्रतिरोध हुआ। कुछ लोगों का भ्रम है कि हिंदी भाषा-भाषियों के लाभ से उनका अहित होगा। ऐसी भावना फैलने का कुछ दोष हिंदीभाषियों के अनुचित उत्साह और दृष्टिकोण पर है। हिंदी के समर्थकों को चाहिए कि वे अहिंदीभाषियों के दिलो को जीतें, उनकी आशंकाओं को दूर करें और उनमें विश्वास जगाएँ। हिंदी का विकास अवश्यंभावी है और अन्य भाषाओं की समृद्धि इसमें विशेष सहायक होगी। हिंदी संपर्क भाषा एक माध्यम है। जिसके द्वारा इस विशाल देश के लोग एक-दूसरे को समझ सकेंगे और मिलकर काम कर सकेंगे। इस भूमिका को निभाने के लिए हिंदी को सीमित दायरे से उठकर आधुनिक चुनौतियों का मुकाबला करना है। लोकतंत्र की सफलता के लिए जरूरी है कि देश के सब लोग समस्याओं को

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

समझ सकें तथा उनका सामना करने में भाग ले सकें। हिंदी को न केवल सब क्षेत्रों के बीच बल्कि सब वर्गों के बीच एक जीवंत भाषा बनाना है। इसके लिए भाषा को सादा और लचीली होना है, ताकि वह बदलती स्थितियों और नए ज्ञान को अपना सके। जहाँ जरूरी हो, दूसरी भाषाओं से शब्द लेने में संकोच नहीं होना चाहिए।

हिंदी को चाहिए कि वह अपने दरवाजे और खिड़कियाँ खुली रखे। 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि अच्छे विचारों का सभी दिशाओं से हम आवाहन करें। इसी तरह हिंदी एक विश्व-भाषा का रूप ले सकेगी। जिस हद तक हिंदी का भंडार बढ़ेगा और उसकी उपयोगिता बढ़ेगी, उस हद तक अधिक-से-अधिक लोग हिंदी सीखना चाहेंगे। हमें देखना है कि इस दिशा में हम और क्या सुविधाएँ दे सकते हैं। आशा है, आप सब भी इस विषय पर ध्यान देंगे।

हम एक ऐसे भारत की कल्पना नहीं करते, जहाँ केवल एक भाषा बोली जाती हो, न ऐसे भारत की, जहाँ एक ही धर्म का बोलबाला हो। हमारा देश बहुधर्मी देश है। हमारा देश बहुभाषी देश है। हमारे यहाँ अनेकता में एकता है। यह एक सर्वभाषा भारती है। लेकिन मुझे आशा है कि भारत के लोग अधिक-से-अधिक हिंदी सीखेंगे। मैंने अकसर कहा है कि भारत का प्रत्येक बच्चा अपनी मातृभाषा सीखे, राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में हिंदी सीखे और अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी सीखे। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे अपनी प्रादेशिक संस्कृति, अपनी राष्ट्रीय विरासत और विश्व का ज्ञान अर्जित करें। यह तीन बातें हमें आत्मसात् करनी हैं। आधुनिक युग में अच्छा भारतीय होने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा अपने क्षेत्र के जन-जीवन से पूरा परिचय हो और साथ ही हम विश्व-नागरिक भी हों।

सरकार सतत प्रयत्नशील है कि हिंदी राजभाषा और अंतरप्रांतीय संपर्क भाषा के रूप में प्रभावकारी हो। पर हिंदी किसी पर लादी नहीं जाएगी। सरकार के आश्रय से ही किसी भाषा की उन्नति नहीं होती है, इससे तो एक दफ्तरी भाषा का विकास होगा, न कि एक जीवंत साहित्य का। यह सच है कि कई भाषाओं के साहित्य को दरबारों में प्रोत्साहन मिला, लेकिन हिंदी के विकास की कहानी भिन्न है। सूर, तुलसी, कबीर आदि को कौन सा राजाश्रय मिला था? इनका, इनकी भाषा और इनके साहित्य का विकास जन-समुदाय के बीच हुआ।

एक महान् भाषा-शास्त्री ने लिखा है कि किसी भाषा के सौंदर्य और शुद्धता की रक्षा गृहिणी अर्थात् माँ करती है, जो अपनी गोद में बच्चे को भाषा का स्वर तथा वाक्य-विन्यास सिखाती है। कोई भी आधुनिक भाषा केवल कवि, नाटककार तथा आलोचक के प्रयासों से विकसित नहीं होती है। उसमें निखार और शक्ति तभी आएगी, जब व्यापारी अपने व्यापार के लिए, वैज्ञानिक अपनी खोजों को समझाने के लिए और सार्वजनिक जीवन के लोग आशापूर्ण दृष्टिकोण रखने के लिए इसका प्रयोग करें। गद्य के लिए यह विशेष रूप से सत्य है।

एक महान् भाषा-शास्त्री ने लिखा है कि किसी भाषा के सौंदर्य और शुद्धता की रक्षा गृहिणी अर्थात् माँ करती है, जो अपनी गोद में बच्चे को भाषा का स्वर तथा वाक्य-विन्यास सिखाती है। कोई भी आधुनिक भाषा केवल कवि, नाटककार तथा आलोचक के प्रयासों से विकसित नहीं होती है। उसमें निखार और शक्ति तभी आएगी, जब व्यापारी अपने व्यापार के लिए, वैज्ञानिक अपनी खोजों को समझाने के लिए और सार्वजनिक जीवन के लोग आशापूर्ण दृष्टिकोण रखने के लिए इसका प्रयोग करें। गद्य के लिए यह विशेष रूप से सत्य है। सबसे अच्छा गद्य वह नहीं होता जो केवल अलंकृत है, बल्कि वह होता है जिसमें युक्ति देने, व्याख्या करने और भावों को ठीक प्रकार प्रकट करने तथा दूसरे तक पहुँचाने की क्षमता होती है।

भाषा, देश में चरित्र का दर्पण होती है। हिंदी और अन्य भारतीय

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भाषाओं में भक्ति तथा दार्शनिक साहित्य का भंडार है। लेकिन हमारी भाषाएँ आधुनिक तभी हो सकती हैं, जबकि वे समकालीन और भविष्य के विचारों को समाविष्ट करने की क्षमता रखेंगी। आजकल के युग में कोई भी राष्ट्र विज्ञान की उन्नति से अलग नहीं रह सकता, बल्कि उसके लिए अनिवार्य है कि वह ज्ञान की खोज में सक्रिय भाग ले। यह सच है कि प्रत्येक देश अपना कार्य अपनी भाषा में करे, पर उतना यह भी ही आवश्यक है कि विज्ञान और तकनीक की उन्नति में भाषा बाधा न बने। पिछले कुछ दशकों में संसार में कई नई दिशाओं में नए-नए विचारों का सृजन हो रहा है। इन विषयों में हिंदी में बहुत थोड़ा साहित्य है और हम बहुत हद तक अनुवाद पर निर्भर हैं। अनुवाद का अपना स्थान है, किंतु वह मूल पुस्तकों का स्थान नहीं ले सकता।

किसी विदेशी भाषा में रुचि इस पर निर्भर करती है कि विज्ञान, तकनीक, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में उस भाषा के ज्ञान से व्यक्ति कितना लाभ उठा सकता है! विश्व में हिंदी के विकास के लिए इन सब बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी जैसी भाषाओं के विकास और विस्तार का यही रहस्य है।

किसी देश और जनता को गौरव मिलने से उसकी भाषा को भी सम्मान मिलता है। क्या भाषा के सौंदर्य से ही उसका आदर होगा? दुर्भाग्य से हमारे देश में कई लोग और गुट अपने देश की और उसकी उपलब्धियों की निंदा करने पर तुले हैं। ऐसे लोग न तो जनता की सेवा कर रहे हैं और न अपनी भाषा की।

मैं फिर यह कहना चाहूँगी कि मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि सर शिवसागर रामगुलाम अपने सुंदर देश से इस महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम की अध्यक्षता करने आए हैं। उन्होंने कई जातीय तथा प्रादेशिक लड़ियों को एक सूत्र में बाँधकर एक नए मॉरीशस का निर्माण किया है। हमारे देश की तरह मॉरीशस ने भी अनेकता में एकता के रहस्य को समझा है। सर शिवसागर रामगुलाम का उनके पूर्वजों के इस देश में हमेशा स्वागत है।

मुझे इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प्रसन्नता है। मुझे आशा है कि हिंदी भाषा द्वारा भारत की अन्य देशों से मित्रता की कड़ियाँ और दृढ़ होंगी। सम्मेलन की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएँ!

□



DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

32 अध्यक्षीय भाषण

सर शिवसागर रामगुलाम
प्रधानमंत्री, मॉरीशस



परम आदरणीय प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसंतराव नाईक, विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रधान सचिव श्री अनंत गोपाल शेवड़े, मंत्रीगण, देश-विदेश से आए हुए विद्वान् और हिंदी-प्रेमी भाइयो और बहनो !

मुझे इस महान् सम्मेलन का प्रधान बनाकर आपने मेरे देश मॉरीशस और मेरे देशवासियों का सम्मान किया है, इसलिए मॉरीशस की जनता, खुद मैं और मेरे साथी आपका आभार मानते हैं।

भारत और दूसरे देशों के लिए, जो इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं, यह एक ऐतिहासिक दिन है। इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन की महानता इस बात से स्पष्ट है कि आज यहाँ बहुत से हिंदी-प्रेमी देश उपस्थित हैं। आज हमारे बीच सोवियत संघ, अमेरिका, कनाडा, जापान, बँगलादेश, इटली, श्रीलंका, फीजी और त्रिनिडाड के लेखक और विद्वान् मौजूद हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण हैं—प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी।

हम मॉरीशसवासी हिंदी की महानता को भली प्रकार पहचानते हैं। यही एक भाषा है जिसे लेकर पिछले 150 वर्षों में हमने अपने बाप-दादा की परंपरा को जिंदा रखा है। आप जानते हैं कि लगभग 150 वर्षों पहले हमारे बाप-दादा भारत से मजदूरों के रूप में मॉरीशस आए थे। आज इन्हीं मजदूरों की मेहनत से हमारा देश एक प्रगतिशील देश बना है। हमारे देश में भारत के वंशजों के अलावा और कई लोग भी बसने आए। हम सभी ने मिलकर एक मिली-जुली सभ्यता और एक मिले-जुले समाज की रचना की है। हमारे छोटे से देश में फ्रेंच, इंग्लिश, उर्दू, तेलुगु, चीनी, तमिल, मराठी और गुजराती भाषाएँ बोली जाती हैं। लेकिन हिंदी सबसे अधिक लोग समझते-बोलते हैं।

इसलिए जब आप लोगों ने मुझे इस ऐतिहासिक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के प्रधान के रूप में यहाँ नागपुर बुलाया तो मुझे लगा कि आपने भारत और मॉरीशस के पुराने और गहरे संबंध को और मजबूत बनाया है।

श्रीमती इंदिरा गांधी आज एक महान् संग्राम की नेता हैं। वह संग्राम है गरीबी के खिलाफ। हमारे जैसे अनेक आजाद देशों में, जो पहले उपनिवेश थे, यही लड़ाई दिन-रात लड़ी जा रही है। भारत और मॉरीशस और अन्य अनेक देश कंधे-से-कंधा मिलाकर उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ रहे हैं, इसलिए कि साधारण इंसान का जीवन अधिक सुखी बन सके, इसलिए कि हर मजदूर का हक उसे मिले, इसलिए कि नौजवानों को आगे बढ़ने के अवसर मिलें, इसलिए कि दुनिया संघर्ष से अलग होकर एकता के रास्ते पर चले।

मैं जब भी भारत में आता हूँ तो यहाँ प्रगति के नए पहलू दिखाई पड़ते हैं। आज विज्ञान के क्षेत्र में और भारतीय जन-जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रगति दिखाई देती है। भारत जितना ऊँचा जाता है, हम मॉरीशसवासी उतना अधिक गर्व करते हैं।

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह भाषा एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है। आज हिंदी अनेक देशों में बोली जाती है। आज अनेक देशों में हिंदी के पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। बोलनेवालों की संख्या को देखते हुए आज हिंदी विश्व की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है।

और जैसा मैंने कहा, इस गौरव में भारत के उन वंशजों का बहुत बड़ा हाथ है, जो मजदूर बनकर अपना देश छोड़कर कई देशों में जा

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

बसे और आज अपनी मेहनत के बल पर आजाद देश हैं, और उन देशों की जनता अधिक-से-अधिक प्रगति करती जा रही है।

मेरे देश मॉरीशस का हिंदी भाषा का बहुत ही महत्त्वपूर्ण इतिहास है। जब हमारे बाप-दादा हिंद महासागर के इस छोटे से टापू पर उतरे थे और पथरीली जमीन को समतल बनाकर उन्होंने गन्ने की खेती की थी, तो उन्हें जीवन की मामूली सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं थीं। बहुत से लोग पढ़े-लिखे भी नहीं थे। हजारों मील दूर अपनी मातृभूमि से अलग हो उन्होंने एक नया संसार बसाया। लेकिन यह बात याद रखने की है कि जब ये मजदूर लोग आए थे तो अपने-अपने धर्म और संस्कृति की धरोहर को साथ लाए थे। रामायण की कथा गाँव-गाँव में होती थी। इसी प्रकार दूसरी भारतीय भाषाएँ बोलनेवाले अपने लोकगीत और अपनी लोक-कथाएँ और अपनी धार्मिक परंपराएँ सँभालकर रखते थे। यही कारण है कि बहुत मजबूरियों के बावजूद, अपनी मातृभूमि से बहुत दूर होने के बावजूद, मॉरीशस और भारत का सांस्कृतिक रिश्ता कभी नहीं टूटा।

हमें इस बात का भी गर्व है कि जैसा बीसवीं सदी के शुरू में भारत में सामाजिक जागरण हुआ, उसकी रोशनी मॉरीशस में भी पहुँची। स्वामी दयानंद ने वेदों के आधार पर आर्यसमाज की स्थापना की और यह आंदोलन 1920 में मॉरीशस पहुँचा। गाँव-गाँव में हिंदी पाठशालाएँ खुलने लगीं। इसी बीच 1935 में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। साथ-साथ सनातन धर्म सभा, हिंदू महासभा, सेवा शिविर और त्रिवेणी जैसी संस्थाओं ने भी हिंदी के विकास में योगदान दिया।

स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, संत तुकाराम, टैगोर, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे महान् नेताओं के विचारों से भी पूरे मॉरीशसवासी, वे चाहे जो भी बोली बोलते हों, प्रभावित हुए। हमारी आजादी की लड़ाई ने भी उस लहर से प्रेरणा हासिल की, जो भारत की आजादी की लड़ाई से शुरू हुई थी। मैं महात्मा गांधी से लंदन में मिला था और उस दिन की मेरे दिल पर गहरी छाप रही है। यह तो आप जानते ही हैं कि महात्मा गांधी के चरण मॉरीशस में पड़े थे और अब भी लोग गांधीजी और नेहरू को बराबर याद करते हैं।

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह भाषा एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतरराष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है। आज हिंदी अनेक देशों में बोली जाती है। आज अनेक देशों में हिंदी के पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। बोलनेवालों की संख्या को देखते हुए आज हिंदी विश्व की चार प्रमुख भाषाओं में से एक है।

अभी हाल में श्रीमती इंदिरा गांधी मॉरीशस पधारी थीं और उस दिन से भारत और मॉरीशस के बीच पुराने रिश्ते-नाते और मजबूत हो गए। दोनों देश अनेकानेक क्षेत्रों में साथ-साथ चल रहे हैं।

आज मॉरीशस में न केवल हिंदी हायर सेकेंडरी में पढ़ाई जाती है, बल्कि अनेक लेखक, कवि और पत्रकार हिंदी में रचनाएँ करते हैं। इन लेखकों की रचनाएँ भारत की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। 1968से, मॉरीशस की आजादी के बाद, हिंदी के विकास में मॉरीशस ने जो मार्ग लिया है, उस पर हम गर्व करते हैं।

मॉरीशस में हिंदी रंगमंच का भी विकास हुआ है। इस वर्ष की राष्ट्रीय प्रतियोगिता में बहुत से नौजवान नाटककारों और कलाकारों ने भाग लिया। इस प्रगति की एक झलक आप एक नाटक में देखेंगे, जिसे मॉरीशस के युवा कलाकार आपके सामने पेश करेंगे।

हिंदी भारत के चिंतन और दर्शन का मूल स्रोत है। इसी के द्वारा भारत की आत्मा को पहचाना जा सकता है। यही कारण है कि दुनिया

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

भर में कई बड़े-बड़े स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटियाँ हिंदी को प्रोत्साहन दे रही हैं, क्योंकि हिंदी के ही द्वारा भारत की सभ्यता को समझा और परखा जा सकता है। आप सबको यह जानकर खुशी होगी कि हमारे यहाँ भारत सरकार के सहयोग से बन रहे महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट में भी भारतीय चिंतन और दर्शन और साथ-साथ हिंदी का विकास होगा। इस महत्त्वपूर्ण संस्था का शिलान्यास मॉरीशस की परम मित्र श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया था। हमें आशा है कि महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट न केवल मॉरीशस का एक बहुत मूल्यवान् संस्थान बन सकेगा, बल्कि पूरे भारतीय महासागर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का एक महान् केंद्र बन सकेगा, जहाँ आस-पास के लेखक-विचारक आएँगे। इस प्रकार मॉरीशस को उस भाषा और संस्कृति की सेवा करने का एक और अवसर प्राप्त होगा, जिसने उसे पिछले 150 वर्षों में दुनिया में आगे बढ़ने की शक्ति दी है।

मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि इस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन ने विश्व एकता और सामाजिक भाईचारे के आदर्श को सामने रखा है। आज दुनिया के सब देश यह अनुभव कर रहे हैं कि जब तक इंसान वर्ग, जाति और रंग के भेदभाव को नहीं भूलेगा, तब तक विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। धीरे-धीरे अलग-अलग बसे देश एकसूत्र में बँधते जा रहे हैं। मैं यहाँ उपस्थित सब विद्वानों से यह अपील करूँगा कि हिंदी के विकास की रूपरेखा बनाते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखें कि हिंदी आज की दुनिया में एकता बनाने में सहायता करे। मैं मानता हूँ कि विश्व की सारी भाषाएँ एक बहुत विशाल पेड़ की डालियाँ हैं। हमें सब भाषाओं को और निकट लाना है और, इसी प्रयास में से ही हमें हिंदी को आगे बढ़ाने की परियोजनाएँ बनानी हैं। मैं कामना करता हूँ कि यह सम्मेलन अपने उद्देश्य को पूरा कर सकेगा।

अंत में, मैं प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और सम्मेलन के संचालकों का धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने मुझे आज नागपुर बुलाकर मेरा और मेरे हिंदी-प्रेमी देशवासियों का आदर किया है।

□

हिंदी भारतवर्ष के हृदय-देश में स्थित करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देनेवाली भाषा है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark





प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन

कुछ संस्मरण

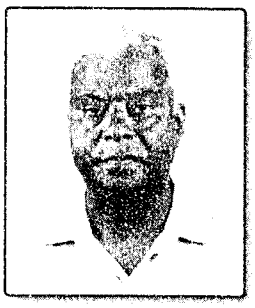




A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

33 प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : मेरे संस्मरण

रामदेव धुरंधर



- जन्म : 11 जून, 1946
- धर्मयुग, सारिका, गगनांचल, आजकल तथा भारत की अनेक पत्रिकाओं में कहानियाँ और लेख प्रकाशित
- नागपुर विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर, अब तक अनेकों बार भारत यात्रा
- सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन सुरीनाम में सम्मानित
- अब तक दस उपन्यास, चार व्यंग्य संग्रह, चार लघु-कथा संग्रह प्रकाशित
- व्यंग्य लेखक के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा
- चौदह सौ लघु कथाओं को दो भागों में प्रकाशित करवाने के लिए कटिबद्ध
- 'पथरीला सोना' छह वृहद् खंडीय उपन्यासों से हिंदी जगत् में खास पहचान।
- प्रथम भारतीय मजदूरों की वंश परंपरा को शब्द और अर्थ देने की योजना में सिद्धहस्त।

मॉरीशस में स्थित विश्व हिंदी सचिवालय ने इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में 'विश्व हिंदी दिवस : 2009' के अवसर पर एक कार्यक्रम का आयोजन किया था। उद्देश्य था—नागपुर में आयोजित 'प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन' में मॉरीशस के जो लोग भाग लेने गए थे, वे अपने संस्मरण सुनाएँ। जाने को तो एक अच्छा-खासा प्रतिनिधिमंडल भारत गया था, पर सचिवालय के पास इसका कोई लिखित दस्तावेज नहीं था। तत्कालीन महासचिव श्रीमती अरुण ने फोन द्वारा मुझसे बात की और चाहा कि उनके साथ सहयोग करते हुए उस अवसर की कुछेक बातों का खुलासा दूँ। उन्हें पता था कि जानेवालों में मैं भी था। अत: वे मुझसे आशा कर रही थीं कि अलिखित दस्तावेज ही सही, मैं उन्हें जो बताऊँगा, उन्हें इतना विश्वास रहेगा कि मैं सच का ही बयान कर रहा हूँ।

सन् 1975 से अब तक के वर्षों की गिनती लगाएँ तो पैंतीस साल पाएँगे। यह एक लंबा अंतराल था। मैंने सोचा नहीं था कि इतने साल पीछे छूटे हुए क्षणों की याद में मुझे ले जाने की एक ऐसी पहल भी मेरा इंतजार कर रही होगी। मैं पहली बार भारत गया था। दूसरे शब्दों में कहूँगा, हिंदी-कुंभ की वह मेरी पहली भारत-यात्रा थी। उसे 'हिंदी-कुंभ' से याद करना मुझे बड़ा प्यारा लग रहा है। सरकारी खर्च पर प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में जाने के लिए मेरे पास लेखकीय पूँजी इतनी ही थी कि मैं भारत में छपने लगा था। विशेषकर मेरी खास उपलब्धि यह हुई थी कि 'धर्मयुग' में मेरी दो कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। 'आजकल', 'नीहारिका' और इस तरह से भारत की और भी कुछेक पत्रिकाओं में मैं अपनी कहानियाँ प्रकाशित करवाने का सौभाग्य पा चुका था। मैं 'धर्मयुग' वाली उपलब्धि को सबसे ऊपर मानता था और आज भी उसका सुवास मेरे मन में यथावत बना हुआ है। 'धर्मयुग' में कहानी के साथ फोटो और जीवन-परिचय तो आया ही था। रचना छपने पर यू.एस. डॉलर में राशि प्राप्त होना, स्वनामधन्य धर्मवीर भारती के अक्स को मेरे लिए अनभूला बनाता है। इसका मतलब यह नही कि पैसे के नाम पर मैं अपने को आसमान में उड़ता बताना चाहता हूँ। मैं केवल इस हकीकत पर अपने को केंद्रीत करना चाहता हूँ कि धर्मवीर भारती का आशीर्वाद मेरे लिए अनमोल न रहा होता तो मैं हिंदी मैं लेखन करते चलना अपने लिए शायद ज्यादा आवश्यक नहीं समझता। मैं ऐसा मानता हूँ कि भारत में प्रकाशित होने का मेरा दीप उन्हीं से टिमटिमाया था। बाद में चाहे मैंने प्रकाशन का कितना भी सौभाग्य अर्जित किया, लेकिन धर्मवीर भारती का स्नेह अपनी जगह से तनिक भी नहीं दरका। मुझे यह कहते संकोच नहीं है कि मैं कहानी-लेखन की परिभाषा को बस अनुमान से ग्रहण करता था। जैसे लिखना आता था, लिख लेता था। पर अपनी इस कमजोरी का खुलासा देने के बावजूद, यह तो मैं आत्म-विश्वास से कहूँगा कि इतनी कोशिश मैं जरूर करता था कि भारत की कसौटी पर उतरने योग्य रचना का सर्जन कर सकूँ। धर्मवीर भारती ने मुझमें कुछ देखा हो, तभी अपनी पत्रिका में मुझे स्थान देने लगे थे। भारत की दूसरी पत्रिकाओं के संपादकों ने मुझे छापकर कृपा

की हो तो की हो, लेकिन प्रकाशन का प्रतिमान तो मेरी रचना ही रही होगी।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में जाने पर मैंने देखा कि लोग मुझे भारतीय पत्रिकाओं में छपनेवाले लेखक के रूप में जानने के कारण ही मुझसे बातें करते थे। एक तो मॉरीशस उन्हें प्रिय था और दूसरी बात यह थी कि उनकी जानकारी में था कि मॉरीशस वह देश है जहाँ भारतीय मन के लोग हिंदी और भारतीय संस्कृति से अपना आंतरिक रिश्ता मानते हैं। इस बारे में मुझसे पूछा जाता था तो मैं बहुत अटक-अटककर उत्तर कर पाता था। मेरा वह अटकाव स्वाभाविक था, क्योंकि भारतीय विद्वानों के सम्मुख बोलने का वैसा विस्तृत अवसर पहली बार मेरे जीवन में आया था।

यह बात तो अपनी जगह ठीक है कि मैं एक लेखक के रूप में कुछ-कुछ जाना जाता था। पर महादेवी वर्मा, विष्णु प्रभाकर, हरिवंश राय बच्चन, प्रभाकर माचवे, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती आदि सामने हों तो मुझ टुटपुँजिया लेखक की भला क्या बिसात! उनके पाँवों को देखूँ कि अपने मस्तक पर यह चंदन मानूँ कि मैं भी लेखक हुआ करता हूँ! मैं आत्मा की गहराई में डूबकर कहना चाहूँगा कि मेरे लिए यह विशेष उपलब्धि हुई कि ख्याति-लब्ध रचनाकारों के बीच बैठने और उनसे बातें करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्यथा मेरे लिए तो यही बहुत होता कि वे सामने के मंच पर होते और मैं उन्हें सुनकर लिखने का अपना अभ्यास प्रशस्त कर रहा होता।

धर्मवीर भारती द्वारा लिखित 'अंधा युग' का नागपुर में मंचन होने की रूपरेखा मॉरीशस में निर्धारित हुई थी। इसका महीनों हमारे देश में रिहर्सल चला था। भारतीय मोहन महर्षि के निर्देशन में इसका मंचन होने वाला था। उन्होंने कलाकारों का बारीकी से चयन किया था। वक्त आने पर नागपुर में इसका मंचन हुआ। निस्संदेह, कलाकारों ने जी-जान लगाकर अपनी भूमिका का निर्वहन किया। पर यही अंतिम तो न होता। देखनेवालों में समीक्षक का तेवर रखनेवाले भी थे। मैंने दर्शकों को कहते सुना था निर्देशक ने नाटक के साथ सही न्याय नहीं किया। वे पोशाक के बारे में कह रहे थे कि कलाकारों के शरीर पर रोमन लिबास डालकर नाटक को भारतीयता से बहुत दूर ले जाकर खड़ा किया गया है। मैंने उन्हें यह भी कहते सुना था प्रोफेसर अल्काजी के स्कूल से निकलकर जो लोग बाहर जाते हैं, उनके सिर पर स्वयं अल्काजी का प्रभाव चढ़कर बोलता है। मैं यहाँ उस नाटक के हवाले से कुछ और कहना चाहता हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं स्वयं के लेखकीय धरातल से बात को पकड़ने की कोशिश कर रहा हूँ। हम अपने देश से वैसे अद्‌भुत नाटक लेकर गए थे, पर अधूरेपन को आँकने वाले तो निकल ही आए! मेरे लिए शिक्षा यह हुई थी कि जो कुछ लिखूँ, उसे अनुपम मानने की भूल से बचूँ। समीक्षक जैसे भी होते हों उनकी पकड़ गहरी जाए तो मानने से आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मैंने मॉरीशस में रहकर बेशक लेखन छोटा ही किया हो, लेकिन बड़ा लेखन करने की धुन बनी रहती है। यह मेरी नजरों में मुझे स्वयं ऊँचा उठाता है। 'अंधा युग' से बात शुरू करके मैं संभवत: विषयांतर में जा रहा हूँ। पर जिससे निकटता की अनुभूति बनती हो, उससे परे हटा भी तो नहीं जा सकता।

इसे मेरा संस्मरण समझा जाए तो यह मैं विश्व हिंदी सचिवालय के महासचिव डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्रजी के कहने पर लिख रहा हूँ। उन्होंने मुझसे पूछा कि उस दिन आपने भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में जो सुनाया था, आपके पास उतना ही था या और कुछ बचा हुआ है?

बचा हुआ हो या पूरा खर्च हो गया हो, इसकी मीमांसा में अब तक मैं नहीं गया था तो उनके पूछने पर गया। मिश्रजी के प्रश्न ने मुझे जरूर उद्वेलित किया। मुझे सोचना पड़ा, क्या मैं उस दिन कहने में अपने पूरे संस्मरण के साथ न्याय कर पाया था? सुनाने की प्रक्रिया में मुझसे यह भूल होती है कि जो मैं सुनाना चाहता हूँ, वही मुझसे छूट जाता है। उस दिन जो छूटा था, उसकी जिम्मेदारी मैं स्वयं पर लेने के लिए अपने को ज्यादा तत्पर नहीं पा रहा हूँ। पहले कहा गया था, दस मिनट बोलना होगा। फिर कहा गया, मंत्री को जाने की जल्दी होगी, अत: पाँच मिनट में ही अपनी बात खत्म करने की कोशिश करें। कुल मिलाकर वह एक औपचारिकता थी, जिसका हम बिन सेहरे के दूल्हा बनने गए थे। अभी डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्रजी मुझे अपनी बात मौखिक कहने से कहीं बहुत ऊपर उठाकर लिखित रूप में सामने लाने का अवसर प्रदान कर रहे हैं। लिखित होने से मैं पूरी सावधानी से काम लेने की कोशिश करूँगा।

1975 में मेरे देश में हिंदी में 'जनता' नाम का एक साप्ताहिक अखबार चलता था। यह अखबार मॉरीशस के राष्ट्रपिता सर शिवसागर रामगुलाम के पैसे से प्रकाशित होता था। अंग्रेजी-फ्रेंच में उनका 'आडवांस' नाम से एक दैनिक निकलता था। यह उनका हिंदी-प्रेम ही था कि उन्होंने हिंदी में भी एक अखबार चलाया। दुर्भाग्य कि इसे चलाने में उन्हें बहुत आर्थिक घाटा उठाना पड़ा था। इस वजह से जनता अखबार अपना अस्तित्व खो बैठा। पर जब तक वह चला उसका अपना स्वर्णिम युग तो हुआ। उसके बाद हिंदी से प्रेम करनेवाले हम, बल्कि ऐसा कहें कि हिंदी से रोटी पानेवाले हम, उस स्तर का अखबार अब भी निकालने की स्थिति में अपने को नहीं पाते। इसके विस्तार में जाने का मेरा इरादा न होने से इसे किसी और लेख के लिए अपने पास सुरक्षित रख रहा हूँ। अभी इतने से काम चलाना पर्याप्त मान रहा हूँ कि नागपुर से लौटने पर मैंने 'जनता' अखबार के लिए 'मेरी भारत यात्रा' शीर्षक से सिलसिलेवार दस तक लेख लिखे थे जो प्रकाशित हुए थे। मैं उसके लिए स्थायी रूप से लिखता था। पर मेरा दुर्भाग्य कि मेरे पास एक भी प्रति नहीं है। अपनी ही रचना से इस तरह अछूता रह जाने की पीड़ा इस वक्त मेरी आत्मा में बहुत गहरे उतर रही है। 'आत्मा' कहकर ही मैं प्रमाण दे सकता हूँ कि अपने उन लिखे हुए शब्दों का मैं कितना बड़ा अपराधी हो गया हूँ। उन दिनों का मेरा लिख जैसा भी रहा हो; लेकिन भारत पहली बार जाने और वहाँ से बहुत सारी अनुभूतियों के मन में सजोए अपने देश लौटने का सुख तो विरल ही रहा होगा। मैंने विश हिंदी सचिवालय के निमंत्रण पर संस्मरण सुनाते वक्त कहा था कि मुंबई के हवाई अड्डे पर उतरते ही मैंने झुककर उस देश की धूल से अपने माथे का अभिषेक किया था। ऊँचा मस्तक रखनेवाले इसे मेरी भावुकता कहेंगे। कहनेवाले जो भी कहें। मैं अपना निर्णय यह सामने रखूँगा कि उस देश के प्रति वह मेरा संपूर्ण समर्पण था जिस देश की हिंदी में मैं लिखता था और हिंदी लेखन की बदौलत मैं भारत की जमीन पर अपने को खड़ा पा रहा था।

मैं संस्मरण सुनाते वक्त एक बात कहने से हिचक गया था। हिचका इसलिए था कि पता नहीं लोग क्या अर्थ निकालते! पर अभी मैं महसूस कर रहा हूँ कि वह कहने में तो एक गहन अर्थ होता। बस अंत में यह जोड़ना अनिवार्य होता कि तब जो मेरी अनुभूति हुई थी, उस अनुभूति के अब तो जैसे युग बीते, और आज मैं जिस भारत को जानता हूँ, यह भारत न जाने कितने आगे का भविष्य अपने में समेटे हुए अपने वर्तमान का सफर पूरा करता चल रहा है।

मैं राष्ट्रपिता शिवसागर के अखबार 'जनता' का जिक्र करने के साथ यह भी जोड़ देना चाहता हूँ कि 1976 में जब मॉरीशस में द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था, तब वह अखबार जीवन की अंतिम साँस ले रहा था।

मुझे यहाँ कहना आवश्यक लग रहा है कि जिसने भी प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए मॉरीशस में शिवसागर रामगुलाम का अध्यक्षीय भाषण तैयार किया था, वह एक बात में चूक गया था। उसने देवनागरी लिपि से अपरिचित शिवसागरजी के सत्य को अनदेखा किया था। शिवसागर भोजपुरी अच्छी तरह से बोल लेते थे। हिंदी की पढ़ाई जहाँ होती थी और शिवसागर को बुलाया जाता था, वहाँ वे हिंदी में बोलने का प्रयास करते थे। वे कहते थे मैं 'टूटल-फाटल' हिंदी बोलता हूँ। उनके कहने में आता था 'खेत रोपो'। इसी रौ में वे कह जाते थे 'गाय रोपो','बकरी रोपो'। वे अकसर कहते थे गीता में श्रीराम ने कहा है—कर्म करो। स्त्रीलिंग-पुलिंग आदि की उन्हें कोई खास पहचान नहीं थी। उन्हीं शिवसागर के नागपुरवाले अध्यक्षीय भाषण में था 'किंकर्तव्यविमूढ़', 'ऐतिहासिक दस्तावेज', 'सर्वांगीण विकास', 'अंतरराष्ट्रीयता', 'सांप्रदायिकता' आदि। अध्यक्षीय भाषण देते वक्त शिवसागर हिंदी की ऐसी गूढ़तम शब्दावली के आगे लाचार पड़ जाते थे। हम मॉरीशस के जो लोग उन्हें सुन रहे थे, हमारा दावा तो यह होता कि वे अपने जन्म-गाँव और अपने माता-पिता के सान्निध्य में सीखी हुई भोजपुरी में भी बोलते तो हम मन-ही-मन हिंदी में उसका रूपांतरण कर लेते। पर वह हिंदी का महाकुंभ होने से शिवसागर हिंदी के भारतीय विद्वानों की कसौटी पर खरा उतर नहीं पाए थे। मैंने बहुतों को हँसते देखा था। किसी-किसी ने कहा था—'तो यही है मॉरीशस की हिंदी'! शिवसागर स्वयं उस वक्त अपनी विवशता महसूस कर रहे होंगे। उसी शिवसागर का यह हिंदी-प्रेम तो देखिए, उन्होंने लिखित अध्यक्षीय भाषण को बहुत हद तक छोड़ दिया था और सिर उठाकर भोजपुरी-हिंदी मिश्रित भाषा में घोषणा की थी कि अगले साल उनके मॉरीशस में इसी तरह से हिंदी

के महोत्सव का आयोजन हो तो उन्हें अपार खुशी होगी। उनकी कमजोर हिंदी से शिकायत रखनेवालों को मानना तो पड़ा होगा कि मॉरीशस की धरती का यह बेटा चाहे फ्रेंच और अंग्रेजी में राजनीति की गोटी खेलता हो, लेकिन इसके भीतर हिंदी की कोई अमूर्त सी देवी तो निश्चित ही वास करती है। अपने देश में द्वितीय विश्व-हिंदी सम्मेलन संपन्न करने के उस भावनात्मक संबोधन से पूरे सभागार में तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी थी। हो सकता है यह कल्पना न की गई हो कि अगले विश्व हिंदी सम्मेलन का महाकुंभ कहाँ लगे। शिवसागर ने उस अनकहे को साकार करने को अपनी वाणी देकर लोगों में जरूर यह भावना जगाई हो कि मॉरीशस वह देश है जहाँ हिंदी से प्रेम रखनेवालों का एक विशाल समूह पाया जाता है। लोग उस मॉरीशस में आकर दर्शन करें कि यहाँ घरों में किस तरह भारतीयता साँसें लेती है और हिंदी को जीवंत बनाए रखने के लिए भारतीय मन के व्यक्ति, भारतीयता में आस्था रखनेवाले समाज और स्वयं राष्ट्र के शीर्ष कर्णधारी शिवसागर अपने को किस हद तक समर्पित रखते हैं!

धर्मवीर भारतीजी को प्रथम दिन देखने पर मैंने उनसे कहा था, 'मैं मॉरीशस का वह लेखक हूँ, जिसे आप अपने 'धर्मयुग' में प्रकाशित करते हैं।' मैं उनके चरण-स्पर्श करने वाला था कि उन्होंने मुझे गले से लगा लिया। मैं उनके इस अपनेपन से भावाभिभूत हुआ था। मैंने अपने आप से कहा था, इस बड़े लेखक ने मुझे छापकर लेखन में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित तो किया ही है, अब मैं उनसे सीख रहा हूँ कि बड़ा लेखक छोटे लेखकों को अपने कंधे तक ऊपर उठाने के लिए उदार भी हुआ करते हैं। सम्मेलन के दूसरे दिन धर्मवीर भारतीजी विष्णु प्रभाकर से बातें कर रहे थे। मुझे देखते ही भारतीजी ने पास बुलाया था। मेरे पहुँचते ही उन्होंने प्रभाकर से कहा था, 'मॉरीशस के इस लेखक से तो मुझे बड़ी उम्मीद है।' उनके इतना कहते ही प्रभाकरजी ने मुझे आशीर्वाद देकर कहा था, 'अगले साल मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए तुम लोग जमकर तैयारी करना।'

मैंने लोगों से सुना था कि विष्णु प्रभाकरजी ने 'आवारा मसीहा' नाम से एक महान रचना लिखी है। यदि उस पुस्तक की मुझे थोड़ी जानकारी होती तो उस वक्त मैं जरूर कुछ कहता। जो मन में रह गया था, अगले साल मैंने मॉरीशस में उसे पूरा किया था। मॉरीशस की राजधानी पोर्ट-लुईस में उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर और अमृतलाल नागर एक साथ दिखाई दिए थे। मैं भारत के ही कुछ लेखकों को पोर्ट-लुईस में सैर करवा रहा था। विष्णु प्रभाकरजी ने हमें देखने पर कहा था, 'घूमना तो खूब हो रहा है।' मैंने अनायास ही कहा था—'आवारा हैं, मसीहा बनने की फिक्र में घूम रहे हैं।' मेरे कहने की देर थी कि नागरजी ने मुझे अपने हाथों में कस लिया था। उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर और अमृतलाल नागर और तमाम दूसरे लेखक जोर से हँस रहे थे। सबकी हँसी में नागरजी की हँसी कहीं ज्यादा बुलंद थी। मैंने सुना था कि नागरजी खूब हँसते हैं। हँसने की उनकी सहज और मानवीय प्रकृति को मैंने उस वक्त मॉरीशस में चरितार्थ पाया था।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर कवि गोष्ठी का वृहत् आयोजन हुआ था। यह एक परंपरा बन गई है, जिसका हर विश्व हिंदी सम्मेलन में निर्वाह किया जाता है। नागपुर के किसी बड़े हॉल में कवि गोष्ठी लगी थी। मुझे सभी कवियों के नाम याद नहीं हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं से श्रोताओं को आनंदित किया हो। संभवतः हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, धर्मवीर भारती और नरेश मेहता की छाप लोगों पर अधिक पड़ी हो। बहुत से कवियों ने गाकर अपनी कविता का रस श्रोताओं के मन में उड़ेला था।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर कवि गोष्ठी का वृहत् आयोजन हुआ था। यह एक परंपरा बन गई है, जिसका हर विश्व हिंदी सम्मेलन में निर्वाह किया जाता है। नागपुर के किसी बड़े हॉल में कवि गोष्ठी लगी थी। मुझे सभी कवियों के नाम याद नहीं हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं से श्रोताओं को आनंदित किया हो। संभवत: हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, धर्मवीर भारती और नरेश मेहता की छाप लोगों पर अधिक पड़ी हो। बहुत से कवियों ने गाकर अपनी

कविता का रस श्रोताओं के मन में उड़ेला था। बाद के विश्व हिंदी सम्मेलनों में जाने पर मुझे कवि गोष्ठियों में कवियों को सुनने का अवसर मिलता रहा है। पर प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन ने जो छाप मुझ पर छोड़ी थी, उसके लिए मैं अपने अंतस में विशेष स्थान रखता हूँ। यह इसलिए कि जिन कवियों की कविताओं को मैं अपनी परीक्षाओं की तैयारी तक सीमित मानता था, उन कवियों के प्रत्यक्ष दर्शन करना और उनकी स्वरलहरी में स्वयं को एकलय पाना, यह मेरे लिए किसी गरिमा से कम नहीं था। मैं ऐसा भी कह सकता हूँ, प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से वह मेरे निज का अर्जन था, जो मेरे जीवन के गहरे में समाया हुआ है।

मैंने दो अवसरों पर हिंदी के महान् पुरोधा हजारी प्रसाद द्विवेदी के दर्शन किए। एक प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर और दूसरी बार जब मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ था। लंबा सा कद रखनेवाले हजारी प्रसाद द्विवेदीजी हिंदी के शिखर लगते थे। नागपुर में कवि-सम्मेलन में हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने काव्यपाठ तो नहीं किया था, उन्हें वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किया गया था। उस अवसर पर उन्होंने जो वक्तव्य दिया था, मैं अपने लिए उस वक्तव्य का सार तत्त्व यह मानता हूँ कि मानो वे मुझे सावधान कर रहे हों कि हिंदी में लिखो तो इस भाषा से सही न्याय करना अपने लिए हमेशा अनिवार्य समझना। हिंदी में साहित्य को संवहन करने की क्षमता है। बस इस भाषा के सही लेखक होने चाहिए।

यहाँ मैं मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के हवाले से एक बात कहना चाहता हूँ। हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने यहाँ जो व्याख्यान दिया था, वह नागपुर की तरह अलिखित था। मैंने मॉरीशस में उन्हें बड़े ध्यान से सुना था। बीच-बीच में वह आज के हिंदी साहित्य में इतने सारे उग आए कवियों पर मीठे व्यंग्य भी करते रहे थे। मन में जो आता है गाहे-बगाहे वही लिखने बैठ जानेवाले गद्य लेखकों को भी उन्होंने मीठेपन से आड़े हाथों लिया था। साथ ही उन्होंने गंभीरतापूर्वक भारतीय संस्कृति और संस्कार का अपने वक्तव्य में जो खुलासा दिया था, वह किसी की भी मन पर अमिट छाप छोड़ने की सामर्थ्य से आपूरित था। मॉरीशस में उन्हें सुननेवालों में डॉक्टर कर्ण सिंह भी थे। बाद में द्विवेदीजी का मॉरीशस में दिया हुआ वह वक्तव्य 'गगनांचल' में प्रकाशित हुआ था। पढ़ते वक्त मुझे आश्चर्य हुआ था कि उन्होंने जो मौखिक भाषण दिया था, उसमें लिखित साहित्य का इतना दम हो सकता है। मैंने जैनेंद्र, अमृतलाल नागर और विष्णु प्रभाकर के बारे में सुना था कि वे अकसर बोलकर अपना साहित्य लिखवाते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदीजी को एक सभागार में सुनने और सुने हुए शब्दों को यथावत् प्रकाशित देखने पर इन लोगों के प्रति माथा नत करते हुए कहूँगा कि माता सरस्वती के सच्चे पुत्र इन्हीं जैसे लोगों को कहा जाता है।

मैंने पहले से फादर कामिल बुल्के का नाम सुन रखा था। नागपुर में उनके दर्शन करने का अवसर मिला। पादरी की पोशाक में सजे हुए उस विद्वान् ने हिंदी में अप्रतिम भाषण दिया था। भारत इसी बात पर तो कहता हैं हिंदी सबके लिए होती है। यदि हिंदी को भारत-व्यापी बनाने की बात की जाती है तो उसका आधार यही होता होगा कि हिंदी की जड़ उस जमीन में गहरे जाती हैं और आकाश में उतना ही वह छतनार बनती है। रसखान, जायसी और आधुनिक युग के डॉक्टर राही मासूम रजा तथा इस तरह के तमाम लोग होंगे, जो हिंदी को सँवारने में अपना जीवन समर्पित करते हैं।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर कहा गया था कि इस मंच से हिंदी को भारत-व्यापी बनाने का संकल्प लिया जा रहा है। आज मैं नहीं जानता यह काम भारत में हो पाया है कि नहीं। अब मैं देखता हूँ हर विश्व हिंदी सम्मेलन में कहा जाता है, हिंदी को विश्वव्यापी बनाना है। यह भी कितना हो पा रहा है, इसे पूरे रूप से जानने का मैं दावा नहीं कर सकता। पर मैं इतना तो देख ही रहा हूँ कि इधर के विश्व हिंदी सम्मेलनों में वे बातें अकसर दोहराई जाती हैं, जो श्रीमती इंदिरा गांधी की सरपरस्ती में हुए उस प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में वचनबद्धता के नाम पर हरेक के ओठों से थिरकी थीं। दोहराव में मानो इतना अंत आ जाता हो और किसी अगले विश्व हिंदी सम्मेलन में फिर से कोई आदमी बोल पड़ता है कि जिसे कभी दोहराकर अनछुआ छोड़ दिया गया था, उसे फिर से एक मुद्दा बनाकर बहस में लाते हैं।

उस अवसर पर यही कहा गया था कि भारत से बाहर जो लोग

हिंदी में लेखन कर रहे हैं, उनकी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए एक कमिटी का गठन होगा। कालांतर में कमिटी बनी हो और उसके प्रधान तथा मंत्री होने के साथ सरकारी रुपए से बैंक में खाता खोला गया हो तो यह भारत वाले जानें! मैं मॉरीशस का रहनेवाला हिंदी का लेखक प्रकाशन-संदर्भ को ध्यान में रखते हुए इसे विडंबना ही कहूँगा कि वैसे वैश्विक मंच से इस तरह के झूठ अब भी दोहराए जाते हैं। सूरीनाम और इंग्लैंड में हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों में मैं उपस्थित था। दोनों जगहों में सुनने को मिला कि भारत की बहुत सारी संस्थाएँ भारतेतर हिंदी-लेखन को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशन के मामले में आगे आने के लिए वचनबद्ध हो रही हैं। उनके नाम लिखे गए थे और कहा गया था उसी साल से प्रकाशन का काम शुरू हो जाएगा। पर अब तो मेरे पास कहने के लिए यही बचता है कि इन दोनों जगहों में भी छलावा ही रचा गया था। हमारा भला होना तो दूर, उलटे कड़ुवा सच यह होता है कि भारत से बाहरवाले हम लेखकों और पाठकों का अनेक रूपों में दोहन तक हो जाता है। किसी-किसी भारतीय विद्वान् को सरकारी खर्च पर मॉरीशस आने की फिक्र लगी रहती है। हिंदी के नाम से यहाँ आएँ और यहाँ रहकर अपना व्यक्तिगत व्यापार बढ़ाने की चिंता में लगे रहें। इस तरह का पैसा उन्हें कैसे हजम हो जाता है? पर हिंदी हमारी धमनियों का हिस्सा होने से हम ऐसे लोगों से हार नहीं मानते। मैं इसे मॉरीशसीय हिंदी के लिए शुभ संकेत ही तो कहूँगा। अन्यथा यहाँ हिंदी नाम से तो होगी, लेकिन भीतर से जाने कैसे-कैसे दीमक उसके वजूद को छलनी कर रहे होंगे! हमें जिस तरह से संघर्ष करना आता है, वह हम कर रहे हैं। मैं ऐसा मानकर चलता हूँ कि अपना जंगल काटकर अपना रास्ता हमें स्वयं बनाना है। मेरे साथ वे लेखक अवश्य स्वर-से-स्वर मिलाकर कहेंगे कि मैं जिस कड़ुवे सत्य से अपने को रू-ब-रू पाता हूँ, वे भी इस सत्य के ही हिस्से हुआ करते हैं।

मैंने पूर्व पंक्तियों में 'अंधा युग' नाटक की चर्चा की। उससे संबंधित एक चलती-फिरती बात का वर्णन करने को जी कर रहा है। नागपुर से हम दिल्ली पहुँचे थे। यहाँ हमने एक स्टेज से 'अंधा युग' का मंचन किया। हमारे एक मित्र को हरिद्वार जाने की चाह थी। उसने हमसे कह रखा था भारत आएँ और हरिद्वार न जाएँ तो भारत आने का पुण्य आधा घट जाएगा। वह कह रहा था तो हम क्यों न मानते? पुण्य को हम क्यों अधूरा छोड़ें? हम चार-पाँच लोग हरिद्वार पहुँचे। वहाँ हमें पता चला, जिस मित्र को हरिद्वार पहुँचने की उतनी बेताबी थी, इसके पीछे कारण यह था कि अपने साथ वह अपने स्वर्गीय पिता की भस्म लेकर आया था। उसके पिता का संसार से जाना उसका सबसे बड़ा दुःख तो हुआ, पर यह अवसर तो विरल हुआ कि वह हरिद्वार जाए और गंगा में भस्म का तर्पण करे। इस दृष्टि से उसके साथ होने से हम उसके सच्चे साथी हुए। उसे भस्म के तर्पण के लिए पूरा दिन लग जाता, तो भी हम जल्दी मचाने वाले नहीं थे। पर भस्म लेकर जब वह हरिद्वार के तट पर खड़ा हुआ तो महा गड़बड़ी का समाँ बँध गया। पंडे तमाम पीछे लगे हुए थे। दस साल के लड़के भी पंडे थे और हर पंडा हमें रोककर कहता था कि काम तो उसी से लेना होगा। दाम वे दस हजार बताते थे। मित्र इतनी बड़ी राशि का नाम सुनने पर भौचक्क रह गया। पर बिना तर्पण किए, वह जानेवाला तो न हुआ। उसने कहा वह स्वयं तर्पण कर लेगा। इसमें पैसा नहीं लगेगा और भस्म उसके हाथों से गिरने पर अपने आप गंगा में विलय हो जाएगा। पर स्वयं तर्पणकर्ता बनने की छूट उसे मिलने वाली हुई नहीं। किसी-किसी पंडे ने कहा, पानी में पाँव रखकर तो दिखाएँ! हम सब की साँसत बुरी फँसी। हम आपस में बातें कर रहे थे कि अब क्या किया जाए कि बारह की उम्र के आस-पास का एक पंडा हमारे पास आया और सौ रुपए में हमारा कष्ट हरने का आश्वासन देने लगा। हम कैसे विश्वास करते कि वह इतने बड़े-बड़े पंड़ों को मात दे सकता है! पर सच्चाई यह थी कि उसने मात दी। उसने सभी पंड़ों के बीच रास्ता बनाकर हमें आगे बढ़ाया और गंगा के तट पर हमें बिठाकर तर्पण करने का सारा जिम्मा अपने ऊपर लिया। खरीदारी अधूरी थी तो उसने एक बड़े पंडे को तुरंत खरीद लाने के लिए कहा। मैं उस छोटे बालक को इस अर्थ में आज भी अपने को कायल पाता हूँ कि उसने आधे घंटे तक धाराप्रवाह मंत्रों का उच्चारण किया था।

अब तो प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन की याद में गहरे उतरने पर एक खालीपन महसूस करता हूँ। यह खालीपन मुझे दुःख से भर जाता है। मॉरीशस के हम जितने लोग उस अवसर पर नागपुर में उपस्थित थे, उनमें से बहुतों ने संसार से विदा ले ली है। धनदेव बहादुर का नाम

मैं बड़ी आत्मीयता से ले रहा हूँ। वह विश्व हिंदी सम्मेलन से पहले भी एक बार भारत जा चुका था। तब तो हमारी यात्रा के मामले में वह हम सब का गुरु हुआ। नागपुर में एक भारतीय विद्वान से उसकी मित्रता हो गई थी। उस सज्जन ने शाम के भोजन पर उसे बुलाया था। साथ ही उससे कहा था और मित्रों को भी लेते आएँ। धनदेव केवल मुझे लेकर गया था। बात यह थी कि मैं लेखक था और जिसके घर जाना था, वह भी लेखक हुआ करता था। धनदेव बहादुर ने मॉरीशस में सामाजिक काम बहुत किए। ऐसे आदमी का अचानक संसार से चले जाने का दु:ख छोटा नहीं होता। नागपुर के हमारे साथियों में थे छत्रदत्त हीरामन। उन्होंने 'अंधा युग' नाटक में धृतराष्ट्र की भूमिका निभाई थी। गंभीर बीमारी में उनके पिछले दो-चार साल कटे। हाल में उनकी मृत्यु हो गई। उसी नाटक में प्रहरी की सफल भूमिका निभाकर अपनी छाप छोड़नेवाले पंडित तिवारी को भी हमने खो दिया है। शेष जो जीवित हैं, उनसे भेंट-मुलाकात होती रहती है। कभी-कभार नागपुर वाली याद में गहरे डूबकर हम बातें कर लिया करते हैं। कोई रोगी हो गया है तो कोई ईश्वर की कृपा से भला-चंगा है। सभी प्राय: बुढ़ापे के कारण कगार पर खड़े हैं। कोई जीवन में सफल हुआ तो कोई दुर्भाग्य के हाथों छले जाने पर किसी तरह जीने के नाम पर यूँ ही जीता चल रहा है। यही तो विधाता की रचना है! इसे स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। मॉरीशस की हिंदी प्रचारिणी सभा के महामंत्री एस.एम. भगत और उनके भ्राता कवि 'मधुकर' भगत को भी भगवान ने बुला लिया।

नागपुर में उपस्थिति देनेवाले अपने देश के न रहे राजनेताओं की फेहरिस्त बनाऊँ तो यह लंबी होगी। सर शिवसागर रामगुलाम की मृत्यु के बहुत साल हुए। मंत्री खेर जगतसिंह ने मॉरीशसीय टोली का प्रतिनिधित्व किया था। अपने हिंदी-प्रेम से उन्होंने हमारे हृदय में अमिट छाप छोड़ी है। दुर्भाग्यवश, मॉरीशस की राजनीति में वे ज्यादा स्थिर रह नहीं पाए। उनकी मृत्यु हो जाने से हमने एक हिंदी-प्रेमी राजनेता को खोने के साथ एक मित्र भी खोया। मंत्री दयानंद बसंतराय, जो हमारे साथ नागपुर में थे, कालांतर में उनकी भी मृत्यु हो गई।

भारत के भी बहुत से लोग अब चल बसे हैं। श्रीमती इंदिरा गांधी से लेकर विष्णु प्रभाकर तक आते-आते और भी नामों में जाएँ तो संख्या विपुल ही होगी। पर विश्व हिंदी सम्मेलन का कारवाँ तो अब भी चल रहा है। उसे चलना भी चाहिए; लेकिन नागपुर वाली उस अमिट आभा को अनदेखा किया जाए तो शायद यात्रा अधूरी रहेगी। हमने नागपुर में हिंदी के जितने बड़े लेखकों और विद्वानों को देखा था, उस तरह के लोग और भी भारत में होते होंगे! तो उन्हें सम्मान की दृष्टि से क्यों न देखा जाए? विश्व हिंदी सम्मेलन का कुंभ जब लगे तो ऐसा न हो कि ऐसी हस्तियों को भुला दिया जाए और सबकुछ राजनीति से जोड़कर उन लोगों को शीर्षस्थ बना दें, जिनका हिंदी से कोई लेना-देना नहीं है। मैं भारत की बात कम, अपने देश की बात अधिक कर रहा हूँ। मुझे जहाँ तक याद है, मॉरीशस के उन्हीं लोगों को नागपुर भेजा गया था, जो लोग हिंदी की रोटी खाने के साथ इस भाषा की लाज रखने की कसमें खाना जानते थे। अब राजनीति ने हिंदी की उस रौनक को लीलते जाने में अति यहाँ तक की है कि सरकार जब बदलती है तो हिंदी की परिभाषा भी बदल जाती है।

मैं प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मिलित होनेवाला एक सदस्य होने से यह दावा नहीं कर सकता कि मैं जो लिख रहा हूँ, वही अंतिम और पूरा सच है। पर चश्मदीद गवाह रह लेने से इतना तो कह ही सकता हूँ, वह अवसर हिंदी के लिए स्वर्णिम था। यदि उसे नींव का पत्थर मानें तो यह भी मानना होगा कि उस नींव पर हिंदी का ऐसा भविष्य खड़ा किया जाए, जो कहीं से भी देखने पर ऊँचा ही दिखाई दे।

□

कैरोलीन बेल एर, मॉरीशस
वेबसाईट : www.freewebs.com/dhoorundhur
Email : rdhoorundhur@gmail.com

34 'अंधा युग' और भारत-यात्रा : संस्मरण

सूर्यदेव सिबोरत

सन् 1974 का उत्तरार्द्ध लगभग पूरा होने को था। भारतीय नाट्य-निष्णात मोहन महर्षि के निर्देशन में डॉ. धर्मवीर भारती का नाटक 'अंधा युग' 'त्रिवेणी' संस्थान के तत्त्वावधान में 'प्लाजा थिएटर' में दो-तीन बार मंचित हो चुका था। उन्हीं दिनों बात चल रही थी कि जनवरी 1975 के दौरान भारत में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किया जाएगा और संभवत: मॉरीशस कलाकारों का एक बड़ा प्रतिनिधिमंडल भारत जाए। समय कम बताया गया और क्योंकि मॉरीशस भारत के बाद कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण देश माना जाता रहा है, लिहाजा यहाँ से ठोस और मार्के का कार्यक्रम भारत में तो प्रस्तुत करना ही पड़ेगा। फैसला हुआ कि अगर पहले से ही 'अंधा युग' तैयार है तो क्यों न इसी को नागपुर में आयोजित प्रथम हिंदी सम्मेलन में दिखाया जाए! प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने त्रिवेणी के अधिकारी, योजना मंत्री श्री खेर जगतसिंह को बुलाया और बिजली की तरह यह फैसला फैल गया कि 'अंधा युग' भारत जाएगा। इस नाटक में मोहन महर्षि की पत्नी अंजला महर्षि को छोड़कर सभी कलाकार मॉरीशन थे। उसके नाम इस प्रकार हैं—

अश्वत्थामा की भूमिका में	—	जगदीश भिखारी
धृतराष्ट्र	—	छत्रदत्त हीरामन
गांधारी	—	अंजला महर्षि
कृतवर्मा	—	सुंदरलाल मीतू
संजय	—	लगदीश प्रोसन
वृद्ध याचक	—	राजकरण बम्मा
प्रहरी	—	ईश्वदत्त तिवारी
व्यास (पार्श्व में)	—	मोहन महर्षि
विदुर	—	शांताराम चूलन



- जन्म : 12 मार्च, 1944, रिव्येर दे जाँगी
- प्राथमिक, माध्यमिक, कैंब्रिज स्कूल सर्टिफिकेट, एच.एस.सी. शिक्षा
- भारतीय दर्शन और हिंदी में डिप्लोमा
- सरकारी हिंदी निरीक्षक (प्राथमिक स्कूल) भी रह चुके हैं
- 1971 से 2001 तक फ्रीलांस रेडियो-टी.वी. प्रस्तुतकर्ता और समाचार रीडर
- 1988 में प्रोड्यूसर—रेडियो, टी.वी.
- कई निबंध, कविताएँ तथा कहानियाँ, 'धर्मयुग', 'दिनमान', 'अनुराग', 'दर्पण' में प्रकाशित
- कविता संग्रह 'एक फूल गन्ने का' प्रकाशित
- 1981 में एकांकी 'शीशा' के लिए प्रथम पुरस्कार
- हाल ही में 'प्रजा राज रासो' प्रकाशित।

कृपाचार्य	—	सूर्यदेव सिबोरत
युयुत्सु	—	राजेंद्र सदासिंह
गूँगा सैनिक	—	महेश रामजीयावन
प्रहरी 2	—	अस्तानंद सदासिंह
बलराम (पार्श्व में)	—	मोहन महर्षि
कृष्ण (पार्श्व में)	—	मोहन महर्षि
और मंच-व्यवस्थापक	—	राजेंद्र प्रसाद रघु।

इनके अलावा ये लोग भी साथ गए थे—अभिमन्यु अनत, धनदेव बहादुर, रामदेव धुरंधर, सुरेश रामबर्ण, हरि नारायण महाबीर और साथी।

जल्द-से-जल्द सभी को टीका लगाया गया और सब जाने के लिए तैयार हो गए। यहाँ अगर एक घटना का वर्णन न करूँ तो कमी

होगी। हुआ यह कि नाटक का सबसे प्रमुख पात्र अश्वत्थामा का रोगी पिता कुछ ज्यादा बीमार पड़ गया और उसकी हालत 'अब है तो कल नहीं' जैसी हो गई थी। जगदीश यानी अश्वत्थामा मृत्युशय्या पर पड़े पिता को छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं था और पिता जगदीश को छोड़कर 'जाने' को तैयार न थे। विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी।

'अंधा युग' की पूरी टीम जगदीश के पिता की साँस के साथ अटकी हुई थी। यह तो कृष्ण की लीला ही थी कि ऐन मौके पर जगदीश का पिता स्वर्ग सिधार गया और पूरी टोली भारत की यात्रा कर पाई। हाँ, जगदीश, पिता की अस्थियाँ हरिद्वार में अवश्य विसर्जित कर आए। रात के लगभग साढ़े आठ बजे प्लेज़ाँस से एयर इंडिया विमान ने उड़ान ली और करीब छह-साढ़े छह घंटे बाद हम मुंबई (तब बांबे) उतरे। सुबह होते-होते हम 'शांग्रिला' होटल पहुँचे और वहाँ दो या ढाई दिन तक रहे। हमने अलग-अलग से टोलियाँ में बँटकर देशाटन किया और मैं अपने आपको यहाँ रोक रहा हूँ, क्योंकि अगर यहाँ के जन-जीवन, रहन-सहन, स्थान आदि का वर्णन करने लग गया तो कहीं-का-कहीं पहुँच जाऊँगा। हाँ, इतना तो अवश्य कहूँगा कि जुहू के पास हमने यानी मैं और जगदीश ने प्रवचन देते हुए स्वामी प्रभुपाद के दर्शन भी किए।

यहाँ थोड़े से पोशाक-परिवर्तन के साथ हमने नाटक प्रस्तुत किया, जिसे देखकर लोग बहुत प्रभावित हुए। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी दूरी पर होते हुए मॉरीशस के लोग ऐसी आसानी से हिंदी बोलते हैं! कई जगहों पर हमारा धूम-धाम से स्वागत किया गया। हमने भी कई लोगों से भेंट-मुलाकात की और कई विदेशियों, जर्मनी, यू.के., चीन, जापान, रूस, कनाडा, अमेरिका आदि देशों के लोगों को हिंदी में बोलते हुए सुनकर हमको आश्चर्य और गर्व हुआ।

उन दिनों मुंबई से नागपुर का फासला कोई छत्तीस घंटों में तय होता था। नागपुर पहुँचने पर हमें पता चला कि हमारी रेलगाड़ी सेना की कड़ी सुरक्षा में आई; क्योंकि उन दिनों किसी रेलमंत्री की शायद हत्या की गई थी। नागपुर में हमें एम.एल.ए. हॉस्टल में ठहराया गया था, जहाँ विश्व के सभी प्रतिनिधि थे। रात को प्रेसवाले आए और डॉ. धर्मवीर भारती हम सब से मिले। 'अंधा युग' 'घनवटे रंगमंदिर में खेला गया। वहाँ एक वाक्य ने मुझे आकर्षित किया—"आपनो सामान जापुन ठेवाव", जिसका अर्थ मुझे किसी से पूछना नहीं पड़ा, हालाँकि मैं मराठी नहीं जानता।

यहाँ थोड़े से पोशाक-परिवर्तन के साथ हमने नाटक प्रस्तुत किया, जिसे देखकर लोग बहुत प्रभावित हुए। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि इतनी दूरी पर होते हुए मॉरीशस के लोग ऐसी आसानी से हिंदी बोलते हैं! कई जगहों पर हमारा धूम-धाम से स्वागत किया गया। हमने भी कई लोगों से भेंट-मुलाकात की और कई विदेशियों : जर्मनी, यू.के., चीन, जापान, रूस, कनाडा, अमेरिका आदि देशों के लोगों को हिंदी में बोलते हुए सुनकर हमको आश्चर्य और गर्व हुआ।

नागपुर में एक-से-एक बढ़कर विद्वान्, आलोचक व समालोचक हमें मिलें। एक महिला ने मुझे एक बात पर सोचने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने कहा कि नाटक में एक जगह गांधारी बोलती है कि "अपने इन हाथों से मैंने उन फूल सी वधुओं की कलाइयों से चूड़ियाँ उतारी हैं, अपने आँचल से सिंदूर की रेखाएँ पोंछी हैं।" उस महिला का प्रश्न था कि "भारत में यह सिंदूर की प्रथा कब से शुरू हुई? यह मैं डॉ. धर्मवीर भारती से पूछूँगी।"

प्रथम हिंदी सम्मेलन का आयोजन बहुत बढ़िया रहा। उसमें काका कलेलकार, श्रीमती इंदिरा गांधी, सर शिवसागर रामगुलाम और अन्य महानुभावों के भाषण हुए। देखते-ही-देखते नागपुर का हिंदी सम्मेलन पूरा हुआ और हम वहाँ से दिल्ली के लिए रवाना हुए। नागपुर छोड़ने से पहले किसी ने मुझे प्रेमचंद के बेटे अमृतराय को जाते हुए दिखाया। मेरी खुशी की सीमा न रही। प्रेमचंद नहीं तो उनके सुपुत्र के दर्शन तो हुए!

दिल्ली में हम चाण्क्यपुरी के 'यूथ हॉस्टल' में ठहरे। यहाँ हमने

'गांधी मेमोरियल थिएटर' में 'अंधा युग' खेला। कई महानुभाव आए हुए थे, जिनमें मोहन महर्षि और अंजला महर्षि के गुरु इब्राहिम अलकाजी भी थे। बाद में हमने एन.एस.डी. का दौरा किया और अलकाजी से मिले। गांधी मेमोरियल में राज बब्बर ने हमारा मेक-अप किया। वह एन.एस.डी. के स्नातक थे और फिल्मी दुनिया में जानेवाले थे। नई दिल्ली में हम मॉरीशन कलाकारों ने श्रीमती इंदिरा गांधी के दर्शन किए और उनसे बात भी की। रेल और बस द्वारा हमने ताज महल, सिकंदरा, फतेहपुर सीकरी, पुरानी दिल्ली, मथुरा, लाल किला, तीन मूर्ति (नेहरू निवास स्थान), गांधी म्यूजियम, राजघाट, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि का दौरा किया। मैं और रामदेव धुरंधर ने एकाध मुद्रणालयों का भी दौरा किया। इस दौरान हम रघुवीर सहाय और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना से भी मिले तथा दोपहर का भोजन किसी होटल में साथ-साथ किया।

भारत में लगे हाथों मैंने अपनी पत्नी और रिश्तेदारों के लिए कुछ कपड़े और तोहफे भी खरीदे, मगर मैं 'पूरा अनाड़ी' निकला! फिर भी भारत का यह अपना पहला सफर मैं हमेशा याद रखूँगा!

□

एम.जी.आर., कोल्ये एवेन्यू,
क्यूपिप, मॉरीशस

हिंदी किसी के मिटाने से मिट नहीं सकती।

—चंद्रबली पांडेय

35 प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन : कुछ संस्मरण

● महेश रामजीयावन

हर आदमी के जीवन में बहुत सारी अच्छी और बुरी घटनाएँ घटती रहती हैं। कुछ घटनाएँ तो वह भूल जाता है, लेकिन कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं जो उसके मानस-पटल पर ऐसे अंकित हो जाती हैं कि वह मरते दम तक भूल नहीं पाता है। नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के ऐसे ही कुछ अविस्मरणीय संस्मरण आज भी ताजा हैं।



- मॉरीशस में हिंदी साहित्य, विशेषकार रंगमंच क्षेत्र के प्रसिद्ध हस्ताक्षर
- प्रतिभा आपकी साहित्य की अनेक विधाओं में, परंतु विशेष रुचि नाटक में
- दिल्ली, भारत के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के स्नातक
- प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में 'अंधा-युग' में भूमिका निभाने का सौभाग्य
- मॉरीशस और विदेश में लगभग पच्चीस नाटकों में मंचन का श्रेय
- आपके कई नाटकों को पुरस्कृत भी किया गया है
- मॉरीशस देश में नाट्यकर्म को प्रोत्साहित करने हेतु तीस वर्ष अकादमी ऑफ फिल्म एंड थिएटर की स्थापना की
- कला एवं संस्कृति मंत्रालय में वरिष्ठ कला अधिकारी
- हिंद महासागर तथा अफ्रीकी महाद्वीप के कई देशों में कार्यशालाओं का संचालन
- राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपकी सक्रियता तथा योगदान के लिए आपको 'सोमदत्त बखोरी पुरस्कार' तथा 'सृजन सम्मान' आदि से विभूषित किया गया है।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए मॉरीशस से एक बड़ा प्रतिनिधिमंडल मॉरीशस सरकार द्वारा मनोनीत हुआ था, जिसकी अगुवाई हमारे तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम कर रहे थे। ऐसी मान्यता थी कि भारत से बाहर हिंदीभाषा बोले जानेवाले देशों में मॉरीशस का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिस देश के प्रधानमंत्री और बहुसंख्या हिंदीभाषी हैं। उस प्रतिनिधिमंडल में युवा तथा क्रीड़ा मंत्री दयानंदलाल बसंतराय थे, जो हिंदू महासभा के संरक्षक थे और योजना मंत्री खेर जगतसिंह, जो त्रिवेणी संस्था के संयोजक और हिंदी-प्रेमी थे। इन्होंने इस सम्मेलन के आयोजन की सफलता में पूरा योगदान दिया था। मॉरीशस की कई धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधि और हमारे गण्यमान्य हिंदी साहित्यकार भी इसमें सम्मिलित थे। उस समय के उभरते हुए राजनेताओं में मेरा मित्र हरिश बुद्धू भी शामिल था। हम लोग सफर के साथी थे और अवकाश में साथ घूमते थे। चूँकि हरिश पहले भारत-यात्रा कर चुका था, अत: वह हम लोगों का गाइड भी था। मजे की बात यह है कि जब हम बंबई पहुँचे तो उसने सभी को सावधान किया कि ट्रेन में सफर करते समय पॉकेटमारों से बचकर रहें और पैसे अंडरवीयर में छुपाकर रखें। भीड़-भाड़ में और लोकल ट्रेन में सफर करते समय हम साथ होते थे और अपने पैसों पर कड़ी नजर रखते थे कि कहीं कोई पॉकेटमार हाथ साफ न कर दे! शाम को जब हम वापस होटल लौटे तो पता चला कि हरिश की ही जेब कट चुकी है।

त्रिवेणी और युवा तथा क्रीड़ा मंत्रालय के सहयोग से धर्मवीर भारती कृत नाटक 'अंधा युग' के मंचन के लिए बीस कलाकारों की मंडली पूरी तैयारी के साथ सम्मेलन में भाग लेने जा रही थी। भारत सरकार द्वारा भेजे गए नाटक सलाहकार मोहन महर्षि और अंजला महर्षि ने मॉरीशस के चुने हुए अभिनेताओं के साथ 'अंधा युग' नाटक की तैयारी की थी। 'अंधा युग' एक बड़ा नाटक था और उसके रिहर्सल त्रिवेणी, बोबासे में चार महीनों तक प्रतिदिन हो रहे थे। मोहन महर्षि के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी, क्योंकि पहली बार एक हिंदी नाटक का मंचन एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में मॉरीशस की ओर से होने जा रहा है। पूरी मंडली और मोहन महर्षि को माननीय खेर जगतसिंह का सहयोग प्राप्त था और कलाकारों को पूरा विश्वास था कि हम विश्व के किसी भी मंच पर सफल हो सकते हैं।

जब हम एयर इंडिया विमान द्वारा बंबई हवाई अड्डा पहुँचे तो

हम सभी कलाकार भावुक हो उठे थे; क्योंकि हमें स्मरण हो आया कि हम अपने पूर्वजों की मातृभूमि भारत में पहला कदम रखने जा रहे हैं, जहाँ से सालों पहले हमारे बाप-दादे अपने घर-बार छोड़कर हमेशा के लिए मॉरीशस जा बसे थे। यही वह भारत की पुण्यभूमि है, जहाँ से हमारे पूर्वजों को ठगकर ले जाया गया था और जहाँ से वे वापस लौटना चाहकर भी वापस न लौट सके। आज हम उन्हीं भारतीय आप्रवासियों की संतान इसी भूमि पर कदम रखने जा रहे हैं! सभी कलाकारों के रोंगटे खड़े हो गए थे। हवाई जहाज से उतरते ही मैंने मातृभूमि भारत की माटी में माथा टेककर साष्टांग प्रणाम किया था। देखा-देखी और कई कलाकारों ने भी माथा टेककर उस पवित्र भूमि का नमन किया था। बंबई में हम लोग सांतक्रुज के एक छोटे से गेस्ट हाउस 'शांग्रीला' में ठहरे थे। वहाँ से सुबह की ट्रेन की गंदी पटरियाँ पार करना और झोंपड़पट्टियों के दृश्य का वर्णन करना आसान नहीं है।

नागपुर के नागों से हमें डर तो लगा था, पर वहाँ का संतरा याद करते ही मुँह में पानी भर आता है। नागपुर में हमें एल.एल.ए. गेस्ट हाउस में ठहराया गया था। वहाँ पहुँचते ही हम लोग नाटक के रिहर्सल में जुट गए। फिर हम लोग घनवटे रंग-मंदिर देखने गए, जहाँ 'अंधा युग' का प्रदर्शन होने वाला था। एम.एल.ए. गेस्ट हाउस से एक किलोमीटर की दूरी पर खुले मैदान में एक विशाल पंडाल बना था, जहाँ पर बड़े जोशोखरोश के साथ सम्मेलन के उद्घाटन-समारोह की तैयारी चल रही थी। शाम को हम टहलने के लिए रास्ते पर निकले तो पता चला कि विश्व हिंदी सम्मेलन के विषय में किसी को कुछ पता नहीं। रिक्शावाले हमारी वेशभूषा देखकर हमें सैलानी समझ रहे थे। जब हम उन्हें बताते थे कि हम मॉरीशस से आए हैं तो वे समझते थे कि मॉरीशस भारत में ही कहीं स्थित होगा! उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि भारत से दूर समंदर पार मॉरीशस नाम का कोई टापू भी है, जहाँ से हम लोग आए हैं।

सम्मेलन के दिन हम तड़के उठकर सम्मेलन केंद्र जाने की तैयारी में लग गए। हम सभी कलाकार कोट-टाई पहनकर बन-ठनकर निकले। दो-दो लोग रिक्शा करके सम्मेलन केंद्र की ओर बढ़ने लगे। रास्ते के दोनों ओर काफी लोग राहगीरों को देखने के लिए इकट्ठा थे। बन-ठनकर जाते हुए देखकर लोग मराठी में हमारा स्वागत कर रहे थे। जैसे-जैसे हम केंद्र की ओर बढ़ रहे थे, रास्ते के दोनों ओर पुलिस और सुरक्षाकर्मी तैनात थे। नागपुर में एक विश्व-सम्मेलन का आयोजन और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी का इसमें भाग लेना नागपुरवासियों के लिए एक बहुत बड़ी घटना थी। दूर गाँवों से आए लोग अपनी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधीजी को देखने के लिए आतुर थे। हम लोग धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ रहे थे कि सिंहद्वार के पास पुलिस ने हमें रोका। अन्य मेहमान भी वहीं उतर रहे थे। हम लोग पंडाल के प्रवेश-द्वार तक पहुँचे ही थे कि सुरक्षा-बल हमें पीछे की ओर हटाने लगे। उसी समय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी का आगमन हुआ था। उनके अंदर जाते ही हमें भी अंदर जाने दिया गया था। पंडाल साहित्यकारों और प्रतिनिधियों से खचाखच भरा था। सौभाग्य से हमें पंडाल के मध्य भाग में बैठने के लिए जगह मिली, जहाँ मॉरीशस के अन्य प्रतिनिधि स्थान ग्रहण कर चुके थे। हमारे बैठते ही प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी द्वारा दीप प्रज्वलन की रस्म पूरी हुई और सम्मेलन के महासचिव अनंत गोपाल शेवडे का स्वागत-भाषण हुआ। स्वागत-भाषण के बाद विख्यात साहित्यकार काका कालेलकर को माइक पर आमंत्रित किया गया। वयोवृद्ध काका कालेलकर सफेद कुर्ता-

नागपुर में एक विश्व-सम्मेलन का आयोजन और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी का इसमें भाग लेना नागपुरवासियों के लिए एक बहुत बड़ी घटना थी। दूर गाँवों से आए लोग अपनी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधीजी को देखने के लिए आतुर थे। हम लोग धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ रहे थे कि सिंहद्वार के पास पुलिस ने हमें रोका। अन्य मेहमान भी वहीं उतर रहे थे। हम लोग पंडाल के प्रवेश-द्वार तक पहुँचे ही थे कि सुरक्षा-बल हमें पीछे की ओर हटाने लगे। उसी समय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी का आगमन हुआ था। उनके अंदर जाते ही हमें भी अंदर जाने दिया गया था।

पायजामा पहने, लंबी सफेद दाढ़ीवाले आकर्षक व्यक्तित्ववाले साहित्यकार थे। माइक पर आते ही वे बिना कोई औपचारिकता निभाए कहने लगे, ''मेरा नाम काका कालेलकर है। इंदिराजी तो मेरी बेटी के समान हैं। मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू और इनके परिवार को जानता हूँ'' और तालियों की गड़गड़ाहट से पंडाल गूँज उठा था।

जब हमारे प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम की बारी आई तो सभी को उनके भाषण सुनने की उत्सुकता हुई, पर हमें निराशा हुई, क्योंकि उनका भाषण रोमन लेटर में लिखे होने के कारण उन्हें हिंदी पढ़ने में कठिनाई हो रही थी। उनका भाषण जरूरत से अधिक लंबा था। मॉरीशस के प्रतिनिधि नाराजगी महसूस करने लगे थे और उनको भाषण तैयार करनेवाले पर क्रोध आ रहा था।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर मॉरीशस के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत 'अंधा युग' नाटक एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। मोहन महर्षि द्वारा निर्देशित नाटक 'अंधा युग' के दो प्रदर्शन हुए थे। प्रथम प्रदर्शन धनवटे रंगमंदिर, नागपुर में सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों और गण्यमान्य अतिथियों के लिए आयोजित किया गया था। दिवस के सत्रों के बाद शाम का नाट्य-प्रदर्शन देखने के लिए हॉल दर्शकों से खचाखच भर गया।

'अंधा युग' नाटक में मैंने एक गूँगे सैनिक की चौंकानेवाली भूमिका निभाई थी। महाभारत के भीषण युद्ध से लौटकर घायल सैनिक कटी जीभ के साथ राजदरबार में आता है और महाराज धृतराष्ट्र को युद्ध की विभीषिकाएँ बताने का प्रयास करता है। मेरा प्रवेश नाटक के दूसरे भाग में आता है, इसीलिए प्रथम भाग में खाली होने के कारण मुझे हॉल में दर्शकों को देखने का अवसर मिल जाता था। नाटक के बीच में जब मैंने हॉल में देखा कि लगभग सारे दर्शक थके-माँदे खर्राटे ले रहे हैं। जब मेरे प्रवेश होने का समय आया तो मैंने चीखते हुए इतनी जबरदस्त एंट्री मारी कि सारे दर्शकों की नींद खराब हो गई और वे हड़बड़ाकर जाग गए, और उन्होंने शेष नाटक ढंग से देखा। नाटक के बाद निर्देशक मोहन महर्षि ने मुझे गले से लगाकर बधाई दी थी और प्रतिनिधियों ने मेरी खूब प्रशंसा की।

हमारे नाटक का दूसरा प्रदर्शन नई दिल्ली में आई.टी.ओ. के प्यारेलाल भवन में हुआ था, जिसमें राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्र, अध्यापक तथा निर्देशक अब्राहिम अलकाजी आमंत्रित थे। उस समय राज बब्बर एन.एस.डी. में अध्ययन कर रहे थे और उन्हीं ने गूँगा सैनिक का मेरा मेकअप किया था।

मॉरीशस लौटने से पहले 'अंधा युग' के सभी कलाकार भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के निवास स्थान पर उनसे औपचारिक भेंट के लिए गए। बच्चू प्रसाद सिन्हा ने मोहन महर्षि और हम सभी कलाकारों का परिचय कराया। इंदिराजी ने हम सभी कलाकरों को बहुत बधाई दी कि हमने हिंदी में कितना अच्छा नाटक प्रस्तुत किया! उन्होंने हमारे साथ चाय ली। ग्रुप-फोटो लेने के बाद उन्होंने बच्चू प्रसाद सिन्हा से अनुरोध किया कि वे हम सभी मॉरीशस के कलाकारों को दिल्ली दिखाएँ।

□

गोपोल लेन, नेव्येम मिल,
त्रियोले, मॉरीशस

36 हिंदी का जगमगाता संसार

● सुरेश रामबर्ण (एम.बी.ई.)

हिंदी का जगमगाता संसार देखने की लालसा बहुत दिनों से मेरे मन में थी। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन 1975 नागपुर भारत, में था। सम्मेलन में जाने का सुअवसर जब मिला तो बड़े उत्साह से मैं पूज्य भारतभूमि का सपना देखने लगा। आखिर 15 दिसंबर, 1974 को हवाई जहाज द्वारा मैं मुंबई पहुँचा।



- जन्म : 26.01.1949
- प्लेन दे रोश, रिव्येर जी रांपार
- हिंदी तथा सामाजिक कार्यों में रुचि
- अध्यापन
- 1974 से स्वतंत्र मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के निजी सचिव।
- 1982 के बाद महात्मा गांधी संस्थान में Documentary and Research Officer के पद पर कार्यरत।
- प्रकाशित कृतियाँ :
  - 1977-चाचा रामगुलाम के संस्मरण
  - 1984-पंडित काशीनाथ किस्टो
  - 1986-आराधना
  - 2005-गंगा तालाब मॉरीशस चालीसा
  - 1990-भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री शंकर दयाल शर्मा द्वारा हिंदी पुरस्कार से सम्मानित।
  - 1990 : Decorated by Her Majesty Queen Elizabeth II as Member of British Empire M.B.E.

हिंदी के संसार की जो परिकल्पना मैंने हिंदी पढ़कर और लिखकर की थी, हवाई अड्डे पर पहुँचते ही मैं उसे साक्षात देखने लगा। लोग हवाई अड्डे पर हिंदी में बोल रहे थे। सूचना तथा निर्देश-पट, सभी हिंदी में लिखे थे। मेरी आँखें एक बड़े बोर्ड पर जा रुकीं, जिस पर लिखा था 'विश्व हिंदी सम्मेलन आपका स्वागत करता है' और उसे पढ़कर बहुत उत्साह बढ़ा।

दूसरी सुबह मैं हवाई जहाज से नागपुर पहुँचा और सम्मेलन के कर्मचारियों से मेरी भेंट हुई और मुझे बताया गया कि विदेश से आनेवाले प्रतिनिधियों में मैं प्रथम हूँ। मेरा स्वागत गर्मजोशी से हुआ और पहली बार हिंदी पत्रकारों और रेडियो-टी.वी. के हिंदी बोलनेवालों से मेरा साक्षात्कार हुआ। बड़ा अच्छा लगा यह देखकर कि हिंदी में मीडिया भी पीछे नहीं है। हिंदी सम्मेलन का कार्यालय आयोजन की दृष्टि से बड़ा भव्य था। हम वैसे आयोजन के बारे में मॉरीशस में सोच भी नहीं सकते थे। सरकारी तथा निजी डिपार्टमेंट के लोग पत्र-व्यवहार हिंदी में कर रहे थे। हिंदी में स्टेनो और टंकण की सुविधाएँ इतनी प्रचलित थीं कि मन खुश हुआ सारा कुछ देखकर। एक नहीं, दर्जनों अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी में, और वह भी प्रतिदिन छपनेवाली! हिंदी का यह भव्य स्वरूप मेरे लिए बड़ा ही उत्साहजनक था। मैंने तुरंत एयरमेल से 5-6 पत्र लिखे अपने मित्रों तथा प्रियजनों को, और सारी उपलब्धियों के बारे में उनको बताया तथा मॉरीशस पोस्ट किया। शाम को मेरी भेंट सम्मेलन के महासचिव तथा व्यवस्थापक श्री अनंत गोपाल शेवड़ेजी तथा श्री ललन प्रसाद व्यासजी से हुई। हिंदी के मूर्द्धन्य दो व्यक्ति थे, ये लोग मॉरीशस में, कई बार आयोजन के प्रचार को लेकर पधार चुके थे। मेरा इनसे मिलना हुआ और प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम, शिक्षा तथा संस्कृति मंत्री श्री खेरसिंह जगतसिंह, श्री हरीश बुधू तथा श्रीमती सरिता माखनजी की शुभकामनाएँ मैंने इनको भेंट कीं। मुझे यह सूचित करके बड़ा हर्ष हुआ कि मॉरीशस की सरकार मॉरीशस की ओर से इस सम्मेलन में सबसे बड़ा प्रतिनिधिमंडल भेज रही है। साथ ही मॉरीशस के हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों सहित एक नाटक 'अंधा युग' भी भारतीय रंगमंच सलाहकार श्री मोहन महर्षि के नेतृत्व में भेजा जाएगा।

श्री द्वारिका नारायण माथुर और डी.डी. शर्मा, हिंदी सेक्रेटेरिएट से सम्मेलन के कार्यालय में मेरा परिचय करवाने लगे और मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि भारत तथा अन्य देशों के हिंदी-प्रेमी भारी संख्या में सम्मेलन में भाग लेने के लिए पधार रहे हैं।

हिंदी सम्मेलन के आयोजन से पूरा नागपुर उत्साहित था।

बाजारों में, दुकानों में, बस में, रेलवे प्लेटफॉर्म में, सड़क पर और जिधर भी हम जाते, हिंदी सम्मेलन की चर्चा हो रही थी। मुझे बताया गया कि विभिन्न भारतीय प्रदेशों से हिंदी-प्रेमी अपनी-अपनी छावनी लगा रहे हैं।

यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात हुई कि प्रसिद्ध प्रकाशक तथा संपादक श्री यशपाल जैनजी से मेरी भेंट हुई। यशपाल जैन मॉरीशस के हिंदी जगत के जाने-माने मित्र थे। उन्होंने ही मॉरीशस में 'सस्ता साहित्य मंडल' नाम से हिदी की पुस्तकें प्राय: सभी हिंदी पाठशालाओं तथा बैठकाओं में दी थीं। साथ ही 'धर्मयुग' के संपादक श्री धर्मवीर भारती और कमलेश्वर, 'सारिका' के संपादक से भी मिलने का अवसर मिला। 'धर्मयुग' और 'सारिका' ने तो मॉरीशस पर विशेषांक निकालकर मॉरीशस की हिंदी को गौरव प्रदान किया था।

यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात हुई कि प्रसिद्ध प्रकाशक तथा संपादक श्री यशपाल जैनजी से मेरी भेंट हुई। यशपाल जैन मॉरीशस के हिंदी जगत के जाने-माने मित्र थे। उन्होंने ही मॉरीशस में 'सस्ता साहित्य मंडल' नाम से हिदी की पुस्तकें प्रायः सभी हिंदी पाठशालाओं तथा बैठकाओं में दी थीं। साथ ही 'धर्मयुग' के संपादक श्री धर्मवीर भारती और कमलेश्वर, 'सारिका' के संपादक से भी मिलने का अवसर मिला। 'धर्मयुग' और 'सारिका' ने तो मॉरीशस पर विशेषांक निकालकर मॉरीशस की हिंदी को गौरव प्रदान किया था।

आखिर में आयोजन के विभिन्न पहलुओं को देखते-देखते प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन की तारीख 10 जनवरी, 1975 भी आ गई।

सम्मेलन में मैं व्यक्तिगत रूप से अनेक हिंदी-साहित्यकारों से मिला—राजेंद्र अवस्थी, काका हाथरसी, सुमित्रानंदन पंत, निराला, रामधारी सिंह दिनकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिवप्रसाद सिंह सुमन, अटल बिहारी वाजपेयी, कमलेश्वर, मोहन राकेश, डॉ. गोयनका, जैनेंद्र कुमार और महादेवी वर्मा आदि।

शिवमंगल सिंह सुमनजी उज्जैन विश्वविद्यालय के कुलपति थे और यह बताना उचित है कि मॉरीशस में प्रयाग विश्वविद्यालय के उत्तमा परीक्षा प्रमाण-पत्र के साथ उन्होंने ही मॉरीशस के हिंदी छात्रों के लिए बी.ए. तथा एम.ए. की उच्च शिक्षा के द्वार खोले थे।

सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गांधी तथा चाचा रामगुलाम के भाषण अद्वितीय थे। भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने तो हिंदी को राजभाषा घोषित करके सबको मुग्ध कर दिया। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वीकृति दिलाने की पहल तो मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने की। खुले शब्दों में उन्होंने हिंदी को प्रेम तथा एकता की भाषा घोषित किया। चाचा के भाषण की कुछ पंक्तियाँ निम्न प्रकार थीं और उनको प्रस्तुत करने में मुझे गर्व है—

''हिंदी-प्रेम की भाषा है। संसार में बोली जानेवाली यह तीसरी बड़ी भाषा है। हिंदी ही वह भाषा है, जो मानव समाज को समृद्ध कर सकती है। मॉरीशस में हिंदी भाषा ने हमें एक सुदृढ़ समाज बनाने की ताकत दी है। हिंदी पढ़नेवाले मानव-मूल्यों को समझते हैं और आपस में सद्भावना जाग्रत करते हैं।

विश्व-शांति की चाह रखने वालों को हिंदी पढ़नी चाहिए। हिंदी के विद्वान संवेदनशीलता का उपदेश देते हैं। हिंदी के कवि विश्व-शांति का प्रचार करते हैं।''

विशिष्ट बात तो यह है कि इस प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में ही चाचा रामगुलाम ने विश्व हिंदी सचिवालय को मॉरीशस में स्थापित करने का मन बना लिया था। हिंदी का यह स्तंभ आज मॉरीशस का गौरव है, जिससे पूरे विश्व का हिंदी-जगत जुड़ गया है।

□

Plaine des Roches,
Riviere du Rempart
Mauritius

37 मॉरीशस का हिंदी प्रकाशन : एक दृष्टि

(1923–2008)

क्रम	शीर्षक	कवि	वर्ष	प्रकाशक
1.	रसपुंज कुंडलियाँ	पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज'	1923	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
2.	कृष्ण की वंशी-तान	पं. जदुनंदन शर्मा	1934	सूर्य नारायण चतुर्वेदी, बलिया, भारत
3.	शताब्दी सरोज	पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज'	1935	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
4.	मधुपर्क	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1948	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
5.	वीर गाथा	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1949	नालंदा प्रेस, मॉरीशस
6.	रागिनी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1949	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
7.	मधुकरी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1953	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
8.	स्वतंत्रता का सुप्रभात	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1953	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
9.	छंद वाटिका	पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र	1957	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
10.	भजन माला	पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र	1957	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
11.	प्रथम किरण	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1960	हिंदू प्रेस, पोर्ट लुई
12.	शांतिनिकेतन की ओर	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1960	नियो प्रेस, पोर्ट लुई
13.	रवि-रश्मि	विष्णुदत्त मधु 'चंद्र'	1961	हिंदू प्रेस, पोर्ट लुई
14.	हमारा देश	पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र	1962	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
15.	रसरंग	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1963	नालंदा प्रेस, मॉरीशस
16.	घुरहू मौसा क सनेस	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1963	लीडर प्रेस, इलाहाबाद, भारत
17.	अमर संदेश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1963	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
18.	गुंजन	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1963	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
19.	सुधा कलश	जयरुद्र दोसिया	1966	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
20.	मॉरीशस भारती	विष्णुदत्त मधु 'चंद्र'	1966	हिंदू प्रेस, मॉरीशस
21.	कवि सम्मेलन	इंडियन कल्चरल एसोसिएशन	1966	इंडियन कल्चरल एसोसिएशन
22.	मधुकलश	जयरुद्र दोसिया	1966	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित

23.	साहित्य सौरभ	बोयराम बोली	1966	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
24.	रणभेरी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1967	विक्रम सिंह रामलाला, मॉरीशस
25.	वंदेमातरम्	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1967	नालंदा प्रेस, मॉरीशस
26.	मुझे कुछ कहना है	सोमदत्त बखोरी	1967	लक्ष्मी प्रेस, मॉरीशस
27.	प्रभात	हरिनारायण सीता	1968	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
28.	दीपावली	ठाकुर प्रसाद मिश्र	1968	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
29.	एक कहानी कुली की	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1968	विक्रम सिंह रामलाला, मॉरीशस
30.	स्वराज गीतांजलि	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1968	विक्रम सिंह रामलाला, मॉरीशस
31.	बिखरे सुमन	रामरतन रिसाल मिश्र	1969	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
32.	मधुकलश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1969	रामदयाल जोशी साहित्य परिषद, भारत
33.	रसवंती	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1970	सुकदेव ईसर, मॉरीशस
34.	सर शिवसागर रामगुलाम	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1970	नालंदा प्रेस, मॉरीशस
35.	मधुबन	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1970	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
36.	हिंदी गौरव गान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1970	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
37.	मॉरीशस की हिंदी कविता	सं. मानिक बच्छावत	1970	अमिपम प्रकाशन, कलकत्ता
38.	आकाश गंगा	सं. पूजानंद नेमा	1970	बहादुर प्रिंटिंग प्रेस, पोर्ट लुई
39.	मॉरीशस में बाढ़	गिरजानंद रंगू	1971	बहादुर प्रिंटिंग प्रेस, पोर्ट लुई
40.	बीच में बहती धारा	सोमदत्त बखोरी	1971	हिंदी परिषद, मॉरीशस
41.	मधुमास	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1971	सुकदेव ईसर, मॉरीशस
42.	स्वागत-गान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1971	नालंदा प्रेस, मॉरीशस
43.	प्रवासी स्वर	हिंदी परिषद् प्रकाशन, मॉरीशस	1971	हिंदी परिषद प्रकाशन, मॉरीशस
44.	हृदय की निधि	जगलाल रामा	1972	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
45.	अलग बसेरा	ज्ञानेश्वर रघुबीर 'बैरागी'	1972	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
46.	नव-निर्माण की वेला	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1972	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई
47.	मैं हूँ कलयुगी भगवान	कृष्ण लाल बिहारी	1972	मधु प्रेस, त्रियोले, मॉरीशस
48.	वरदान	इंद्रदेव भोला 'इंद्र'	1972	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई
49.	रवि अंशु	लालमन बसराम 'अनुरागी'	1972	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित

50.	प्रथम रश्मि	जनार्दन कालीचरण	1972	हिंदी परिषद, मॉरीशस
51.	सुरभित उद्यान	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1973	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
52.	चेतना	हेमराज सुंदर	1973	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
53.	मुहब्बत की राहों में	चितरंजन ठाकुर 'जवानी'	1973	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
54.	अभिशाप	परमेश्वर बिहारी शिवरत्न	1973	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
55.	निशा	ठाकुरदत्त पांडेय	1973	ग्लोब प्रिंटिंग प्रेस, मॉरीशस
56.	गोस्वामी तुलसीदास	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1973	लेखमन मंगर भगत, मॉरीशस
57.	मधुचक्र	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1973	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
58.	हास्य वाटिका	विष्णुदत्त मधु 'चंद्र'	1973	मधु प्रेस, त्रियोले
59.	काव्य कली	ज्ञानदत्त धनुकचंद	1974	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई
60.	सुधा कलश	जयरुद्र दोसिया	1974	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
61.	नन्हे दीप	सं. यशवंतलाल चूड़ामणि	1974	नेहरू शिक्षा भवन, मॉरीशस
62.	पुष्पांजलि	ठाकुरदत्त पांडेय	1974	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
63.	वीणा वादिनी	केशली कुमारी रागपोत	1974	मधु प्रेस, त्रियोले, मॉरीशस
64.	मॉरीशस की हिंदी कविता	अभिमन्यु अनत	1975	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
65.	विजय गान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1975	रामदयाल जोशी संस्थान, मॉरीशस
66.	जय हिंदी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1976	सुकदेव ईसर, मॉरीशस
67.	तरंगिणी	सं. देवनन हेमराज	1976	कांतोरेल साहित्य संगम, मॉरीशस
68.	आलोक	ठाकुरदत्त पांडेय	1977	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
69.	प्रणाम	ठाकुरदत्त पांडेय	1977	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
70.	विचार वीथिका	सूर्यप्रसाद मंगर भगत	1977	कांत कुशवाहा, लखनऊ, भारत
71.	नागफनी में उलझी साँसें	अभिमन्यु अनत	1977	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
72.	सहमी-सहमी सी आवाज	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1977	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
73.	काव्य वीथिका	सूर्यप्रसाद मंगर भगत	1977	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
74.	देश के फूल	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1978	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
75.	हिंदी पद्य पराग	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1979	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई
76.	चुनौती	डॉ. हेमराज सुंदर	1979	मित्र संघ, जबलपुर

77.	नशे की खोज में	सोमदत्त बखोरी	1982	राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
78.	कैक्टस के दाँत	अभिमन्यु अनत	1982	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
79.	साँप भी सपेरा भी	सोमदत्त बखोरी	1982	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
80.	लोकरंजन गीतमाला	बीही नारायणदत्त	1982	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
81.	आशा-दीप	सं. डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, श्री इंद्रदेव भोला और पं. धर्मवीर घूरा	1983	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
82.	हीरे चमके धूल में	सं. डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, श्री इंद्रदेव भोला और पं. धर्मवीर घूरा	1984	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
83.	बाल कविता माला	सं. डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, श्री इंद्रदेव भोला और पं. धर्मवीर घूरा	1984	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
84.	मधु-दीप	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1984	डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
85.	अमर कुली गाथा	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1984	करमचंद ईसर, मॉरीशस
86.	मधु-बहार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1985	भोजपुरी अकादमी, भारत
87.	मधुश्री	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1986	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
88.	एक डायरी बयान	सं. अभिमन्यु अनत	1985	अभियान प्रकाशन, भारत
89.	मधुबाण	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1986	डायमंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली
90.	सिंदूरी माँग	राजवंती अजोधा मातादीन 'नेहा'	1986	सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
91.	मॉरीशस की अनुपम बहार	रेडी रूपचंद	1987	स्वयं कवयित्री द्वारा प्रकाशित
92.	छवि सागर की	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1987	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
93.	मधु व्यंजना	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1988	डायमंड पब्लिकेशन, नई दिल्ली
94.	मधु गुंजार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1989	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
95.	मॉरीशस के नौ हिंदी कवि	सं. अभिमन्यु अनत	1989	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
96.	माधुरी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1989	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
97.	ध्वनन	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1989	किरण प्रयाग प्रकाशन, नई दिल्ली
98.	सोमदत्त बखोरी की चुनी हुई कविताएँ	सं. अभिमन्यु अनत	1990	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
99.	मधुलिका	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1991	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत

100.	अमर गीत	हरि देव सीनंदन	1992	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
101.	ललकार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1993	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
102.	क्षितिज	डॉ. बीरसेन जागासिंह	1993	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
103.	जाग रे हिंदू	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1994	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
104.	हिंदी वंदना	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1995	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
105.	तुम	मुकेश जीबोध	1995	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
106.	चुप्पी की आवाज	पूजानंद नेमा	1995	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
107.	काव्य परिचय	सं. अजामिल माताबदल	1995	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
108.	खिले सुमन	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1995	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
109.	रस-धारा	सूर्यप्रसाद मंगर भगत	1995	हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस
110.	बसंत बहार	जनार्दन कालीचरण	1996	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
111.	कविताएँ जो छप न सकीं	राजा हीरामन	1996	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
112.	एहसास	धनराज शंभु 'आनंद'	1996	यूनिक्स प्रकाशन, मॉरीशस
113.	रसपुंज रचनावली	सं. मनुीश्वरलाल चिंतामणि	1997	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
114.	छपकर रहीं कविताएँ	राज हीरामन	1997	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
115.	चुभते फूल	राज हीरामन	1997	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
116.	मॉरीशस का आदि काव्य कानन	सं. प्रह्लाद रामशरण	1997	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
117.	मॉरीशस मध्यकालीन काव्य प्रसून	सं. प्रह्लाद रामशरण	1997	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
118.	हँसते काँटे	राज हीरामन	1998	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
119.	दस्तक	सुमति बुधन	1998	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
120.	कुछ कल की, कुछ आज की	हरिनारायण सीता	1998	ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट, मॉरीशस
121.	अभिमन्यु अनत-समग्र कविताएँ	सं. डॉ. कमल किशोर गोयनका	1998	इराब्दी प्रकाशन, नई दिल्ली
122.	मॉरीशस के आठ समकालीन कवि	सं. महेश रामजीयावन	1998	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
123.	अपनी जमीन की तलाश	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	2000	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
124.	क्षितिज के पार	डॉ. बीरसेन जागासिंह	2000	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
125.	मधु संदेश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
126.	मधु घोष	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत

127.	मधु वाणी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
128.	मधु हाला	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
129.	चुनावई चटनियाँ	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, भारत
130.	मधु मंत्रणा	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2000	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
131.	युगपुरुष रामगुलाम की अमर कहानी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2001	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
132.	मिलेनियम पुरुष महात्मा का पैगाम	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2001	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
133.	मेरी भौजी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2001	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ
134.	सर शिवसागर रामगुलाम	कल्पना लालजी	2001	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
135.	एक लघु ज्वालामुखी	डॉ. हेमराज सुंदर	2001	हिंदी साहित्य अकादमी, मॉरीशस
136.	अलग प्रीत की रीत	ज्ञानेश्वर रघुबीर बैरागी	2001	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
137.	सच्ची खबर	डॉ. हेमराज सुंदर	2002	हिंदी साहित्य अकादमी, मॉरीशस
138.	अस्वीकृति में उठे हाथ	डॉ. हेमराज सुंदर	2002	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
139.	आक्रोश	जय जीऊत	2002	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
140.	मधु मालती	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2002	
141.	मधु प्रयाण	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	2002	
142.	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य रचनावली	सं. डॉ. कमल किशोर गोयनका	2003	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
143.	मानसी कमल	ज्ञानेश्वर रघुबीर बैरागी	2003	स्वयं कवि द्वारा प्रकाशित
144.	गुरु दक्षिणा	परमेश्वर बिहारी 'शिवरत्न'	2004	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
145.	खिलती कलियाँ	बृजलाल रामदीन	2004	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
146.	खट्टी-मीठी मुसकानें	कल्पना लालजी	2004	ग्लोब प्रिंटिंग, मॉरीशस
147.	पुष्पांजलि	बलवंत सिंह नबतसिंह	2004	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
148.	एक फूल गन्ने का	सूर्यदेव सीबरत	2004	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
149.	आभा	धनवंती ईसरसिंह	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
150.	अँधेरे का उजाला	राज हीरामन	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
151.	उजाले का अँधेरा	राज हीरामन	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

152.	मॉरीशस की हिंदी कविता	सं. राजपाल सिंह	2006	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
153.	शशिकिरण	कल्पना लालजी	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
154.	एक जमीन आसमान पर	राज हीरामन	2007	स्टार पब्लिकेशंस, दिल्ली

कहानी-संग्रह

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	नए अंकुर	पं. धर्मवीर घूरा	1967	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ, पोर्ट लुई, मॉरीशस
2.	एक सपना	ईश्वरचंद्र गंगाराम	1968	14, वालोंवील स्ट्रीट, पोर्ट लुई, मॉरीशस
3.	नई कहानियाँ	ईश्वरदत्त अलीमन	1968	14, वालोंवील स्ट्रीट, पोर्ट लुई, मॉरीशस
4.	चिराग और तूफान	प्रेमचंद भूली	1972	मधु प्रेस, त्रिओले, मॉरीशस
5.	सागर पार	दीपचंद बिहारी	1972	स्वयं लेखक द्वारा प्रकाशित
6.	सुरभित उद्यान	पं. धर्मवीर घूरा	1973	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ, पोर्ट लुई, मॉरीशस
7.	दो शरीर एक आत्मा	सुनीति अलियार	1973	मधु प्रेस, त्रिओले, मॉरीशस
8.	परख	बृजलाल रामदीन	1973	अध्यापक संघ, मॉरीशस
9.	त्रिवेणी	अभिमन्यु अनत	1974	त्रिवेणी क्लब, बो बासें, मॉरीशस
10.	नन्हे दीप	यशवंतलाल चूड़ामणि	1974	नेहरू शिक्षा भवन, मॉरीशस
11.	खामोशी के चीत्कार	अभिमन्यु अनत	1976	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12.	मॉरीशस की हिंदी कहानी	सं. अभिमन्यु अनत	1976	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
13.	इनसान और मशीन	अभिमन्यु अनत	1977	सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली
14.	स्वर्ग में क्या रखा है	दीपचंद बिहारी	1978	अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
15.	मिनिस्टर	भानुमती नागदान	1980	विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली
16.	मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ	सं. डॉ. कामता कमलेश	1981	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
17.	वह बीच का आदमी	अभिमन्यु अनत	1981	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
18.	मॉरीशस का कथा साहित्य	डॉ. कमाता कमलेश	1982	अनन्य प्रकाशन, दिल्ली

19.	मॉरीशस की कहानियाँ	राजेंद्र अरुण	1986	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
20.	मॉरीशसीय हिंदी कहानियाँ	सं. अभिमन्यु अनत	1987	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
21.	एक थाली समंदर	अभिमन्यु अनत	1987	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
22.	मॉरीशस की प्रतिनिधि कहानियाँ	सं. डॉ. शशिप्रभा श्रीवास्तव	1988	भारतीय संस्कृति साहित्य कला संस्थान, जयपुर
23.	मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ और समीक्षा	डॉ. शशिप्रभा श्रीवास्तव	1989	भारतीय संस्कृति साहित्य कला संस्थान, जयपुर
24.	नया सफर सहने का	पूजानंद नेमा	1992	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
25.	त्रिकोण का केंद्र	डॉ. बीरसेन जागासिंह	1995	हिंदी बुक सेंटर नई दिल्ली
26.	मॉरीशस की कहानियाँ और कविताएँ	डॉ. धर्मवीर घूरा	1995	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी
27.	विष मंथन	रामदेव धुरंधर	1995	नटराज प्रकाशन, दिल्ली
28.	सुस्मिता	अजामिल माताबदल	1995	हिंदी प्रचारिणी सभा लाँग माउंटेन, मॉरीशस
29.	सैलाबों के बीच	डॉ. बीरसेन जागासिंह	1995	नटराज प्रकाशन, दिल्ली
30.	तीसरा प्राणी	लोचन बिदेसी	1998	नटराज प्रकाशन, दिल्ली
31.	मॉरीशस की हिंदी कहानियाँ	सं. डॉ. कमल किशोर गोयनका	2000	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
32.	चाहे अनचाहे	जय जीउथ	2001	सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
33.	प्रतीक्षा	केशवदत्त चिंतामणि	2001	आत्माराम एंड संस, दिल्ली
34.	मॉरीशस की पहली हस्तलिखित पत्रिका दुर्गा	सं. डॉ. कमल किशोर गोयनका	2001	हिंदी प्रचारिणी सभा लाँग माउंटेन, मॉरीशस
35.	आदमकद बौने	मोहनलाल बृजमोहन	2002	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
36.	अभिमन्यु अनत की आरंभिक कहानियाँ	सं. डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण	2002	डायमंड बुक्स, नई दिल्ली
37.	बवंडर बाहर-भीतर	अभिमन्यु अनत	2002	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
38.	दुर्गा : 1935 से 1937 की कहानियाँ	सं. अजामिल माताबदल	2002	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस

39.	पश्चात्ताप	सोनालाल नेमधारी	2002	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
40.	अब कल आएगा यमराज	अभिमन्यु अनत	2003	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
41.	मॉरीशस की एक सौ एक लघु कथाएँ	डॉ. बीरसेन जागासिंह	2004	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
42.	द्वादश सरोज	सत्यवती जगमोहन	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
43.	अभिलाषा	धनराज शंभु	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
44.	अंगूर खट्टे हैं	जय जीउथ	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
45.	चाहे-अनचाहे	जय जीउथ	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
46.	स्वघोषित आचार्य	राज हीरामन	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
47.	मॉरीशस से लघु कथाएँ	इंद्रदेव भोला	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
48.	मातम पुरसी	अभिमन्यु अनत	2007	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
49.	सेवा आश्रम	राज हीरामन	2008	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

लघु कथा-संग्रह

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	चेहरे मेरे तुम्हारे	रामदेव धुरंधर	1998	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
2.	यात्रा साथ-साथ	रामदेव धुरंधर	1999	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
3.	एक धरती एक आकाश	रामदेव धुरंधर	2004	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
4.	आते-जाते लोग	रामदेव धुरंधर	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
5.	कथा संवाद	राज हीरामन	2008	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

उपन्यास

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	पहला कदम	कृष्ण लालबिहारी	1960	स्वयं लेखक द्वारा प्रकाशित
2.	और नदी बहती रही	अभिमन्यु अनत	1970	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	आंदोलन	अभिमन्यु अनत	1971	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4.	एक बीघा प्यार	अभिमन्यु अनत	1972	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5.	ज्ञान ज्योति	बेणीमाधव रामखेलावन	1972	आर्य उपदेशक मंडल, मॉरीशस
6.	जम गया सूरज	अभिमन्यु अनत	1973	सूर्य प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली
7.	फट गई धरती	विष्णुदत्त मधु	1975	घर-घर में हिंदी प्रकाशन, त्रियोले, मॉरीशस
8.	तीसरे किनारे पर	अभिमन्यु अनत	1976	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
9.	चौथा प्राणी	अभिमन्यु अनत	1977	ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली
10.	तपती दोपहरी	अभिमन्यु अनत	1977	सरस्वती विहार प्रकाशन, नई दिल्ली
11.	लाल पसीना	अभिमन्यु अनत	1977	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12.	कुहासे का दायरा	अभिमन्यु अनत	1978	राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
13.	शेफाली	अभिमन्यु अनत	1979	सरस्वती विहार, नई दिल्ली
14.	हड़ताल कल होगी	अभिमन्यु अनत	1979	सरस्वती विहार, नई दिल्ली
15.	मसीहे नर्क जाते हैं	दीपचंद बिहारी	1980	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
16.	चुन-चुन चुनाव	अभिमन्यु अनत	1981	पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली
17.	ताकि वे जी सकें	दीपचंद बिहारी	1981	राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
18.	चेहरों का आदमी	रामदेव धुरंधर	1981	समानांतर प्रकाशन, नई दिल्ली
19.	अपनी ही तलाश	अभिमन्यु अनत	1981	अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
20.	पर पगडंडी नहीं मरती	अभिमन्यु अनत	1983	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
21.	छोटी मछली बड़ी मछली	रामदेव धुरंधर	1983	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
22.	अपनी-अपनी सीमा	अभिमन्यु अनत	1983	राजपाल एंड संस, नई दिल्ली
23.	गांधीजी बोले थे	अभिमन्यु अनत	1984	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
24.	अमर प्रेम	बेणीमाधव रामखेलावन	1985	ज्ञान भारती, नई दिल्ली

25.	मार्क ट्वेन का स्वर्ग	अभिमन्यु अनत	1985	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
26.	फैसला आपका	अभिमन्यु अनत	1985	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
27.	जै गाँव का बहादुर	अभिमन्यु अनत	1986	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
28.	कसूर किसका	आनंद देवी	1986	सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
29.	मांसभक्षी	आस्तानंद सदासिंह	1986	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
30.	मुड़िया पहाड़ बोल उठा	अभिमन्यु अनत	1987	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
31.	सगाई	हीरालाल लीलाधर	1988	नचिकेता प्रकाशन, नई दिल्ली
32.	शब्द-भंग	अभिमन्यु अनत	1989	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
33.	पूछो इस माटी से	रामदेव धुरंधर	1989	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
34.	बनते बिगड़ते रिश्ते	रामदेव धुरंधर	1990	सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
35.	अचित्रित	अभिमन्यु अनत	1991	किताबघर, नई दिल्ली
36.	और पसीना बहता रहा	अभिमन्यु अनत	1993	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
37.	दो सखियाँ	गोबर्द्धन ठाकुर	1993	स्वयं लेखक द्वारा प्रकाशित
38.	लहरों की बेटी	अभिमन्यु अनत	1995	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
39.	घर लौट चलो वैशाली	अभिमन्यु अनत	1995	किताबघर, नई दिल्ली
40.	सोमदत्ता	बेणीमाधव रामखेलावन	1995	इंडोमारीशियन पब्लिकेशन, नई दिल्ली
41.	देवयानी	प्रसाद गणपत	1996	सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
42.	विकलित पागल	दानीश्वर शाम	1998	वार्तिक प्रकाशन, नई दिल्ली
43.	कमल कांड	दानीश्वर शाम	1998	वार्तिक प्रकाशन, नई दिल्ली
44.	चलती रहो अनुपमा	अभिमन्यु अनत	1998	किताबघर, नई दिल्ली
45.	आसमान अपना आँगन	अभिमन्यु अनत	2000	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
46.	निछावर	बेणीमाधव रामखेलावन	2000	आत्माराम एंड संस, दिल्ली
47.	अस्ति अस्तु	अभिमन्यु अनत	2002	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
48.	एक उम्मीद और	अभिमन्यु अनत	2002	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
49.	क्यों न फिर से	अभिमन्यु अनत	2002	किताबघर, नई दिल्ली
50.	हम प्रवासी	अभिमन्यु अनत	2004	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
51.	गरीबा	प्रसाद गणपत	2004	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

52.	अपना मन उपवन	अभिमन्यु अनत	2005	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
53.	जन सेवक	बेणी माधव रामखेलावन	2005	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
54.	शस्त	यश रणजीत	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
55.	दीवार ढह गई	बेणीमाधव रामखेलावन	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
56.	पथरीला सोना (तीन खंड)	रामदेव धुरंधर	2008	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

नाटक/एकांकी

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	जीवन संगिनी	जयनारायण राय	1941	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
2.	आदर्श बेटी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1951	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
3.	स्वतंत्रता का सुप्रभात	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'	1953	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
4.	पाँच एकांकी एक सपना	ठाकुरदत्त पांडेय	1972	हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी
5.	अनोखे अतिथि	हीरालाल लीलाधर	1974	मधु प्रेस, त्रिओले मॉरीशस
6.	विरोध	अभिमन्यु अनत	1977	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
7.	आवाज	आस्तानंद सदासिंह	1977	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
8.	तू-तू	आस्तानंद सदासिंह	1979	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
9.	थूक दिया भविष्य पर	आस्तानंद सदासिंह	1981	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
10.	तीन दृश्य	अभिमन्यु अनत	1981	रचनाकार प्रकाशन, नई दिल्ली
11.	गूँगा इतिहास	अभिमन्यु अनत	1985	नवनीत प्रकाशन, नई दिल्ली
12.	सात रंग एकांकी	सं. महेश रामजियावन	1986	ज्ञान गंगा, दिल्ली
13.	रोक दो कान्हा	अभिमन्यु अनत	1986	किताबघर, गांधी नगर, दिल्ली
14.	देख कबीरा हाँसी	अभिमन्यु अनत	1995	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
15.	पत्थर के लोर	सीता रामयाद	1997	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
16.	प्रतीक्षा एक नई सुबह की	धनराज शंभु	1998	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
17.	सीत बसंत और अन्य एकांकी	महेश रामजियावन	1999	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
18.	कर्मफल तथा अन्य एकांकी	महेश रामजियावन	2000	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

19.	बहू आंदोलन	सीता रामयाद	2002	बहादुर प्रिंटिंग, मॉरीशस
20.	और चेतना जाग उठी	धनराज शंभु	2002	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
21.	जय चरणदास की	महेश रामजियावन	2004	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
22.	आज़ादी वतन की	ज्ञानेश्वर रघुबीर	2004	माम प्रिंटिंग, आरसेनाल, मॉरीशस
23.	एक और स्यंतक	महेश रामजियावन	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
24.	फाँसी नहीं, उम्रकैद तथा अन्य एकांकी	छत्रदत्त हीरामन	2005	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
25.	ऐसा भी कभी होता है तथा अन्य एकांकी	छत्रदत्त हीरामन	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
26.	युग पुरुष	धन नारायण जीउथ	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

अनूदित नाटक : फ्रेंच से हिंदी

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	कौआ चले हंस की चाल	पं. ब्रजनाथ माधव वाजपेयी	1954	कला निकेतन, पटना, भारत
2.	दो जुआँ	पं. ब्रजनाथ माधव वाजपेयी	1958	पराग सुलभ साहित्य, पटना, भारत
3.	सूम का धन	पं. ब्रजनाथ माधव वाजपेयी	1959	पराग सुलभ साहित्य, पटना, भारत

निबंध

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ	पं. बासदेव बिसुनदयाल	1956	बी. बख्तावर सिंह, पोर्ट लुई, मॉरीशस
2.	जीवन प्रदीप	प्रसाद गणपत	1966	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई, मॉरीशस
3.	बिसुनदयाल निबंधावली	पं. बासदेव बिसुनदयाल	1966	बी. बख्तावर सिंह, पोर्ट लुई, मॉरीशस
4.	सुरभित उद्यान	मुनीश्वरलाल चिंतामणि तथा अन्य	1969	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ, पोर्ट लुई, मॉरीशस

5.	मॉरीशस का हिंदी साहित्य तथा अन्य निबंध	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1972	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई, मॉरीशस
6.	मोती निबंधमाला	शिवलाल मोती	1972	साहित्य संघ, मॉरीशस
7.	त्रिवेणी से परी तालाब तक	भुवनेश्वर सोनू	1972	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
8.	चिरंतन जीवन मूल्य	के. हजारीसिंह	1978	दि मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली
9.	माध्यमिक निबंध	हेमराज सुंदर	1982	सुंदर एजुकेशनल पब्लिकेशन, मॉरीशस
10.	मॉरीशस मंजूषा	प्रह्लाद रामशरण	1988	प्रमोद प्रकाशन, अजमेर, भारत
11.	गांधी जी बोले थे : छद्म अवधारणाओं का आलेख	प्रह्लाद रामशरण	1999	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
12.	परिक्रमा	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	2007	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
13.	निबंध प्रदीप	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	2007	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

जीवनी

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	डॉ. एम. मणिलाल	हीरालाल गुप्त	1963	एम.इ. रावत, मॉरीशस
2.	पं. बिसुनदयाल : जीवन और कृतित्व	पं. ब्रजनाथ माधव वाजपेयी	1967	चाणक्य प्रेस, पटना, भारत
3.	डॉ. शिवसागर रामगुलाम	टेकलाल गणेश	1969	जितेंद्र कुमार मित्तल, बंबई
4.	डॉ. शिवसागर रामगुलाम	पं. श्रीकृष्ण शर्मा	1969	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई, मॉरीशस
5.	नए मॉरीशस के निर्माता	पं. रामलगन शिवगोविंद शर्मा	1975	लक्ष्मी प्रिंटिंग, पोर्ट लुई, मॉरीशस
6.	पं. रामलगन : एक समर्पित जीवन	उदयनारायण गंगू	1987	राजपाल एंड संस, दिल्ली
7.	जन-आंदोलन के प्रणेता	अभिमन्यु अनत	1988	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
8.	मजदूर नेता रामनारायण	अभिमन्यु अनत	1988	नटराज प्रकाशन, दिल्ली

9.	मॉरीशस के निर्माता : सर शिवसागर रामगुलाम	उदयनारायण गंगू	1989	साहित्य कला संस्थान, जयपुर, भारत
10.	मॉरीशस के स्वतंत्रता सेनानी : सुखदेव बिसुनदयाल	उदयनारायण गंगू	1990	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
11.	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि : हिंदी के समर्पित साहित्यकार	हेमराज सुंदर	2001	हिंदी साहित्य अकादमी, मॉरीशस
12.	मॉरीशस में हिंदी साहित्य के अनन्य साधक : प्रह्लाद रामशरण	सुनील विक्रमसिंह	2003	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली

व्यंग्य

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	कलजुगी करम-धरम	रामदेव धुरंधर	2005	विद्या विहार, नई दिल्ली
2.	बंदे आगे भी देख	रामदेव धुरंधर	2005	श्रद्धा प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	पापी स्वर्ग	रामदेव धुरंधर	2005	श्रद्धा प्रकाशन, नई दिल्ली
4.	चेहरों के झमेले	रामदेव धुरंधर	2006	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली

यात्रा-संस्मरण

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम की राजस्थान यात्रा	प्रह्लाद रामशरण	1973	लखवती हरगोविंद, मॉरीशस
2.	भारत के आमने-सामने	डॉ. बीरसेन जागासिंह	1997	नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	त्रिनिडाड के आमने-सामने	डॉ. बीरसेन जागासिंह	1997	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली

बाल साहित्य

क्रम	शीर्षक	लेखक/संपादक	वर्ष	प्रकाशक
1.	मूली लौट आई	लक्ष्मी प्रसाद मंगरू	1999	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
2.	बस चली गई	यंतुदेव बुद्धू	2002	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस

संस्मरण

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	गांधी स्मृति	पं. घूरा, इंद्रदेव भोला, केशवदत्त चिंतामणि	1970	मॉरीशस हिंदी लेखक संघ, पोर्ट लुई, मॉरीशस
2.	चाचा रामगुलाम के संस्मरण	सुरेश रामबर्ण	1977	आलोक प्रकाशन, नई दिल्ली
3.	प्रह्लाद रामशरण : केंद्र और विस्तार	डॉ. धर्मेंद्र प्रसाद	1999	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
4.	एक मॉरीशसीय साहित्यकार की आत्मा	प्रह्लाद रामशरण	2001	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
5.	यादों का पहला पहर	अभिमन्यु अनत	2005	मेधा बुक्स, नई दिल्ली
6.	भूली-बिसरी यादें	जनार्दन कालीचरण	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
7.	धनदेव बहादुर : एक बहुमुखी प्रतिभाशाली संपन्न व्यक्तित्व	राज हीरामन	2006	ऋचा प्रकाशन, नई दिल्ली
8.	पं. बासदेव बिसुनदयाल के कुछ संस्मरण	नारायणपत्त दसोई	2007	स्वयं लेखक द्वारा प्रकाशित

लोक-साहित्य

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	मॉरीशस की शकुंतला	प्रह्लाद रामशरण	1989	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
2.	भोजपुरी लोकगीत	श्रीमती सुंदरी रामशरण	2001	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
3.	भोजपुरी लोकगीत	सं. डॉ. कुबेर मिश्र	2002	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
4.	मॉरीशस की लोक कथाएँ	इंद्रदेव भोला	2006	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

इतिहास

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	मॉरीशस आर्य समाज के उज्ज्वल रत्न	भरत कौड़िया	1970	स्वयं लेखक
2.	जगार्ना की जीत	अनिरुद्ध द्वारिका	1970	किशोर, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
3.	आर्य सभा मॉरीशस का इतिहास	मोहनलाल मोहित	1973	आर्य सभा मॉरीशस
4.	मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास	के. हजारीसिंह	1976	दि मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली
5.	मॉरीशस	प्रह्लाद रामशरण	1988	राजपाल एंड संस, दिल्ली
6.	हिंदू मॉरीशस	पं. आत्माराम विश्वनाथ	द्वि.सं. 1998	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
7.	मॉरीशस का इतिहास	मुनींद्रनाथ वर्मा	1984	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस

धर्म, दर्शन और संस्कृति

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	दिव्य दृष्टि (भाग : 1)	आचार्य रमणी त्रिपाठी	1967	मॉरीशस सनातन धर्म टेंपल्स फेडरेशन
2.	दिव्य दृष्टि (भाग : 2)	द्वारिका नाथ तिवारी	1967	मॉरीशस सनातन धर्म टेंपल्स फेडरेशन
3.	हिंदू धर्म	पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र	1969	श्रीमती जानकी मिश्र, बो-बासें, मॉरीशस
4.	हरि कथा अनंता	राजेंद्र अरुण	1984	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
5.	भरत गुन गाथा	राजेंद्र अरुण	1986	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
6.	रोम रोम में राम	राजेंद्र अरुण	1988	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
7.	मॉरीशस : लोक साहित्य और संस्कृति	प्रह्लाद रामशरण	1990	राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली
8.	जग जननी जानकी	राजेंद्र अरुण	1993	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
9.	भारतीय वाङ्मय में मॉरीशस की संस्कृति	प्रह्लाद रामशरण	1994	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली

10.	मॉरीशस में भारतीय संस्कृति का हरावल दस्ता	प्रह्लाद रामशरण	1995	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
11.	प्रह्लाद रामशरण और भारतीय संस्कृति	जर्नादन कालीचरण	1997	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
12.	रघुकुल रीति सदा	राजेंद्र अरुण	1998	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
13.	नौ महीनों की दिमागी कसरत	पं. राजमन रामसाहा	1998	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
14.	दस किरणें	पं. राजमन रामसाहा	1998	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
15.	तज संसय भज राम	राजेंद्र अरुण	2002	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
16.	गृह प्रवेश एवं गायत्री संध्या	पं. राजमन रामसाहा	2002	ए.वी.एस. प्रकाशन, त्रिओले
17.	आर्य समाज और शुद्धि आंदोलन	प्रह्लाद रामशरण	2004	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
18.	अथ कैकेयी कथा	राजेंद्र अरुण	2006	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
19.	मुक्ति के मार्ग	दामोदर सूकन	2007	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

साहित्य का इतिहास

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	मॉरीशस हिंदी साहित्य	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1994	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
2.	मॉरीशसीय हिंदी साहित्य	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	1996	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
3.	मॉरीशस की हिंदी कथा यात्रा	डॉ. विनोद बाला अरुण	1997	विद्या विहार, नई दिल्ली
4.	मॉरीशसीय हिंदी साहित्य	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	2001	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
5.	विदेशों में हिंदी	इंद्रदेव भोला	2003	स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली
6.	मॉरीशस का हिंदी कथा साहित्य : एक सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. कृष्ण कुमार झा	2006	भारत पुस्तक भंडार, दिल्ली-94

शोधकार्य

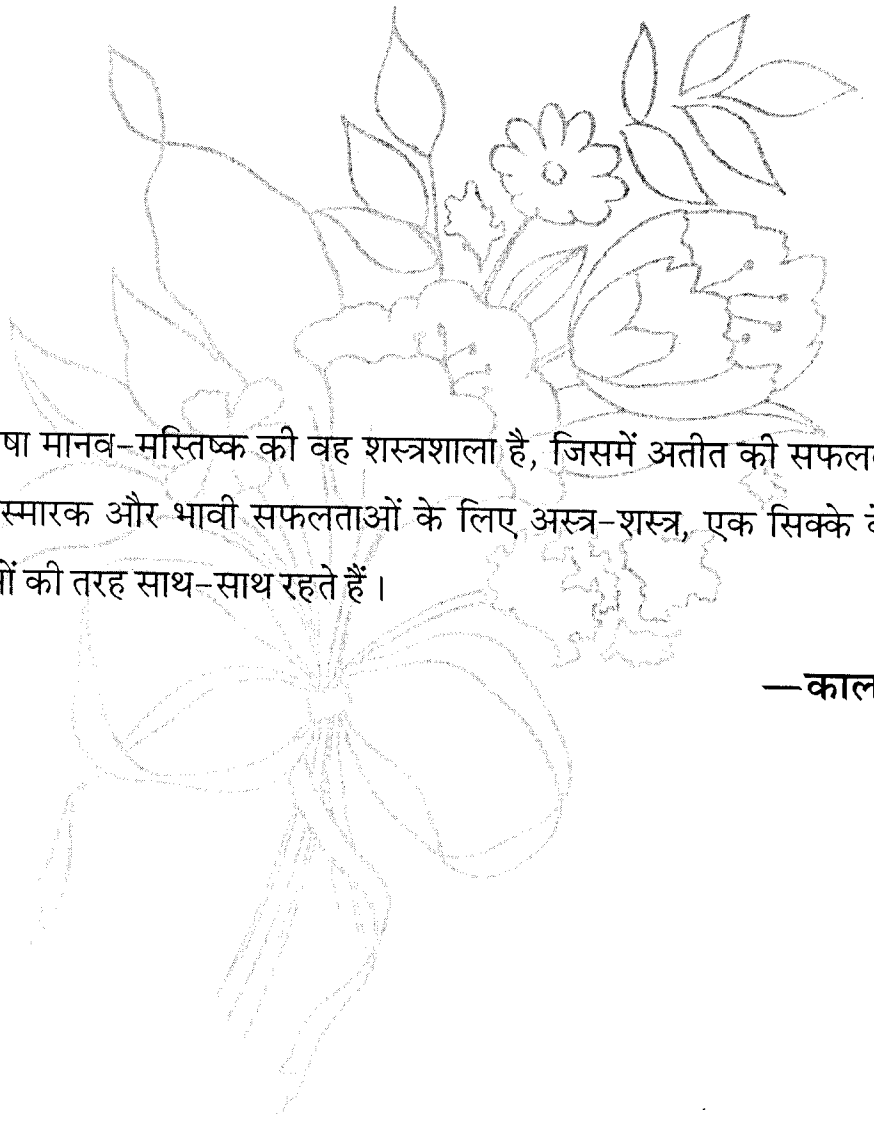
क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में नोस्टालजिया भावना	डॉ. राजरानी गोबिन	2001	साहित्य साहकार, नई दिल्ली
2.	मॉरीशस का भोजपुरी साहित्य एवं भारतीय संस्कृति	डॉ. उदय नारायण गंगू	2002	महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस
3.	मॉरीशस में खड़ी बोली हिंदी की व्यवस्था और प्रसार	डॉ. एल.पी. रामयाद अनुवाद : अजामिल माताबदल	2002	हिंदी प्रचारिणी सभा, लाँग माउंटेन, मॉरीशस
4.	समकालीन हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह	डॉ. रेशमी रामधनी	2003	स्वराज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

विविध

क्रम	शीर्षक	लेखक	वर्ष	प्रकाशक
1.	बिसुनदयाल रचनावली	पं. बासुदेव बिसुनदयाल	1960	बी. बख्तावर सिंह, पोर्ट लुई, मॉरीशस
2.	बिसुनदयाल लेखावली	पं. बासुदेव बिसुनदयाल	1964	राजहंस प्रिंटर्स, अजमेर, भारत
3.	भारत की संगीत कला	डॉ. ईश्वरदत्त नंदलाल	1972	सरगम प्रकाशन, मॉरीशस
4.	काशीनाथ रचनावली	सुरेश रामबरन	1984	महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस
5.	मॉरीशस : हिंद महासागर में एक नवोदित राष्ट्र	प्रह्लाद रामशरण	1987	राजपाल एंड संस, दिल्ली
6.	बासदेव बिसुनदयाल का संपूर्ण वाङ्मय	उत्तम बिसुनदयाल	1991	महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस
7.	वसंत चयनिका	सं. अभिमन्यु अनत	1993	महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस
8.	मॉरीशस में हिंदी साहित्य, संस्कृति और प्रह्लाद रामशरण	कालीचरण और बुली	1993	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली

9.	अभिमन्यु अनत का उपन्यास जगत	जनार्दन कलीचरण	2001	हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली
10.	मोहनलाल मोहित परिवार के जगत	प्रह्लाद रामशरण	2001	आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली
11.	सदुक्ति संग्रह	दु:खी गंगा	2004	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
12.	अंचराज साहित्य संचय	डॉ. लालदेव अंचराज	2004	शब्दलोक, दिल्ली
13.	गद्य गरिमा	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि	2008	सरस्वती इंस्टीट्यूट, मॉरीशस

□



भाषा मानव-मस्तिष्क की वह शस्त्रशाला है, जिसमें अतीत की सफलताओं के जयस्मारक और भावी सफलताओं के लिए अस्त्र-शस्त्र, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह साथ-साथ रहते हैं।

—कालरिज



विश्व हिंदी सचिवालय

WORLD HINDI SECRETARIAT

Swift Lane, Forest Side
Mauritius
Ph: 00-230-676 1196 • Fax: 676 1224
whsmauritius@intnet.mu

मुद्रक : **विद्या विहार,** नई दिल्ली-110002 (भारत) • vidyaviharnd@gmail.com